दुराग्रह, बेपरवाही व शिरजोरी के त्रिदोष से समाज बीमार होरही है चिकित्सा करके औषधी शोधो नहीं तो बीमारी असाध्य होजावेगी ॥

—लोकमान्य तिलक महाराज

ग्रन्थार्पण.

श्रीयुत् सेठजी वाहादूरमलजी बांठीया-भीनासरवाला
हींदी अनुवाद लेखक पाससे स्वीकारते हैं.

श्रीयुत् सेठजी बहादुरमलजी बांठिया, भीनासर.
इस पुस्तक को लागत मात्र से कम मूल्य में देने
के लिये दो हजार रुपये देनेवाले दानी गृहस्थ.

समर्पण ॥

—·○·—

श्री सेठजी बहादुरमलजी बांठिया,

भीनासर

चारित्र नायक महात्मा पूज्यश्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज की आपने अनुकरणीय सेवा की थी। धर्मज्ञान की अभिवृद्धि के लिये आप आगम व पुस्तकोंकी प्रभावना विशाल हृदय से कर रहे हो, इस पुस्तककी लागत से बहुत कम में प्रचार करने के लिये आपने रु० २,०००) देनामांगे मेरे पास भेजकर मेरा उत्साह को प्रफुल्लित करा है।

मैं आपकी समाज सेवाओं के आंशिक स्मरण के उपलक्ष्य में यह हिन्दी संस्करण आपके करकमलों में सादर सप्रेम समर्पण कर कृतकार्य होता हूं।

श्री संघका सेवक

जौहरी दुर्लभजी

जेय कंते पिए भोए लद्धे विपिठि कुव्वई ।
साहीणे चयई भोए से हु चाइत्ती वुच्चइ ॥

श्री दशवैकालिक सूत्र

यदि तुम अपना धन गुमा चुके हो तो तुम यह समझ लो कि, तुम्हारा कुछ भी गुमा नहीं, अगर तुम अपना स्वास्थ्य खो चुके हो तो तुम जानलो कि तुमरा कुछ खोगया है और कदाचित् तुमने अपना चारित्र नष्ट कर दिया है तो भली भांति जान लो कि तुम अपना सर्वस्व नष्ट बरबाद करचुके हो ।

—एक विद्वान्

Lives of great men, all remind us,
We can make our lives sublime, !

—Long fellow.

क्षान्त्यैवाक्षेपरूक्षा क्षरमुखरमुखान् दुर्मुखान् दूषयन्तः

सत्पुरुष तो निन्दा भरे कटुवचन बोलने वाले दुष्टों को अपनी क्षमाद्वारा ही दूषित—हारिहत—लज्जित कर देते हैं ।

यह महात्माओं का व्रत है प्रत्येक सज्जन को होना ही चाहिये ।

हिन्दी अनुवाद ।

विचार विवेचन अपनी निज की भाषा में अच्छी तरह हो सकता है। भाषान्तर करने से तो भाषा की असली खूबी में अंतर रह जाता है। गुजराती से इसका हिन्दी अनुवाद कराया गया है अगर हिन्दी में ही इसकी स्वतन्त्र रचना होती तो विशेष आकर्षक होती। मैं अपनी शक्ति अनुसार जैसा कर सका वैसा पाठकों के भेट करता हुं। अनुवादक की त्रुटी के लिये मूल लेखक जिम्मेवार नहीं हो सकता।

ये अनुवाद अनुभवी श्रावकों के पास भेजा गया था, उन महानुभावों की सलाह अनुसार कम-ज्यादा किया गया है। उन महानुभावों का आभार मानते हुवे, सुज्ञ पाठकों की सेवा में नम्र अर्ज करता हुं कि, हिन्दी की दूसरी आवृत्ति शीघ्र ही निकालनी पड़ेगी, इसलिये इस अनुवाद में कम वेशी करने अथवा सुधारने के लिये जो सूचनाएं मिलेंगी उनका सादर स्वीकार किया जावेगा।

जिन महात्मा का यह जीवन चरित्र है उनका मुख्य आदर्श गुणग्राहकता था, पुस्तक पढने वाले सब गुणग्राहक बुद्धि से ग्रन्थ का अवलोकन करेंगे तो मेरा श्रम सार्थक होगा और लेखक का शुभ आशय समझ में आवेगा।

तन्दुरस्त मनुष्य शक्कर खाता है कोई नमकीन सोडा पीता है लेकिन वीमार को तो वैद्यराजजी कुनाइन जैसी कड़वी औषधी

देते हैं उससे उसका आशय केवल वीमारी को दूर करना होता है इस जीवन चरित्र में से अपनी २ प्रकृति अनुसार मिष्टान्न, नमकीन व कुनाइन लेने का अधिकार पाठकों को है । अमूल्य औषधियों का यह भंडार है, शारीरिक, मानसिक सव रोगों के लिये दवा मिलेगी, समभाव से, इर्षारहित दृष्टि से देखने से निर्मल चक्षुओं को अद्भुत दृश्य मिलेगा।

संयम सरिता का वेग शिथिल होने से श्रद्धा में भी शिथिलता आजाती है, परिणाम में श्रावकों को उदासीनता होजाती है। चतुर्विध संघ का, भविष्य श्रेय के लिये इस जीवन चरित्र में सयंम शुद्धि के लिये जोर दिया है और पुष्टि के लिये पवित्र सूत्रों के सिवाय अनुभवियों के विवेचन उद्धृत करके साधु जीवन की जड़ मजबूत की है। जिस महात्मा का जीवन ही चारित्र का आदर्श नमूना था, जिन्होंने चारित्र के लिये रात्रि दिवस उजागरा किया था, जिनके रग २ में संयम श्रोणित वहता था, उनके जीवन चरित्र में चारित्र के लिये जितना भी लिखा जावे उतना कम है,

मैं साफ दिल से जाहिर करता हुं कि चारित्र के लिये जो लिखा है वो समुच्चय ही लिखा है किसी खास व्यक्ति व समाज को अपने ऊपर घटाने की संकोच वृत्ति नहीं रखना चाहिए, कान्फरन्स प्रकाश का ता० ३१ जुलाई का २० वें अंक में जाहिर कर चुका हुं कि "पूज्य श्री के जीवन चरित्र में किसी की निन्दा व आक्षेप कारक कुछ भी नहीं लिखा गया है. अजमेर वगैरह स्थानों की सत्य घटनायें भी मैंने शान्ति के लिये जीवन चरित्र में नहीं दी है. सिर्फ चारित्र संरक्षण के लिए आगमोक्त आज्ञानुसार वे विद्वानों

के वचनामृत उद्धृत किये हैं जो सब के लिये मान्य व हितकर है किसी खास व्यक्ति व समाज के लिए यह सामग्री नहीं है. गुण ग्राहक बुद्धि व कृतज्ञता की दृष्टि से शुभ व सत्य आशय समझ में आवेगा. निर्दोष केवलो हरिः " और फिर भी पाठकों से अर्ज करता हुं कि इतना खुलासा करने पर भी इस पुस्तक में कोई भी विषय लेख, वाक्य, शब्द आदि अरुचि कर समझे तो उसकी सूचना अवश्य प्रदान करे। ताकि दूसरी आवृत्ति में उन सूचनाओं का अमल किया जावे।

पत्रकारों को बहकाने के लिये जो विज्ञापन छपवाकर भेजे गये हैं वो विज्ञापन के प्रत्युतर में मेरा ऊपर का खुलाशा काफी है। गलत अर्थ से असत्य भ्रम होता है लेकिन जो सत्य है वो आखिर तक सत्य ही रहेगा। परमात्मा सबको सन्मति दे।

जैपुर
आषाढ़ शुक्ला १५ सं० १९८०

श्रीसंघ का सेवक
जौहरी दुर्लभजी
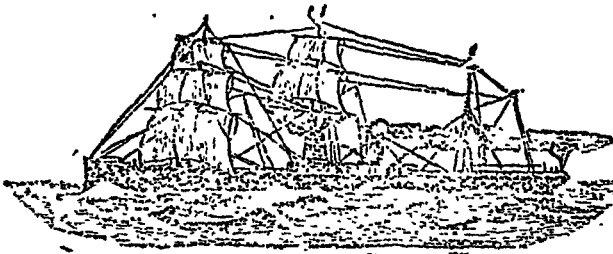
निवेदन।

इस क्रान्तियुग में आर्यावर्त को ऊपर चढाने के लिए सच्चारित्र्य के समस्त आलम्बन की अधिक आवश्यकता है। जडवाद के समय में उन्नति के शिखर तक नहीं पहुंचने के कारणों में भी चारित्र्य की शिथिलता ही प्रधान है, इस परिस्थिति में अनुभवी लोग यही राय देते हैं कि और सब उपायों को पीछे हटाकर सिर्फ प्रजा को चारित्र सम्पन्न बनाने की कोशिश को ही प्रधान मानना चाहिए। हरएक समय के महापुरुषों ने चारित्र्य सुधारणा ही अपना मुख्य जीवनोद्देश्य मानी है, उत्कृष्ट चारित्र्य वाले महात्मा ही जगत के लिए महान् आशीर्वाद रूप मानेजाते हैं, वे जब जीते रहते हैं तब उनका चारित्र्य ही जगत को कर्तव्य पाठ पढ़ाता है और प्रजा का नवीन उत्साह, नवजीवन, नवचेतन आदि उत्पन्न करता है, और उन महात्मा पुरुष की अनुपस्थिति में उनका जीवनचरित्र भी प्रजा में सात्विक प्राण का संचार करता है तथा प्रजा के उन्नति मार्ग में दौड़ाता है।

वर्तमान काल में साहित्य के अन्दर गल्प, कादम्बरी, नाटक आदि की पुस्तक अधिक संख्या में निकल रही हैं, जिससे कि सत्पुरुषों का सच्चा जीवन वृत्तान्त बहुत कम प्रसिद्ध होता है, सच्चे जीवन वृत्तान्तों में कल्पनामय मनोरञ्जक वार्ता होती नहीं इसलिए

गल्प और कादम्बरी आदि के रसिकों में जीवनचरित्र का पूर्ण आकर्षण नहीं होता है, लेकिन तोभी गुणान्वेषी सत्पुरुष तो इन जीवन चरित्रों के आनन्द से स्वागत करते हैं।

दूसरों का अनुकरण करना यह मनुष्यों का स्वभाव है इसलिए प्रजा के सामने अगर आध्यात्मिक और पारमार्थिक जीवन बिताने वाले महापुरुषों का चरित्र रक्खा जाय तो इससे लाभ ही हो सकता है, चरित्र नायक के गुण ग्रहण करने का जनता को इच्छा होती है और अपने गुणों के साथ तुलना करके अच्छा बुरा समझ कर पाठक उत्तम होने की कोशिश करते हैं, इस रीति से जीवनचारित्र इसलोक से परलोक तक सुख के मार्ग दिखाने के लिए सच्चा शिक्षक का काम देता है। श्री महावीर के जीवन चरित्र पढ़ने से आत्मिक शक्ति के विकाश होकर देहाभिमान कम होता है और आत्मा की अनन्त शक्ति काभान होता है। श्रीरामचन्द्रजी के वृत्तान्त बांचकर एक पत्निव्रत और एक रामराज्य क्योंकर होसकता है इसका ख्याल होता है। भीष्म पितामह के वृत्तान्त से ब्रह्मचर्य की महिमा समझ में आती है, राणा प्रतापसिंह के जीवनचरित्र से अटूट धैर्य और दृढ प्रतिज्ञा पालन की शिक्षा प्राप्त होती है।

अपने जीवन काल में समय २ पर कुछ न कुछ संकट आता ही रहता है, उस वक्त कईवार अपनी बुद्धि अपने को सहायता नहीं

देता है, वह सहायता और वह बल उस संकष्ट को हटाने के वास्ते महापुरुषों के जीवनचरित्र देता है, उस जीवन चरित्र में उस संकष्ट को हटाने के परिश्रम का, और वर्तन का दृष्टांन्त अपने को अच्छी तरह हिम्मत बंन्धाता है। इस संसार सागर में जीवन जहाज को किस रास्ते से लेजाने से ठोकर नहीं लगकर सही सलामत पार पहुंच सकते हैं उस रास्ता को जीवनचरित्र बताता है। इस संसार रूपी वनमें से सही सलामत निकलने का मार्ग अनुकूल हो जाता है, तथा किस स्थल में चित्तको शान्ति देने वाला व अन्त:करण को आनान्दित करने वाला आश्रम स्थान आवेगा इन सब बातों को बताने वाला जीवन चरित्र ही है।

सामाजिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति के लिए महापुरुषों का जीवन चरित्र लिखने का प्रचार पूर्वापर से है, रामायण, महाभारत पुराण आदि में लिख हुए सच्चे अथवा कल्पित जीवन चरित्र में अपने साहित्य प्रदेश में उच्च पदवी प्राप्त किया है। जैनागम में भी चरितानुयोग, कथानुयोग को भी इतना ही महत्व देनेमें आता है, जीवन चारित्र अर्थात् अमुक व्यक्ति की जिंदगी में क्रमसे बनी हुई वार्ता अथवा संक्षेप में कहें तो अमुक व्यक्ति के हृदय का प्रतिबिम्ब यही है महान् पुरुष जगत् में स्थल स्थल पर एकही समय में प्रगट हो जाय, इसतरह पैदा नहीं होते हैं, जिनके मन, वचन शरीर में पुण्यरूपी अमृत भरा है और जिन्हों ने कभी

कायिक, वाचिक, मानसिक पाप किया ही नहीं तथा जिन्होंने उपकार समूहों से संसार को उपकृत किया है, और जिन्हों ने अणुमात्र भी दूसरों के गुणको पर्वत के समान मानकर निरन्तर मनमें प्रसन्न रहते हैं ऐसे सत्पुरुष संसार में विरले ही होते हैं, ऐसे चारित्र्यवान मनुष्यों का जीवन, जीवनचरित्र तरीके लिखने का लायक है इस संसार में जन्म लेकर सिर्फ मौजमजा में, स्वार्थान्धता में, आलस्य में और जीवनकलह में जिसने अपना जीवन बिताया है उसका जीवनचरित्र कभी भी नहीं लिखा जाता है, ज्ञान चारित्र और श्रेष्ठगुणों से संपादित हुआ और मनुष्यों से प्रशंसित जो क्षणभर भी जीया है उन्हीको विचारशील जन इस संसार में जीवित कहते हैं ।

प्रबल वैराग्य, घोर तपश्चर्या, निश्चलमनोवृत्ति, अनुपम सहनशीलता, इत्यादि उत्तमोत्तम सद्गुणों से जीवन को परम आदेश रूप में परिणत कर भव्यजीवों के हृदयपट पर असाधारण असर उत्पन्न करनेवाले और अनेक राजा महाराजाओं को अहिंसा धर्मके अनुयायी बनानेवाले धर्मवीर सत्पुरुष पूज्यश्री १००८ श्रीलालजी महाराज जैसे उत्तम रीति की आध्यात्मिक विभूति की जीवनचर्या संसार के सामने शुद्ध स्वरूप में उपस्थित करते हुए हमें परम आह्लाद होता है, श्री माहावीर भगवान की आज्ञारूप ध्रुवतारा के ऊपर निश्चल लक्ष्य रख कर अपने ध्येय पहुंचाने के लिए इनका

जीवन प्रवाह सतत बहता था, आर्य प्रजा के आध्यात्मिक अधः पतन को देख कर इनकी आत्मा बहुत दुख पाती थी, आर्य प्रजा के आध्यात्मिक जीवन को पुनरुज्जीवन करने के लिए पूज्यश्री दिन रात उद्यम में तत्पर रहते थे, उक्त पूज्यश्री ने अपनी पवित्र जीवन चर्या से जगत के उद्धार का मार्ग दिखाया है जैन अथवा जैनेतर समस्त प्रजा के ऊपर इनका समभाव था। और सभी के ऊपर उपदेश का समान ही प्रभाव पडता था बहुत से मुसलमान गृहस्थ इनको पीर के समान मानते थे, बडे २ राजा महाराजा इनके चरण कमल पर शिर झुकाते थे, इसतरह के इस समय में एक आदर्श महा पुरुष की जीवन घटना हमें जिस प्रमाण में और जिस स्वरूप में मिली उसी प्रमाण में और उसी स्वरूप में हमने उस जीवन घटना को इस पुस्तक के अन्दर गूंथी है।

महात्मा गांधीजी के समकालीन पूज्यश्री १००८ श्रीलालजी महाराज साहब की समाज सेवा जैनप्रजा में जाहिर ही है, उन पूज्य श्री का पवित्र नाम उच्च से उच्च माननीयों में भी मान्य शब्द है, निर्मल चारित्र्य और अवर्णनीय गुण ग्राहक वुद्धि से पूज्यश्री का विजय विजयी और निराभिमानी थे, शुद्ध संयम की आवश्यकता वे श्वासोच्छ्वास के समान मानते थे।

सामान्य व्यापारी कुल में पैदा होकर न तो था विशेष वाग्-विन्यास और न तो था विशेष अभ्यास, तोभी आप दिग्विजय

कर सके और राजा महाराजा भी आपके चरण कमल में शिर झुकाने में आनन्द मानने लगे। उन पूज्य श्री की गंभीरता, और वह विचारमय गहन मुखमुद्रा, अल्प किंतु मार्मिक वचन और विचार में सिद्धांत पर तथा कर्म क्षेत्र में साध्य सिद्धि पर, उनका अभेद्य, अखंड व अस्खलित प्रवाह और उनकी अपूर्व कार्यशक्ति, और उपद्रव से आए हुए असह्य दुःख में सन्तप्त होकर पार उतरा हुआ उनका विशुद्ध जीवन और उनका अगाध भक्तिभाव, तथा अपूर्व संघसेवा इन सब बातों का स्मरण जिन्हे पूरा २ होगा पूज्य श्री की जीवनी की भव्यता का यथार्थ ज्ञान उनकी ही समझ में आवेगा, समकालीन कार्य-क्षेत्र में अमुक मतभेद हो जाने पर भी अभी भी जैन जगत एक स्वर से पूज्यश्री का गुणानुवाद करता है, यही बात उनके सपूर्ण गौरव का साक्षी है, इनका आत्मगौरव और इनका आदर्श पहचानने लायक शक्ति अपने में नहीं थी, इनकी तेज प्रभा में खड़ा रहने लायक पवित्रता अपने में नहीं थी, इनकी तपस्या की कीमत अपने को नहीं थी, उन पूज्यश्री के परलोकवास पर आंसू बहाना अथवा देश के शिरोमणि को पहचानना इस बात में अपने को बाधा आती है यह अपना हतभाग्य ऊपर आंसू बहाना चाहिए।"

चारोंतरफ आविश्रान्त विहार कर और निराशाका निकन्दन कर उत्साह के संचार करने में पूज्यश्री ने कुछ बाकी नहीं रक्खी

उपोद्घात ।

बाल्यावस्था में जब कभी वर्षा आदि होने से न्हाने में आलस्य होता था तब एक वाक् सूत्र सुन पड़ता था, 'जाजा रोया ढूंढिया' उसवक्त यह स्वप्न में भी क्योंकर आता कि सं० १९३३ से सं० १९७८ तक देखेगये साधु समूहों में पुण्य-निर्मल परम साधूराज ज्ञानियों में गुणसागर, परम ज्ञानवीर, सन्यासिओं में संन्यस्त भीष्म, परमसंन्यासी के ढूंढिया सम्प्रदाय में से दर्शन होगा ? लेकिन ऐसा ही हुआ, जो जिसको खोजे सो उसे मिलता है, नहीं खोजने वाले को मिलता नहीं, ढूंढने वाले सब ढूंढिया ही कहाते हैं, कलापी का प्रख्यात गजल का आध्यात्मिक अर्थ समझने वाला मनुष्य मात्र सिर्फ एक यही भावना पुकारते हैं ।

पैदा हुवा हूं ढूढनें तुझको सनम !

वैष्णव भक्तराज सिर्फ यही गाते हैं कि

वनमें भूल रहा हूं कहो कहां गयो कान,

वेदान्तिओं की सूत्रावली में पहला सूत्र यही है कि—

" अथातो ब्रह्मजिज्ञासा "

बाईबल भी कहता है कि ढूंढो तो मिलेगा हरएक

लेकिन इसी विषयमें वे हमारे प्रयास को देखकर वे भाई साहब ने अपना संग्रह हमें देदिया और हमारे कार्य में सहानुभूति दिखाई, उनकी इस सहृदयता ऊपर कृतज्ञता प्रगट करते हमें हर्ष होता है।

इस कार्यमें भाई श्री झवेरचन्द जादवजी कामदार की हमें सहायता नहीं मिलती तो इस कार्य की सफलता शायदही होती, वे भाई शरीर तथा परिवार की परवाह नहीं करते हमें दी हुई सहायता की प्रतिज्ञा को पालने में और इस चरित्र को आकर्षक बनाने में जो आत्मभोग दिये हैं उस आत्मभोग से हम उन्हें अपनी सार्थकता में भागीदार तरीके जाहिर कर इस पुस्तक में उनके नाम जोडने में आनन्द मानते हैं।

पूज्य श्री के परम अनुरागी शतावधानी पण्डित महाराज श्री रत्नचन्द्रजी स्वामी तथा और मुनि महाराजों ने पुस्तक को सुशोभित करने में जो श्रम उठाये हैं उन मुनिराजों के तथा हमारे मुरब्बी श्री श्रीमान् कोठारीजी श्री बलवन्तसिंहजी साहब वगैरह शुभेच्छुको ने उपयोगी सलाह देकर हमारा प्रयास सरल बनाये हैं उन सभों के मेरे पर परम उपकार हैं।

साक्षरों में श्रेष्ठ शीघ्र कविवर श्रीयुत श्रीन्हानालालजी दलपतराम कवि एम्. ए. ने इस पुस्तक का उपोद्घात लिखने की कृपाकर पुस्तक को विशेष पवित्र बनाई है इस उपकार का नोध लेते हमें परम हर्ष होता है।

इस पवित्र पुस्तक के लिए कलम चलाने में बहुत सावधानी रखनी पडी है जो पवित्र पुरुष की जीवनी लिखने में योग्यता के बाहर साहस स्वीकारा, इस गुण ग्राहक महात्मा के जीवन प्रसंग लेखन में सहज भी किसी की जी दुखे ऐसा एक अक्षर भी नहीं लानेका ध्यान रक्खा है इसी सबब से कितनी सच्ची घटना का भी विवेचन छोडा गया है।

काठियावाड़ के दो चातुर्मास की वार्ता विस्तार पूर्वक लिखी गई है। वह बहुतों को पक्षपात रूप दीख पडेगा, लेकिन सच्चा कारण यह है कि, उन दोनों चातुर्मासों की सच्ची २ घटनाओं को अपनी नजर से देखने का अवसर हमें मिला था, इसलिए दूसरे स्थलों के लिए अन्याय नहीं होना चाहिए, अतवए दूसरी आवृत्ति और हिन्दी अनुवाद में उन बातों को संक्षेप करने की सलाह हमें मिली है।

अमूल्य मनुष्य जन्म संयम सार्थक सम्बन्ध में सूत्र, महात्मा और अनुभवियों का वचनामृत उद्धृत करके जो विचार और विनन्ति जाहिर किए गए हैं वे सबके समान समझने के लायक हैं, कोई भी खास व्यक्ति अथवा किसी मण्डली के लिये समझ लेने का संकुचित विचार न करते हुए विशाल और गुणग्राहक बुद्धि से पठन करने के लिए सविनय प्रार्थना है।

निर्दोष केवलो हरिः

श्रीजैपुर	श्रीसंघ सेवक
ज्ञानपंचमी सं० १६७६	दुर्लभजी त्रि० जौहरी

उपोद्‌घात ।

बाल्यावस्था में जब कभी वर्षा आदि होने से न्हाने में आलस्य होता था तब एक वाक् सूत्र सुन पड़ता था, 'जाजा रोया ढूंढिया' उसवक्त यह स्वप्न में भी क्योंकर आता कि सं० १९३३ से सं० १९७८ तक देखेगये साधु समूहों में पुण्य-निर्मल परम साधूराज ज्ञानियों में गुणसागर, परम ज्ञानवीर, सन्यासिओं में संन्यस्त भीष्म, परमसंन्यासी के ढूंढिया सम्प्रदाय में से दर्शन होगा ! लेकिन ऐसा ही हुआ, जो जिसको खोजे सो उसे मिलता है, नहीं खोजने वाले को मिलता नहीं, ढूंढने वाले सब ढूंढिया ही कहाते हैं, कलापी का प्रख्यात गजल का आध्यात्मिक अर्थ समझने वाला मनुष्य मात्र सिर्फ एक यही भावना पुकारते हैं ।

पैदा हुवा हूं ढूढनें तुझको सनम !
वैष्णव भक्तराज सिर्फ यही गाते हैं कि
वनमें भूल रहा हूं कहो कहां गयो कान,

वेदान्तिओं की सूत्रावली में पहला सूत्र यही है कि—

" अथातो ब्रह्मजिज्ञासा "

बाईबल भी कहता है कि ढूंढो तो मिलेगा हरएक

मनुष्य को ढुंढिया शोधक-शाधक मुमुक्षु होना ही चाहिए अपने प्रभुको ही खोजना चाहिए।

भरतखण्ड की आर्यवाटिका में जल, जमीन, हवा मान की फलद्रुपता एक ही है, लेकिन महावन सरीखी इस आर्यवाटिका में उद्यान अथवा कुंज अनेक तथा जुदा २ हैं। इसमें चतुर माली की बनाई हुई क्यारियां, लता मंडप, जल, फुवारा वगैरह तरह २ के हैं, जिनसे कि सृष्टि सुन्दरी की चौखटशारीके अनेक रंग और अनेक तरह के दृश्य तथा तरह २ की लताओं से आच्छादित लता मण्डप की अनेक पुष्प परिमल से शोभायमान घूंघट घटा के समान भरतखण्ड की इस आर्यवाटिका में नानारंग वाली संसार रूपी क्यारी के अनेक रंग वाला संस्कृति मण्डप है, श्री महावीर स्वामी के रोपे हुए विकसित मञ्जरी युक्त विशालनी शाखा वाला जैन-धर्म रूपी आम्रवृक्ष और उस आम्रवृक्ष की संस्कृति रूपी कुपल उस में कवितारूप मंजरी, जिसमें धर्म ज्ञान, शील, तपस्यारूपी फलों से पृथ्वी यशस्वी हुई है धार्मिकता रूपी सरोवर से इस आर्यवाटिका अजब तथा अनोखी होरही है संसार के शास्त्रियों को तथा मानव संस्कृति के मीमांसकों को वह धर्म सहकार भूलने लायक नहीं है।

१६ वीं सदी में महर्षि दयानन्द ने हिन्दू धर्म, हिन्दू शास्त्र और हिन्दू संसार के लिए जो कुछ किया, उन सभी बातों को १५ वीं

सदी में जैन धर्म, जैन शास्त्र और जैन संसार के लिए लोंकाशाह ने की थी ई० सं० १४६८ में गुरू नानक का जन्म हुआ और तुरंत ही १५१७ ई० में धर्मवीर मार्टिन ल्यूथर ने केथोलीक सम्प्रदाय में जन्म लेकर अन्ध श्रद्धा का समूल नाश करने का प्रयत्न किया, युरोपीय इस इतिहास से करीब ५० वर्ष पहले अर्थात् १४५२ में जैनधर्म के ल्यूथर रूपी सूर्य गुर्जरपाट नगरी में ऊगे, ई० सं० १४७४ में लोंकागच्छ की स्थापना हुई, इस गच्छ के संस्थापक ने महर्षि दयानन्द और ल्यूथर के समान मूर्तिपूजा का निराकरण किया। मूर्ति-पूजा को धर्म विरुद्ध साबित की, शिथिलाचारी साधुओं का व्रत संयम दृढ किया, जादू टोना अध्यात्म मार्ग का अंग नहीं ऐसा समझाया, धर्म सूत्रों को अपने हाथ से लिखकर धर्माभिलाषियों को समझाया, चतुर्विध संघकी धर्म विरोधी भावनाओं को सत् धर्म रूपमें लाई, भेद इतना ही रहा कि महात्मा ल्यूथर पादरी थे, दयानन्द स्वामी सन्यासी थे, और लोंकाशाह आर्य महा आदर्श दिखाने में निपुण गृहस्थाश्रमी साधुराज थे, जनक विदेही के समान संसार भार धुरन्धर संन्यासी थे। अदीक्षित किन्तु भाव दीक्षित थे, जैन सन्त जिनप्रभुकी उपासना के लिए ४५ सन्यस्थ सुभटों को दीक्षा दिलवाकर समस्थ आर्यावर्त में भ्रमणार्थ छोड़े, ख्रिस्त धर्म सुधारक जर्मन ल्यूथर के ५० वर्ष पहले अमदावाद में यह घटना हुई। ल्यूथर के समस्त ख्रिस्ती जगत् को संभार रहा है लोंकाशाह के अमदा-

बाद भी आज उतनाही सन्हार रहा है वो जैन प्रोटेस्टेंट सम्प्रदाय के साधुवर थे।

श्रीलालजी महाराज अर्थात् दर्शनप्रिय भव्यमूर्ति सिर्फ नेत्र को लोभाने वाले नहीं, किन्तु नेत्र में अद्भुत रस आंजने वाले, उनकी आत्मा के समानही उनके देह वद भी सुदृढ, बलवान् और ओजस्वी था, उनकी सामुद्रिक शास्त्रमें श्रद्धाथी, और उनकी आकृति ही उनके गुणों को साफ जाहिर करती थी, उनकी देह मुद्राही उनकी महानुभाविता जता रही थी, उनकी देहमुद्रा थी किसी सजावट से नटमुद्रा बताने वाली नहीं थी, किन्तु स्वभाविक मुद्रा थी। सिर्फ दो श्वेत वस्त्र मात्र उनके देह ढाकने के लिए थे, ब्रह्मचर्य के सूचक शरीर सम्पत्ति से वे मनुष्यों में नर गजेन्द्र के समान शोभा-समान थे। नगर के मुख्य दरवाजा के कपाट के अर्गल समान उनका भुजदण्ड था, देव दुर्ग के समान विस्तीर्ण वक्षस्थल था, कमल पुष्प के पत्र के समान घेरा वाला भव्य मुख मण्डल और आम्र के नवीन प्रल्लव समान भालपत्र था, साधुता का शिखर समान कुम्भस्थलसा गण्डस्थल कुसुमपल्लव के भार से झुकी हुई लतासी भरी व झुकी हुई भ्रूलता और उस भ्रूवल्ली के नीचे नगर द्वार अथवा राजद्वार लिखे हुए सूर्य चन्द्र के समान नयन मण्डल था, इन सब के ऊपर ध्वजासी फरकती मेघ के समान वर्ण वाली लाल रेखा मानो वैराग्य की कलगीसी उडरही थी, ज्ञान पाट के

ऊपर लगाया हुआ विशाल पद्मासन और हस्ताङ्गली की ज्ञान मुद्रा पेगम्बर भावना का पूर्ण अंश सूचित करती थी, श्रीलालजी महाराज का दर्शन होने पर सभी के मन में बुद्ध भगवान् की स्मृति जागृत होती थी, आठ २ दिन के उपवास करने पर भी दो २ हजार श्रोताओं में सिंह गर्जना के समान गर्जते हुए इस कालिकाल में श्री १००८ श्रीलालजी महाराज को ही देखे, व्याख्यान के बीच बीच में साधुपरिवार यह स्तोत्र गाते थे—

" चतुरा ! चेतजोरे ।

ललना लेख जो रे ! के जोवन दो दिन रो झलकार ।
अपने ही रंग में रंग दो
प्रभुजी ! मोको अपने ही रंग में रंग दो "

इस प्रकार के स्तोत्र जब २ उनके सन्त समूह उच्च स्वर में खींच कर ललकारते थे, तब २ राजगृही नगरी में नगर दरवाजा पर बुद्ध भिक्षुकों का नगर कीर्तन की भावना एक दम जागृत होती थी, कोई चतुर चित्रकार अगर बुद्ध भगवान की मूर्ति बनाने के लिये कोई मनुआदर्श (Model) खोजता हो तो श्रीलालजी महाराज की भव्याकृति से बढ़कर इस संसार में और कोई आकृति मिलना मुशकिल था, रतलाम में आचार्य श्री उदयसागरजी महाराज का कहा हुवा—" सागर वर गंभीरा " इस आशीर्वाद

भावना से श्रीलालजी महाराज साकार आत्मा की प्रतिमाही थे ।
इस प्रकार के साधुदेव के दर्शनार्थ वि० सं० १९९७ में चातुर्मास
के अन्दर चोरवाड़ से पढीआरजी राजकोट पधारे थे ।

श्रीलालजी महाराज साहब की व्याख्यान भाषा हिन्दी, मारवाड़ी, गुजराती इन तीनों का अजब संमिश्रण थी, जिसको सुनकर बड़े २ भाषा शास्त्रियों को अपने भाषा पांडित्य का गर्व निकल जाता था, यद्यपि उस भाषा की रचना व्याकरण नियमानुसार नहीं थी तथापि उस वाक्य रचना में क्या ज्ञान, व क्या वैराग्य, क्या तप और क्या संन्यास, ऐसे ही क्या इतिहास और क्या उदारता सभी विराजमान थे । उदारमत वादियों की अनुदारता तथा सांप्रदायिक छोटी २ बातों में तडफडाने वालों की युक्तिवाद बहुतसा सुना तथा देखा लेकिन उन सबों से हमारे पूज्य श्री की व्याख्यान शैली निराली ही थी, आधुनिक शिथिलाचारिओं से उलट साम्प्रदायिक आचारों से व्रत, नियम, संयम पलवाते हुए साम्प्रदायिक दृढव्रती महा तपस्वी इन सन्तदेव की हृदयहारिणी व्याख्यान वाणी की उदारता सीमाबंध नहीं थी, किन्तु सिंह के विचरने लायक वन की विस्तारता के समान निस्सिम थी। आकाश के समान विशाल थी। ....

गणित विषय में पाश्चात्य गणित के अंदर बीली अनट्रीलिअन से संख्या गणना की हद होती है, और आर्यगणित में परार्ध

संख्या आखिरी मानी जाती है लेकिन श्रीलालजी महाराज के लिये परार्ध संख्या अंकमाला की मेरू नहीं थी, किन्तु बीच का ही मणका थी, जिस वक्त आप संसार को आश्चर्यचकित करनेवाला राजस्थान के इतिहास से वीर दृष्टांत का वर्णन करने लगते थे उस वक्त सभी जनों में अद्भुतता छा जाती थी, यति मुनिओं की रासाओं से जिस वक्त काव्य दृष्टान्त कहते थे और घोर अंधेरी रात के मध्य भागमें हवेली के ऊपर से हाथी की सूंड़ ऊपर पैर रख कर शंकेत के स्थान में जाने वाली अभिसारिका का शाब्दिक चित्र खींचते थे, उस वक्त श्रोताओं को जितना ही काव्यश्रवण से आनन्द होता था उतना ही व्यभिचार के ऊपर विषाद भी होता था। साधु जीवन की तपश्चर्या दिखाने वाले वे सनातन धर्म से भिन्न जैन संस्कृति खड़ा करनेवाले और सोने की खान के समान फीलसुफी की गहनता भरी ज्ञान गुफा दिखानें वाले ऐसे संसारिओं में महात्मा गांधी और संन्यासिओं में पूज्य श्री १००८ श्रीलालजी महाराज ही दिख पड़े। संसारी की अपेक्षा संन्यासी में तप विशेष होना तो एक प्रकार का कुदरत का नियम ही है, जैसा ही देह रंग, वैसे ही इनका यम-संयम रूपी आत्मरंग भी घेरे हुए थे, देह और देही की खाल खींचे सिवाय ये दोनों भिन्न नहीं होते, वैराग्य तो नशों के अन्दर रक्त के समान और हृदय की धकधकी और साधुता तो जीवन का श्वासोच्छ्वास ही समझता था। बहुतों को तो श्रीलालजी महाराज किसी

अन्य दुनियां के ही हैं ऐसे दिख पड़ते थे, इस संसार में तो—
" न त्वत्समोऽस्त्यप्यधिकः कुतोऽन्यः " आपका कोई समान भी
नहीं था, अधिक तो कहां से आवे ? ·········यह दुनियां तो
सदा ही सन्तों की भूखी ही रहती है।

वि० सं० १९६७ का चातुर्मास गुजरात, काठियावाड़ में
निष्फल हुआ था, श्रीलालजी महाराज ने श्रावकों में तथा श्रोताओं
में जो दया की झरणा जीतेजी वहागये वह झरणा आज भी
निर्विच्छिन्न बह रही है।

जैन संस्कार ने ही संसार को वीरत्वहीन किया, इसप्रकार
दोष लगाने वाले को अगर उदयपुर के पर्वतों में और जोधपुर–
बीकानेर की रणथली में तथा आरावली की भूलभुलैये में सिंह के
समान विचरने वाले श्रीलालजी महाराज के दर्शन होजाते तो
जरूर ही उनकी भूल लगजाती।

" पेट कटारीरे के पहेरी सन्मुख चाले "
हरिनो माग छे शूरानो, नहिं कायरने काम जोने।

स्वामी नारायण सम्प्रदाय के भक्ति वैराग्यों के इन कीर्तनों में
भरी हुई वैराग्य की वीरता कुछ जैन सम्प्रदाय में कम नहीं पड़ती,
बुद्ध देव के अथवा महावीर भगवान के अथवा उनकी साधु

साध्विओं के आत्मशौर्य देखने के लिए भी आत्मशौर्य के मार्ग में जाने वाले ही चाहिये। वैराग्य की वीरता देखने के लिए आंख से स्थूल-वस्तु देखने वाले नहीं चाहिए, किन्तु सूक्ष्म पारखी की ही जरूरी है, संसारिओं में सन्यस्थ शोधक और वैराग्य पारख आंखें बहुतों की नहीं होती है।

श्रीलालजी महाराज साहब प्रभु नहीं थे, प्रभु के अवतार भी नहीं थे, धर्म संस्थापक भी नहीं थे, पेगम्बर भी नहीं थे, सिर्फ साधु थे, सन्त थे, आचार्य थे, ज्ञान भक्ति, शील, तप, वैराग्य की समृद्धि वाले आत्म समृद्ध धर्मवीर थे, जगत इतिहास के कोक वे नहीं थे, सिर्फ जगत कथाओं में से कुछ एक भाग वे थे, वे कुछ देव नहीं थे, सिर्फ साधु थे, संयम पालते और संयम पलवाते थे, लेकिन पोने तीन लाख की अमदावाद की वस्ती में और १२ लाख करीब बम्बई के मनुष्य समुद्र में तथा सत्तर लाख के लगभग लन्दन शहर के मानव महासागर में कितनेक सच्चे साधु साध्वी हैं? अनु-भवी कोई कहेगा?

श्रीलालजी महाराज याने संतरूपी पर्वतों से घिरे हुए एक उच्च शिखर, बचपन में ये डोगरों में खेलते घूमते और कुदरत की गोद में क्रीडा करते हुए कितनी अपूर्व अदृष्ट वस्तु को देखते हुए और शून्य वन में विचरते हुए टेकरी के शिखर सिंहासन के रसिक ये साधु शिरोमणि अद्भुत रस पीकर उछल पड़े और जगत की गोद

ऋषभदत्त नामक एक धनाढ्य श्रावक तथा उनका पुत्र जम्बूकुवार कि जिनका आठ स्वरूपवती कन्याओं के साथ सम्बन्ध हुआ था, उपदेश श्रवण करने आये। अपूर्व उपदेश कर्णगोचर होते ही जम्बू स्वामी की आत्मा मोह निद्रा से जागृत होगई। उन्हें वैराग्य स्फुरित हुआ। संसार की अनित्यता का भान होते ही शाश्वत शांति की प्राप्ति के लिये उनका मन ललचाया। घर आ माता पितासे दीक्षार्थ आज्ञा चाही, अतिआग्रह के कारण माता पिता ने जम्बू स्वामी से आठों कन्याओं के साथ विवाह करने पश्चात् दीक्षा लेने का अनुरोध किया, जम्बूस्वामीने मंजूर किया, लग्न हुए, आठों तत्काल ब्याही हुई स्त्रियों से जम्बू स्वामीने प्रथम रात को ही दीक्षा लेने का अभिप्राय दर्शाया. पति पत्नियों में वैराग्य और श्रृंगार विषय का बहुत रसमय संवाद शुरु हुआ, इतने में प्रभवा नामक एक राजपुत्र जो अपनी राजगादी न मिलने से लूट खसोट का धंधा करता था ५०० चोर सहित जम्बू स्वामी के घर में घुसा। चोरी का पाप कृत्य करते वैराग्य रस पूरित वचनामृत उसके कर्णपट पर पड़े, पड़ते ही उसे अपने अपकृत्यों का पश्चात्ताप होने लगा और वैराग्य उत्पन्न हुआ. आठ स्त्रियां भी संवाद में पतिसे पराजित हो वैराग्य रस में लीन होगई। उन्होंने तथा प्रभवादिक ५०० चोरों ने संसार परित्याग कर सुधर्मा स्वामी के पास दीक्षा ली। उस समय जम्बू की उम्र सिर्फ १६ वर्ष की थी।

में आचार्य श्री १००८ उदयसागरजी महाराज ने शरीर के अन्दर व्याधि बढ़जाने से संथारा पचक लिये थे, यह समाचार फैलते ही सैकड़ों हजारों लोग पूज्य श्री के दर्शनार्थ आने लगे। टोंक से श्रीयुत नाथूलालजी वंब, उनके सुपुत्र माणकलाल और श्रीमती मान कुंवर बाई श्रीजी की संसारावस्था की धर्मपत्नी ये सब भी आये। हजारों आदमी के बीच में सिंह गर्जना से धर्म घोषणा करने से व श्रीलालजी महाराज साहब के प्रभावशाली व्याख्यान श्रवण करने से मानकुंवर बाई को वैराग्य उत्पन्न हुआ। पति के पीछे चलकर आत्मोन्नति साधने की उत्कण्ठा प्रबल हो उठी, अर्धङ्गिनी की दावा रखने वाली को ऐसी ही सद्बुद्धि उपजती है, पूज्य श्री के पास मानकुंवर बाई ने प्रतिज्ञा की कि हमें अब एकमास से अधिक संसार में रहना नहीं है, ऐसी प्रतिज्ञा करके मानकुंवारबाई आज्ञा लेने टोंक गई।

सं० १९५४ माघ शुक्ला १० के दिन आचार्य श्री उदय-सागरजी महाराज का स्वर्गवास हुआ।

सं० १९५४ फाल्गुण शुक्ला ५ के दिन श्रीमती मानकुंवरबाई रतलाम शहर में दीक्षा ली, इस वक्त पूज्यश्री १००८ श्रीलालजी महाराज भी रतलाम में ही विराजमान थे, एकही तिथि में तीन दीक्षायें थीं।

धार्मिक संसार की उन्नति करने वाला चमत्कार से मनुष्य संसार की जीवनवृत्ति को यह कथा साफतौर पर बोध देने वाली है ?

ई० सं० १८९७ के इतिहास प्रसिद्ध यशस्वी वर्ष में भारत के विद्वान्मुकुट वीरपुत्र तिलक महाराज को देवकी वसुदेव के समान कारागृहवास दिया गया, उसके बाद थोड़े ही मास में यह घटना घटी, उनीसवीं सदी का अस्त और वीसवीं सदी का उदय ई० सं० १८९८ के प्रभात में आर्यावर्त में से यह संसार जीवन चित्र और यह धर्म जीवन चित्र, पाठक ! "भरतखण्ड में अद्भुतता तो इतिहास में ही है, आज कुछ प्रगट होती नहीं, आर्यावर्त की आत्म-लक्ष्मी निकल चुकी है, भारतीय प्रजा तो संस्कृती के नीचे उतर कर बैठी है, ऐसे कहने वाले विदेशी लोगों का ज्ञान सीमा कितनी संकुचित है ? श्रीलालजी महाराज की तथा मानकुंवर बाई की संसार जीवन कथा और धर्म जीवन वार्ता इतिहास प्रसिद्ध किसी भी संस्कृति की शोभा कारक ही है, दाम्पत्य जीवन तथा साधु जीवन संसार के अथवा संस्कृति के दो हृदयों के समान ही है अन्य संसार में अथवा संस्कृति में दाम्पत्य जीवन के लिए तथा साधु जीवन के लिए उपदेशों की जरूरी होती है किन्तु आर्य संसार में अथवा आर्य संस्कृति में उपदेश की जरूरी होती नहीं, अतएव और देशों की आत्मा से आर्यावर्त की आत्मा अधिक सजीव है, आज की बीसवीं सदी के भरतखण्ड अर्थात् महात्मा गांधीजी और कस्तूरबा

के तथा श्रीलालजी महाराज साहब व मानकुंवर बाई के तपोमय जीवन के तपोवन ।

राजमुकुट उतार कर भेख लेने के बाद उज्जयिनी में और गाड पाट नगरी में पिंगला राणीजी अथवा मैनावती माताजी के समीप भिक्षा के लिए गये हुए भर्तृहरिजी को व गोपिचन्दजी को नाटकीय रंगभूमि पर बहुतों ने देखे होंगे गृहस्थाश्रम के वेश में जो श्रीलालजी महाराज साहब जन्मभूमि में ठहरते नहीं थे और वनमें तथा वैरागिओं में वारंवार भागजाते थे, वही श्रीलालजी महाराज साहब साधुवेश में टोंक नगरी के अन्दर चातुर्मास करके उपदेश देते तथा गोचरी के लिए फिरते थे, उनको वैसे करते हुए देखने वाले कितने ही आज भी मौजूद हैं, आयुष्यवय में तथा दीक्षा वय में छोटे किन्तु गुण भण्डार में बड़े श्रीलालजी महाराज साहब को आचार्य पदपर स्थिर कर के " गुणाः पूजा स्थानं गु णेपु न च वयः " ऐसे सर्व शासनों में प्रधान महा सूत्र को जैन शासन ने भी सिद्धकर रहा है, ऐसा देखने वालों को दिखाया ।

..........श्रीलालजी महाराज वर्तमान काल से अज्ञ सिर्फ शास्त्र सम्पन्न साधु नहीं थे, किन्तु अनुभव विशारद थे, सिर्फ पण्डित ही नहीं थे, किन्तु सन्त थे ।

युरोप में अद्वितीय सुभटनाथ नेपोलियन इटली के अन्दर विजयी के लोह मुकुट अपने हाथ से अपने शिरपर रख लिया था ।

श्रीलालजी महाराज और उनके बाल मित्र गुर्जरमलजी पोरवाड़ सं० १६४४ के मार्ग शीर्ष मास में खुद ही साधु दीक्षा धारण किये थे, सं० १६६६ के कार्तिक मास में श्रीलालजी महाराज के सगे सहोदर कुटुम्ब परिवार मिलकर श्रीलालजी महाराज के लग्न करने के लिए टोंक से दुनी गांव पधारे थे, श्रीलालजी के धर्मगुरु तपस्वीजी श्री पन्नालालजी महाराज तथा श्रीगंभीरमलजी महाराज जैसे कि संसार में पड़ने रूप भूल से निकालने की चितावनी देने के लिए पहले से ही दूनी में जाविराजे थे, लग्नोत्सव के बाद ३ वर्ष तक श्रीलालजी महाराज साहब की धर्मपत्नी मानकुंवर बाई पीहर में ही रही, और सं० १६३६ टोंक आई, इस बीच में श्रीलालजी ने अखण्ड ब्रह्मचर्य यही हमारी जीवन अभिलाषा है ऐसी भीष्म प्रतिज्ञा करली थी, श्रीलालजी महाराज के, मानकुंवर बाई के भाग्य में देवने वैराग्य लिखा था उसको कौन मिटा सकता था, माता पिता, पत्नी, स्वजन सहोदर इन सबों का प्रयत्न निष्फल गया, पतिने दीक्षाली, पति गुरुदेव के समीप में ही बाद पत्नी ने भी दीक्षाली, धर्म दीक्षिता होकर छः वर्षतक सुन्दर संयम पालकर फिर पति के पहिले ही स्वर्गजाने की आर्य महिलाओं की अभिलाषा के अनुसार मानकुंवर बाई ने भी महासौभाग्य प्राप्त किया।

क्या संयम में और क्या संसार में श्रीलालजी महाराज सदा नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहे, और मानकुंवर बाई अखंड सौभाग्यवती

ही रही, संसार की और वैराग्य की सौभाग्य चुंदरी ओढ़कर ही मानकुंवर बाई मृत्यु निद्रा में सोई, पत्नीभावना या पतिभावना से हताश हुए भए अथवा जीवन के विध्वंश से भग्नांश अपने को मानते हुए तथा नैसर्गिक दुर्बल स्वभाव से या इन्द्रियों की आरजु का रुदन से संसार को धुजाने वाले अपने नवीन संसार के कितनेक प्रेमयोगिओं को इन योगी योगिनिओं के दाम्पत्य योगों में से क्या २ सद्बोध लेने लायक नहीं है ? आर्य संसार का सफल दाम्पत्य यही है और आर्य सन्यास का सफल सन्यास इंसीको कहते है । इन योगी-योगिन दोनों का यही परम दांपत्य और दोनों के यही परम नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, ईश्वर का शुभाशिर्वाद उतरे इस आर्यदाम्पत्य पर ऊभीये युगमें स्थूल पूजा व सुख पूजा का आज का नव जगत में दाम्पत्य जीवन कुं ये गयबी ईश्वरी आशीर्वाद की अति आवश्यकता है ।

नवीन गुजरात के नविन स्त्री पुरुष हमसे पूछते हैं कि अगर कल्पना देश निवासी जय-जयन्त मानव जगत में तुम्हारे देखने में हो तो दिखाओ, और तुरंत ही उत्तर दिया है कि " इस संसार में तो दाम्पत्य भावना सफलकरना मुश्किल ही है " यह बात सच्ची है कि कल्पना देश के इन पुण्य निवासिओं को जगज्जीवन दाम्पत्य ब्रह्मचर्य में उतारना मुश्किल है । महात्मा गांधीजी का दाम्पत्य ब्रह्मचर्य आखिर समय का है, लेकिन पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज का और

श्री मानकुंवर बाई का नैष्ठिक ब्रह्मचर्य से परिपूर्ण पुण्य जीवन की साधु कथाओं से मैं आशा रखता हूं कि इन शंकाशील पूछने वालों का समाधान अवश्य हो जायगा। इस वक्त भी यह आर्य संसार सच्चे साधुओं से शून्य नहीं है आश्चर्य अभी भी मौजूद है Truth is stranger than fiction मानव सर्जीव कल्पना की सच्चाई से असली प्रभु सर्जीत सच्चाई अजब है. प्रभु कल्पना से पर और आकाश गुफाओं का विराट भंडार से भी न मिले वैसी कल्पना मनुष्य से ऐसे नहीं होती। जहां पर अन्धकारों से अन्धकार छिटक रहा है ऐसे आकाश में चमचमाती तेज पुंज तारागण की परम्परा का वाचकवृन्द जरूर देखेही होगें। पूर्वाकाश में मंगल या बुद्ध क्षितिज के पीछे से उगे और आकाशके मध्यभागमें आकर चमकने लगे तथा गगनमंदाकिनी के समीप शनि अथवा गुरुचमचमाते हो, और फिर वे धीरे २ पश्चिमाकाश में उतर पड़े और स्थिर होजाय, इसप्रकार तेजस्वी शनि की प्रकाशावली भर रात उगती और चमकती हुई आप लोगों ने रात भर में देखी होगी, उनमें मध्य रात्री बीतने पर अमृतनौका सम पूर्व क्षितिज में उगता और धीरे २ तारकवृन्द में जाता हुआ चन्द्रमा दीख पड़ा होगा, हमारे जीवनकाल में भी ऐसा ही हुआ, साधु संगति की हमें बड़ी तीव्र अभिलाषा थी और आज भी थोड़ीसी वह है. चमकती हुई ताराओंमें छोटा बड़ा ग्रह उपग्रह जीवन भर देखें, अपने २ जगत्

के अन्धकारों को थोड़ा बहुत यह सब तारा समान सन्त हटाये हैं और हटावेंगे, लेकिन उन सबों में इस आंख से चन्द्रमा तो सिर्फ एक ही देखा, इस्लामी पंक्ति को तथा पारसी अध्वर्युओं को तो विशेष नहीं देखा है लेकिन सनातनी ब्रह्मसमाजी, आर्यसमाजी थियोसोफिष्ट, मुक्तिफौज, युनिटेरियन, प्रेसलिटेरिअन, इंग्लिशचर्च कैथोलिसिझमन साधु संन्यासी धर्मप्रचारक पादरियों का परिचय अधिक किया है, बड़ोदा में सनातनियों का ज्ञानस्तम्भ रूप पंडित पूज्य छोटूमहाराज का भी परिचय है फिलोसफी की कठिनता को सुखबोक करके समझाते हुए नरहरि महाराज का प्रवचनभी सुना है, मोरवी में महामहोपाध्याय संस्कृत शीघ्रकवि शंकरलालजी का भी सत्संग था। जूनागढ में मूलशंकर व्यासजी व्यास वापा के अष्टोत्तर शत परायण का भी दर्शन किया था, अहमदाबाद में प्रेमदर्वाजा पर विराजते हुए सर्यूदासजी के तथा चराचर की चारुता में विचरने वाले जानकीदासजी के दर्शन से विमुख भी नहीं रहे, भजन की धुन में ही रमणेवाले मोहनदासजी के भजन भी भर मन सुने, छोटी २ पुण्य कथा से सत्संग मंडलीको रिझानेवाले और रिझाकर एक कदम ऊपर चढानेवाले जादवजी महाराजको भी बारंबार देखे, नर्मदातीर में गंगानाथ के केशवानन्दजी के साथ भी एकरात हमने बिताई, करनाली के गोविन्दाश्रमजी और चांदोद के वैद्य स्वामी का भी दर्शन किया है; गंगानाथ के ब्रह्मानंदजी व

वाघोड़िया के दादूरामजी और मालसर के माधवदासजी का दर्शन शौभाग्य नहीं मिला, यह बात नहीं. वीसनगढ के शिवानंदजी पर. मानन्दजी की अश्विनीकुमार समान वैद्यलता को भी जानता हूं ; पुष्कर वाले ब्रह्मानन्दजी के भजन व वचन सुना, ६५ वर्षके वयो-वृद्ध लटकती चमड़ी वाले भक्त कवि ऋषिराजजी के भजन भी सुना है, अद्वैती वामदेवजी स्वामी व विशिष्टाद्वैती अनन्त प्रसादजी के प्रवचन और कीर्तन में बैठे हैं, नाटक की रंगभूमि पर भक्तराज नरसिंह मेहताको भी देखा है, इस जीवन में सिन्ध ब्रह्मसमाज के यह दो साधुजन भक्तराज डा० एवेन के बंबई प्रार्थना समाज में एकतारा की धुन में नृत्य भी देखा है, आर्य समाज का 'Intellectual Gymnast' न्यायवाद का महामल्ल आर्य फिलसुफ आत्मानंदजी का सहवास भी किया है, ब्रह्मसमाज के साधुजन प्रतापचन्द्र मजूमदार और बाबू विपिनचन्द्र पाल के धार्मिक व्याख्यान सुना है, मुक्ति फौज के सेनापति जनरल बूथ के ख्रिस्ताचार्य मुम्बई के विशप के, डा० फेरवेर्न के डा० फारक व्हार के, डा० सन्डरलैंड के व्याख्यान व धर्म प्रवचन एक २ दफा सुना है, हिमालय की कन्दरा में आसन लगा कर बैठे हुए स्वामीजी श्री श्रद्धानन्दजी को भी देखा है, करीब चार अंगुल चौड़ी सुनहरी किनारीदार साडी पहनी हुई और हाथ पर सोनेरी सांकल की पाकेट वाला ७५ वर्ष की विधवा मिसेस बेसेन्ट के और आर्य

साधु-वेष में विचरने वाले ब्रूकस के धर्म व्याख्यान में भी गये हैं, शंकराचार्य श्री माधवतीर्थजी, त्रिविक्रमतीर्थजी, श्री शान्त्यानंदजी, और खिलाफत शंकराचार्य श्री भारती कृष्णतीर्थजी से भी हम अपरिचित नहीं है, ऐसे ही सफेद, पीला, भगवावाले को यथामति चीन्हे जाने हैं, नवीन प्राचीन अनेक संप्रदाय के साधु संत को देखे हैं, लेकिन जगत् की अंधेरी महारात्रि को देखने से ये सबही छोटे बडे साधु तारा के सदृश जगमगाते हैं, इस संतरूपी तारकवृंद के मध्य में अमृत के निधान कलानिधि (चन्द्र) समान विचरने वाले पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज को ही देखे।

पाठक, आपकी अति तेजस्वी आंख से अगर साधुता का चन्द्रदेव किसी अन्य को ही देखे हो तो उसमें हमारी मनाई नहीं लेकिन वह साधुता के चन्द्रदेव आप अपने लिये ही देखे हों तो इतना हमारे लिये पर्याप्त है। पाठक! हम आपसे विनय पूर्वक इतना ही चाहता हूं क्योंकि पृथ्वी भर में संसार की रात अंधारी है इसलिए संसार का मार्ग विकट तथा भयानंक है।

न्हानालाल दलपतराम कवि

विषयानुक्रमणिका ।

आभार.

यह पुस्तक लागत मात्र से कम कीमत में बेचकर अधिक प्रचार कराने के उद्देश्य से नीचे लिखे महानुभावों ने आर्थिक सहायता दी अतः उसका उपकार मानता हुं ।

रु० २०००) शेठजी बहादुरमलजी बांठीया–भीनासर
,, ५००) झवेरी अमृतलाल राइचंद–पालनपुर
,, २५०) भावेरी मोहनलाल रायचंद–पालनपुर.
,, १००) झवेरी माणेकचंद जकशी–पालनपुर
,, १००) महेताजी बुद्धसिंहजी वेद–बीकानेर.
,, १००) शेठजी जतनमलजी कोठारी–बीकानेर.
,, १००) भवेरी खूबचंदजो इंदरचंदजी–दिल्ली वगेरे.

नीचे के गृहस्थों ने अगाउ से संख्याबन्ध पुस्तकों के ग्राहक बनकर मेरा उत्साह को बढाया है इससे उनका उपकार मानता हुं ।

नकलो ५०० श्री उदयपुर श्रीसंघ.
,, ३०० रा. रा. हेमचन्द्र रामजीभाई–भावनगर
,, २७५ रा. रा. देवजीभाई प्रागजी पारख–राजकोट.
,, २५० शेठजी चंदनमलजी मोतीलालजी मुथा-सतारा.
,, २५० शेठजी देवीदास लक्ष्मीचंद घेवरिया–पोरबंदर.
,, २०० शेठजी हस्तीमलजी लक्ष्मीचंदजी --बीकानेर.
,, १०० शेठजी गाढमलजी लोढा–अजमेर.
,, १०१ श्रीमती नानुबाई देशाई–मोरबी.
,, १०० शेठजी श्रीचंदजी अब्याणी–ब्यावर
,, १०० श्रीसघ हा. शेठ वरदभाणजी पीतलिया रतलाम.
,, ७५ श्री स्था. जैन मित्र मंडल हा. शेठजी
कचराभाई लहेराभाई---अमदावाद वगेरे.

पूज्य प्रभावाष्टकानि ।

लेखक—शतावधानी पंडितरत्न
श्री रत्नचंद्रजी स्वामी ।

नमस्काराष्टकम् ।

वसंततिलकावृत्तम् ।

संशुद्धसंयमधरं सरलस्वभावम्
मोक्षार्थसाधनपरं प्रथितप्रभावम् ॥
तत्वप्रचारपरिशामितदुःखदावम्
श्रीलालजिद्गणिवरं नितरां नमामि ॥ १ ॥

भावार्थः—सम्यक् रीति से शुद्ध संयम के पालने वाले, स्वभाव से ही अत्यन्त सरल, मोक्ष रूपी उत्कृष्ट पुरुषार्थ साधने में सदा निमग्न, देश देशान्तरों में विस्तृत ख्याति-प्रभाव वाले, जैन तत्वों का प्रचार कर अनेक जीवों के दुःख दावानल को बुझाने

वाले आचार्य अवतंस श्रीमत् श्रीलालजी महाराज को मैं मन, वचन और काया की त्रिकरण शुद्धि से नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥

दृष्टेः सदा स्रवति यस्य सुधासमूहो
यस्यार्द्रशुद्धहृदयात् करुणाप्रपूरः ॥
यस्यानने वहति सौम्यनदीप्रवाहः
श्रीलालजिन्मुनिवरं तमहं नमामि ॥ २ ॥

भावार्थः—जिनकी दृष्टि में से निरन्तर सुधा स्रवित होता था अर्थात् नेत्रों में अमृत भरा था जिससे हर ओर सुधा दृष्टि से विलोकन होता था; जिनके आर्द्र और पवित्र हृदय से दया का स्रोत बहा करता था जिनके मुख पर सौम्यता—नदी का प्रवाह प्रवाहित रहता था ऐसे श्री श्रीलालजी मुनिराज को मैं नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥

विद्या विवादरहिता विनयेन युक्ता
चित्तं विरक्तमपि सर्वजनस्य रम्यम् ॥
मुद्रा तु यस्य निजशान्तिसमुद्रमग्ना
श्रीलालजिन्मुनिवरं तमहं नमामि ॥ ३ ॥

भावार्थः—विनय से प्राप्त की हुई जिनकी प्रज्ञा विवाद रहित थी, दूसरों को अपमानित करने की वृत्ति से तनिक भी दूषित

न था, जिनका अंतःकरण वैराग्य रस से पूरित था, परन्तु लुक्खा न था कि किसीको अरम्य हो, बल्कि सबको मनोहर लगता था, जिनकी मुखमुद्रा आत्मिक शान्ति के समुद्र में मग्न रहती थी; ऐसे विद्वानोंमें श्रेष्ठ श्रीलालजी महाराजको मैं नमस्कार करता हूं॥३॥

श्रीमज्जिनेंद्रमतफुल्लसरोजभृङ्गम्
शास्त्रीयतत्वशुभमौक्तिकराजहंसम् ।
विस्तीर्णकीर्त्तिधवलीकृतदिग्विभागम् ।
श्रीलालजित्सुकृतिनं शिरसा नमामि ॥४॥

भावार्थः—जो सब दर्शन की ओर साम्य भाव रखते हुए भी वीतरागमत—जैन दर्शनरूपी प्रफुल्लित कमल पर भृंग के सदृश लीन थे, शास्त्रीय तत्वरूपी सरस मोती को चुगनेवाले राजहंस थे। जिनकी विस्तीर्ण कीर्ति से दसों ही दिशाएं उज्वल थीं ऐसे सत्कृत्य परायण श्रीलालजी महाराज को मैं सिर झुकाकर नमस्कार करता हूं ॥४॥

यस्याच्छचुम्बकदृपत्सदृशप्रतापै
राकृष्यतेमतिविशारदराजवर्गः ।
संश्लाघ्यते सुमनसा गुणपुष्पवल्ली
श्रीलालजिद्यतिवरं मनसा नमामि ॥५॥

भावार्थः—स्वच्छ और बृहत् लोह चुंबक में अधिक से अधिक भारी लोहे को भी खींचने की शक्ति रहती है इसी तरह

जिनके प्रताप-प्रभाव में उच्च पद प्राप्त मनुष्यों के खींचने की शक्ति थी इसी प्रताप द्वारा असाधारण विचारशील विद्वान राजा महाराजा जिनकी ओर झुकते थे इतनाही नहीं परंतु वे उनके गुण-पुष्प की लतिका की महक से प्रसन्न हो मुक्तकंठ द्वारा श्लाघा—प्रशंसा करते थे ऐसे यतिओंमें प्रधान श्रीलालजी महाराज को मैं अंतःकरण पूर्वक नमस्कार करता हूं ॥५॥

दम्भोज्झितं निरभिमानिनमात्मलक्ष्यं
कंदर्पसर्पदशनोत्खनने समर्थम् ।
शांतं सदैव करुणावरुणालयं तं
श्रीलालजिद्गणिवरं प्रणमामि भक्त्या ॥६॥

भावार्थः—दंभ-मिथ्याडंबर जिन्हें लेशमात्र भी पसंद न था, आचार्य पदप्राप्त एवम् प्रतिष्ठाप्राप्त सरदारों के पूजनीय होते भी जिन्हें अभिमान छुआ भी न था परंतु सिर्फ आत्माही की ओर जिनका लक्ष्य था, कंदर्प-कामदेवरूपी विषारी सर्प की डाढ़ें उखाड़ने में जो विजयी हुए थे, जिनके चहुं ओर शांति स्थापित थी, दया के तो जो सागर थे उन आचार्य शिरोमणि श्रीलालजी महाराज को मैं आंतरिक भक्ति से नमस्कार करता हूं ॥६॥

पाषाणतुल्यहृदया अपिकेचनार्या
नीताः स्वधर्मपदवी कुशलेन येन ।

दृष्टांतयुक्तिरसगर्भितं बोधशैल्यां
श्रीलालजिद्गणिवरं गुरुकल्पमीडे ॥७॥

भावार्थः—कितनेही आर्यभूमि और आर्यकुल में उत्पन्न होते भी धर्म संस्कार हीन होने से पत्थर से हृदय वाले बन गए थे उनको भी जिन कुशल पुरुष ने दृष्टांत और युक्ति पूर्वक रस गर्भित उपदेश देने की रीति से उपदेश दे समझा निजधर्म की राह पर लगाये, धर्म परायण बनाये, ऐसे आचार्य शिरोमणि बृहस्पति समान श्रीलालजी महाराज की मैं मुक कंठ से स्तुति करता हूं ॥७॥

रोगेण पीडिततनावपि यस्तपस्या
मुग्रां समाचरितवान्मनसोजसा च ॥
श्रान्द्यं महत्तपसि नापि समाश्रयद्यो
बोधादिनित्यनियमे तमहं नमामि ॥ ८ ॥

भावार्थ :— पैरों में बात रोग और देहमें दूसरे त्रासदायक अनेक रोग अधिक समय उत्पन्न हो जाते थे तोभी वे दुःख और शरीर निर्बलता को न गिनते, सिर्फ मनोबल द्वारा चार २ आठ २ उपवास एकदम कर लेते थे जिसमें भी तुर्रा यह था कि ऐसी बड़ी तपस्या में भी हररोज व्याख्यानादि नित्य नियमों में तनिक भी मंदता – शिथिलता न होती थी ऐसे दृढ़ मनोबल वाले समर्थ महात्मा श्री श्रीलालजी महाराज को मैं बार २ नमस्कार करता हूं।

प्रतापसौभाग्य-वर्णनाष्टकम् ।

वसन्ततिलका वृत्तम् ।

सद्यस्त्वमेव पृथिवीप्रवरप्रदीपो
हर्तान्धकारपटलस्य हृदि स्थितस्य ॥
मन्येऽपरः प्रकटितस्तरणिर्नवीनो ।
धृत्वा तनुं शुभतरां क्षितिपादचारी ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मुनिवर ! तीर्थंकर केवली प्रभृतिकी अनुपस्थितिमें वर्तमान समय में जैन समाजके हृदयके तमको नाश करनेवाले आप स्वतः ही पृथ्वी के श्रेष्ठ सूर्य (दीपक) हैं । मेरी मान्यता है कि मानुषिक देह धारण कर, आप पृथ्वी पर पादविहारी विलक्षण नवीन सूर्य प्रकट हुए हैं । आकाशमें भ्रमण करनेवाला एक सूर्य और पृथ्वी पर विचरनें वाले आप दूसरे सूर्य हैं ॥ १ ॥

सूर्योदयस्य वैशिष्ठ्यम् ।

बाह्यां स्तमस्ततिमलं प्रतिहन्ति भानु
र्नाभ्यन्तरां हृदयभूमिनतांनितान्तम् ॥
त्वं तु प्रबोधकजिनोक्तवचोवितानै
र्जाड्यं द्वयं हरसि भूमिरवे जनानाम् ॥ २ ॥

भावार्थः—आकाशीय सूर्य तो बाह्य स्थूलान्धकार का नाश करता है परन्तु मनुष्यों के हृदयभूमि पर विस्तृत अज्ञानांधकार को नहीं हटा सका, परन्तु हे भौमिकसूर्य ! पादविहारी सूर्यरूप मुनिवर ! आप तो तात्विक शिक्षा देने वाले वीतराग के बचन द्वारा जनसमाजकी बाह्य और आंतरिक दोनों तरहकी जड़ता हरलेते हो यह विशेषता है ॥ २ ॥

पुनर्वैशिष्ठ्यम्

साम्रज्यमस्ति दिवसे दिवसेश्वरस्य
सायं पुनर्भुवि तदस्तमुपैति नित्यम् ।
वृद्धिङ्गता निशिदिनं तरुणस्त्वदीयो
नव्यः प्रताप इह भाति विलक्षणो वै ॥ ३ ॥

भावार्थ :—आकाश विहारी सूर्य की महिमा सिर्फ दिन को ही होती है । प्रातः काल उदय होता है । मध्यान्ह में तरुण रहता है परंतु संध्या होते ही सूर्य का साम्राज्य विलीन हो इस पृथ्वी पर से अदृश्य हो जाता है परंतु आपका प्रताप तो रातदिन उच्च शिखर पर चढ़ता हुआ सदैव युवानहीं युवान रह कर प्रतिक्षण सुकीर्ति की चढ़ती कला में जाता प्रतीत होता है। सूर्य के साम्राज्यसे आपके साम्राज्य में यही विलक्षणता है ॥ ३ ॥

विजय लक्ष्मीः

संघाटके मुनिषु सत्सु महत्सु चान्ये
ष्वाचार्यपूज्यपदवीपदमाश्रिता ते ॥
अन्ये प्रतापतपनं ह्युदितं तवैव
दृष्ट्वा प्रसत्तिमभजत्त्वयि सा जयश्रीः ॥ ४ ॥

भावार्थः—स्वर्गीय पूज्य श्री—चौथमलजी महाराज के अवसान समय पर आचार्य और पूज्य पदवी का प्रश्न उपस्थित हुआ उस समय आपकी सम्प्रदाय में आपसे अधिक व्रयोवृद्ध और संयम में बड़े मुनिवर विद्यमान थे तोभी आचार्य पूज्य पदवी आपके चरण को ही वरी, इसका कारण मुझे तो यह प्रतीत होता है कि आपका प्रताप-सूर्य प्रकट होगया था उसे देखकर ही विजय लक्ष्मी आप पर मोहित होगई ॥ ४ ॥

साम्राज्यतारुण्यप्रदर्शनम् ।

वैज्ञानिकाः पदविभूषितपण्डिताश्च
नव्याः पुरातनजनाः क्षितिपा महान्तः ॥
सन्मानयन्ति दृढभक्तिपुरःसरं त्वां
मध्याह्नकालमहिमैष धरारवेस्ते ॥ ५ ॥

भावार्थः—नई रोशनी वाले विद्वान् और आचार्य तीर्थादि पदवी से मंडित पंडित नये जमाने के सुसंस्कार वाले युवा और प्राचीन पद्धति को मान देने वाले वृद्ध एवम् प्रतिष्ठित नरेश एक सी समानता से दृढ़भक्ति पूर्वक आपका सम्मान करते हैं और श्रद्धापूर्वक आपकी सेवा शुश्रूषा बजाते हैं यही आपसे भौमिक दिनकर के मध्याह्न कालकी महिमा है ॥ ५ ॥

सौराष्ट्रिका निजमताग्रहिणोऽपि सन्तो
भूत्वा तवाङ्घ्रिकजचुम्बनचञ्चरीकाः ॥
त्वां भेजिरेऽतिशायिनं प्रबलप्रतापं
मध्याह्नकालमहिमैष धरारवेस्ते ॥ ६ ॥

भावार्थः—जब आपका काठियावाड़ में पदार्पण हुआ तब भिन्न २ सम्प्रदाय वाले साधु साध्वियों में से कई तो एक वक्त के समागम से ही आपकी विद्वत्ता और आपके चारित्र्य का पूर्ण मान करने लगे परन्तु जो कोई मताग्रही थे वे भी आपके थोड़ेसे सह-वास और परिचय के पश्चात् मताग्रह त्याग आचार्य के अतिशय सहित और प्रौढ़ प्रबल प्रताप वाले आपके चरण कमल को चुम्बन करने में भृंग से बन आपकी सेवा में प्रस्तुत होगए, यह भी पृथ्वी विहारी सूर्यरूप आपके मध्याह्न काल की महिमा का ही प्रताप है ॥ ६ ॥

यत्रागमस्तव महत्स्वपरेषु तत्र
विद्वत्सु सत्स्वपि च तावकमेव बोधम् ॥
श्रोतुं रता मुनिजना गृहिणश्च सर्वे
मध्याह्नकालमहिमैष धरारवेस्ते ॥ ७ ॥

भावार्थः—आपके प्रतापकी वास्तविक खूबी तो यह थी कि इस भूमि—काठियावाड़ी भूमि में जहां २ आपने पदार्पण किया उस ग्राम में आपसे दीक्षा में और उम्र में बड़े एवम् विद्वान् मुनि विराजमान थे, परन्तु कोई व्याख्यान न देते सिर्फ आपके सामने एक ही सभा में सब साधु, श्रावक और अन्य मतावलम्बी लोग आपके व्याखयान सुनने को उत्सुक रहते और आपके पास से ही व्याखयान दिलाते थे और किसी मुनिके दिलमें लेशमात्र भी यह विचार नहीं आता था कि हमारे भक्त हमसे आपको अधिक मान क्यों देते हैं ? यह भी क्षितिविहारी सुसूर्य रूप आपके मध्याह्न काल की महिमा ही है ॥ ७ ॥

येनैकदापि तव वाक्श्रवणीकृता वा
दृष्टं सकृत्तव सुभव्यमुखारविन्दम् ॥
आजीवनं मनसि तस्य छविस्त्वदीया
रम्या विभाति महिमैष तवैव भूतेः ॥ ८ ॥

भावार्थः--जिस मनुष्य ने एक समय भी आपके व्याख्यान सुने हैं या आपके रमणीक मुखारविंद के दर्शन किये हैं उस मनुष्य के मनरूपी प्लेट पर आपके चेहरे का मानो भव्य फोटो खींच गया है और वह जीवन तक न बिगड़ते हमेशा ज्यों का त्यों प्रस्तुत रहता है। लेखक को अनुभव है कि एक समय परिचित हुआ मनुष्य आपको पुनः २ याद करता है और दर्शन करने को आतुर रहता है यह सब आपकी विभूति-चारित्रसम्पत्ति की अलौकिक महिमा है ॥ ८ ॥

अस्मदीयरत्नम् ।

विरहाष्टकम्

उपजाति वृत्तम् ॥

चिंतामणिर्यत्तुलनां न धत्ते
यन्मूल्यकं पार्श्वमणिर्न दत्ते ॥
एतादृशं जङ्गमरत्नमेकं
प्रसिद्धिमाप्तं मरुसाधुवर्गे ॥ १ ॥

भावार्थः—चिंतामणि रत्न जिसकी तुलना नहीं कर सक्ता। और पार्श्वमणिभी मूल्य में जिसकी समानता नहीं कर सक्ता ऐसा जंगम अर्थात् चलता फिरता रत्न हमारे मारवाड़ की ओरके साधु समुदाय में से प्रसिद्ध प्रख्यात हुआ ॥ १ ॥

श्रीलालजित्तस्य च नामधेयं
दृष्टं मया प्राक् पुरवक्रनेरे ॥
तद्दर्शनं तत्र च पत्तमात्रं
लब्धं महाभाग्यवशेन नूनम् ॥ २ ॥

भावार्थः—उन नररत्न-उन मुनिरत्न का नाम अब किसी से गुप्त नहीं है तो भी कहना होगा कि उनका नाम खिरेलालजी या श्रीलालजित् था। इस लेखकको सिर्फ उनके नामसे ही परिचय नहीं है, परन्तु संवत् १९६९ के प्रथम आषाढ मासमें वांकानेर शहर में साक्षात् दर्शनसे भी परिचय हुआ था जोकि उनका दर्शन सिर्फ१ पक्ष भर ही वहां पर मिला था उतने समय की दर्शनकी प्राप्ति भी महाभाग्य के उदयका फल है ॥ २ ॥

तृप्तिर्न या वर्षशतेन जन्या
तत्रास्ति पक्षः किमलं प्रमाणम् ।
तथाप्यभून्मेऽत्रभविष्यदाशा
हताधुना हा विगता वृथा सा ॥ ३ ॥

भावार्थः—जिनके दर्शन सौ वर्ष तक होते रहें तो भी तृप्ति न हो, तो विचारा एक पक्ष किस गिनतीमें है? एक पक्ष साथ रहने से दोनों के मनमें सम्पूर्ण चातुर्मास साथ रहने की प्रबल उत्कंठा हुई थी, परन्तु एकका मोरवी और दूसरेका भोराजी चातुर्मास नियत होजाने से अनाशा हुई, तो भी चातुर्मास में हेर फेर करने का प्रयत्न जारी रहा परन्तु संयोग न होने से परिणाम निराशा में परिणित हुआ। चातुर्मास पश्चात् संगम होने की आशा की थी परंतु चातुर्मास के पूर्ण होते ही अकस्मात् आर-

दाड़ की ओर के विहार से वह आशा विलुप्त प्रायः हुई थी परन्तु हा ! खेद तो यह है कि अंतिम दुःखदाई समाचार से उस आशा को बडा भारी धक्का लगा । अरे ! अब तो वह संभावना बिल्कुलही निष्फल होगई ॥ ३ ॥

विलुप्तं रत्नम् ॥

वंशस्थवृत्तम् ॥

हा हा ! ! हृतं केन समाजभूषणम्
किंचिन्न यत्रास्ति विकारदूषणम् ॥
अलंकृता येन विराजते मही
रत्नं विलुप्तं तदिहोत्तमोत्तमम् ॥ ४ ॥

भावार्थ —: अरेरे ! जिनकी प्रकृति में कोई विकार नहीं, जिनके चारित्र में कुछ भी दूषण नहीं, ऐसा हमारा एक जंगम रत्न कि जो जैन समाज का देदीप्यमान भूषण था उसे किसने चुरा लिया ? अरे ! जिनसे सम्पूर्ण विश्व अलंकृत था ऐसा हमारा उत्तमोत्तम रत्न इस पृथ्वी पर से कहां गुम होगया ? ॥ ४ ॥

उपजातिवृत्तम्

भ्रान्त्वार्यभूमाववलोकयामः
स्थले स्थले रत्नमिदं महार्घम् ॥

न दृश्यते क्वापि तदस्मदीयं
न चापि तत्तुल्यमथापरं हा ! ॥ ५ ॥

भावार्थः—आर्यावर्त के देश देश ग्राम २ और स्थान २ घूम २ कर इस अमूल्य रत्न की प्राप्ति के लिये देखते फिरते हैं, छानबीन कर ढूंढते हैं परंतु वह अमूल्य जवाहिर कहीं भी नहीं दिखता। खेद है कि उसकी समानता वाला रत्न भी कहीं दृष्टि गत नहीं होता ॥ ५ ॥

कस्मात्तत्तुल्यमपरं न ?।

अलौकिकं सुन्दरमद्वितीय
मनूनकं कान्ततरं विशुद्धम् ॥
अमन्दमानन्दपदं विपद्घ्नं
पुण्यौघलभ्यं हि तदस्मदीयम् ॥ ६ ॥

भावार्थः—वह हमारा जवाहिर लौकिक नहीं परंतु लोकोत्तर था। रमणीय से रमणीय और बिना जोड़ी का अर्थात् जिसकी समानता कोई न कर सके ऐसा एकही था-जिसमें कुछ भी न्यूनता न थी। अतिशय मनोहर और दूषण रहित विशुद्ध, था, जिसकी ज्योति कभी मंद न होती थी सबको आनंददाई था, विपत्तिविध्वंसक यह रत्न सचमुच समाजके पुण्योदय से ही यहां प्राप्त हुआ था ॥६॥

स्थातुं न योग्यः किमु मर्त्यलोकः
स्वर्गेऽथवावश्यकतास्य जाता ॥
क्लेशः स्वपक्षेऽरुचिकारणं किं
कस्माद्गतं स्वर्वसुधां विहाय ! ॥ ७ ॥

भावार्थः—क्या उस जवाहिर के रहने के लिये यह मृत्युलोक-मनुष्य लोक उचित न था ? या स्वर्गलोक में उसकी विशेष आवश्यकता होने से कोई उसे वहां ले गया ? या वर्तमान प्रचलित सांप्रदायिक क्लेश के कारण यहां रहने से उसे अरुचि हुई ? किस लिये वह इस पृथ्वी पर कहीं न रहते स्वर्गलोक में चला गया ? ॥७॥

हृतं न केनापि वृथाऽत्र शोधः
प्राप्तुं न शक्यं पृथिवीतलेऽस्मिन् ॥
गतं स्वयं तत्खलु दिव्यलोकं
प्रयोजनं किं तदहं न जाने ॥८॥

भावार्थः—हे मानवो ! तुम्हारा वह अमूल्य रत्न इस पृथ्वी पर किसीने नहीं चुराया, इसलिये उसे ढूंढना वृथा-निष्फल है, इस पृथ्वी की समभूमि पर चाहे जितनी तलाश करो तोभी वह कहीं न मिलेगा, वह स्वतः दिव्यलोक-स्वर्ग की ओर प्रयाण कर गया है । "किस लिये" यह प्रश्न करोगे तो मैं इस का प्रत्युत्तर देने में असमर्थ हूं कारण मैं इस विषय से विशेष विज्ञ नहीं हूं ॥८॥

प्राचीन इतिहास और गुर्वावली।

ज्ञानियों का कथन है कि मनुष्यत्व ही ईश्वरता प्राप्तिका मूल साधन है। क्योंकि यह प्राणी एवम् विचारवान है, इसलिये सारासार, सत्यासत्य, धर्माधर्म और आत्मघातक बातों का निर्णय कर सकता है, उन्नति के आकाशमें मनुष्य कितनी ऊंचाई तक प्रयाण कर सकता है। यह कोई नहीं बता सकता, स्वर्ग और मोक्ष के द्वार खोलने का सामर्थ्य मनुष्य ही रखता है, मनु के गुण यह अपनी आत्मामें प्रकाश कर प्रभुता प्राप्त कर सकता है। समस्त बंधनोंसे मुक्त होना एवम् सच्ची और सर्वकाल व्यापिनी स्वतंत्रता प्राप्त करना, सर्व-दुःखों से मुक्त हो शाश्वत शांति प्राप्त करना यही उन्नतिका शिरः-बिन्दु है इसीको परमपद—परमात्मपद या मोक्ष कहते हैं, इस पद को प्राप्त करने की सामर्थ्य मनुष्य के सिवाय अन्य प्राणी में नहीं होती।

परन्तु जबतक मनुष्य जन्मका उद्देश्य न समझ सकें, स्वस्वरूप का भान न होसके, जगत् जिस रूपमें है उसी रूपमें उसे न पहि-चान सके और मोक्षका यथार्थ मार्ग न ज्ञात कर सके तबतक म-नुष्य जन्म सार्थक नहीं। इसलिए प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि मोक्ष मार्ग ग्रहण कर उस मार्ग पर आगे बढ़े जिससे जन्म, जरा,

मृत्यु और रोग शोकादि दुःखोंकी निवृत्ति हो। परन्तु जिस तरह किसी बन में भटकते हुए मनुष्य को राह दिखाकर बाहर निकालने वाले पथदर्शक की आवश्यकता है इसी तरह इस सांसारिक विकट बन से पार हो मोक्ष नगर पहुंचाने के लिये भी किसी सन्मार्गदर्शक पथिक की आवश्यकता है। इसलिये जो महान् पुरुष इसके ज्ञाता हैं उनका अवलंबन करना उनकी आज्ञा मानना और उनका अनुकरण करना सर्वोच्च उपाय है।

ऐसे महात्मा प्रत्येक युग में उत्पन्न होते हैं, अनादि काल से ऐसी विश्व व्यवस्था है कि जब २ इन आत्माओंकी आवश्यकता होती है तब २ उनका प्रादुर्भाव होता है, ये सांसारिक क्षुद्र वासनाएं त्याग संसार को अपने जन्म समय की स्थिति से अधिक उच्चतर स्थिति में लाने का निष्काम वृत्ति से प्रयत्न करते हैं इनका समस्त ऐश्वर्य परोपकारार्थ लगता है। संसार के कल्याणार्थ अपनी आत्मा समर्पण करते भी वे सदा तत्पर रहते हैं और कर्तव्य पालन करते हुए अपने प्राणों की परवाह भी नहीं करते, उनके आचार विचार, नीति रीति, जीवन के छोटे बड़े समस्त काम ध्रुव की तरह संसार सागर में अपनी जीवननौका चलाने के लिये दिशा दिखाने को अटल बने रहते हैं।

उपरोक्त महात्माओं में भी जो रागद्वेष से सर्वथा मुक्त हैं

आत्मा के मूल गुणों में बाधक मोह ममत्व के परदे चीर डालते हैं, ज्ञानावरणीयादि चार घन घाती कर्म को समूल नष्ट कर आत्मा अन्तर्गत स्थित अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र और अनंत वीर्य (शक्ति) उपार्जन करते हैं। परमात्मा के नाम से सम्बोधित होते हैं। वे राग द्वेष को जीतने वाले होने से जिन और साधु साध्वी श्रावक श्राविका चार तीर्थ के स्थापक होने से तीर्थंकर कहे जाते हैं।

अनंत करुणा के सागर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी जिनदेव जगत के उद्धार के निमित्त जो मार्ग दर्शाते हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार जो २ नियम योजित करते हैं और जो २ आज्ञाएं फरमाते हैं उन्हें धर्म अथवा शासन ऐसी संज्ञा देते हैं। ऐसे जिनेश्वर देव पंच महा विदेह क्षेत्र में सर्वदा विद्यमान हैं, परंतु भरत और इरवत क्षेत्र में नहीं। यहां जो कालचक्र घूमा ही करता है जैसे समुद्र का पानी छः घंटों तक ऊंचा चढ़ता और छः घंटों तक नीचे उतरता है सूर्य छः माह उत्तर में और छः माह दक्षिण में प्रयाण किया करता है, इसी अनुसार नियमित गति से फिरते कालचक्र में भी धर्म, अधर्म और सुख, दुःख फिरा करते हैं, न्यूनाधिक हुआ करते हैं। बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम के एक कालचक्र के उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी ये दो विभाग हैं, प्रत्येक के छः आरे कल्पित किये हैं, इन छः आराओं में से

तीसरे और चौथे आराओं में तीर्थंकरों का अस्तित्व रहता है यों चढ़ती उत्सर्पिणी काल में २४ और उतरती अवसर्पिणी काल में २४ तीर्थंकर होते हैं। प्रत्येक काल चक्र में दो चौवीसी होती हैं ऐसे अनंत कालचक्र फिर गए और अनंत तीर्थंकर हो गए हैं।

अपने इस भरत क्षेत्र में वर्तमान अवसर्पिणी के चौथे आरे में ऋषभदेव से महावीर स्वामी तक २४ तीर्थंकर हुए। इनमें चरम तीर्थंकर श्री महावीर प्रभु का वर्तमान में शासन प्रचलित है।

श्री महावीर स्वामी का जन्म आज से २५२० वर्ष पूर्व (ई० सन् ५९९ वर्ष पूर्व) पूर्वस्थित विहार के कुंडपुर नगर के * क्षत्रिय कुल भूषण, ज्ञातवंशी, काश्यप गोत्री सिद्धार्थ राजा के यहां हुआ था। उनकी माता का नाम † त्रिशला देवी था। प्रभु गर्भ में थे तबही से राजा सिद्धार्थ के राज्य विस्तार में तथा धन धान्यादि

---

* सब तीर्थंकर क्षत्रिय कुल में ही जन्म लेते हैं और राज्य वैभव त्याग जगदुद्धार करने के लिये संयम लेते हैं। † त्रिशलादेवी सिंध देश के महाराजा चेटक (चेड़ा) की ज्येष्ठ पुत्री थी। उनका दूसरा नाम प्रियकारिणी था। उनकी बहिन चेलणा मगध देश के अधिपति राजगृही नगरी के महाराजा श्रेणिक जो भारतीय इतिहास में बिम्बसार के नाम से प्रसिद्ध है उनकी पटरानी थी।

के भंडार में अति अभिवृद्धि हुई इससे पुत्र का नाम, जन्म होने पर वर्द्धमान दिया गया था। पश्चात् अपने अद्भुत पराक्रम के कारण महावीर के नाम से विश्व में विख्यात हुए। अनंत पुण्योदय से तीर्थंकर पद प्राप्त होता है पुण्य अर्थात् शुभ कर्म के पुद्गलों में शुभ द्रव्यों को आकर्षित करने का अतुल सामर्थ्य है जिससे तीर्थंकरों की शरीर सम्पदा, वाणीविभव, और मनोबल आदि असाधारण होते हैं।

यौवनावस्था प्राप्त होने पर यशोमती नाम की एक सद्गुणवती और स्वरूपवाली राजकन्या के साथ महावीर का विवाह किया गया, जिससे प्रियदर्शना नामक एक पुत्री हुई। संसार में रहते भी श्री महावीर का चित्त संसार से जलकमलवत् विरक्त था; तत्त्व चिन्तन में जिनके समय का सद्व्यय होता था। दुःखी दुनिया के दुःख दूर करने, दुनिया में शांति प्रसारित करने, यज्ञयागादि में धर्म निमित्त होते असंख्य पशुओं के वध को रोक सर्वत्र अहिंसा धर्म की विजयपताका फहराने, विषय कषायादि की ज्वाला से जलते जीवों को बचाने और प्राणीमात्र को हितकर हो ऐसा कर्तव्य मार्ग जगत् को दिखाने के लिये गृहवास त्याग संयम लेने की बाल्यकाल से ही उनकी प्रबल अभिलाषा थी। तीस वर्ष की भर युवावस्था में उन्होंने राज्य- वैभव, विषय सुख और कुटुम्ब परिवार का परित्याग कर दीक्षा ली। घोर तपश्चर्या कर, कर्म जला, केवलज्ञान

अध्याय ४ था

वैराग्य का वेग।

उपर्युक्त घटना के बीतने के थोड़े दिन पश्चात् श्रीजी ने अपनी माता के पास से विनयपूर्वक दीक्षा के लिये अनुमति मांगी। माजी के कोमल हृदय पर ये शब्द वज्राघात जैसे प्रहारी हुए तो भी इनने धैर्य धारण किया कारण ऐसे ही मतलब वाले शब्द वे आज से पहिले कई समय पुत्र के मुख से सुन चुकी थीं इस समय उनने इतना ही उत्तर दिया कि " संसार में रहकर भी धर्म, ध्यान क्या नहीं हो सकता ? हमारी दया न आती हो तो कुछ नहीं परन्तु इस विचारी के ऊपर तो तुझे कुछ दया लानी चाहिये। इसका जन्म बिगाड़कर जाना यह महा अन्याय है। फिर भी अगर तुझे दीक्षा लेना है तो मेरा वचन मानकर थोड़े वर्ष संसार में बिता।" इतना कहते २ उनका हृदय भर गया और आंख में से आंसू गिरने लगे। श्रीजी ने अपना दृढ निश्चय दिखाते हुए कहा कि " माजी ! आप कोटि उपाय करो तो भी मैं अब संसार में रहने वाला नहीं हूं। मुझे अब आज्ञा देओ तो संयम आराधन कर अपनी आत्मा का कल्याण करूं। आयुष्य का क्षण भर का भी विश्वास नहीं है।"

ने उसे उपदेश दे स्वर्ग पहुँचाया। चंडकौशिक सर्प ने उन्हें काटा परंतु उसे जातिस्मरण ज्ञान करा स्वर्ग का अधिकारी बनाया।

प्रभु की घोर तपश्चर्या का वर्णन भी आश्चर्यकारी है कई समय तो वे चार २ छः छः माह तक निराहारी रह कायोत्सर्ग ध्यान धरते थे। शरीर पर से मूर्च्छाभाव त्याग, इच्छा का निरोध कर इन्द्रियों की विषयासक्ति हटा आत्मभाव में अटल रहते। बारह वर्ष और ६॥ माह व्यतीत हुए, छद्मावस्था के ४५१५ दिनों में उन्होंने सिर्फ ३५० दिन आहार किया था।

इस तरह तप्त प्रचंड दावानल द्वारा कर्म काष्ट का दहन कर तथा शुक्ल ध्यान ध्याते चार घाती कर्मों का सर्वथा क्षय हुआ और आदि कालसे गुप्त रहीहुई केवल ज्योति उदय हुई जिससे प्रभु सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हुए—लोकालोक को हस्तामलकवत् देखने लगे, आज तक प्रभु प्रायः मौन थे, परन्तु अब सम्पूर्ण ज्ञानी होजाने से करुणा-सिन्धु भगवानने जगत् के उद्धारार्थ मोक्ष मार्ग की प्ररूपना की। पैंतीस गुणयुक्त प्रभुकी अनुपम वाणी प्राणी मात्र को हितकारी, अनंतानंत भाव भेदों से पूर्ण, तथा भाव समुद्र से तिराने के लिये नौका समान थी। इस वाणी द्वारा प्रभुने मोक्ष प्राप्ति के चार साधन बताये— ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप।

ज्ञानः— ज्ञानद्वारा जीवाजीवादि वस्तुओं का यथार्थ स्वरूप

समझा जाता है, स्व और पर द्रव्यकी पहिचान होती है। परवस्तु अर्थात् पुद्गल से ममत्व दूर हो, आत्मभावमें स्थिरता होती है। आत्माके अनंत ज्ञान और अनंत सामर्थ्य का भान होता है अनादि कालसे अविनाशी आत्मा विनाशक पौद्गलिक दशा में अहं ममत्व धारण कर राग द्वेष के बंधनसे बंधा हुआ है और उससे ही चतुर्गति संसार के अनंत दुःख सहन करने पडते हैं। उसकी सत्यता प्रमाणित होती है, देहादिक परवस्तु में ममत्व न रहने से दुःख छू नहीं सक्ता, शाश्वत सुख का अखूट भंडार तो अपनी आत्मा ही है ऐसा उसे साक्षात्कार होता है सब आत्मा समान हैं ऐसा भान होते ही सर्वात्म पर समदृष्टि होती है सब जीवों को अपने समान समझने लगता है जिससे वैर विरोध और लोभ क्रोधादि दुर्गुण एवम् तज्जन्य दुःखों का सदंतर अभाव हो जाता है। जगत् के छोटे बड़े समस्त प्राणीयों के सुख की ही सतत् स्पृहा रहती है, सुख सबको सर्वदा प्रिय होता है, ऐसा समझकर वह सबको सुखी करने के लिये प्रेरित होता है, इससे ज्ञानी पुरुष मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भावनाएं भी मोक्ष की कुञ्जी प्राप्त कर लेते हैं; मैं अजर अमर अविनाशी हूं देह के नाश से मेरा नाश नहीं, ऐसा समझ कर वह भय का नाम निशान मिटा देता है और मृत्यु से नहीं डरता है। जो मृत्यु से नहीं डरता वह क्या नहीं कर सक्ता? अर्थात् सब सिद्धियां प्राप्त कर सक्ता है-इसलिये ज्ञानको मोक्षकी प्रथम पंक्ति का स्थान दे प्रभु फरमाते

हैं कि "जे आया से विन्नाया जे विन्नाया से आया, जेण विजाणइ से आया" अर्थात जो आत्मा है वही ज्ञान है और जो ज्ञान है वही आत्मा है और जिससे बोध हो सक्ता है वही आत्मा है। श्री आचारांग-सूत्र में प्रभु ने ज्ञान का अपार महत्व दिखाया है, ज्ञान से ही वीतरागता प्राप्त होती है और वीतराग दशाही सब सुखोंका आश्रय स्थान है।

दर्शन—ज्ञान द्वारा जो सूझा है उस पर श्रद्धा करना दर्शन कहलाता है। कई मनुष्य शास्त्र श्रवण या सद्गुरु के उपदेश से धर्मका स्वरूप समझते हैं परन्तु जबतक उसपर अटल विश्वास न हो तबतक उसी अनुसार व्यवहार होना अशक्य है, इसलिये सम्यग्दर्शन अथवा सच्ची श्रद्धा की पूर्ण आवश्यकता है।

चारित्र—मोक्ष मार्ग की तीसरी सीढ़ी चारित्र्य है, ज्ञान से मार्ग सूझा और श्रद्धा से उसे सत्य माना भी परन्तु जबतक उस मार्ग पर न चला जाय तबतक नियत स्थान पर पहुंचना असंभव है इसलिये ज्ञानानुसार व्यवहार होना उचित है। ज्ञानका फल ही चारित्र है " ज्ञानस्य फलम् विरतिः " चारित्र विना ज्ञान निष्फल है।

प्राणातिपात अर्थात् हिंसा, असत्य आदि अठारह पापों का त्याग

करना, पंचमहाव्रत, तीन गुप्ति और पांचसमिति धारण करना ही चारित्र है।

तपः—मोक्षकी चतुर्थ सीढ़ी तप है। उसके छः अभ्यन्तर और छः बाह्य, यं बारह भेद हैं। चारित्र से नये कर्मकी आमद रुकती है और तपसे पूर्वकृत कर्म क्षय कर सके हैं। सिर्फ भूखे रहना ही प्रभुने तप नहीं फरमाया, पापका प्रायश्चित्त करना, बड़ोंका विनय करना, वैयावृत्य अर्थात् सबकी सेवा करना, स्वाध्याय करना, ध्यान धरना, और कायोत्सर्ग करना येभी तप के भेद हैं। इस तप को उत्तम अभ्यन्तर तप कहते हैं। उपवास करना, उणोदरी अर्थात् कम खाना, वृत्ति संक्षेप अर्थात् इच्छाओंका निरोध करना, रस परित्याग करना, देहका दमन करना, इन्द्रियों को वश करना ये छः प्रकारका बाह्य तप है।

आत्मा और कर्म के पृथक् करने के उपरोक्त चार प्रयोग प्रभुने फरमाये हैं। अनन्त ज्ञानी श्री वीर प्रभु की वाणी का सार लिखना दोनों भुजाओं द्वारा महासागर तिरने के समान उपहास मात्र साहस है तोभी प्रवचन सागर में से बिंदुरूप दर्शाने का सिर्फ यही आशय है कि जैनधर्मकी भावना कितनी सर्वोत्कृष्ट है. ऐसी उदार और पवित्र भावनाओंका विश्वमें प्रचार करनेके समान परमावश्यक और पारमार्थिक कार्य, दूसरा क्या है?

श्री महावीर स्वामी को कैवल्य ज्ञान उपार्जन होनेके पश्चात् श्री गौतम स्वामी आदि ग्यारह विद्वान् ब्राह्मण धर्मगुरू अपनी शंकाओं का समाधान करने के लिये प्रभु के पास आये. उनकी शंका निवृत्त हुई और तत्त्वाववोध होने से वे प्रभु के शिष्य बन गए, प्रभुने उनको चारित्र मुकुट पहिनाया, त्रिपदी विद्या सिखाई और गणधर पद अर्पण किया, ये ग्यारह ब्राह्मण धर्माचार्योंके साथ उनके ४४०० शिष्योंने श्रीप्रभु के पास दीक्षा ली, श्री महावीर स्वामी ने साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका इन चार तीर्थों की स्थापना की। देशदेश में विचर कर, धर्मोपदेश द्वारा कई जीवों को प्रतिबोध दिया, अनेक राजा महाराजाओं को प्रभुने शिष्य बनाया। मगध देशका राजा श्रेणिक तथा उसका पुत्र कौणिक ये महावीर प्रभुके परम भक्त हुए, इनके सिवाय चेटक, चन्द्रप्रद्योत, उदायन, नंदीवर्धन दशार्णभद्र * जितशत्रु, श्वेतराजा, विजय राजा, तथा पावापुरी का हस्तिपाल नामक राजा प्रभृति अनेक राजा महाराजाओं ने श्री वीर प्रभुकी वाणी सुनकर जैनधर्म अंगीकृत किया था। प्रभु तीस वर्ष तक केवलपन से पृथ्वी को पावन करते विचरते अनेक जीवों को तारते रहे और चरम चौमास पावापुरी नगरी में किया। वहां हस्तीपाल राजा की प्राचीन राजसभा में दो दिन का अनशनव्रत

नोट—जितशत्रु ये कलिंगदेश के यादव वंशी महाराजा थे इनके साथ महाराजा सिद्धार्थ की बहिन का ब्याह किया था।

धारण कर प्रभु उत्तराध्ययन सूत्र फरमाते थे १८ देश के राजादि भी छठ पौषध कर प्रभु की वाणी श्रवण करते थे, इस स्थिति में कार्तिक माह की अमावस्या की रात्रि को पिछले प्रहर चार कर्मों का क्षय कर ७२ वर्ष का पूर्ण आयुष्य भोग प्रभु निर्वाण-मोक्ष पधारे-शाश्वत सिद्ध-पद को प्राप्त हुए।

श्री वीर प्रभुके पवित्र शासन को विजयवंत चलाने वाले वीर शासन रूपी आकाश में उदय हो, सूर्यवत् प्रकाश करने वाले अथवा वीर प्रभु के लगाये हुए कल्पवृक्ष को जल सींचन कर नवपल्लवित रखने वाले जो २ महात्मा उनके शासन में हुए उनका कुछ इतिहास अब देखते हैं।

श्री महावीर स्वामी के निर्वाण समय श्रीगौतम स्वामी और श्री सुधर्मा स्वामी ये दो गणधर विद्यमान थे। शेप नौ गणधर प्रभु के प्रथम ही मोक्ष पधार गए थे, जिस रात्रि को महावीर प्रभु मोक्ष पधारे उसी रात को भगवान् पर से मोह दूर होने पर गौतम स्वामी केवलज्ञानी हुए। केवली को आचार्य पद नहीं मिलता इस लिये श्री सुधर्मा स्वामी श्री महावीर स्वामी के आसन पर विराजे। श्री गौतम स्वामी १२ वर्ष तक कैवल्य प्रव्रज्या पाल ९२ वर्ष की अवस्था में मोक्ष पधारे।

१ सुधर्मास्वामीः—एक समय राजगृही नगरी में पधारे। वहां

ऋषभदत्त नामक एक धनाढ्य श्रावक तथा उनका पुत्र जम्बूकुंवार कि जिनका आठ स्वरूपवती कन्याओं के साथ सम्बन्ध हुआ था, उपदेश श्रवण करने आये। अपूर्व उपदेश कर्णगोचर होते ही जम्बू स्वामी की आत्मा मोह निद्रा से जागृत होगई। उन्हें वैराग्य स्फुरित हुआ। संसार की अनित्यता का भान होते ही शाश्वत शांति की प्राप्ति के लिये उनका मन ललचाया। घर आ माता पिता से दीक्षार्थ आज्ञा चाही, अतिआग्रह के कारण माता पिता ने जम्बू स्वामी से आठों कन्याओं के साथ विवाह करने पश्चात् दीक्षा लेने का अनुरोध किया, जम्बूस्वामीने मंजूर किया, लग्न हुए, आठों तत्काल ब्याही हुई स्त्रियों से जम्बू स्वामीने प्रथम रात को ही दीक्षा लेने का अभिप्राय दर्शाया. पति पत्नियों में वैराग्य और शृंगार विषय का बहुत रसमय संवाद शुरु हुआ, इतने में प्रभवा नामक एक राजपुत्र जो अपनी राजगादी न मिलने से लूट खसौट का धंधा करता था ५०० चोर सहित जम्बू स्वामी के घर में घुसा। चोरी का पाप कृत्य करते वैराग्य रस पूरित वचनामृत उसके कर्णपट पर पड़े, पड़ते ही उसे अपने अपकृत्यों का पश्चात्ताप होने लगा और वैराग्य उत्पन्न हुआ. आठ स्त्रियां भी संवाद में पतिसे पराजित हो वैराग्य रस में लीन होगई। उन्होंने तथा प्रभवादिक ५०० चोरों ने संसार परित्याग कर सुधर्मा स्वामी के पास दीक्षा ली। उस समय जम्बू की उम्र सिर्फ १६ वर्ष की थी।

जम्बूस्वामी को तत्वावबोध होने के लिये श्री महावीर स्वामी की अर्थ रूप प्रकाशी हुई। अनंत भाव भेद मय वाणीमें से सुधर्मा स्वामी ने द्वादश अंग और उपांग की योजना की। वर्तमान काल में आचारंगादि जो जिनागम हैं वे गणधर श्री सुधर्मा स्वामी के ग्रथित किये हुए हैं प्रभु के निर्वाण के पश्चात् १२ वें वर्ष सुधर्मा स्वामी को केवल ज्ञान उपार्जित हुआ और २० वें वर्ष १०० वर्ष की आयु भोगने पर मोक्ष पद प्राप्त हुआ।

२ जम्बू स्वामीः—श्री सुधर्मा के पश्चात् श्री जम्बूस्वामी पाट पर विराजे। श्री वीर स्वामी के २० वर्ष पश्चात् उन्हें केवल्य ज्ञान प्राप्त हुआ और ६४ वें वर्ष ८० वर्ष की आयु भोग मोक्ष पधारे। श्री जम्बूस्वामी के पश्चात् भरत क्षेत्र से दस वस्तुएं विच्छेद होगई। १ कैवल्य ज्ञान २ मनःपर्यव ज्ञान ३ परमावधि ज्ञान ४ पुलाक लब्धि ५ आहारिक शरीर ६ क्षपक श्रेणी ७ उपशम श्रेणी ८ परिहारविशुद्ध सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात ये तीन चारित्र ९ जिनकल्पी साधु और १० क्षायिक सम्यक्त्व।

३ प्रभवा स्वामी—श्री जम्बूस्वामी के पश्चात् श्री प्रभवा स्वामी पाट पर विराजे, उन्होंने ज्ञानोपयोग द्वारा राजगृहीके वासी शय्यंभवभट्ट को आचार्य पद योग्य समझ उपदेश दिया और उन्होंने दीक्षा ली. ८५ वर्ष की आयुष्य भोग कर वीर निर्वाण से ७५ वर्ष बाद श्री प्रभवास्वामी मोक्ष पधारे।

४—श्री शय्यंभव स्वामी—उनके पश्चात श्री शय्यंभव स्वामी आचार्य हुए उन्होंने दीक्षा ली उस समय उनकी स्त्री गर्भवती थी उससे । मनक नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । मनक ने नवें वर्ष में पिता के पास दीक्षा ली. परंतु पिताने उसकी आयु अल्प समझ उसे अल्प समय में श्रुतज्ञानी बनाने के आशय से पूर्व में से दशवैकालिक सूत्र का उद्धार कर मनक मुनि को अध्ययन कराया । अणगार धर्म आराधकर दीक्षा लिये पश्चात् छः महीने से ही मनक मुनि स्वर्ग पधार गए और शय्यंभव स्वामी भी वीर निर्वाण संवत् ९८ में स्वर्ग पधारे ।

५ श्री यशोभद्र स्वामी—श्री शय्यंभव स्वामी के पाट पर यशोभद्र स्वामी विराजे—वे वीर प्रभु पश्चात् १४८ वें वर्षमें स्वर्ग पधारे ।

६ श्री संभूति विजय स्वामी—यशोभद्र स्वामी के पश्चात् श्री संभूति विजय स्वामी आचार्य हुए । वे वीर संवत् १५६ वें वर्ष स्वर्ग पधारे ।

७ श्री भद्रबाहु स्वामीः—दक्षिण देशके प्रतिष्ठानपुर नगर में भद्रबाहु तथा वराहमिहिर नामक ब्राह्मण रहते थे, उन्होंने यशोभद्र स्वामी का उपदेश श्रवण कर वैराग्य पा दीक्षा ली—भद्रबाहु स्वामी चौदह पूर्व धारी हुए और संभूति विजय स्वामी के पश्चात्

आचार्य हुए। वराहमिहिर को इनसे ईर्षा हुई और जैन दीक्षा त्याग ज्योतिष विद्या के बल से लोगों में प्रसिद्ध हुए। उन्होंने वराह संहिता नामक एक ज्योतिष शास्त्र बनाया है ऐसी कथा प्रचलित है कि वे तापस बन अज्ञान तप से तप्त हो मरकर व्यंतर देव हुए और जैनों को उपद्रव ग्रसित रखने के लिये महामारी रोग फैलाया, उस उपसर्ग की शांति के लिये भद्रबाहु स्वामीने 'उवसग्गहर' स्तोत्र रचा और उसके प्रभाव से उपद्रव शांत होगया। इतिहास प्रसिद्ध मौर्य वंशीय * चंद्रगुप्त राजा भद्रबाहु स्वामी का परम भक्त हुआ।

---

* श्रेणिक राजा का पौत्र उदाई अपुत्र मरने के पश्चात् पाटली पुत्र की गादी एक नाई (हजाम) के नंद नामक पुत्र को प्राप्त हुई, इस राजा का कल्पक नामक मंत्री था। अनुक्रम से नंद वंश के नौ राजा हुए और उसके प्रधान भी कल्पक वंशी हुए। चाणक्य नामक ब्राह्मणकी सहायता से चंद्रगुप्तने पराजित किया जिससे वह पाटलीपुत्र का राजा हुआ। नंद के वंशजों ने १५५ वर्ष तक राज्य किया था, चंद्रगुप्त राजा जैनी था इसलिये धर्म द्वेष के कारण मुद्रा राक्षस आदि पुस्तकों में उसे क्षुद्र जातिका कहा है परन्तु क्षत्रिय उपकारिणी महासभाने अनेक अकाट्य प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि चंद्रगुप्त शुद्ध मौर्यवंशी क्षत्रिय था।

ग्रीस का राजा महान् सिकंदर (Alexander the great.) चन्द्र गुप्त के समय भारत पर चढ़ आया था. (ई० सन्. पूर्व ३२७ से ३२३ ग्रीक लेखक के कथनानुसार चन्द्रगुप्त के पास २० हजार घुड़ सवार, २ लाख सैनिक, २ हजार रथ तथा ४ हजार हाथी थे, सिकंदर के सेनापति सिल्युकस को चन्द्रगुप्त राजा ने युद्ध में पराजित कर भगा दिया था।

वीर-निर्वाण के पश्चात् १७० वें वर्ष श्री भद्रबाहु स्वामी स्वर्ग पधारे उनके पश्चात् चौदह पूर्वधारी साधु भरतक्षेत्र में नहीं हुए.

८ स्थूलिभद्र स्वामी—नवें नंद राजा का कल्पक वंशीय शकडाल नामक मंत्री था. उसके स्थूलिभद्र और श्रीयक नामक दो पुत्र थे, पाटली पुत्रमें कोशा नामक एक अतिरूप वाली वेश्या रहती थी। प्रधान पुत्र स्थूलिभद्र उसके प्रेमपाश में फंस गया और हमेशा वहीं रहने लगा, शकडाल के पश्चात् श्रीयक को प्रधान पद देने लगे परन्तु श्रीयक ने कहा कि मेरे ज्येष्ठ भ्राता स्थूलिभद्रजी १२ वर्ष से कोशा वेश्या के घर में रहते हैं उन्हें बुलाकर मंत्री पद दीजिये, राजाने स्थूलीभद्र को बुलाकर मन्त्रीपद लेने को निमन्त्रित किया, लज्जावश स्थूलिभद्र राज्य सभा में नीची दृष्टिसे देखता रहा और विचारकर उत्तर देने की प्रार्थना की. गहन विचार करते राज्य-खटपट में पड़ना उन्हें योग्य न जंचा, संसार भी उन्हें अनित्य मालूम हुआ। वे वैराग्य उत्पन्न होने पर

साधुवेष पहिन राजसभा में आये और कहा कि राजन् ! मैंने तो ऐसा विचार किया है, फिर उन्होंने संभूतिविजय स्वामी के पास से दीक्षा ली. चातुर्मास समीप समझ उन्होंने कोशा वेश्या के यहां चातुर्मास निर्गमन करने की गुरु से आज्ञा मांगी. गुरुने श्रेयस्कर समझ आज्ञा देदी. उसी समय तीन दूसरे मुनि भी सिंह की गुफा में, सर्प के बिल में और कुएं के रहँट समीप चातुर्मास करने की आज्ञा ले निकले।

स्थूलिभद्र स्वामी कोशा के घर गए, उन्हें आते देख कर वेश्या ने सोचा ऐसे सुकोमल देहवाले से इतने कठिन महाव्रतों का पालन किस रीती से होगा ? मेरा प्रेम अभी उनके दिल से नहीं हटा। स्थूलिभद्र को समीप आते ही वेश्याने विशेष आदर सन्मान दे कहा स्वामिन् ! इस दासी पर महत् कृपा की जो आज्ञा हो वह सुख से फर्माइये. निर्मोही निर्विकारी मुनि बोले, मुझे तुम्हारी चित्रशाला में चातुर्मास व्यतीत करना है. वेश्याने चित्रशाला सुपुर्द कर दी। पश्चात् स्वादिष्ट भोजन वहिराये फिर उत्तम शृंगार कर उनके सामने आ खड़ी हुई। पूर्वप्रेम का स्मरणकर, पूर्व भोगे हुए भोगों को याद कर वह वेश्या अत्यन्त हाव भाव दिखाने लगी। परन्तु मुनिराज तो मेरुके समान अटल रहे। मनमें लेश मात्र भी विकार उत्पन्न न हुआ; वरन् उस वेश्या को भी उपदेश दे श्राविका बना लिया, चातुर्मास पूर्ण हुआ. वे गुरु के पास आये, वहांतक सिंह गुफा वासी आदि तीनों मुनिवर भी

चट्टानों से विषम, तथा दम्भ से वृद्धि प्राप्त ऐसे दुस्तर भवसागर में डूबते हुए हम लोगों की रक्षा करो ॥ १३६ ॥

विश्राणने विमलवैश्रवणेन तुल्यो
धर्मादितत्त्वनिचयस्य वदान्यकस्त्वम् ।
शाणायमानधिषणः सकले प्रतीतो
मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि ॥ १४० ॥

दान में कुबेर सदृश, धर्म्मादि तत्त्व प्रदान में शाण समान बुद्धि वाले तथा जगत्प्रसिद्ध भी आपको मैं नहीं जान सका (यही मेरी वज्रमयी अज्ञता का नमूना है) ॥ १४० ॥

संग्रामवह्निभुजगार्णवतिग्मशस्त्रो
न्मत्तेभसिंहकिटिकोटिविपाक्तवाणाः ।
दुष्टारिसंकटगदाः प्रलयं प्रयान्ति
आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमन्त्रे ॥ १४१ ॥

युद्ध, अग्नि, विकराल सर्प, दुस्तर समुद्र, तीखे शस्त्र, उन्मत्त हाथी, भयंवह सिंह, उद्धत सूअर, विषलिप्त वाण, दुष्टात्मा शत्रु, संकट और रोग ये सब उसी क्षण में नष्टप्राय हो जाते हैं, हे नाथ! जब आपका नाम रूपी पवित्र मन्त्र सुनलेते हैं ॥ १४१ ॥

चिन्तावितानजननान्तविनाशहेतौ
कल्पद्रुमे त्वयि सुसिद्धिसमानरूपे ।

इतना अधिक आहार किया कि वह मरणांतिक कष्ट पाने लगा, उस समय बड़े २ साहूकारों ने उस नवदीक्षित मुनि की औषधोपचार आदि से उचित वैयावृत्य की, सिर्फ जैन-मुनिका वेष पहिरने से ही अपनी स्थिति में जमीन आसमान जैसा महान् अंतर हुआ देख वह बहुत आनन्दित और आश्चर्यान्वित हुआ और समभाव से वेदना सह मरकर पाटली पुत्र के राजा चंद्रगुप्त का पुत्र बिंदुसार, बिंदुसार का पुत्र अशोक और अशोक का पुत्र कुणाल ,कुणाल का साम्प्रति नामक पुत्र हुआ।

साम्प्रति राजा को आर्य सुहस्ति महाराज के समागम से जाति स्मरण ज्ञान होगया उन्होंने श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किये और देश देशान्तरों में उपदेशक भेज जैन धर्म की पवित्र भावनाओं का प्रचार किया, अपने राज्य में अमरपटहा (ढिंढोरा) बजवाया अनार्य देशों में भी गृहस्थ उपदेशक भेजकर लोग अहिंसा धर्म के प्रेमी बनाये;—

एक वक्त आर्य सुहस्तिजी उज्जैन पधारे और भद्रा सेठानी की अश्वशाला में उतरे भद्रा का अवंती सुकुमार नामक एक महा तेजस्वी पुत्र था—वह अपनी स्त्रियों के साथ महल में देव सदृश सुख भोगता था। एक समय आचार्य महाराज पांचवें देवलोक के नलिनी गुल्म विमान का अधिकार पढ़ रहे थे, वह सुनकर अवंति

सुकुमार ने सोचा कि पूर्व में ऐसी रचना मैंने कहीं साक्षात् देखी है विचार करने पर उन्हें जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया, माता की आज्ञा ले आचार्य के समीप दीक्षा ली. अधिक समय तक साधुता के घोर कष्ट सहन करते रहना उन्हें योग्य न जंचा जिससे गुरु से अर्ज की कि आपकी आज्ञा हो तो अनशन कर जहां से आया हूं वहां शीघ्र जाऊं।

गुरु की आज्ञा पाते ही श्मशान में जा कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित हुए राह में कंकर कांटे लगने से सुकुमार मुनि के पैरों से रक्त धारा बहने लगी थी उस रक्त को चूंसती चाटती हुई एक सियालनी मय बच्चों के ध्यानस्थ मुनि समीप आई और उनके शरीर को भक्ष्य बनाया आत्मभाव में स्थित मुनि तनिक भी न डिगे समाधि पूर्वक काल कर नलिनी गुल्म विमान में देवता हुए दृढ़ मनो बल द्वारा मनुष्य क्या नहीं कर सकता ? एक प्रहर में पांचवें देवलोक की समृद्धि प्राप्त करने वाले कुमार ! धन्य है आपके धैर्य को ! वीर-निर्वाण के पश्चात् २४५ वें वर्ष आर्य महागिरी और २६५ वें वर्ष आर्य सुहस्ति स्वामी स्वर्ग पधारे।

१० बलिसिंहजी (बालीसिंहजी) आर्य महागिरि के पाट पर उनके शिष्य बलसिंहजी पधारे, उनके शिष्य उमास्वामी और उमास्वामी के शिष्य श्यामाचार्य हुए. इन्हीं श्यामाचार्य ने श्री पन्नापना सूत्रको पूर्व से उधृद्त किया, उनके पश्चात् अनुक्रम से ११ सोवन स्वामी १२

चीरस्वामी १३ स्थंडिल स्वामी १४ जीवधर स्वामी १५ आर्य समेद स्वामी १६ नंदील स्वामी १७ नागहस्ति स्वामी १८ रेवंत स्वामी १९ सिंहगणिजी २० थंडिलाचार्य २१ हेमवंत स्वामी २२ नागजित स्वामी २३ गोविन्द स्वामी २४ भूतदीन स्वामी २५ छोहगणिजी २६ दुःसहगणिजी और २७ देवार्धिगणिजी क्षमा श्रमण हुए ।

श्री वीर निर्वाण से ९८० वें वर्ष अर्थात् विक्रम संवत् ५१० में समर्थ आठ आचार्यों ने समय सूचकता समझ वर्तमान प्रचलित अपने साधन संग्रह करने का योग्य विचार किया। वल्लभीपुर (कठिया-वाड़ में भावनगर के पास वला स्टेट है) में टाडकृत राजस्थान में लिखे अनुसार जैनियों की घनी बस्ती थी और राज्य शासन शिलादित्य के हाथ में था जैन धर्म की विजय ध्वजा फहराने वाले इस प्रसिद्ध शहर पर वि० सं० ५२५ में पार्थियन, गेट और हूण लोगों ने हमला किया, जिससे तीस हजार जैन कुटुम्बी वह शहर त्याग मारवाड़ में जा बसे. इस भगाभगी दुष्काल के कारण लिखा हुआ पूर्ण शुद्ध नहीं हुआ जिससे सूत्रों की शृंखला छिन्नभिन्न होगई फिर बौद्ध लोगों ने भी जैनधर्म के प्रतिस्पर्धी व प्रतिपक्षी बन जैन शासन को समुच्छेद उखाड़ डालने का प्रयत्न किया, ऐसे अनेक कारणों से श्री भद्रबाहु स्वामी के पश्चात् विक्रम संवत् आठसौ तक अनेक जैन विद्वान हुए तो भी उनकी कीर्ति हाथ नहीं लगती.

देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के पाट पर अनुक्रम से २८ वीरभद्र २६ संकरभद्र ३० यशोभद्र ३१ वीरसेन ३२ वीरसंग्राम ३३ जिनसेन ३४ हरिसेन ३५ जयसेन ३६ जगमाल ३७ देवऋषि ३८ भीमऋषि ३६ कर्मऋषि ४० राजऋषि ४१ देवसेन ४२ संकरसेन ४३ लक्ष्मी-लाभ ४४ राम ऋषि ४५ पद्मसूरि ४६ हरिस्वामी ४७ कुशलदत्त ४८ उवनी ऋषि ४६ जयसेन ५० विजयऋषि ५१ देवसेन ५२ सूरसेन ५३ महासूरसेन ५४ महासेन ५५ गजसेन ५६ जयराज ५७ मिश्रसेन ५८ विजयसिंह ५६ शिवराजजी ६० लालजी ऋषि ६१ ज्ञानजी ऋषि हुए।

महावीर प्रभु से देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण तक के १००० वर्ष दरम्यान वीर शासन सूर्य अपना दिव्य प्रकाश विश्व में प्रकट कर रहा था, परंतु उनके पश्चात् से ज्ञानजी ऋषि के १०० वर्ष तक यह प्रकाश शनैः शनैः कम होता गया और ज्ञानजी ऋषि के समय तो जैन दर्शन की ज्योति बिलकुल मंद होगई थी, निरंकुश और मानके भूखे साधुओं की उत्सूत्र प्ररूपना, श्रावक वर्ग की अज्ञानता और अंध श्रद्धा, राज्यविप्लाव और अराजकता से भारत में व्याप्त हुई अंधाधुंधी आदि गाढ काले बादलों ने इस सूर्य को चारों ओर से घेर लिया था,

साधु अध्यात्मिक जीवन विताते और व्यवहारिक खटपट से सर्वथा दूर रहते थे परन्तु ज्यों २ उनका अध्यात्म प्रेम कम होता

गया त्यों २ बाह्याडम्बर की वृद्धि होने लगी, वे तुच्छ २ मत भेदों को बड़ा २ स्वरूप दे नये २ गच्छ उत्पन्न करने लगे, जिससे जैन संघ की छिनभिन्नता हो एकता नष्ट होने लगी। अपना पक्ष प्रबल और दूसरों का अबल करने के लिए परस्पर निन्दा और मिथ्या आक्षेप लगाने में ही उनका समय और शक्ति का अपव्यय होने लगा, इससे जैन-धर्म के अन्य सिद्धान्तों पर ही जैन साधुनामधराने वालों के हाथ से ही बार २ कुठार प्रहार होने लगा, साधुओं में शिथिलाचार बढ़ गया कई तो महावलम्बी और परिग्रहधारी होगए यति का नाम जो कि अति पवित्र गिना जाता था, उस शब्द की महत्ता में हानि पहुंचाई. श्रावकों को अपने पक्षमें लेने के लिये मंत्र, जंत्र और वैदिक आदि धतंगे बढ़ने लगे तथा हिंसादि निषिद्ध कार्य करने पर तत्पर हुए मन, वचन और काया के योग से भी हिंसा नहीं करना, नहीं कराना और करने वाले को ठीक नहीं समझना इस अणगार धर्म की मर्यादा का प्रत्यक्ष उल्लंघन होने लगा अन्य मतावलंबियों की प्रवृत्ति का अनुकरण कर स्थान २ पर देवालय और प्रतिमाएं स्थापन कीं, अपने २ पक्षके यतियोंके लिये उपाय बंधवाये. वर घोड़े चढ़ना, उत्सव करना, नाच नचाना-इत्यादि प्रवृत्तियों के प्रेरक और नायक होनायति अपना कर्तव्य समझने लगे, सारांश यहहै कि उस समय साधुवर्गसे चारित्रधर्म लोप होने लगा था और श्रावक समुदाय कर्त्तव्य से पदच्युत हो उनके पीछे २ उलटी

राह पर चलता था. ज्ञानजी ऋषि के समय जैन धर्म की परिस्थिति उपरोक्त थी।

ऐसा होते भी वीर-शासन साधु विहीन नहीं हुआ। अनुयायियों की अल्प संख्या होते भी अल्प संख्या में साधु सर्व काल विद्यमान थे, जब २ घोर तिमिर बढ़ जाता तब २ कोई न कोई महापुरुष उत्पन्न होता और जैन प्रजा को सन्मार्गारूढ करता था।

जैन-शासन की मंद हुई ज्योति को विशेष उद्योत करने वाले अनेक नव युग प्रवर्तक समर्थ महात्मा इन दो हजार वर्षों में उत्पन्न हो चुके थे.

ज्ञानजी ऋषि के समय में भी ऐसे एक धर्म सुधारक महा पुरुष की अत्यंत आवश्कता उपस्थित हुई कि जो साधुवर्ग से उपरोक्त ऐबों को दूर कर सत्य का प्रकाश फैलावे और जैन-समाज में बढ़े हुए संदेह और मिथ्या मान्यता को नष्ट करे. इतिहास साक्षी है कि जब २ अंधाधुन्धी बढ़जाती है तब २ कोई न कोई वीर नर पृथ्वी पर प्रकट हो पुनरुद्धार करता है, इसी नियमानुसार पंद्रह सौ के संवत् में ऐसा एक महान् धर्म सुधारक गुजरात के पा.य तख्त अहमदाबाद शहर में ओसवाल (क्षत्रिय) ज्ञाति में उत्पन्न हुआ. उनका नाम लौंकाशाह था, वे सराफी का धंधा करते थे. राज्य दरबार में उनका अधिक मान था. हस्ताक्षर उनके बहुत सुंदर थे.

बुद्धि तीव्र एवम् निर्मल थी. जैन धर्म पर उनका अप्रतिम प्रेम था एक समय वे ज्ञानजी ऋषि के समीप उपाश्रय में आये उस समय ज्ञानजी ऋषि धर्म शास्त्र संभालने और उन्हें योग्य व्यवस्था से रखने में लगे हुए थे. उनके एक शिष्य ने सूत्र की प्राचीन जीर्ण प्रतियां देखकर शाहजी से कहा, " आपके सुंदर हस्ताक्षर इन पुस्तकों का पुनरुद्धार करने में उपयोगी नहीं होसके ? शाहजी ने अत्यंत आनंद के साथ सूत्र की जीर्ण प्रतियों की प्रति लिपि करने का कार्य स्वीकार किया (विक्रम संवत् १५०९ ई० सन् १४५२) अपने लिये भी उन्होंने सूत्र की प्रतियां लिख लीं लिखते २ उन्हें विस्तीर्ण सूत्र ज्ञान होगया उनकी निर्मल और कुशाग्र बुद्धि वीरस्वामी के पवित्र आशय को समझ गई. उनको ज्ञानचक्षु-खुल जाने से वीर भाषित अणगार धर्म और वर्तमान में विचरने वाले साधुओं की प्रवृति में जमीन आसमान का सा अंतर दिखा. साधुओं की उत्सूत्र प्ररूपना उनसे असह्य होगई जैन समाज की गति उलटी दिशा में देखकर उन्हें बहुत बुरा जंचा और सत्य का याथातथ्य प्रकाश करने की उनके मानस मंदिर में प्रबल स्फुरणा हुई। प्रति पक्षी दल अत्यंत बढ़ा और शक्ति तथा साधन सम्पन्न था तो भी निर्भयता से वे जाहिर व्याख्यान — उपदेश देने-लगे और सत्य में व्याप्त प्राकृतिक अद्भुत आकर्षण शक्ति के प्रभाव से उनके श्रोतृ समुदाय की संख्या प्रतिदिन बढ़ने लगी. भिन्न २ देशों के

श्रीमंत अग्रगण्य श्रावक बृहत् संख्या में उनके अनुयायी हुए. केवल श्रावक ही नहीं परंतु कितने ही यति भी उनके सदुपदेश के असर से शास्त्रानुसार अणगार धर्म आराधने तत्पर हुए. लौंकाशाह स्वयम् वृद्ध होने से दीक्षित न होसके परंतु भाणाजी आदि ४५ भव्य जीवों को उन्होंने दीक्षा दिला उनकी सहायता से आप जैन शासन सुधारने के आपने इस पवित्र कार्य में महान् विजय प्राप्त की और अल्प समय में ही हिन्दुस्थान के एक छोर से दूसरे छोर तक लाखों जैनी उनके अनुयायी बने, जिस समय यूरोप में धर्म सुधारक मार्टिन ल्युथर हुआ और प्युरिटन ढंग से ख्रिस्ती धर्म को जागृत किया. उसी समय या उसी साल अकस्मात् जैन धर्म सुधारक श्रीमान् लौंकाशाह का समय मिलता है ※

लौंकाशाह के उपदेश से ४५ मनुष्य दीक्षित हुए उन्होंने अपने गच्छका लोंकागच्छ नाम रक्खा. वीर संवत् १५३१.

※ About A. D. 1452 the Lonka sect arose and was followed by the sthanakwasi sect dates which coincile strickingly with the Lutheren and puritan movements in Europe.

Heart of joinism.

समय २ पर धर्मगुरु जन्म लेते हैं, होते हैं और जाते हैं परंतु समाज पर पवित्र और स्थिर छाप लगाने का सौभाग्य बहुत कम

ज्ञानजी ऋषि के पश्चात् आज तक गादी नशीन आचार्यों की नामावली निम्न लिखित है.

६२ भाणजी ऋषि ६३ रूपजी ऋषि ६४ जीवराजजी ऋषि ६५ तेजराजजी ६६ कुंवरजी स्वामी ६७ हर्ष ऋषिजी ६८ गोधाजी स्वामी ६९ परशुरामजी स्वामी ७० लोकपालजी स्वामी ७१ महाराजजी स्वामी ७२ दौलतरामजी स्वामी ७३ लालचंदजी स्वामी ७४ गोविंदरामजी स्वामी हुकमीचंदजी स्वामी ७५ शिवलालजी स्वामी ७६ उदयचंद्रजी स्वामी ७७ चौथमलजी स्वामी ७८ श्रीलालजी स्वामी (चरित नायक) ७९ श्री जवाहिरलालजी स्वामी (वर्त्तमान आचार्य) ※

ज्ञानजी ऋषि से आजतक ४५० वर्ष का कुछ इतिहास अब वर्णन करते हैं ।

को प्राप्त होता है. ख्रिस्ती धर्म में मानसिक दासत्व दूर करने का जितना कार्य मार्टिन ल्यूथर ने किया वैसा ही कार्य श्रीमान् लौंकाशाह ने श्वे. जैनधर्म में क्रियोद्धार के लिये किया.

※ पूज्य श्री हुकमीचंद्रजी महाराज की सम्प्रदाय की पाटावली अनुसार उनके सम्प्रदाय के उत्तरोत्तर प्राप्त हुए आचार्य पद की नामावली यहां दिखाई है ।

श्री महावीर की वाणी का अवलम्बन ले धर्मोद्धार का श्रीमान् लौंकाशाह ने जो शुद्ध मार्ग प्रवर्त्ताया उस मार्गगामी साधु शास्त्र नियमानुसार संयम पालते, निर्वद्य उपदेश देते, निष्परिग्रह ही रहकर ग्रामानुग्राम अप्रतिबद्ध विहारकर, पवित्र जैन शासन का उद्योत करते थे, भाणाजी ऋषि साधसखाजी, रूपजी ऋषि तथा जीवराज ऋषिजी प्रभृति ने लाखों की सम्पत्ति त्याग दीक्षा ली थी, सखाजी तो बादशाह अकबर के मंत्री मंडल में से एक थे, बादशाह की इन्कारी होनेपर भी पांच करोड़की सम्पत्ति त्याग उन्होंने दीक्षा ली थी।

प्राय: सौ वर्ष तक तो लौंका गच्छीय साधुओं का व्यवहार ठीक रहा परन्तु पीछे से उनमें भी धीरे २ आचारशिथिलता और अन्धाधुन्धी बढ़ने लगी।

पूर्ववत् अन्धकार फैलाने वाले बादल फिर चढ़ आये, साधु पंच महाव्रतों को त्याग मठावलम्बी और परिग्रहधारी होने लगे, तथा सावद्य भाषा और सावद्य क्रिया में प्रवृत्त होने लगे, परंतु उस समय भी कई अपरिग्रही और आत्मार्थी साधु विशुद्ध संयम पालते, काठियावाड़ मारवाड़ पंजाब में विचरते थे और वे इन बादलों के असर से मुक्त रहे थे, मालवा मारवाड़ आदि में विचरते पूज्य श्री हुकमीचंद्रजी महाराज का सम्प्रदाय ऐसे ही आत्मार्थी साधुओं में से एक के पाट एक होने से हुआ है।

लौंकाशाह के पश्चात् फिर से जब ये मेघ*चढ़ आये तब उन्हें नष्ट करने के लिये गुजरात में किसी समर्थ महापुरुष के प्रादुर्भाव होने की आवश्यकता हुई उस समय प्राकृतिक नियमानुसार धर्मसिंहजी लवजी ऋषि और श्री धर्मदासजी अणगार एक के पश्चात् एक यों तीन महा व्यक्ति उत्पन्न हुए, उन्होंने अद्भुत पराक्रम दिखा लौंकाशाह के उपदेश का पुनरुद्धार किया. बल्कि शासन सुधारने का जो कार्य उन्होंने अपूर्ण छोड़ा था उसे इस त्रिपुटी ने पूर्ण किया. उन्होंने महावीर की आज्ञानुसार अणगार धर्म की अराधना प्रारंभ की. उनके विशुद्ध ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तपके प्रभाव से तथा शास्त्रानुकूल और समयानुकूल सदुपदेश से लाखों

---

* एक अंग्रेज बानू मिसीस स्टीवन्सन् कि जो राजकोट में रहती थी अपनी Heart of jainism (नाम पुस्तक में इस समयका उल्लेख यों करती है।

Firmly rooted amongst the laiter, they were able once hurricane was past to reappear oncemore and begin to throw out fresh branches...many from the Lonka sceb. Joined this reformer and they took the name of Sthanakwasi, whilst their enemics called them Dhundhia Searchers. This tille has grown to be quite an honourable one.

मनुष्य उनके भक्त होगए । उस समय से उन्होंने जैन शासन का अपूर्व उद्योत किया, तब से लौंका गच्छ यति वर्ग और पंच महाव्रत धारी साधु ऐसे दो विभागों में जैन श्वे० पंथ बँट गया. लौंका गच्छीय तथा अन्य गच्छीय जो श्रावक पंच महाव्रतधारी साधुओं को मानने वाले तथा, उनके दिखाये हुए मार्ग पर चलने वाले हुए वे साधुमार्गी नाम से प्रख्यात हुए यह मार्ग कुछ नया न था इसके प्रवर्तकों नें कुछ नये धर्म शास्त्र नहीं बनाये थे. सिर्फ शास्त्र विरुद्ध चलती प्रणाली को रोक शास्त्र की आज्ञा ही वे पालने लगे, मारवाड़ की सम्प्रदाय भी इसी मार्ग का अनुसरण करने वाली होने से वे भी साधुमार्गी नाम से पहिचाने जाते हैं । यहां इस सम्प्रदाय के प्रभावशाली पुरुषरत्नों में से थोड़े से मुख्य २ आचार्यों का कुछ इतिहास अवलोकन करना अप्रासंगिक नहीं होगा ।

श्री धर्मसिंहजीः — ये जामनगर, काठियावाड़ के दशा श्रीमाली वैश्य थे इनके पिता का नाम जिनदास और माता का नाम शिवा था, लौंकागच्छ के आचार्य रत्नसिंहजी के शिष्य देवजी महाराज के व्याख्यान से १५ वर्ष की उम्र में धर्मसिंहजी को वैराग्य उत्पन्न हुआ और पिता पुत्र दोनों ने दीक्षा ली. विनय द्वारा गुरु कृपा सम्पादन कर ज्ञान ग्रहण करने के लिये प्रबल वैराग्यवान धर्मसिंहजी मुनि सतत सदुद्योग करने लगे. ३२ सूत्रोंके उपरांत व्याकरण

न्याय प्रभृति में भी वे पारंगत विद्वान् हुए. उनकी स्मरणशक्ति अत्यंत तीव्र थी. वे अष्टावधान करते थे, शीघ्र काव्य रचते थे, दोनों हाथ तथा दोनों पैर से कलम पकड़ कर लिख सके थे। बहू सूत्री होने के पश्चात् एक दिन धर्मसिंहजी अणगार सोचने लगे कि सूत्र में कहे अनुसार साधु धर्म तो हम नहीं पालते तो रत्न चिंतामणि समान इस मानव जन्म की सार्थकता कैसे सिद्ध होगी? उन्होंने शुद्ध संयम पालने का निश्चय किया और गुरु से भी कायरता त्याग कटिबद्ध होने का आग्रह किया गुरुजी पूज्य पदका मोह न त्याग सके

अंतमें उनकी आज्ञा और आशीर्वाद भी आत्मार्थी और सहाध्यायी यतियों के साथ उन्होंने पुनः शुद्ध दीक्षाली (विक्रम सं. १६८५) धर्मसिंहजी अणगार ने २७ सूत्रों पर (टब्बा) टिप्पणी लिखी। ये टिप्पणियां सूत्ररहस्य सरलता पूर्वक समझाने को अति उपयोगी हैं। विक्रम सं. १७२८ में उनका स्वर्गवास हुआ, उनका सम्प्रदाय दरियापुरी के नामसे प्रख्यात है।

श्रीलवजी ऋषिः—सूरत में वीरजी वहोरा नामक एक दशा श्रीमाली साहूकार रहता था, उनकी लड़की फूलबाई से लवजी नामक पुत्र हुआ. लौंकागच्छ के यति वजरंगजी के पासउनने शास्त्राध्ययन किया और दीक्षा ली. यतियों की आचार शिथिलता देखकर

दो वर्ष बाद उन से प्रथक् हो उनने विक्रम संवत् १६८२ में स्वयमेव दीक्षा ली। अनेक परिषह सहन किये और शुद्ध चारित्र पाल, जैन धर्म दिपा स्वर्ग पधारे। मुनि श्री दौलतऋषिजी तथा अमिऋषिजी प्रभृति उनकी सम्प्रदाय में हैं।

श्रीधर्मदासजी अणगार—ये अहमदाबाद के समीप सरखेज ग्राम के निवासी भावसार ज्ञाति के थे। उनके पिता का नाम जीवन कालिदास था। विक्रम संवत् १७१६ में उन्होंने प्रबल वैराग्य से दीक्षा ली और उसी दिन गोचरी जाते एक कुम्हारिन ने राख वहराई। वह थोड़ीसी पात्र में गिरी और थोड़ी हवा में बिखर गई। यह वृत्तांत इन्होंने धर्मसिंहजी से कहा।

इसका उत्तर धर्मसिंहजी ने फर्माया कि, जैसे छार बिन कोई घर खाली नहीं रहता उसी तरह प्रायः तुम्हारे शिष्यों के बिना कोई ग्राम खाली न रहेगा और छार हवा में फैल गई इसी तरह तुम्हारे शिष्य चारों ओर धर्म का प्रसार करेंगे। धर्मदासजी के ९९ शिष्य हुए। जिन्होंने देश देशान्तरों में जैनधर्मकी अत्यन्त सुकीर्त्ति फैलाई ९९ शिष्यों में से ९८ तो मालवा, मारवाड़, मेवाड़ और पंजाबमें विचरते और जैनधर्म की ध्वजा फहराते थे, सिर्फ एक मूलचंदजी स्वामी गुजरात में रहे उन्होंने गुजरात में घूम कर जैनधर्म का अत्यन्त प्रचार किया। मूलचंदजी स्वामी के ७ शिष्य हुए वे भी जैन शासन को दिपाने वाले हुए, उनके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं।

१ गुलाबचंद्रजी २ पंचाणजी ३ बनाजी ४ इन्द्रजी ५ बनारसी ६ विट्ठलजी और ७ भूपणजी इनके शिष्यों ने काठियावाड़ में १ लींबड़ी २ गोंडल ३ बरवाला ४ आठ कोटी कच्छी ५ चूड़ा ६ धांगध्रा ७ सायला ऐसे ७ संघाड़े स्थापित किये।

गुलाबचंद्रजी के शिष्य बालजी स्वामी, बालजी स्वामी के शिष्य हीराजी स्वामी, हीराजी स्वामी के शिष्य कानजी स्वामी और कानजी स्वामीके सिष्य अजरामरजी स्वामी हुए। ये अजरामरजी महाप्रतापी और पंडित पुरुष हुए। उनके नाम से वर्तमान में लींबड़ी संप्रदाय (संघाड़ा) प्रख्यात है।

श्री दौलतरामजी तथा श्री अजरामरजी—ये। दोनों महात्मा समकालीन थे। दौलतरामजी ने सं। १८१४ में और अजरामरजी ने १८१६ में दीक्षा ली थी। श्री दौलतरामजी महाराज पू० हुकमीचन्द्रजी महाराज के गुरु के गुरु थे। वे अति समर्थ विद्वान् और सूत्र सिद्धान्त के पारगामी थे. मालवा, मारवाड़, में ये विचरते और इसी प्रदेश को पावन करते थे, उनके असाधारण ज्ञान सम्पत्ति की प्रशंसा श्री अजरामरजी स्वामी ने सुनी। अजरामरजी स्वामी का ज्ञान भी बढ़ा चढ़ा था तो भी सूत्र ज्ञान में अधिक उन्नति करने के लिये श्री दौलतरामजी महाराज के पास अभ्यास करने की उनकी इच्छा हुई। इस पर से लींबड़ी संघ ने एक खास

मनुष्य के साथ दौलतरामजी महाराज की सेवा में प्रार्थना पत्र भेजा आचार्य प्रवर श्री दौलतरामजी महाराज उस समय बूंदी कोटे विराजते थे। उन्होंने इस विज्ञप्ति को सहर्ष स्वीकृत कर काठियावाड़ की ओर विहार किया। वह भेजा हुआ मनुष्य भी अहमदाबाद तक पूज्य श्री के साथ ही था परंतु वहां से वह पृथक् हो लींबड़ी संघ को पूज्य श्री के पधारने की बधाई देने आया। उस समय लींबड़ी संघ के आनंद का पार न रहा, लींबड़ी संघने उस मनुष्य को रु० १२५०) बधाई में भेट दिये। पूज्य श्री दौलतरामजी लींबड़ी पधारे तब वहां के संघ ने उनका अत्यन्त आदर सत्कार किया।

लींबड़ी संघ की अनुपम गुरुभक्ति देखकर दौलतरामजी महाराज श्री भी सानंदाश्चर्य हुए। पंडित श्री अजरामरजी स्वामी पूज्यश्री दौलतरामजी महाराज से सूत्र सिद्धांत का रहस्य समझने लगे. समकित सार के कर्ता पं० मुनि श्री जेठमलजी महाराज इस समय पालनपुर विराजते थे वे भी शास्त्राध्ययन करने के लिये लींबड़ी पधारे और वे भी ज्ञान गोष्ठी के अपूर्व आनंद का अनुभव करने लगे। भिन्न २ सम्प्रदाय के साधुओं में परस्पर उस समय कितना प्रेमभाव था और साधुओं में ज्ञान पिपासा कितनी तीव्र थी यह इस पर से स्पष्ट सिद्ध है। पं० श्री० दौलतरामजी महाराज के साथ २ कितने ही समय तक विचर कर पं० श्री अजरामरजी महाराजने सूत्र ज्ञान में अपरिमित अभिवृद्धि की थी और पूज्य श्री दौलतराम जी

महाराज के आग्रह से पूज्य श्री अजरामरजी महाराजने जयपुर में एक चातुर्मास भी उनके साथ किया था।

पूज्य श्री हुकमीचन्दजी स्वामी—पूज्य दौलतराम महाराज के पश्चात् श्रीलालचंद्रजी महाराज आचार्य हुए, और उनके पाट पर परम प्रतापी पूज्य श्री हुकमचंद्रजी महाराज हुए टोडा (रायसिंह के) ग्राम के रहने वाले वे ओसवाल गृहस्थ थे उनका गोत्र चपलोत था. बूंदी शहर में सं० १८७९ में मार्गशीर्ष मास में पूज्य श्रीलाल चंद्रजी स्वामी के पास उन्होंने प्रबल वैराग्य से दीक्षा ली। २१ वर्ष तक उन्होंने बेले २ तप किया चाहे जितने कड़क शीत में भी वे सिर्फ एक ही चादर ओढ़ते थे, शिष्य बनाने का उनके सर्वथा त्याग था, उसने सब मिठाई भी खाना त्याग दी थी। सिर्फ तेरह द्रव्य रखकर बाकी के सब द्रव्यों का यावज्जीव पर्यंत त्याग किया था वे बिल्कुल कम निद्रा लेते और रात दिन स्वाध्याय और ध्यानादि प्रवृत्ति में ही लीन रहते थे. नित्य २०० नमोत्थुणं गिनते थे, आप समर्थ विद्वान् होते भी निराभिमानी थे. कोई चर्चा करने आता तो अपने आज्ञावर्ती साधु श्रीशिवलालजी महाराज के पास भेज देते, अपने गुरु पूज्य श्री लालचंद्रजी महाराज शास्त्रानुसार सख्त आचार पालने के लिये बार बार विनय करते रहते परन्तु अपनी विनय अस्वीकृत होने से पृथक् विहरने लगे और तप संयमादि में वृद्धि करने लगे, इससे गुरुजी उनकी अति निंदा

करने लगे, किसीने उनको आहार पानी देना नहीं, उपदेश सुनना नहीं तथा उतरने के लिये स्थान भी नहीं देना ऐसे २ उपदेश देने लगे, क्षमा के सागर श्री हुकमीचंद्रजी महाराज ने इस पर तनिक भी लक्ष नहीं दिया वे तो गुरू के गुणानुवाद ही करते और कहते थे कि मेरे तो वे परम उपकारी पुरुष हैं महा भाग्यवान् हैं मेरी आत्मा ही भारी कर्मी है। इस तरह वे गुरु प्रशंसा और आत्मनिंदा करते थे तो भी गुरुजी की ओर ओर से वाक्‌बाण के प्रहार होते ही रहे यों करते २ चार वर्ष बीत गए, परंतु वे गुरु के विरुद्ध कदापि एक शब्द भी न बोले। चार वर्ष बाद गुरु को आप ही आप पश्चात्ताप होने लगा और वे भी निंदा के बदले स्तुति करने लगे। अंत में व्याख्यान में प्रकट तौर पर फरमाने लगे कि हुकमचंद्रजी तो चौथे आरे के नमूने हैं वे पवित्रात्मा और उत्तम साधु हैं वे अद्भुत क्षमा के भंडार हैं। मैंने चार वर्ष तक उनके अवगुण गाने में त्रुटि न रक्खी परंतु उसके बदले उन्होंने मेरे गुण ग्राम करने में कमी नहीं की। धन्य है ऐसे सत्पुरुष को! श्रीमान् हुकमीचंद्रजी महाराज का गुण समूहरूप सूर्य स्वतः प्रकाशित था, जिससे लोगों की पहिले से ही उनपरपूज्य भक्ति तो थी ही फिर आचार्य श्री के उद्‌गारों का अनुमोदन मिलते ही उनकी यशदुंदुभी दशहो दिशाओं में गूंजने लग गई। उन्होंने अपनी सम्प्रदाय में क्रियोद्धार किया

तब से यह सम्प्रदाय उनके नाम से प्रसिद्ध हुई और पहिचानी जाने लगी। उनके अक्षर मोती के दाने जैसे थे. उनकी हस्तलिखित १६ सूत्रों की प्रतियां इस सम्प्रदाय में अब भी वर्तमान हैं। सं० १६१७ के वैशाख शुद्ध ५ मंगलवार को जावद ग्राम में देहोत्सर्ग कर ये पवित्रात्मा स्वर्ग पधारे।

श्रीयुत ग्योइट सत्य फरमाते हैं कि " काल से भी अविच्छिन्न हो ऐसा कोई प्रतापी और प्रौढ स्मारक मृत्युबाद छोड़ जाना उचित है कि जिससे देह नश्वर होने से नाश होजाय तो भी उस स्मारक के कारण हमेशा जीवित रहे और वही वास्तविक कीर्त्ति का फल है ऐसे महाराज--महापुरुष विरले ही जन्म लेते हैं।

पूज्य शिवलालजी स्वामी—श्री हुकमचंद्रजी महाराज के पाट पर शिवलालजी महाराज विराजे उन्होंने सं० १८६१ में दीक्षा ली थी, वे भी महा प्रतापी थे, उन्होंने ३३ वर्ष तक लगातार अखण्ड एकांतर की. वे सिर्फ तपस्वी ही नहीं थे, परंतु पूर्ण विद्वान् भी थे, स्व परमत के ज्ञाता और समर्थ उपदेशक थे उन्होंने भी जैन शासन का अच्छा उद्योत किया और श्री हुकमीचंद्रजी महाराज की सम्प्रदाय की कीर्ति बढ़ाई सं० १६३३ पोष शुक्ल ६ के रोज उनका स्वर्गवास हुआ।

पूज्य श्री उदयसागरजी स्वामी—इन महात्मा का जन्म जोधपुर निवासी ओसवाल गृहस्थ सेठ नथमलजी की पातव्रित

परायणा भार्या श्री जीवु बाई के उदर से सं० १८७६ के पोष माह में हुआ. सं० १८६१ में इनका व्याह परमारेसाह से किया गया. व्याह होने के कुछ ही समय पश्चात् उन्हें संसार की असारता का भान होते वैराग्य स्फुरित हुआ, सब सम्बन्ध परित्याग करने की अभिलाषा जागृत हुई परंतु माता पिता कुटुम्बादिको ने दीक्षा लेने की आज्ञा न दी। इसलिये श्रावक व्रत धारण कर साधु का वेष पहन भिक्षाचारी करते ग्रामानुग्राम विचरने लगे. कुछ समय यों देशाटन करने के पश्चात् माता पिता की आज्ञा मिलते ही इन्होंने सं० १६७८ के चेत शुक्ल ११ के रोज पूज्य श्री शिवलालजी महाराज के सुशिष्य हर्षचंदजी महाराज के पास दीक्षा धारण की और गुरु गम से ज्ञान ग्रहण करने लगे। इनकी स्मरण शक्ति अद्भुत और बुद्धि बल अगाध था। थोड़े ही समय में इन्होंने ज्ञान और चारित्र की अधिक ही उन्नति की, इनकी उपदेश शैली अत्युत्तम थी इसलिये पूज्य श्री जहां २ पधारते वहां २ उनके मुख कमल की वाणी सुनने के लिये स्वमती अन्यमती हिन्दू मुसलमान प्रभृति अधिक संख्या में आते थे. उनकी शारीईरिक सम्पदा अति आकर्षक थी, गौरवर्ण, दीप्त कांति विशाल भाल, प्रकाशित बड़े नैत्र, चंद्र समान मनोहर बदन और तत्वज्ञान सह अमृत समान मिष्ट माधुरी वाणी ये सब श्रोत समूह पर जादूसा प्रभाव डालते थे. पूज्य श्री पंजाब में अटक रावल पिंडी तक पधारे थे और उस अजान मुल्क

में थी अपना प्रभाव दिखाया था, कई राजाओं को सदुपदेश दे शिकार और मांस मदिरा छुड़ाई और अहिंसा धर्म की विजय ध्वजा फहराई थी।

पूज्य श्री के आचार विचारः— पूज्य श्री के हृदय की प्रतिच्छाया वर्तमान के उनके साधु हैं 'छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति' मोह, या प्यार में जो लेश मात्र स्वतंत्रता दीजाती है वही स्वतंत्रता फिर स्वच्छंदता के स्वरूप में परिणित होजाती है और जिसका फल भयंकर असह्य और अक्षम्यदोष उत्पन्न करता है. ये कारण प्रत्यक्ष रखकर किसीभी शिष्य को स्वच्छंदी बनने न देते.

भिन्न २ प्रकृति के साधु एकत्रित हो उस सम्प्रदाय को शुद्ध समय की सीमा में रखना सरल कार्य नहीं है। अनंतानुबंधी की चौकड़ी के बंधन में फंसते हुए मुनि को मुक्त करने के लिये वे स्तुत्य प्रयास करते थे। सूत्रों के रहस्य को न्यायपूर्वक यों समझाते थे कि:--

*असंवुडेणं भंते! अणगारे, सिज्झई, वुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वायइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेइ गोयमा! नो इणट्ठे समट्ठे से के णट्ठेणं भंते! जाव अनंत करेइ गोयमा! असंवुडे अणगारे आउयवज्जाओ

---

*भावार्थः—गृह भारका त्याग किया परंतु आंतरिक आश्रव द्वार जिसने नहीं रोके ऐसे पाखंड सेवी साधु भवजीजरूर कर्म

सत्तकम्म पयडिओ सिढिलबंधणबद्धाओ घणियबंधण बद्धाओ पकरेइ रहस्सकालठिईआओ, दीहकालठीइआओ पकरेइ मंदाणुभावाओ तिव्वाणुभावाओ पकरेइ अप्पपएसगाओ बहुपएसगाओ पकरेइ .... श्री भगवती श० १ उ० १ इसके अनुसंधान में श्री उत्तराध्ययन से अ १ गाथा ६ वीं कहकर भावार्थ गले उतारते थे कि गुरु की हितशिक्षा प्रत्येक शिष्य को सम्पूर्ण ध्यान से सुनना, विचार करना, मन में ठसाना और उसी अनुसार वर्ताव करना चाहिये. शिष्य के दुर्घृष्ट हृदय की गंभीर भूलों को क्षार करने के लिये कदाचित् कठिन प्रहार युक्त हित शिक्षा हो तो भी विनीत शिष्य को अपना श्रेय समझ कर वह शांति से श्रवण करना, परंतु तनिक भी कोप या शोक न करना और शुभ विचारों से मन को समझा कर क्षमा धारण करनी चाहिये। व्यवहार और मन से क्षुद्र मनुष्यों का तनिक भी संसर्ग न करना और हास्य क्रीडा आदि प्रसंगसे दूर रहना चाहिये।

परंतु सम्प्रदाय में थोड़े शिथिलाचारियों का समूह घुमा हुआ वे पतली दृष्टि से देख कर मन में सोचने लगे कि, साधु के नाम

प्रकृति, स्थिति, रस घटाने के बदले अधिक बढ़ाते हैं चीकने कर्म बांधते हैं इसलिये अंतरिक रिपुओं से जय प्राप्त करना यही बाह्य त्याग का मुख्य लक्ष होना चाहिये।

से लोगों को ठगना या ठगाने देना या फंसाने देना यह महा पाप अधर्म और निर्बलता है। सम्प्रदाय की यह बेपरवाही आगे गंभीर और भयंकर परिणाम पैदा करेगी.

शास्त्र सत्य कहते हैं कि, इंद्रिय और मनको वश रखना यही आत्मा की पहिचान का सरल और उत्तम उपाय है। मानसिक संयम से पापपुंज नहीं बढ़ता मन विकारी होकर दूषित हुआ कि, मानसिक पाप हो चुका इसलिये साधुधर्म के संरक्षणनिमित संयम के नियम योजित किये हैं इस अंकुश को दुःखरूप समझने वालों का दुःखमय हालत से हाल हवाल हो जाते हैं अनेक आकर्षणों में फंसाने से भव हार जाते हैं निरंकुश स्वतंत्रता से साधुओं में स्वच्छंदता, कलह और दुःख सिवाय दूसरे परिणाम भाग्य से ही प्राप्त होते हैं।

ऐसे सबल कारणों का दीर्घ दृष्टि से विचारकर पूज्य श्री ने सम्प्रदाय के कितने एक साधुओं के साथ आहार-पानी का सम्बन्ध तोड़ा था। जिसका चेप अभी तक वर्तमान है। चरित्र शिथिलिता के चेप का फैलाव रोकने के लिए ऐसे रोगियों को ढूंढ चिकित्सा कर सच्चे रास्ते लगाने का पूज्य श्री का प्रयास कटु काढ़े के सदृश होने से छूट छाट मांगने वाले मुनि नामधारी पूज्य श्री के वैयावृत्यसे भी वंचित होने लगे।

सं० १९५४ के आसोज शुक्ल १५ के व्याख्यान में रतलाम स्थान पर पूज्य श्री उदयसागर जी महाराज ने युवाचार्य पद श्री चौथमलजी महाराज को देना ज़ाहिर किया। श्री संघ ने उसे सहर्ष स्वीकार किया. श्री चौथमलजी महाराज का चातुर्मास जावद था इस लिये चातुर्मास पश्चात् रतलाम से महाराज श्री प्यारचंदजी और महाराज श्री इन्द्रचंदजी प्रभृति चादर लेकर जावद पधारे. सं० १९५४ के मंगसर शुक्ल १३ को जावद में महाराज श्री चौथमलजी को चादर धारण कराई। उस समय महाराज श्री श्रीलालजी वगैरह २१ मुनिराज श्री जावद विराजते थे.

सं० १९५४ के महा शुक्ल १० के रोज रतलाम में पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज का स्वर्गवास हुआ. पूज्य श्री का निर्वाण महोत्सव अत्यंत चित्ताकर्षक और चिरस्मरणीय विधिसे हुआ था।

पूज्य श्री चौथमलजी स्वामी:— सं० १९५४ के फाल्गुन वद ४ के रोज रतलाम पधार कर सम्प्रदाय की बागडोर आपने अपने हाथ में ली। पूज्य श्रीने सं० १९०९ चेतसुदी १२ को दीक्षा ली थी पूज्य श्री महाक्रियापात्र और पवित्र साधु थे।

उनकी नेत्रशक्ति क्षीण होगई थी और वृद्धावस्था भी थी। परंतु शरीर की अशक्ति का तनिक भी विचार न कर विहार करते रहते थे. बेजड़ कारण दिखा आजकी तरह थाणपति न रहते

साधुतो फिरतेही अच्छे इस वाक्य को सत्य संवित कर दिखाते थे। पूज्य श्री का सूत्र ज्ञान बढ़ाचढ़ा था। मुंहसे ही व्याख्यान फरमाते थे, क्रिया की ओर भी पूर्ण लक्ष्य था, रावको एक दो दफे उठकर शिष्यों की सार संभाल लेते थे, सम्प्रदाय से अलग हुए साधुओं का अवतक सुधरने की ओर लक्ष्य न देखा तो उनसे आहारपानी का व्यवहार रक्खा ही नहीं।

उपदेशकों के चरित्र और आचरण का प्रभाव समाज पर पड़ता ही है. इस लिये वे भी श्रेष्ठ आचार वाले होने चाहिये। व्याख्यान देनेसे ही उपदेशकों का कर्तव्य इतिश्री तक पहुंच गया ऐसा समझना भूल है। सब दिन भर के उनके आचार विचार और उच्चार में गंभीरता, पापभीरुता, पवित्रता और प्रसन्नता झलकनी चाहिये।

कायदे या नियम कागज़ पर नहीं परंतु व्यवहार में भी लाने चाहियें प्रतिक्षण पापसे बचने की जिज्ञासा जागृत रहे तभी असंख्य आकर्षणों से आत्मा बच सकती है। महात्मा कह गए हैं कि:—

उपदेशकों के भक्तिभाव, श्रद्धा, सत्यवचन, और फकीरी वृत्तियों से ही शिष्यों की धार्मिक वृत्तियाँ खिलती हैं। धार्मिक रिवाज़ और संस्कार का जितना विशेष ज्ञान हो उतना ही अच्छा है। चाहे जैसा संकट आजाय, चाहे जैसा लालच अपने पास हो, तो

भी अपने से धर्म न त्यागा जाय, यह खयाल और निश्चय सम्पूर्ण रीतिसे पैठ जाय तभी सफलता समझनी चाहिये ।

धर्म कुछ पांडित्य का विषय नहीं । धर्म बुद्धि गम्य ही क्यों न हो परंतु वह हृदयग्राह्य है, क्योंकि वह श्रद्धा का विषय है । धर्म विहीन नीति शिक्षण भी श्रद्धा के अभाव से पूर्ण असर नहीं कर सका ।

सब मनुष्यों को धर्म की ओर अत्यंत उदार व्यापक और शास्त्रीय शुद्ध खयाल लगाना हो तो धर्म द्वारा ही लगा सकते हैं, हार्दिक इच्छा स्वतः प्रकटित होनी चाहिये । दूसरों के डर या अंकुश का असर कुछ ही समय तक टिक सकता है । आत्मविश्वास के बिना प्रतिज्ञा नहीं निभ सकती आकस्मिक भूलोंका परिणाम को प्रायश्चित्त द्वारा नरम कर सकते हैं जो स्वेच्छा से शुद्धभाव द्वारा प्रायश्चित्त हो गया अल्पश्रम और अल्प त्याग से ही निवृत्ति हो सकती है । अगर ऐसा नहीं किया गया तो आगे क्या २ करना पड़ेगा उसकी कल्पना हृदय में लाते ही देह कंपने लगता है ।

अपने शास्त्रों में हजारों वर्ष पहिले कहा गया है उसी अनुसार महात्मा गांधीजी अभी प्रेम और तपश्चर्या से ही दूसरों पर प्रभाव डाल रहे हैं ।

कर्म दिखाया । इससे उनका चरित्र प्रत्येक मनुष्य के मनन करने योग्य, अनुकरण करने योग्य और स्मरण में रखने योग्य है ।

दीक्षा लेने के पश्चात् श्रीजी के उपदेश में ब्रह्मचर्य के लिये हमेशा बहुत जोर रहता था । ब्रह्मचर्य के निर्वाहार्थ शिष्यों के आहार विहार की तरफ भी वे बहुत ध्यान देते थे और यही कारण था कि इनकी सम्प्रदाय में ढीला पोला साधु न टिक सकता था ।
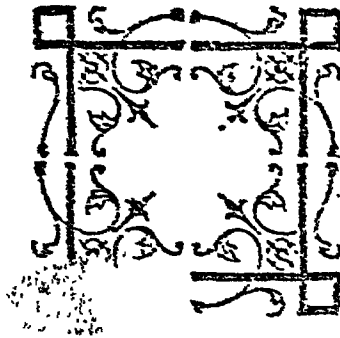
तक-श्रावक पंना-निभ सकता है परंतु खास अंश छुपा-रोग को असाध्य और जहरीला बनाना महापाप है। इस इंद्रजाल के शिकार होने से वचना श्रावकों का मुख्य धर्म है। धर्म की इज्जत को तिरस्कृत दृष्टि से पददलित करने वालों को इस गुप्त विष को भयंकर प्रभाव से सचेत कर देना चाहिये। सचेत करने वाले अपने इस धर्म को नहीं पालने से धर्मद्रोही हैं—शुद्ध श्रद्धापूर्वक आत्म यज्ञ करने वाले शूरवीर ही शुद्ध संयम के संरक्षण करने का यश प्राप्त करेंगे समाज की बाग डोर ऐसे शूरवीरों के ही करकमलों में शोभा देती है कि, जो इस विषीले फंदे से समाज को बचाते हैं।

हिन्दू समाज की ऐसी रचना है कि, प्राचीन काल से ही समाज और गुरु नेता है भोला भारत प्रजा धर्म के नाम से भूलावे में भूल जाता है धर्म अज्ञान वर्ग में भय या संदेह उत्पन्न करता है जब समझदार समाज में श्रद्धा जागृत करता है। हमें पवित्र अपने स्थान निभाने के लिये उस स्थान के योग्य बनना ही पड़ेगा. और समाज श्रद्धापूर्वक मान दे ऐसी योग्यता रखनी ही पड़ेगी.

To err is human, to know that one has erred is super human, to admit and carrect the error and repair wrong is Divine. "भूल हो जाय मनुष्य का स्वभाव है। हम से भूल होगई इसका ज्ञान होना उच्च मनुष्यत्व है परंतु भूल मंजूर

कर उसे सुधारना बुरों का भला कर देना ये दैवी मनुष्य है, दिल की इच्छाएं घमंड से नम्रता में उतरीं कि भूल सुधारने की दृश्य प्रेरणाओं का मनका प्रारंभ हुआ।

"अपने देशमें समाज राज बल और तपो बल ऐसे दो ही बलों को पहचानती है और इसमें भी तपोबल की प्रतिष्ठा अधिक समझती है। यह अपने समाज की विशेषता है. मनुष्य विषय वासना के अधीन जितना भी कम होगा उतना ही उसका जीवन सादा और संयमी होगा उतनी ही उसकी तपश्चर्या होगी, स्वार्थ और विलास की पामरता जिस के हृदय पर कम है वह उतने ही प्रमाण में तपस्वी है। ज्ञान और तपश्चर्या इन दोनों का संयोग ऐश्वर्य है।

कान के कीड़े खिराने वाले निंदक की निंदा न करते उस के बंधन वाले पाप कर्मों के लिये दया लाना और उसे सद्बुद्धि उत्पन्न हो ऐसी भावना लाना और यह भावना सफल हो ऐसा प्रयास करना यही सच्ची वीरता, यही हमारे अरिहंत भगवंत का अनुभव किया हुआ सच्चा मार्ग है।

आसीद्यथा गुरु मनोहरण समर्था।
त्वत्प्रेम वृत्ति रनद्या न तथा परेषाम्॥
रत्ने यथा हरमति मणि लंचकाणां।
नैवं तु काच शकले किरणा कुलेपि॥

शतावधानी पंडित श्री रत्नचन्द्रजी महाराज—मानिक–मोती–हीरा. पन्ना, परखने वाले जौंहरी का मन कीमती रत्नों पर जैसा आकर्षित होता है उतना सूर्य के प्रकाशमें प्रकाशित काच के टुकड़े (या इमिटेशन जो सच्चे से भी बाह्य दिखावट में विशेष सुंदर दिखते हैं) के तरफ नहीं आकर्षित होता ।

॥ ॐ ॥

पूज्य श्री श्रीलालजी।

अध्याय १ ला।

बाल्य जीवन।

राजपूताने के पूर्वीय बनास नदी के दक्षिण तट पर टोंक नाम का एक नगर बहुत प्राचीनकाल से बसा हुआ है। जो जयपुर से दक्षिण की ओर ६० मील दूर है। ई० सन् १८१७ में जब प्रख्यात अमीरखां पिंढारी ने राजपूताने में एक नये राज्य की स्थापना की तब उसने राजधानी का शहर बनाया। राजपूताने में सबसे पीछे जो कोई राज्य स्थापित हुआ तो यही राज्य। दो हजार चोरस माइल का इसका विस्तार है। उसका कितना ही भाग राजपूताने में और कितना ही मालवा में है। टोंक के राज्यकर्त्ता अफगान जाति के रोहिला पठान हैं और वे नवाब की पदवी से

पहिचाने जाते हैं। सारे राजपूताने में यह एक ही मुसलमानी राज्य है। चारों ओर ऊँची २ टेकरियों से घिरा हुआ और पुरानी पद्धति का टोंक शहर पुरानी टोंक और नई टोंक ऐसे दो भागों में बंटा हुआ है।

सकड़े बाजार और ऊँचे नीचे रस्ते वाली और बहुत प्राचीन समय से बसी हुई पुरानी टोंक में अपने चरित्र नायक का जन्म हुआ था, इसी कारण से वर्तमान में यह शहर जैन प्रजा में अधिक प्रसिद्ध है। यहां पुरानी टोंक में* क्षत्रिय वंशी परमार जाति से निकली हुई ओसवाल जाति और बम्ब गोत्र में उत्पन्न हुए चुन्नी-लालजी नामक एक सद्‌गृहस्थ रहते थे। राज्य में एवम् जाति में सेठ चुन्नीलालजी बम्ब की प्रतिष्ठा अधिक थी। स्थावर मलकियत में दो २ तीन २ मंजिल की तीन हवेलियों के सिवाय पुरानी और नई

---

* जैन राजपूत जाति के सम्बन्ध में कितनी ही जानने योग्य ऐतिहासिक बातें कर्नल सर जेम्स टॉड साहब रचित "राजस्थान इतिहास" के हिन्दी के आधार पर नीचे लिखी जाती हैं।

१—चित्तौर के किले में मानसरोवर के अन्दर जो पंवार राजाओं के वक्त का शिलालेख लगा हुआ है उसकी नकल है:—

मानसरोवर राजा मान पंवार (परमार) ने बनाया है। उसके सात सौ वर्ष के बाद उनके कुल के राजा भीम ने शिला-

टोंक में मिलाकर छोटी बड़ी १४ दुकानें थीं। जिसका किराया आता था तथा सरकार में तथा सरकारी फौज में लेनदेन का धंधा था चुन्नीलालजी सेठ प्रमाणिक और धर्मपरायण थे। एक सद्गृहस्थ के समस्त योग्य गुणों से अलंकृत थे।

लेख लगाया है और उसी भीम के पुत्र ने मारवाड़ में बहुत से नगर बसाये और उसीके उत्तराधिकारी जैन क्षत्रिय ओसवाल कहलाये हैं।

नोट नं० ५—मालवे के महाराज अवंति या उज्जैन के अधीश्वर राजा भीम की बहुत ही प्रशंसा का वर्णन जैन ग्रन्थों में पाया जाता है। उनके ही एक पुत्र ने मारवाड़ राज्य के अनेक स्थानों में नगर स्थापन किये और लूनी नदी से अरवली शिखर तक स्थल के अनेक स्थानों में उनके द्वारा अनेक नगर स्थापित हुए। किन्तु उन नगरवासियों में से सब ही जैन धर्म में दीक्षित हुए। उनके उत्तराधिकारी लोग इस समय सब में अधिक धनशाली और वाणिज्य व्यवसायी महाजन नाम से विख्यात हैं। वे राजपूत—रक्तधारी होने से सर्वत्र गर्व करते हैं और उनको किसी राजकीय पद पर नियुक्त करने पर वे लोग लेखिनी चलाने के समान स्वच्छंदता से तलवार चलाने में भी समर्थ हैं। भाग पहिला हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ११३७-३७।

चुन्नीलाल सेठ की धर्मपत्नी का नाम चांदकुंवर बाई था। हम चरित्र घटना के संग्रहार्थ पांच दिन तक टोंक में रहे उस समय इन बाई के यशोगान इनके परिचित व्यक्तियों के मुख से सुने उतने विस्तार भय से यहां नहीं लिख सकते। ये बाई पवि-

---

२—रामसिंह जैनधर्मावलम्बी और 'ओस' जाति के हैं। इस ओस जाति की संख्या सब रजवाड़ों में लगभग एक लाख के होगी और सबही अग्निकुल राजपूत वंश में उत्पन्न हुए हैं। इन्होंने बहुत काल पहिले जैन धर्मावलम्बन और मारवाड़ के अन्तर्गत ओसा नामक स्थान में रहना आरम्भ किया था तथा उस स्थान के नामानुसार ही ओसवाल नाम से विख्यात हुए।

अग्निकुल के प्रमार व सोलंकी राजपूतशाखा के लोग ही सबसे पहिले जैनधर्म में दीक्षित हुए थे। भाग पहिला द्वि० खंड अध्याय २६ पृष्ठ ७२४–३५।

भारतवर्ष के ८४ जाति के व्यवसायिओं में ओसवाल गिनती में बहुत ज्यादह तथा विशेष द्रव्यवान हैं। वे प्रायः १ लाख हैं। ये ओसवाल इसलिये कहे जाते हैं कि इनके रहने का पूर्व स्थान ओसिया था। ये सर्व विशुद्ध राजपूत हैं इनमें एक ही समुदाय के नहीं हैं। परन्तु पंवार, सोलंकी, भाटी इत्यादि सब समुदाय हैं।

व्रता और पतिव्रता की साक्षात् मुर्त्ति थी। उनका धार्मिक ज्ञान जितना बढ़ा चढ़ा था उतना ही उनका चरित्र भी अत्यन्त विशुद्ध था। इनका पिअर माधवपुर (जयपुर स्टेट) में था। इनके पिता सूरजमलजी और काका * देवबक्षजी देश विख्यात श्रावक थे। देवबक्षजी को २८ सूत्रों का अभ्यास था और सूरजमलजी भी शास्त्र के अच्छे ज्ञाता विवेकी और कर्त्तव्य निष्ठ थे। इन्हीं के ये गुण उनकी पुत्री को प्राप्त थे। दिन में दो वक्त सामायिक प्रतिक्रमण करना, गरीबों को गुप्त दान देना, तपश्चर्या करना, ज्ञानाभ्यास बढ़ाना आदि सत्प्रवृत्तियों से तथा शान्त स्वभाव, चतुराई, विवेक आदि सद्गुणों से चांदकुंवर बाई के प्रति सब का आदर भाव था। चुन्नीलालजी सेठ के बड़े भाई हीरालालजी बम्ब कई वक्त कहते थे कि इनके पुण्य से ही हमारे कुटुम्ब चन्द्र की कला दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी है और इनके इस घर में पांव रखते ही ऋद्धि सिद्धि की भी वृद्धि हुई है।

चांदकुंवर बाई ने सामायिक प्रतिक्रमण तथा कितने ही थोकड़े तो लगन के होने पहिले ही सीख लिये थे। लगन होने के पश्चात् भी

---

* देवबक्षजी के पौत्र लक्ष्मीचन्दजी कि जो वर्तमान में विद्यमान हैं उनने श्रीलालजी को दीक्षा की आज्ञा के निमित्त अपने फुआजी को समझाया था।

आर्याजी के सहवास से उनने धार्मिक-ज्ञान में वृद्धि की। उनके व्रत प्रत्याख्यान चारों स्कन्ध उनकी जिन्दगी के अन्तिम कई वर्षों तक रहे। साधु साध्वियों के प्रति उनका अनुपम पूज्य भाव था। यदि आहार पानी बहराने के समय कदाचित् कुछ असूझता हो जाता तो वे उस दिन आहार न करती थीं सारांश इन सती साध्वी स्त्री का चरित्र अतिशय स्तुतिपात्र था, स्तुतिपात्र ही नहीं परन्तु भक्तिपात्र भी था।

इन निर्मलहृदय रत्नप्रसूता स्त्री के उदर से मांगाबाई नामक एक पुत्री और नाथूलालजी नामक एक पुत्र का प्रसव होने के पश्चात् विक्रम सं० १९२६ के आषाढ मास वद्य १२ को एक पुत्र का जन्म हुआ। जगत् में पुत्र जन्म का असीम आनन्द तो कई माताओं को प्राप्त होता है परन्तु वही माता आनन्द सफल समझती है कि जिसका पुत्र उसके दूध को दिपाता है और कुल को प्रकाशित करता है।

श्रीमती चांदकुंवर बाई ने * शुभ स्वप्न सूचित एक ऐसे पुत्र का प्रसव किया कि जो पवित्रात्मा, धर्मात्मा, महात्मा और वीरात्मा के

---

* श्रीलालजी को माता के गर्भ में उत्पन्न हुए तीन चार महीने बीते थे कि एक समय माजी साहिबा चांदनी में सोई थीं।

सदृश विश्व में प्रख्यात हुआ। जबतक जीवित रहे इस पृथ्वी पर चन्द्र की तरह अमृत बर्षाते रहे, शीतलता प्रवाहित करते रहे और अनेक भव्यात्माओं के हृदय-कमल को विकसित करते रहे। जिनका नाम श्रीलाल रक्खा गया। पुत्र के लक्षण पालने में दिखाये, सूर्य के प्रकट होते ही उसकी सुनहरी किरणें ऊंचे से ऊंचे पर्वत के मस्तक पर जा बैठती हैं इसी तरह इस बालक की प्रतिभा ने आप्त जनों के अन्तःकरण में उच्च स्थान प्राप्त किया था। इसकी तेजस्विता, मनोहर वदन, शरीर की भव्याकृति, विशाल भाल, प्रकाशित नेत्र इत्यादि लक्षण स्वाभाविक रीति से ऐसी सूचना देते थे कि यह बालक आगे जाकर कोई महान् पुरुष निकलेगा।

सूर्यास्त हुए थोड़ा ही समय बीता था। उस समय उन्हें स्वप्नावस्था में एक देदीप्यमान कांतिवाला गोला दूर से अपनी ओर आता हुआ दिखाई दिया। थोड़े ही समय में वह बिल्कुल समीप आ पहुंचा। ज्यों २ वह समीप आता गया त्यों २ उसका प्रकाश भी बढ़ता गया। माजी आश्चर्य चकित हो गई प्रकाश के मध्य स्थित कोई मूर्त्ति मानो कुछ कह रही हो ऐसा भाश हुआ परन्तु असाधारण प्रकाश से उनके हृदय पर इतना अधिक क्षोभ हुआ कि मूर्त्ति ने क्या कहा उसकी स्मृति न रही धड़कती छाती से वे जग पड़ीं और पति के पास जाकर सब हकीकत निवेदन की।

श्रीलालजी बालक थे तब उनकी माता उन्हें साथ लेकर स्थानक में श्रीमेताजी तथा गेंदाजी नामक विदुषी और विशुद्ध चरित्र वाली सतियों के पास शास्त्राध्ययन करने के लिये निरन्तर जाया करती थीं। उनके पवित्र संवाद का पवित्र असर उनके हृदय पर बाल्यावस्था से ही गिरने लग गया था। उस समय टोंक में पूज्य श्री हुक्मचन्द्रजी महाराज की सम्प्रदाय के सुसाधु तपस्वीजी श्रीपन्नालालजी (पूज्य श्रीचौथमलजी के गुरु भाई) तथा गंभीरमलजी महाराज विराजते थे। अपने पिता के साथ उनके पास भी जाने का अवसर श्रीलालजी को कभी २ मिलता था। पन्नालालजी महाराज बड़े आत्मार्थी, सुपात्र, समय के ज्ञाता और विद्वान् साधु थे। एक से लगाकर ६१ उपवास तक के थोक उन्होंने किये थे। इन दोनों सत्पुरुषों का सत्समागम श्री श्रीलालजी के जीवन को उत्कर्षाभिमुख करने में महान् आधर भूत हुआ।

बाल्यावस्था से ही साधु और आर्याजी की ओर अप्रतिम प्रेमभाव और अनुपम भक्तिभाव था। जब वे पांच वर्ष के थे तब और बालकों की रम्मत की तरह श्रीलालजी भी ऐसी रम्मत करते थे कि कपड़े की झोली बनाते, मिट्टी की कुलड़ियों के पात्र बनाते, मुंह पर वस्त्र बांधते, हाथ में शास्त्र के बदले कागज लेते और व्याख्यान बांचते ऐसा दृश्य दिखाते थे। इस स्थिति में उन्हें दे-

कर कोई प्रश्न करता कि श्रीजी ! लाड़ी परणोगा के दीक्षा लोगा ? तो प्रत्युत्तर में वे कहते कि " मैं तो दीक्षा लऊंगा शा ! " पूर्व जन्म के संस्कार विना लघुवय से ही ऐसे सुविचारों की स्फुरणा होना अशक्य है । यह खबर उनके पिताजी को मालूम होते ही उन्होंने ऐसा खेल न खेलने को फरमाया और विनीत पुत्र ने फिर से वैसा करना थोड़े वर्षों के लिये परित्याग किया ।

छठे वर्ष के प्रारम्भ में श्रीलालजी को व्यवहारिक शिक्षा देना प्रारम्भ किया गया परन्तु धार्मिक शिक्षा का प्रारम्भ तो पहिले से ही उनकी सुशिक्षिता और कर्त्तव्यपरायण माता की ओर से हो चुका था । छः वर्ष इतनी कम उम्र में उन्होंने माता के पास से सामायिक प्रतिक्रमण सम्पूर्ण सीख लिया था सिर्फ श्रीलालजी को ही नहीं अपनी तीनों * सन्तानों को इसी तरह धार्मिक अभ्यास

---

* श्रीजी के ज्येष्ठ भ्राता श्रीयुत नाथूलालजी बम्ब अभी वर्तमान हैं । उनके कुटुम्ब में आज भी कितना धर्मानुराग है उसका किंचित् परिचय देना आवश्यक है । सं० १९७७ के द्वितीय श्रावण वद्य ११ के रोज स्व० पूज्य श्रीजी की जीवन घटना के संग्रहार्थ हम टोंक गये थे और श्रीयुत नाथूलालजी बम्ब के यहां पांच दिन तक रहे थे । वे रात दिन हमारे पास बैठकर सोच २ कर हमें

कराने के पश्चात् नीति अर्थात् सामान्य धर्म की उच्च शिक्षा चांदकुंवर बाई ने दी थी। " एक अच्छी माता सौ शिक्षकों की आवश्यकता पूरती है "। इस कहावत को उन्होंने चरितार्थ कर दिया था। आर्यावर्त ऐसी माताओं के पदरज से सदा पवित्र बना रहे ऐसी हमारी भावना है।

टोंक में सरकारी एवं खानगी दोनों प्रकार के स्कूल थे परन्तु खानगी स्कूलों की शिक्षा विशेष व्यवहारोपयोगी समझ श्रीलालजी

मत्र विगत सिखाते थे। उनके पास भी कई मुख्य २ बातें विगतवार लिखी थीं।

श्रीयुत नाथूलालजी एक आदर्श श्रावक हैं। उन्होंने चारों स्कंध चठाये हैं तथा और भी कई व्रत प्रत्याख्यान लिये हैं। रोज तीन सामायिक करने का उनके नियम है। वे विवेकी, धर्मप्रेमी और मुलायम (मृदु) स्वभाव वाले हैं। ५७ वर्ष की उम्र होते भी वे एक युवा की तरह कार्य करते हैं। उनके चार पुत्र हैं, बड़े पुत्र माणिकलालजी भी वैसे ही सुयोग्य हैं। श्रीयुत नाथूलालजी के पुत्र पौत्रों प्रभृति सारे कुटुम्ब का धर्मानुराग प्रशंसनीय है। टोंक में उनकी कपड़े की दुकान बहुत अच्छी चलती है तो भी सेठ नाथूलालजी इस व्यापार से धर्म व्यापार में विशेष लक्ष देते हैं।

को हिन्दी सिखाने के लिये पंडित मूलचन्दजी नामक एक ब्राह्मण अध्यापक के स्कूल में रक्खा और उर्दू शिक्षार्थ हाजी अब्दुल रहीम के स्कूल में भेजना प्रारम्भ किया। विद्याभ्यास की ओर उनकी स्वाभाविक अभिरुचि बालवय से ही थी। इससे अपने सहाध्यायियों की स्पर्धा में श्रीलालजी ने आगे नम्बर मिला, अपने शिक्षक का प्रेम सम्पादन किया। उनकी स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि उनके शिक्षकों को बड़ा आश्चर्य होता था।

स्कूल में सत्यवक्ता, सरल स्वभावी और प्रामाणिक विद्यार्थी की तरह इनकी कीर्त्ति थी। विद्यागुरुओं के वे प्रीतिपात्र और विश्वासी थे। श्रीलालजी के उक्त गुणों से मुग्ध हुए सहाध्यायी उनसे पुर्ण प्रेम रखते थे और सम्मान देते थे। इतना ही नहीं परन्तु उनके नाना गुणों की सब कोई विशुद्धभाव से श्लाघा करते थे। अपने विद्यागुरु की ओर श्रीलालजी का प्रेमभाव भी प्रसंशापात्र था और शाला छोड़ने के पश्चात् भी वैसा ही प्रेम कायम था इसका एक उदाहरण यहां देते हैं।

सं० १९४४ में अपनी अठारह वर्ष की अवस्था में जब उन्होंने अपने मित्र गुजरमलजी पोरवाल के साथ स्वयं दीक्षा अंगीकृत की तब उन्हें प्रायः सात तोले की एक सोने की कंठी अध्यापक महाशय को इनायत की थी।

श्रीलालजी स्कूल में हिन्दी तथा उर्दू अभ्यास करते थे और उनका धार्मिक अभ्यास भी शुरू ही था तो भी आश्चर्य यह था कि वे स्कूल में हमेशा उच्च नम्बर रखते थे और अभ्यास में भी सबसे आगे रहते थे। तपस्वीजी श्रीपन्नालालजी तथा गम्भीरमलजी महाराज के पास निवृत्ति के समय वे जाते और पच्चीस बोल, नवतत्व, लघुदंड, गतागत, गुणस्थान, क्रमारोह आदि अनेक विषय तथा साधु का प्रतिक्रमण प्रभृति कंठस्थ करते थे। धार्मिक अभ्यास करने में उनके एक मित्र बच्छराजजी पोरवाल कि जो अभी विद्यमान हैं उनके सहाध्यायी थे। दोनों साथ २ अभ्यास करते थे। श्रीयुत बच्छराजजी कहते हैं कि जब हम साधु का प्रतिक्रमण सिखते थे तब महाराज मुझे जो पाठ देते उसे सिर्फ सुनकर ही श्रीलालजी कंठस्थ कर लेते थे और मुझे वही पाठ बारंबार रटना पड़ता था इतनी अधिक उनकी स्मरणशक्ति तीव्र थी।

श्रीलालजी का शरीर नीरोगी और सुदृढ था। जन्म से ही वे उनके दूसरे भाइयों से अधिक मजबूत थे। सहन शीलता, निर्भयता साहसिकवृत्ति दृढनिश्चय किया हुआ कार्य पूर्ण करने की उत्कंठा उत्साह और सत्याग्रह इत्यादि गुण बाल्यावस्था से ही उनमें प्रकाशित थे, शुक्ल पक्ष के चंद्रकी तरह उनकी वृद्धि के साथ उपर्युक्त गुणों का प्रकाश भी बढता गया जिसके अनेकानेक

उदाहरण इन महापुरुष के जीवनचरित्र में स्थान स्थान पर दृश्यमान हैं ।

श्रीलालजी का स्वभाव बहुतही कोमल और प्रेम पूर्ण होने से उनके बालस्नेहियों की संख्या भी अधिक थी । उनके साथ इनका वर्ताव बड़ाही उदार था । श्रीलालजी के उत्तम गुणोंकी छाप मित्रसमूह पर जादूसा असर करती थी वच्छराजजी और गुजरमलजी पोरवाल ये दोनों उनके खास मित्र थे । श्रीलालजी के वैराग्यसे इन दोनों मित्रों के हृदय पट पर गहरी छाप लगी थी और इसीसे उन्होंनेभी उनके साथ संसार परित्याग कर आत्मोन्नति साधन करने का दृढ संकल्प किया था, परन्तु पीछे से वच्छराजजी को आज्ञा न मिलनेसे उसी तरह संयोगों की प्रतिकूलता होने से दीक्षा न ले सके और गुजरमलजी ने श्रीलालजी के साथही दीक्षा ली । श्रीलालजी के प्रति इनका अत्यन्त पूज्यभाव था ।

स्कूल के श्रीलालजी के सहाध्यायी उन्हें इतना चाहते थे कि जब वे स्कूल छोड़कर अलग हुए तब आंखों में अश्रु लाकर रुदन करने लगे थे. उनके मित्र उनका वियोग सहन नहीं कर सके थे. उनकी सत्यनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता, और प्रेम मय स्वभाव से उनके मित्रों का हृदय द्रवीभूत होता था । परन्तु उन्हें विशेषतः वशीभूत करने वाला कारण उनका क्षमागुण था. श्रीलालजीका हृदय इतना

अधिक कोमल था कि वे किसीका दिल दुखे ऐसा एक शब्द भी कहते डरते थे और कचित् उनके कोई शब्द या किसी प्रवृत्ति से दूसरों का दिल दुख गया ऐसा भाव होते ही तत्काल जाकर उनसे क्षमा प्रार्थी होते थे, ये श्लाघ्य सद्गुण उनकी वीर माता की तरफ से उन्हें प्राप्त हुए थे। श्रीलालजी की ऐसी उदार प्रवृत्ति से उनका किसीके साथ वैर भाव न था. शत्रुता थी तो सिर्फ मनुष्य के शरीरमें मित्रकी तरह रहते हुए शत्रुका काम करने वाले आलस्य रूपी शत्रु से थी—श्रीलालजी का क्षमागुण उनकी महत्ता बढाता था, इतनाही नहीं किंतु ऊपर कहे अनुसार वशीकरण मंत्रकी आवश्यकता भी पूरता था। इस उत्तम गुण द्वारा वे परिचित व्यक्तियों पर विजय प्राप्त कर सकते थे। (क्षमावशीकृते लोके, क्षमया किं न-सिध्यति !) अर्थात् यह संसार क्षमा द्वारा वशी है अतः क्षमा द्वारा क्या सिद्ध नहीं हो सकता ? अर्थात् सब मनःकामना सिद्ध होती है।

सं. १९३२ के भाद्र शुक्ल ५ के रोज जयपुर अंतर्गत दुनी नामक ग्राम निवासी बालावक्षजी नाम के सुश्रावक की पुत्री मानकुंवर बाई के साथ श्रीलालजी का सम्बन्ध किया गया। उस समय श्रीलालजी की उम्र ६ वर्ष की और मानकुंवर बाई की उम्र ४ वर्ष की थी।

अध्याय २१

विवाह और विरक्तता

सं १६३५ में श्रीलालजी ने शाला छोड़ी और अब धार्मिक ज्ञान की अभिवृद्धि के लिए अधिक उद्यम करने लगे। इसी वर्ष अर्थात् सं १६३६ के आषाढ़ माह में इनके पिता सेठ चुन्नीलालजी स्वर्ग पधारे। पिताजी के स्वर्गवास के पांच मास पश्चात् सं १६३६ के मार्गशीर्ष वद २ को श्रीलालजी का व्याह हुआ। उस समय इनकी उम्र १० वर्ष की पूरी होकर ११ वां वर्ष लगा था और इनकी भार्याको ६ वां वर्ष लगा था। राजपूतानेमें बाललग्नका अत्यन्त हानिकारक रिवाज आज से भी उस समय अधिक प्रचलित था इस प्रथा को मिटाने के लिए श्रीलालजी ने दीक्षित हुए पश्चात् सतत उपदेश दिया। जिसका कुछ ही परिणाम आज जैनियों में दृष्टिगोचर होता है।

श्रीलालजी की बरात टोंक से दुनी आई। उस समय प्राकृतिक किसी अदृश्य अकल आकर्षण के प्रभाव से उनके परमोपकारी धर्मगुरु तपस्वीजी श्रीपन्नालालजी तथा गंभीरमलजी महाराज भी इधर उधर से विहार करते २ दुनी पधार गए। ये शुभ संवाद

सुनते ही वरराज के रोमांच विकसित होगये और अति आतुरता के साथ गुरुश्री के दर्शनार्थ उपाश्रय गए।

मारवाड़ में वरराजा के हाथ मदनफल के साथ दूसरी भी चीजें एक वस्त्र में लपेट कर बांधने की प्रथा प्रचलित है उसमें राई के दाने भी होते हैं राई सचेत होने से साधु मुनिराजों का सचेत वस्तु सहित संघट्टा नहीं कर सके तो भी भक्ति के आवेश में आये हुए श्रीलालजी का हृदय गुरु के चरण स्पर्श करने का विवेक न त्याग सका। वरराज ने सचेत वस्तु सहित अपने गुरु के चरण कमल का स्पर्श किया इस अपराध (!) के कारण साथ वाले श्रावक भाई एक के पश्चात् एक इन्हें उपालंभ देने लगे, तब तपस्वीजी महाराज ने कहा कि आप इनके भक्तिभाव, धर्मप्रेम और उत्साह की ओर तनिक ध्यान देओ और वरराज को बिल्कुल घवरा ही मत डालो। इस प्रकार लोगों को उपदेश दे शांत किये और वरराज को सम्बोधन कर कुछ बोधप्रद वचन कहे। इन वचनों ने श्रीजी के हृदय पट पर जादू सा असर उत्पन्न किया।

श्रीलालजी के लग्न समय चुन्नीलालजी के ज्येष्ठ भ्राता हीरालालजी तथा श्रीलालजी के ज्येष्ठ बन्धु नाथूलालजी प्रभृति कुटुम्बीजन आनन्दोत्सव में लीन थे। उनके हृदय आनन्द में मग्न थे, पर श्रीलालजी के हृदयकमल पर उदासीनता छा रही थी। पूर्व

जन्म के शुभ संस्कारों के प्रभाव से बालवय में ही वैराग्य के बीज अंकुरित हुए थे और जिन वाणीरूपी अमृत जल का बार २ खींचन होने से अब वह वैराग्य वृक्ष विशेष पल्लवित हो बढ़ गया और उसका मूल भी गहरा पैठ गया था तो भी अनिच्छा से बड़ों की आज्ञा चुप रह कर शिरोधार्य करते रहे। उनकी यह प्रवृत्ति शायद पाठकों को अरुचि कर होगी और यही प्रश्न मन में उठेगा कि व्याह न करना ही क्या बुरा था? परन्तु कर्म के अचल कायदे के आगे सबको सिर झुकाना पड़ता है और प्राकृतिक सर्व कृतियां सर्वदा हेतुयुक्त ही होती हैं। श्रीमती मानकुंवर बाई के श्रेयस् का मार्ग भी इसी प्रकार प्रकट होना विधि ने निर्माण किया होगा। श्रीमती को श्रीमती चांदकुंवर बाई जैसी सुशिक्षिता सास के पास से उत्तम उपदेश (शिक्षा) सम्पादन करने का सुयोग प्राप्त हुआ और पवित्र जीवन व्यतीत कर दीक्षिता हो छः वर्ष तक संयम पाल पति से पहिले स्वर्ग में पधारने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, यह भी इसी प्रवृत्ति से परिणाम हुआ ऐसा अनुमान करना अनुचित है ऐसा कोई कह सकेगा? हां! श्रीलालजी का हृदय उस समय रंग से रंगा हुआ था और ज्ञानाभ्यास की उन्हें अपरिमित पिपासा थी यह बात निर्विवाद है परन्तु दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय उस समय था या नहीं यह निश्चयात्मक रीति से नहीं कह सकते।

मेवाड़ के नामदार महाराणा श्री के मुख्य सलाहकार और पूज्यश्री का परम भक्त श्रीमान् कोठारीजी श्री बलवंत-सिंहजी साहिब, श्री उदयपुर.

टोंकनी रसीया टेकरीपर संसारी श्रीलालजी.

परिचय–प्रकरण–२–३

लग्न के समय मानकुंवर बाई की वय बहुत छोटी अर्थात् आठ नौ वर्ष की थी। इसलिये वे उसी समय पिअर गई और तीन वर्ष तक वे पिअर में ही रहीं। मारवाड़ में प्रथा है कि योग्य उमर होने के पश्चात् गोना देते हैं परन्तु जो लग्नादि कोई प्रसंग श्वसुर-गृह में हो तो थोड़े दिन के लिये नववधू को बुला लेते हैं। परन्तु श्रीलालजी के लग्न हुए पश्चात् ऐसा कोई खास अवसर न आया जिससे मानकुंवर बाई तीन वर्ष पितृगृह में ही रहीं।

इधर श्रीलालजी का वैराग्य बढ़ता ही गया। संसार पर अरुचि हुई। व्यापारादि में उनका चित्त न लगता। ज्ञानाध्ययन में सत्समागम में और धर्मध्यान करने में ही वे निरन्तर दत्तचित्त रहने लगे। तपस्वीजी पन्नालालजी तथा गम्भीरमलजी के सत्संग और सदुपदेश का इनके चित्त पर भारी प्रभाव गिरा। उनके पास शास्त्राध्ययन करने में ही वे अपने समय का सदुपयोग करने लगे।

श्रीजी बारह वर्ष के थे तब एक दिन वे सामायिक व्रत कर मुनि श्रीगंभीरमलजी का व्याख्यान प्रेमपूर्वक सुन रहे थे इतने में बीकानेर निवासी श्रीयुत चुन्नीलालजी डागा कि, जो रतलाम वाले सेठ पुनमचन्दजी दीपचन्दजी की टोंक की दुकान पर मुनीम थे व्याख्यान में आये। चुन्नीलालजी शास्त्र के ज्ञाता, उत्पात, बुद्धि वाले विद्वान् और वयोवृद्ध श्रावक थे। सामुद्रिक और ज्योतिष-

शास्त्र में भी उनका ज्ञान प्रशंसनीय था। वे भी श्रीजी की पंक्ति में ही सामायिक करके बैठे थे। अकस्मात् उनकी दृष्टि श्रीलालजी पर पड़ी। श्रीजी के शारीरिक लक्षण को वार २ निरखने लगे। व्याख्यान पूर्ण होने पश्चात् अपनी कोठी पर गए और भोजनादि से निवृत्त हो दुकान पर आये। थोड़े समय पश्चात् हीरालालजी बम्ब भी कार्यवशात् चुन्नीलालजी डागा की दुकान पर गए, तब चुन्नीलालजी डागा हीरालालजी से कहने लगे कि "श्रीलाल आज प्रातःकाल व्याख्यान में मेरे पास ही बैठा था। उसके शारीरिक लक्षण मैंने तपास कर देखे। मुझे आश्चर्य होता है कि यह तुम्हारे घर में गोदड़ी में गोरख क्यों? यह कोई साधारण मनुष्य नहीं। परन्तु बड़ा संस्कारी जीव है। सामुद्रिक शास्त्र सच्चा हो और मेरे गुरु की ओर से मिली हुई प्रसादी सच्ची हो तो मैं छाती ठोककर कहता हूं कि यह तुम्हारा भतीजा आगे जाकर कोई महान् पुरुष निकलेगा। जहां तक मेरी बुद्धि पहुंच सकी वहां तक मैंने गहन विचार किया तो मैंने यही सार निकाला कि यह रकम तुम्हारे घर में रहना मुश्किल है।" श्रीयुत हीरालालजी तो ये शब्द सुनकर स्तब्ध ही हो गए।

कई समय श्रीजी शहर के बाहर निकलकर पास के पर्वतों पर चले जाते और वहां घंटों ठहरते। वहां के नैसर्गिक दृश्य और

प्राकृतिक अपार लीला देखते २ मस्तिष्क में एक के पश्चात् एक नये २ विचार तरंगें लाते। वहां पर कोई २ समर्थ तो तत्व चिंतन में ऐसे निमग्न हो जाते कि कितना समय हुआ यह भाव भी नहीं रहता। श्रीजी कहा करते कि पर्वत पर का निवास मुझे बड़ा भला लगता था। घर में भी वे अपनी तीन मंजिल वाली ऊंची हवेली में * चांदनी पर विशेषतः अपनी बैठक रखते। शहर के बिल्कुल समीप नेत्रों को परमोत्साह देने वाली पर्वतश्रेणियां यहां से भी दृष्टिगोचर होती थीं। टोंक के समीप की ऊंची ऐतिहासिक रसिया की टेकरी मानो तत्ववेत्ताओं का सिंहासन हो ऐसा आभास दिखाती और अपनी पीठ पर आराम लेने के वास्ते श्रीजी को पुनः २ आमन्त्रित करती हुई मालूम होती थी। श्रीजी भी इस आमन्त्रण को पुनः २ स्वीकारते और उत्साह से उसके उत्तुंग शृंग पर चढ़ते। आसपास का अनुपम सृष्टिसौंदर्य उनके तप्त मस्तिष्क को शांति देता। विशाल वृक्षों के पल्लव पंखे का काम कर आतिथ्य धर्म बजाते, कोयलों की मीठी कुहुक और मयूरों का माधुर्य केकारव रूपी संगीत आगत मिहमान का मनोरंजन करते, परिमल फैलाता हुआ ठंडा स्वच्छ समीर चारों ओर फैली हुई अपूर्व शान्ति और प्राकृतिक अद्‌भुत कलाओं का प्रदर्शन

---

* देखो इनके मकान का चित्र।

अमित मगज़ को तर कर देने में परस्पर स्पर्द्धा करते थे। आबू से उत्पन्न और अरवली तथा उदयपुर * के तालाब का पानी पीकर पुष्ट हुआ बनास नामक विशाल सरित्प्रवाह अनेक आश्रितों को शान्ति देता। अपने उभय तट पर खड़े आम्रादि वृक्षों को पोषता और परोपकार परायण जीवन बिताने का अमूल्य बोधपाठ सिखाता, धामी गति से बहता था। आम्रवृक्ष फल आने पर अधिक नीचे झुक विनय का पाठ सिखाते और अपने मिष्ट फलों द्वारा दुनियां में परमार्थ बुद्धि की प्रभावना करने को ही उत्पन्न हुए हों ऐसी प्रतीति दिलाते थे। एक बाजू पर लगे हुए बट वृक्ष पर दृष्टि गिरते ही यह सूचना मिलती थी कि राई जैसे बीज से ऐसी बड़ी वस्तु हो जाती है। संसार में जरा फंसे तो अंगुली पकड़ते पहुंचा पकड़ेंगे।

संसार में फंसते हुए को बचाने का उपदेश देने वाले वट वृक्ष का आभार मानते। श्रीजी के तात्विक विचार भावी जीवन की इमारत की नींव दृढ करते थे। कठिन पत्थरों से टकरा कर आवाज करने वाली सरिता के तट पर रसेन्द्रिय की लोलुपता के कारण देह

---

* उदयपुर के सरोवर से निकली हुई बडच नदी वनास में जा मिलती है।

को भोग दी हुई तड़फती मछलियां कदाचित् उनके दृष्टिगत होतीं तब इन्द्रियों के वश न करने वाले विचारों को पुष्टि मिलती थी।

सूर्यास्त पहिले पहुंचने की तेजी में नीचे उतरते सामने ही फूल झाड़ दिखते, फैला हुआ पराग मगज को तर करता, परन्तु फूटे हुए अंकुर, खिली हुई कलियां, फूले हुए फूल और नीचे गिरे हुए, मिट्टी में मिले कुम्हलाये हुए पुष्प जीवन की बाल, युवा, प्रौढा और वृद्धावस्था तथा जीवन मृत्यु का प्रत्यक्ष चित्र खड़ा करते और श्रीजी प्रकृति की समस्त कलाएं देखते, पास के पत्थर पर बैठ जाते थे। प्रत्येक पत्थर, प्रत्येक पान और भूविहारी प्रत्येक पक्षी, मानो स्वार्थमय और परिवर्तनशील संसार का नाटक करते हों ऐसा मालूम होता था। समीप में बहते हुए झरने को मानो जीभ आई हो उस तरह पत्थर के साथ का विवाद इस नाटक में संगीत का कार्यकर्त्ता था "जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि" इस नैसर्गिक नियमानुसार ये सब दृश्य और सब घटनाएं श्रीजी को वैराग्य की ही शिक्षा देतीं थीं।

प्रकृति की रचनाओं ने मस्तिष्क के परमाणुओं पर इतनी प्रबल सत्ता जमा ली थी कि राह में भी वे ही विचार स्फुरित होते रहते थे।

"सुशोभित ने सुगंधी छे छता कांटा गुलाबे छे,
पूरा प्रेमी पपैयाने, तृषातुर केम राखे छे ?
मनोहर कंठनी कोयल करी कां तेहने काली ?
हलाहल झेर छे जेमां सफेदी सोमले मूकी ?
रूडो रजनी तणो राजा, कलंकित चन्द्र कां कीधो,
बनाल्यो केम क्षयरोगी ? अरे अपवाद कां दीधो ?

मणिकांत

प्रकृति की अमूल्य शिक्षा से श्रीजी के हृदय में वृद्धि पाता हुआ वैराग्य भाव उनकी कोमलता और सत्यप्रियता के कारण वचन और व्यवहार में भी व्यक्त होने लगा। केवल मित्रों से ही नहीं परन्तु अब तो माता और भ्राता के समक्ष भी मानवजीवन की दुर्लभता, संसार की असारता और साधु जीवन की श्रेष्ठता इस उच्च आशय के वाक्य श्रीजी के मुखारविंद से पुनः २ निकलने लगे।

गृहकार्य में तनिक भी ध्यान न देते केवल सत्समागम ज्ञानाध्ययन और एकान्तवास में ही वे समय बिताने लगे।

श्रीलालजी की यह सब प्रवृत्ति और संसार की ओर से उदासीन वृत्ति देख उनकी माता प्रभृति सम्बन्धीजन के चित्त चिन्ताग्रस्त हुए। जो माता अपने पुत्र का धर्म पर अति अनुराग देखकर

प्रथम आल्हादित होती थी, वही माता पुत्र के वैराग्यमय वचनामृत भी आज सुनना नहीं चाहती । उनका धर्ममय व्यवहार उन्हें अति अरुचिकर—अस्वस्थकर मालूम होने लगा । साधु साध्वी की सेवा शुश्रूषा तथा उनकी सत्संगति में रहना ही जिसने अपना कर्त्तव्य बना लिया है वही साध्वी स्त्री सांसारिक मोह के कारण अपने पुत्र का साधुओं के सत्संग में रहना नहीं देख सकती । उनका अन्तःकरण उनका सत्संग छुड़ाना चाहता है । सांसारिक प्रेम गांठ उनके मन में घोटाला किया करती है परन्तु वे अपने अभिप्रायों को स्पष्ट शब्दों में पुत्र के सामने व्यक्त नहीं कर सकती थीं । अहा ! यह संसार के राग का कितना अधिक प्राबल्य है ।

अध्यापक गेटसे के किये हुए प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि:— सारी वृत्तियां पुष्टिकारक रासायनिकतत्व उत्पन्न करती हैं । शरीर के परमाणुओं को शक्ति उत्पन्न करने के लिये उत्तेजित करती रहती हैं । क्रोध, घृणा और दूसरी दुर्वृत्तियां शरीर में हानिकारक मिश्रण बनावट उत्पन्न करती हैं जिसमें से कितने ही अत्यन्त जहरीले होते हैं । प्रत्येक दुर्वृत्ति शरीर में रासायनिक हेरफेर करती है । मन में उत्पन्न हर एक विचार मस्तिष्क के परमाणुओं की रचना में हेरफेर करते हैं और यह परिवर्तन कुछ न कुछ अंश में स्थित ही रहता है ।

माता और भ्राता इत्यादि कुटुम्बी जनों को इस समय सिर्फ एक ही विचार आश्वासन देता था। वे ऐसा मानते थे कि, इनकी बहु के यहां आने पर इनके विचारों में परिवर्तन हो जायगा। इसी आशा में वे यौंही दिन बिताने लगे।

आशा यही रागपाश में फंसे हुए प्राणियों की प्राणदायिनी चूटी है। यह मनुष्य के मानसिक प्रदेश में प्रविष्ट हो भविष्य के लिये नई २ रम्य इमारतें चुनती है और आश्रितों को आश्वासन देती रहती है।

सं० १६३६ में श्रीजी की धर्मपत्नी मानकुंवर बाई को दूनी से गोना ले टोंक ले आये, उस समय उनकी उम्र १२–१३ वर्ष की थी। पुत्रवधू के आगमन से सास का हृदय आनन्द से उभरा गया और उन्हें उनके विनयादि गुण और योग्यता देखकर तो अपनी आशा सफल होने के संकेत मालूम हुए। श्रीजी के सहाध्यायी मित्र भी उसकी परीक्षा करना चाहते थे कि, श्रीजी का वैराग्य पतंग के रंग जैसा क्षणिक है या मजीठ के रंग जैसा है। इस परीक्षा का क्या परिणाम होता है तथा श्रीजी के कुटुम्बादिक जनों की आशा कितने अंश तक सफल होती है यह अब देखना है।

श्रीजी ने कई वचनामृत जेब में रखने की छोटी पुस्तिका में

उतार लिये थे उनमें से नीचे के वचनामृत का स्मरण वे वारम्बार किया करते थे।

प्रियास्नेहो यस्मिन्निगडसदृशो यानिकभटो
यमः स्वीयो वर्गो धनमभिनवं बन्धनमिव ।
सदाऽमेध्यापूर्णं व्यसनबिलसंसर्गविषमं
भवः कारागेहं तदिह न रतिः क्वापि विदुषाम् ॥

भावार्थ—संसार में स्त्रियों का स्नेह श्रृंखला के बंधन जैसा तथा भटकते हुए गोधे जैसा है। अपना कुटुम्बी वर्ग यमराज के समान, लक्ष्मी नई जात की बेड़ी के समान है और संसार अपवित्र वस्तुओं से लीन दुःखदाई दीनों के संसर्ग जैसा भयंकर है। यों संसार यह सचमुच काराग्रह ही है और इसीलिये विद्वान् मनुष्यों की प्रीति इसके किसी स्थल पर भी नहीं नजर आती।

अध्याय ३ रा.

भीषण प्रतिज्ञा ।

श्रीजी नित्य की तरह अपने परोपकारी गुरुवर्य का व्याख्यान आज भी प्रेमपूर्वक सुन रहे हैं। वीर प्रभु की अमृत मय वाणी के पान से श्रोताजनों के हृदय भी आनंद से झनकने लगते हैं. व्याख्यान में आज ब्रह्मचर्य का विषय है। ब्रह्मचर्य सब सद्गुणों का नायक है, ब्रह्मचर्य स्वर्ग मोक्ष का दायक है, ब्रह्मचारी भगवान् के समान है, देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर और बड़े २ चक्रवर्ती राजा भी ब्रह्मचारी के चरण कमल में सिर झुकाते हैं और उनकी पूजा करते हैं इत्यादि सार से भरी हुई सूत्र की गाथाएँ एकके पश्चात् एक पढ़ी जाती है और रहस्य समझाया जाता है। बीच २ में नेमनाथ, राजेमती, जम्बू कुंवार विजय सेठ, विजयारानी इत्यादि आदर्श ब्रह्मचारियों के दृष्टान्त भी दिये जाते हैं और उनके यशोगान गाये जाते हैं।

एक ब्रह्मचारी पूज्य पुरुष के मुखारविन्द से ब्रह्मचर्य धर्म की इस प्रकार अपार महिमा सुन श्रीजी के हृदय सागर में इच्छाओं की उमंगें उठने लगीं, तरंगों से क्षुभित महासागर की तरह उनका

अंतःकरण विचारतरंगों से भर गया और व्याख्यान पूर्ण होते ही खानपान की परवाह त्याग अपनी पूर्व परिचित-प्रिय टेकरी की ओर प्रयाण किया, वहां एकांत में एक शिला पट पर बैठ कर वे विचार करने लगे " एक छोटी बाल वय की सुकुमार कन्या का हाथ पकड़कर मैं यहां ले आया हूं. मुझे समझाते हैं कि उनका भव बिगाड़ना महापाप है तो जम्बूकुमार का मोक्ष होना असंभव है तीर्थंकर पद प्राप्त श्रीनेमनाथ भगवान् ने भी ऐसा क्यों किया ? मेरे हृदय में उस पर दया है, अनुकम्पा है। मेरे संसार त्यागने से उन्हें कितना महान् कष्ट होगा यह सब मैं जानता हूं, परन्तु एक ही व्यक्ति की दया के कारण अनंत पुण्योदय से प्राप्त और अनंत भव की भ्रमणता से मुक्त करने की सामर्थ रखने वाला यह मनुष्य जन्म कि जो देवों को भी दुर्लभ है मुझे हार जाना चाहिये क्या ? काम भोग रूपी कीच में इसे नष्ट भ्रष्ट कर डालना मेरू जैसी भूल करना है। जिंदगी का पल भर भी विश्वास नहीं और यौवन तो चार दिन की चांदनी है यह विद्युत् के चमत्कार की नांई क्षणिक है, क्षण भर चमक लुप्त हो जायगा, एक पुल पर से वेग से जाने वाली ट्रेन को जाते हुए देर नहीं लगती, इसीतरह इस युवावस्था को निकलते देर न लगेगी काल की अनंतता का विचार करते तो सौ वर्ष का आयुष्य भी विद्युत् के चमत्कार जैसा ही है। इतने से अल्प समय के लिये मेरे या उनके क्षणिक सुख दुःख का मुझे

क्यों विचार करना चाहिये ? हाड, मांस, चर्म और रक्त से बने हुए इस क्षणभंगुर शरीर पर के मोह भाव ही बंधन और दुःख के कारण हैं जैसे कमल पत्र पर पड़ा हुआ तुषार बिंदु थोड़े समय तक मोती माफिक शोभा दे अदृश्य हो जाता है उसीतरह यह शरीर, यौवन, स्त्री और संसार के सर्व वैभव भी अवश्य अदृश्य हो जांयगे इन सब के लिये मैं अपनी अविनाशी आत्मा का हित न बिगड़ने दूं। यह समस्त संसार स्वार्थी है, जबतक वृक्ष पर फल होते हैं तब तक ही सब पक्षी आकर उसका आश्रय लेते हैं और फल रहित होते ही उसको त्याग सब चले जाते हैं. अगर मैं विषयों को न त्यागूं तो भी यौवन वय का अन्त आते ही इन्द्रियों का बल क्षीण हो जायगा और ये विषय भोग भी मुझे छोड़ चले जांयगे और मेरी आत्मा को अधोगति की गहरी खाई में ढकेलते जांयगे, इस लिये इन विष सरीखे विषयों का मुझे अभी से ही त्याग क्यों न करना चाहिये ? इन विचारों के परिणाम से श्रीजी यही निश्चित कर सके कि बस ! मैं तो अब विषयों का परित्याग कर ब्रह्मचर्य की ही सेवा ग्रहण करूंगा।

उस समय ऊपर की वृक्ष-लतायों में से सुंदर सुगंधित पुष्प श्रीजी के शरीर पर गिर पड़े, वृक्षों परके पक्षी मानो श्रीजी की दृढता की तारीफ करते हों और प्रतिज्ञा अटल पालने का आग्रह करते हों,

ऐसा मधुर संगीत अलाप आलापने लगे। सूर्य नारायण की किरणें वट वृक्षों को भेद श्रीजी के मस्तक पर विजय ताज पहिराती हों ऐसा भास होने लगा, सृष्टि देवी ने श्रीजी के साथ सहानुभूति दिखाने के लिये ही यह व्यवस्था क्यों न रची हो ?

अहा ! कैसा मांगलिक शब्द ! कैसा अपूर्व व्रत ! कैसी दिव्य भावना ! कैसा विशुद्ध जीवन ! बस बस मैं ऐसे ही पवित्र जीवन बिताऊंगा. यही कल्याणप्रद मार्ग ग्रहण करूंगा और जन समाज को भी इसी मार्ग पर खींचूंगा जिसके लिये मेरा हृदय चिंतातुर रहता है उसके लिये भी यही निर्भय और कल्याणकारी मार्ग खोलूंगा । अखंड ब्रह्मचर्य, यही मेरे जीवन की अभिलाषा हो । इंद्रियजनित सुखों की अब मुझे तनिक भी इच्छा नहीं, इंद्रिय विलास का विचार भी अब मुझे विष सम दुखदाई मालूम होता है. मैं अब इंद्रियों का दमन तप आदरूंगा, संयम अंगीकार करूंगा ब्रह्मचारियों का गुण कीर्त्तन करूंगा, प्रभु का ध्यान धरूंगा और प्रभु के ज्ञानादि गुण अपनी आत्मा में प्रकटाऊंगा, ब्रह्मचर्य की जगमगाती ज्योतिर्मय रत्नमाला को मैं अपने कंठ में धारण करूंगा और जगत् में ब्रह्मचर्य का दिव्य प्रकाश फैलाऊंगा । विषय वासना की प्रचंड और धकधकती लोह शृंखला से मैं अपने शरीर अपनी इंद्रियां और मन को परिबद्ध नहीं होने दूंगा शील के संरक्षार्थ देह

का विनाश होता हो तो बेशक हो " नत्थि जीवस्स नासोत्ति " इस वीरवाक्य पर मुझे पूर्ण श्रद्धा है इसलिये मैं किसी भी स्त्री का स्पर्श तक नहीं करूंगा। अपने मन से प्रभु की साक्षी द्वारा श्रीजी ने ऐसे विशुद्ध ब्रह्मचर्य धर्म आदरने की भीषण प्रतिज्ञा की और वे अपनी आत्मा में नया उत्साह नया सतेज प्रकटा घर की तरफ फिरे। जुवानी में ऐसे विचार आना भी पूर्व पुण्योदय का ही फल है।

जरा जन जालवी लेजे, अरे झेरी जुवानी छे।
कलंकित कीर्ति ने करशे, खरे! वैरी जुवानी छे॥
अभिमाने करे अंधा करावे नीच ना धन्धा।
विचारो फेरवे सन्धा जुवानीतो गुमानी छे॥
बनाव्या कैकने कैदी, नखाव्या शीष कैक छेदी।
जुवानी शत्रु छे भेदी न मानो के मजानी छे॥
विकारो ने वलगनारी, बतावे पापनी बारी।
सुजाडे बुद्धि ना सारी, पीडा कारक पीछानी छे॥
समझ संसार ना प्राणी जुवानी मान मस्तानी।
अरे पश्च चार दोडांनी जुवानी जाण फानी छे॥
कथे शंकर झुठी काया झुठी संसार की माया।
जुवानीनी झुठी छाया जुठी आ जिन्दगानी छे॥
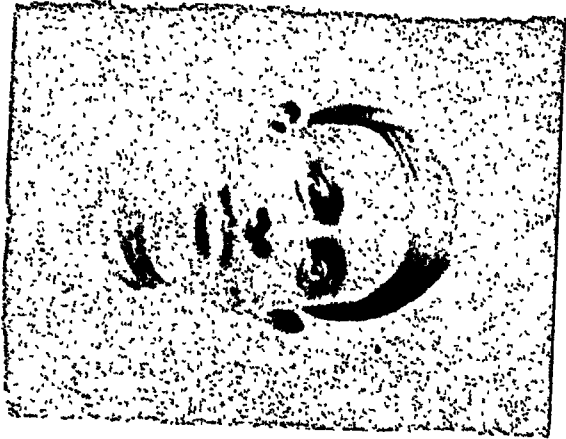
पूज्यश्रीना वडील वंधु शेठजी नाथुलालजी वंव-टोंक.
परिचय-प्रकरण १.

परोपकारी पारेख त्रीभोवनदास प्रागजी-राजकोट.
परिचय-प्रकरण २५.

टोंकमां श्रीलालजीनुं मकान.
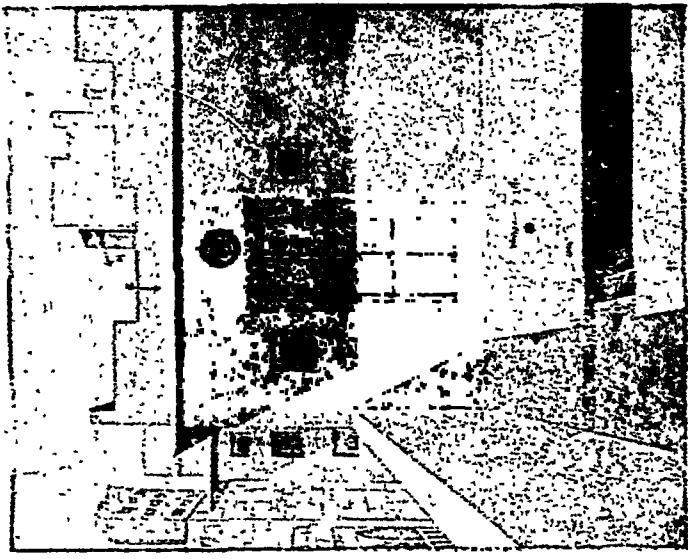
जे अगाशीमां श्रीलालजी बेसी वांचता ने ज्यांथी कूदी पड्या.

उपरनी अगाशीमांथी जे अगासीमां कूदी पड्या ते.

परिचय—प्रकरण ३.

मानकुंवर बाई को घर आये थोड़े ही दिन हुए। उनके विनयादि उत्तम गुण तथा कर्त्तव्य परायणता ने घर के सब मनुष्यों के मन हर लिये। सब कोई बहु की मुक्तकंठ से प्रशंसा करता था परन्तु इससे मानकुंवर बाई को कुछ भी आनन्द न मिलता था। अपने पति की वैराग्यवृत्ति उनके हृदय को नोच खाती थी। जब २ वे अकेली रहतीं तब २ विचारमाला में गुंथाती और पति का मन किस तरह प्रसन्न करना तथा किन २ युक्ति प्रयुक्तियों द्वारा उनका प्रीतिपात्र बनना ये उपाय सोचने में ही प्रायः वे अपना सब समय व्यतीत करती थीं। " विनय यही महा वशीकरण है " यह महामंत्र आते ही सास ने इन्हें सिखा दिया था, इसीलिये वे हर तरह विनय, भक्ति द्वारा पति का मन प्रसन्न करने का प्रयत्न करती थीं परन्तु श्रीजी तो प्रायः इससे दूर ही रहना पसन्द करते थे।

विशेष कर वे पृथक् हवेली के पृथक् स्थान पर ही सोते, कचित् वार्तालाप करते और अधिक समय पढ़ने लिखने या धर्मानुष्ठान में ही व्यतीत करते थे। ऐसा होते भी उनकी पत्नी को यह मान्यता थी कि धीरे २ पति की मति को ठिकाने ला सकूंगी। उनके सासुजी भी प्रायः यही आश्वासन देते रहते थे. परन्तु आज का व्याख्यान सुनने के पश्चात् पर्वत पर की हुई प्रतिज्ञा के कारण श्रीजी के विचार, वाणी और व्यवहार में एकाएक बहुत परिवर्तन होगया। पत्नी के साथ एकान्तवास और वार्तालाप आज से हमेशा के लिये बन्द

होगया। इससे मानकुंवर बाई के हृदय में प्रज्वलित चिन्ताग्नि में घी होमा गया परन्तु वे बिल्कुल निराश न हुई अपनी प्राणदायिनी प्रिय सखी आशा का उनने सर्वथा परित्याग न किया।

पति की सेवा करने तथा अपने हृदय के उभार पति से कह हृदय का भार हलका करने की तीव्र अभिलाषा होते भी मानकुंवर बाई कितने ही दिनों तक ऐसा अवसर न मिलने से सिर्फ अश्रुपात द्वारा ही हृदय का भार कम करती रहीं, कारण यह एक ही रास्ता इनके लिये खुला था। रातको तो श्रीजी उपाश्रय में या अपनी दूसरी हवेली में संवर करके सोते। दिन में बहुत कम समय घर रहते। कुटुम्ब अधिक होने से दिन में एकान्त में वार्तालाप करने का समय मिलना दुर्लभ था और फिर श्रीजी भी दूर २ भागते थे इसलिये मानकुंवर बाई के मन की सब आशाएं मन में ही रह जाती। श्रीजी के माताजी तथा उनके मित्र इत्यादि उन्हें बार २ निवेदन कर कहते परन्तु श्रीजी के मन पर उसका कुछ असर न होता था।

एक दिन श्रीजी अपनी तीन मंजिली ऊंची हवेली की चांदनी में बैठे थे और जयपुर निवासी स्वर्गस्थ कवि जौहरी जेठमलजी चोरड़िया विरचित पद्यात्मक जम्बू चरित्र पढ़ने तथा उसकी काड़ियां कंठस्थ करने में लीन थे उस समय अवसर देखकर धीरे पांव से

मानकुंवर बाई पति के पास आ खड़ी हुई और नम्र भावयुत दीन वाणी से, हाथ पकड़कर लाई हुई अबला की ओर अभिदृष्टि से देखने की प्रार्थना करने लगी। परन्तु काम को किम्पाक फल समझने वाले और प्राण की आहुति देकर भी शियल व्रत के संरक्षण की प्रतिज्ञा लेने वाले दृढव्रतधारी महानुभाव श्रीलालजी ने नीचे नयन रख मौनधारण कर लिया। युवती के सौजन्य, सौंदर्य, वाक्पटुता और हावभाव उनके हृदय पर एकान्त होते भी कुछ असर पैदा न कर सके। एकान्त में स्त्री के साथ रहना, वार्तालाप करना, उसके करुण वचन सुनना, उसके हावभाव या अंगोपांग देखना प्रभृति ब्रह्मचारियों के लिये अनिष्टकर और अकल्पनीय है ऐसा सोचकर श्रीजी ने त्वरा से निकल भागने का निश्चय किया और उठ खड़े हुए, परन्तु नीचे उतरने की पत्थर की सीढ़ियों की राह रोककर मानकुंवर बाई खड़ी थी, इसलिये श्रीजी सीढ़ी के दूसरी ओर चांदनी के दूसरे खंड में जल्द २ जाने लगे।

हृदय का भार कम करने के लिये प्राप्त अवसर से लाभ उठाने और उन्हें भग न जाने देने का निश्चय कर युवती उनके पीछे २ कोमल पांव से चली और श्रीजी का हाथ पकड़ने के लिये अपना कोमल करपल्लव बढ़ाया। अपना वही हाथ जो पिता ने पति को हथलेवे के समय हाथ में सौंपा था। वही हाथ पति को फिर से पकड़ने का विनय करने पर अबला की ओर अलक्ष्य ही रहा।

" नजर से निरखो नाथ " इस गूंगी अर्ज का दिव्यनाद श्रीजी के श्रवणयुगल में गिरने ही न पाया—किसी भी स्त्री का स्पर्श न करना। इस प्रतिज्ञा का कहीं भंग हो जायगा इस डर से और अन्य राह न मिलने से तत्काल श्रीजी यहां से उत्तर की ओर की इस तीन मंजिल की हवेली के बराबर वाली पश्चिमी द्वार की अपनी दूसरी दो मंजिल वाली हवेली की चांदनी पर कूद पड़े ※ अपने इस व्यवहार पर पश्चात्ताप करती भय से धूजती मानकुंवर बाई एकदम सीढ़ियां उतर नीचे आई और यह क्या शब्दारव हुआ? ऐसे सासुजी के प्रश्न का अश्रुपूर्ण नयन से खुलासा किया। तुरन्त माजी नीचे उतर दूसरी हवेली के मंजिल चढ़ पुत्र के पास दौड़ते आ पहुंचीं। खबर होते ही नाथूलालजी भी आये।

चांदनी की समतल भूमि छौवंध होने से श्रीजी के एक पांव में सख्त चोट लगी, नस पर नस चढ़ गई। यह देखकर माजी के आंख से अश्रु बहने लगे। वे बोलीं बेटा! ऐसा न किया कर, अब तू बालक नहीं है। इतनी ऊंचाई से कूदने पर कभी जीव की जोखम रहती है। उत्तर में श्रीजी ने कहा। माजी! संसार की ज्वाला में जलने की अपेक्षा मैं मरना अधिक पसन्द करता हूं। उस समय हकीमजी को बुलाने के लिये नाथूलालजी चले गये थे।

※ देखो समीप का चित्र।

हकीमि तथा डाक्टर का इलाज कराने से थोड़े दिनों पश्चात् पग अच्छा हो गया। परन्तु सर्वथा आराम न हुआ। यह तकलीफ तमाम जिन्दगी पर्यन्त रही। यह घटना सं० १९४० में घटी। उस समय श्रीजी की उम्र १५ वर्ष की थी परन्तु शरीर का बंध ठीक होने से वे १८ वर्ष के हों ऐसे दिखते थे।

भोग की लालसा को हृदय-देश में से हमेशा के लिये देश निकाला देने की हिम्मत करना, सुकुलवती और सुरूपवाली स्त्री का भर यौवन में परित्याग करना कुछ नन्हीं सी बात नहीं है। श्रीवीर प्रभु का उपदेश जिनके रग २ में रंगा हुआ है ऐसे आदर्श ब्रह्मचारी श्रीलालजी ने यह उत्साह दिखाया। यह सचमुच प्रशंसनीय, बन्दनीय और आश्चर्य उत्पादक तथा सामान्य मनुष्यों की शक्ति के बाहर का है। जो कार्य संसार त्यागने पर भी कितने ही व्यक्तियों से न बन सका वह कार्य श्रीजी ने संसार में रहकर कर दिखाया। काजल की कोठरी में रहने पर भी कपड़े पर रेख न लगने देना बड़ा दुष्कर कार्य है। श्री वीर प्रभु की आज्ञा को श्रीजी प्राणों से भी अधिक मानते थे। चांदनी पर से कूद श्रीजी ने वीर प्रभु की आज्ञा का अनुकरण कर सच्ची वीरता दिखाई है। श्रीउत्तराध्ययन सूत्र में कहा है कि :—

जहा बिराला वसहस्स मूले न मूसगाणं वसही पसत्था ।
एमेव इत्थीनिलयस्स मज्झे न बंभयारिस्स खमो निवासो ॥

अर्थ—जहां बिल्ली रहती हो वहां चूहे का रहना ठीक नहीं इसी तरह जहां स्त्री का निवास हो वहां ब्रह्मचारी का रहना क्षेमकारी नहीं ।

श्री दशवैकालिक सूत्र में कहा है कि :—

हत्थपायपडिच्छिन्नं कन्नं नासं विकप्पियं ।
अविवाससयं नारिं बंभयारी विवज्जए ॥

अर्थ—जिसके हाथ पांव छिन्न भिन्न हैं कान और नाक भी कटे हैं और सौ वर्ष की बुढ़िया है ऐसी स्त्री का भी ब्रह्मचारी को सहवास न करना चाहिये ।

जहा कुक्कुटपोयस्स निच्चं कुललओ भयं ।
एवं खु बंभयारिस्स, इत्थिविग्गहो भयं ॥

अर्थ—जैसे कुक्कुट के बच्चे को हमेशा बिल्ली का भय रहता है तैसे ही ब्रह्मचारी को स्त्री की देह से भय उत्पन्न होता है ।

श्री वीर प्रभु ने पवित्र जिनागम में ब्रह्मचर्य की भूरी २ प्रशंसा की है और ब्रह्मचर्य के भंग करने की अपेक्षा मरना भला

ऐसा साधुओं को सम्बोधन दे कहा है । श्रीजी भी गृहस्थ के वेष में साधु ही थे ।

कामान्ध और विषयलुब्ध मनुष्यों को यह वृत्तान्त पढ़कर सोचना चाहिये, पश्चात्ताप करना चाहिये और अपनी आत्मा के हितार्थ इन महात्मा की सत्प्रवृत्ति का अनुकरण कर साफल्य जीवन करना चाहिये ! विषयों के गुलाम न बन मन इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना सीखना चाहिये और ऐसा करने के लिये अनेक प्रकार के नियम निश्चय आदर कर जीव की जोखम में भी वे पालने चाहिये ।

अनादिकाल के अभ्यास से मन और इन्द्रिय स्वभाव से ही शब्द स्पर्शादि विषयों की ओर खिंचाकर वैषयिक सुखों में ही सर्वथा लीन रहती हैं और यही कारण है कि आत्मा की अनन्त शक्ति का भान नहीं रहता । मन बन्दर की तरह अति चंचल है । बन्दर जैसे वृक्षों पर कूदता फिरता है वैसे ही मनुष्य का मन भी नानाप्रकार के विषयों में वेग से दौड़ता रहता है । सर्व क्लेशों के क्षय और परमानन्द की प्राप्ति के लिये मन की ऐसी चंचलता और क्लेशप्रद स्वभाव के ध्वंस करने की खास जरूरत है । कोई एक महाभाग विरले पुरुष ही ऐसा कर सकते हैं । श्रीलालजी ने बालवय से ही वैषयिक सुखों को परित्याग करने में अद्भुत परा-

कर्म दिखाया । इससे उनका चरित्र प्रत्येक मनुष्य के मनन करने योग्य, अनुकरण करने योग्य और स्मरण में रखने योग्य है ।

दीक्षा लेने के पश्चात् श्रीजी के उपदेश में ब्रह्मचर्य के लिये हमेशा बहुत जोर रहता था । ब्रह्मचर्य के निर्वाहार्थ शिष्यों के आहार विहार की तरफ भी वे बहुत ध्यान देते थे और यही कारण था कि इनकी सम्प्रदाय में ढीला पोला साधु न टिक सकता था ।

अध्याय ४ था

वैराग्य का वेग।

उपर्युक्त घटना के बीतने के थोड़े दिन पश्चात् श्रीजी ने अपनी माता के पास से विनयपूर्वक दीक्षा के लिये अनुमति मांगी। माजी के कोमल हृदय पर ये शब्द वज्रापात जैसे प्रहारी हुए तो भी इन्होंने धैर्य धारण किया कारण ऐसे ही मतलब वाले शब्द वे आज से पहिले कई समय पुत्र के मुख से सुन चुकी थीं इस समय इनने इतना ही उत्तर दिया कि "संसार में रहकर भी धर्म, ध्यान क्या नहीं हो सकता? हमारी दया न आती हो तो कुछ नहीं परन्तु इस बिचारी के ऊपर तो तुझे कुछ दया लानी चाहिये। इसका जन्म बिगाड़कर जाना यह महा अन्याय है। फिर भी अगर तुझे दीक्षा लेना है तो मेरा वचन मानकर थोड़े वर्ष संसार में रहो।" इतना कहते २ उनका हृदय भर गया और आंख में से आंसू गिरने लगे। श्रीजी ने अपना दृढ निश्चय दिखाते हुए कहा कि "माजी! आप कोटि उपाय करो तो भी मैं अब संसार में रहने वाला नहीं हूं। मुझे अब आज्ञा देओ तो संयम आराधन कर अपनी आत्मा का कल्याण करूं। आयुष्य का क्षण भर का भी विश्वास नहीं है।"

श्राजी के कहने से इस बात की खबर नाथूलालजी को और फिर सेठ हीरालालजी को हुई। सेठ हीरालालजी ने श्रीलालजी को बुलाकर कहा कि, खबरदार! दीक्षा का किसी दिन नाम भी लिया है तो! आज से तूने साधु के पास भी किसी दिन नहीं जाना। साधु तो निठल्ले बैठे २ लड़कों को चढ़ा मारते हैं।" इन शब्दों से श्रीलालजी के हृदय में बहुत दुःख हुआ। उन्होंने बोलने का प्रयत्न तो किया, परन्तु कुछ बोल न सके। अपने पिता के बड़े भाई हीरालालजी की आज्ञा का उनने कभी उल्लंघन नहीं किया था तो उनके सामने बोलना भी उन्हें दुःसाध्य था। सेठ हीरालालजी ने नाथूलालजी से भी कहा कि "इसकी बहुत संभाल रखना और साधु के पास इसे बिल्कुल मत जाने देना"।

हीरालालजी सेठ की सख्त मनाई होने पर भी श्रीलालजी गुप्तरीति से अपने गुरु के पास जाने लगे। सद्गुरु का वियोग वे न सह सके। सत्संग में कोई अनोखी आकर्षण शक्ति रहती है। श्रीजी की उत्तम ज्ञानाभिलाषा और सत्संग के आकर्षण के समीप सेठ हीरालालजी की ओर का भय कुछ गिनती में न था।

एक दिन श्रीजी ने परमप्रतापी पूज्य श्री उदयसागरजी *

---

* इन महापुरुष का जीवन-चरित्र गुर्वावली में दिया है।

अध्याय ४ था

वैराग्य का वेग।

उपर्युक्त घटना के बीतने के थोड़े दिन पश्चात् श्रीजी ने अपनी माता के पास से विनयपूर्वक दीक्षा के लिये अनुमति मांगी। माजी के कोमल हृदय पर ये शब्द वज्राघात जैसे प्रहारी हुए तो भी इनने धैर्य धारण किया कारण ऐसे ही मतलब वाले शब्द वे आज से पहिले कई समय पुत्र के मुख से सुन चुकी थीं इस समय उनने इतना ही उत्तर दिया कि " संसार में रहकर भी धर्म, ध्यान क्या नहीं हो सकता ? हमारी दया न आती हो तो कुछ नहीं परन्तु इस विचारी के ऊपर तो तुझे कुछ दया लानी चाहिये। इसका जन्म बिगाड़कर जाना यह महा अन्याय है। फिर भी अगर तुझे दीक्षा लेना है तो मेरा वचन मानकर थोड़े वर्ष संसार में बिता। " इतना कहते २ उनका हृदय भर गया और आंख में से आंसू गिरने लगे। श्रीजी ने अपना दृढ निश्चय दिखाते हुए कहा कि " माजी ! आप कोटि उपाय करो तो भी मैं अब संसार में रहने वाला नहीं हूं। मुझे अब आज्ञा देओ तो संयम आराधन कर अपनी आत्मा का कल्याण करूं। आयुष्य का क्षण भर का भी विश्वास नहीं है। "

श्रीधर भी आया है विशेषता में पूज्य श्री ने फरमाया कि उसका नाम तो श्रीलाल है परन्तु उसके गुणों की ओर ध्यान देते श्रीधर कहना मुझे बड़ा अच्छा लगता है ' अपने छोटे भाई की ऐसे महा-पुरुष के मुंह से प्रशंसा सुनकर नाथूलालजी को कुछ आनन्द हुआ परन्तु पूज्य श्री के मुंह से ऐसे शब्द सुनकर उन्हें यह भी भास हुआ कि श्रीजी अब अपने घर में रहेंगे यह होना अशक्य है !

थोड़े ही समय में श्रीजी आकर अपने भाई से मिले और मिलते ही प्रश्न किया कि " भाई ! क्या आज ही तुम्हारे साथ मुझे पीछा घर जाना पड़ेगा ? मुझे यहां थोड़े दिन पूज्य श्री की सेवा का लाभ नहीं लेने दोगे ? नाथूलालजी ने कहा 'बड़े स्थानक में पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के मोखमसिंहजी महा-राज विराजते हैं उनके दर्शन कर रवाना होना है। उस समय कुछ आनाकानी न कर अपने बड़े भाई के साथ वे चल पड़े, यह उनके हृदय की मृदुता और विनय गुण की पराकाष्ठा की सूचना है । चलते समय उन्होंने बड़े भाई से एक वचन मांग लिया था कि, मैं घर तो आता हूं परन्तु जिस हवेली में आप सब रहते हो उसमें मैं नहीं रहूंगा । बाहर की हवेली में अकेला ही रहूंगा । भाई ने उनकी यह बात मंजूर की ।

रतलाम से रवाना हो वे जावरे आये । वहां मुनि श्री राज-

मलजी कस्तूरचन्दजी तथा मगनलालजी महाराज विराजते थे उनके दर्शन किये मुनि श्री मगनलालजी महाराज कि जो विद्यमान आचार्य श्री जवाहिरलालजी महाराज के गुरु थे उनको सज्झाय करने की अनुपम और अति आकर्षकशैली * देख श्रीलालजी सानन्दाश्चर्य हुए और इनकी सेवा में थोड़े दिन रहना मिले तो कैसा अच्छा हो ? ऐसा सोचने लगे, परन्तु भाई की इच्छा के कारण वे दूसरे दिन जावद आये। वहां श्री तेजसिंहजी महाराज प्रभृति मुनिराज विराजते थे, उनके दर्शन किये और फिर दोनों भाई टोंक आये। नाथूलालजी का अपने छोटे भाई (श्रीजी) पर बहुत प्रेम था। उन्हें हरतरह खुश रखना ऐसी उनकी खास इच्छा थी। इसीलिये राह में श्रीजी की मर्जी सम्पादन करने के लिये वे उनको महन्त पुरुषों के दर्शन तथा उनकी वाणी श्रवण करने कराने उतरते थे। उस समय नाथूलालजी की और २० श्रीजी की १५ वर्ष की उम्र थी।

टोंक आये पश्चात् श्रीजी बाहर की हवेली में अकेले रहते और पठन पाठन तथा धर्मानुष्ठान से जीवन सार्थक करते थे। उन्हें संसार कारागृह लगता था। दीक्षा ले आत्महित साधने की उनकी प्रबल

---

* सज्झाय करने की ऐसी ही शैली श्रीजी महाराज को भी प्राप्त हो गई थी और यह प्रसादी मगनलालजी महाराज की ओर से ही मिली हुई है ऐसा वे कहा करते थे।

उत्कंठा थी। इसके विरुद्ध उनके कुटुम्बीजनों की इच्छा किसी भी तरह किसी भी युक्ति-प्रयुक्ति से या अन्तमें बलात्कारसे भी संसारमें रखने की थी। जैनशास्त्र का ऐसा क़ायदा है कि जबतक बड़ों की आज्ञा न मिले तबतक दीक्षित न हो सके। श्रीजी ने बहुत २ प्रयत्न किये, परन्तु आज्ञा नहीं मिली। इससे श्रीजी को बहुत दुःख हुआ और ऐसा निश्चय किया कि अब तो किसी दूर देश में जाकर सन्त महन्त की सेवा कर जैन सूत्रों का अभ्यास कर आत्महित साधना चाहिये।

ऐसा विचार कर एक समय वे गुपचुप घर से निकले और जयपुर आ रेल में बैठ गुजरात काठियावाड़ की ओर चले गए और वहां कई साधु महात्माओं से समागम हुआ। श्रीजी का विनय गुण, ज्ञानवृद्धि के लिये आधारभूत हुआ। काठियावाड़ से कच्छभुज की तरफ हो रण रस्ते थराह होकर वे फिर गुजरात में आये और वहां से मुनि श्री चौथमलजी महाराज मेवाड़ में विचरते हैं ऐसी खबर पा ज्ञानाभ्यास की तीव्र जिज्ञासा से मेवाड़ तरफ गए और नाथद्वारा में मुनि श्री चौथमलजी महाराज की सेवा में रह ज्ञानाभ्यास करने लगे। वहां से किसी ने यह खबर टोंक पहुंचाई।

श्रीजी ने टोंक छोड़ी तब से आजतक टोंक पत्र न लिखा था तथा किसी साधन द्वारा भी कुटुम्बियों को इनका पता न मिला था।

इसलिये इनके प्रवास समय में इनके कुटुम्बीजनों ने ऐसी चिन्ता-ग्रस्त स्थिति में अपने दिन निर्गमन किये: यह आगे देखिये ।

श्रीजी टोंक से रवाना हुए उसके दूसरे ही दिन इनके भाई नाथूलालजी उनकी तलाश में निकले और जयपुर स्टेशन आये परन्तु अब किधर जाऊं यह राह उन्हे नहीं सूझी ; बहुत सोच विचार के पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि जहां २ विद्वान् मुनिराज बिराजते होंगे वहां जाकर तपास करना चाहिए । ऐसा सोच वे अजमेर, नयेशहर, रतलाम बीकानेर, नागोर, जोधपुर, दिल्ली, आगरा आदि २ कई शहरों में घूमे, परन्तु किसी भी स्थान पर भाई का पता न मालूम हुआ । फिर निराश हो घर आये। माजी प्रभृति को भी श्रीलालजी का पता न मिलने के समाचारों से बड़ा दुःख हुवा नाथूलालजी ने रोज चारों ओर पत्र लिखना प्रारंभ किये यों दो एक महीने बीते पश्चात् एक समय माजी ने सजल नयनों से नाथूलालजी को कहा ।

श्रीलाल का कहीं पता न लगा ऐसा कह कर तूं चुपचाप घर में बैठा रहता है यह ठीक नहीं यह सुनकर नाथूलालजी का हृदय भर आया । मातु श्री की ओर उनका अतुलित पूज्य भाव था, उनका दिल किसी भी तरह से न दुखाना यह उनका दृढ निश्चय था इसलिये मातु श्री के ये शब्द कर्णपट्ट पर गिरते ही वे फिर

ढूंढ़ने निकले दूसरे ही दिन रवाना होकर कई शहर और ग्रामों में होते हुए नागोर आये । नागोर में उन्हें एक चिट्ठी मिली कि जो टोंक से सेठ हीरालालजी के पुत्र लक्ष्मीचंदजी की लिखी हुई थी । उसमें लिखा था कि नाथद्वारा में मुनि श्री चौथमलजी महाराज विराजते हैं वहां श्रीजी है । इसलिये तुम वहां से नाथद्वारा जाओ । इस पत्र के पाते ही नाथूलालजी नाथद्वारा की ओर रवाना हुए । राह में कपासन मुकाम पर पं० मुनि श्री चौथमलजी महाराज के दर्शन हुए और कपासन में तपास करने से मालूम हुआ कि टोंक से लक्ष्मीचन्दजी नाथद्वारा आये थे और श्रीलालजी को बुला ले गए हैं । यह खबर सुनकर नाथूलालजी भी वहां से सीधे टोंक आये ।

उस समय भी श्रीजी बाहर की हवेली में अकेले रहते थे और वे कहीं भग न जांय, इसलिये उनके पास खास मनुष्य रक्खे गए थे । उनके लिये भोजन भी वहीं पहुंचाया जाता था । ज्ञाति की रसोई में भोजन करने जाना उनने हमेशा के लिये बन्द कर दिया था । एक साधारण क़ैदी की तरह उनकी स्थिति थी ।

जब २ अवसर मिलता तब २ वे अपनी मातुश्री और भाई को दीक्षा की आज्ञा देने के लिये प्रार्थना करते थे । आपस में कई समय अधिक रसमय सुसम्वाद भी होता था । श्रीजी की मान्यता

फिराने के लिये चाहे जैसी सचोट युक्तियां भिड़ाई जातीं तो भी उनका प्रत्युत्तर श्रीजी बहुत उत्तम रीति से देते थे। मोह की उपशान्तता और उत्कृष्ट वैराग्य आत्मा में स्थित प्रज्ञापना प्रकटाता है। निर्मोही पुरुषों के सामने प्रकृति हमेशा नानावस्था में ही खड़ी रहती है। सत्य उन्हें कहीं ढूंढने नहीं जाना पड़ता। वे स्वतः ही सत्य की साक्षात् मूर्त्ति रहते हैं। श्रीजी महाराज ने मोह-रिपु को कई अंश से पराजित किया था, इसलिये उनकी मति अति निर्मल हो गई थी और यही कारण था कि, श्रीजी के उपदेशात्मक और मार्मिक शब्द प्रहारों से माजी के मन पर गहन असर होता था; परन्तु सेठ हीरालालजी की इच्छा के प्रतिकूल वे निश्चयात्मक रीति से कुछ भी कहने की हिम्मत न कर सकती थीं।

अध्याय ५ वां.

विघ्न पर विघ्न ।

ऐसी संकटमयी हालत में दो एक वर्ष व्यतीत होगए। श्रीलालजी की उमर १७ वर्ष की हुई। आज्ञा के लिये उनके सफल प्रयत्न निष्फल गए और दिन पर दिन अधिक सख्ती होने लगी। साधु मुनिराजों के दर्शन, शास्त्र श्रवण और पठन पाठन में उनके कुटुम्बी जनों की ओर से होते हुए विघ्न उन्हें अतिशय असह्य होगए। बिन अपराध कैद में डाल रखना यह बड़ों का अन्याय अब उन्हें किसी तरह सहन न हो सका। अपनी स्वतंत्रता अपहरण होते देख श्रीजी के दिल में अधिक चोट लगी। सत्य कहा है कि "मुमुक्षु प्राणी को उन्नति के लिये बाहर निकलने के प्रथम अपनी अन्तः दशा को उन्नत बनाना चाहिये"।

एक दिन सुबह शौचकर्म से निवृत्त होने के मिस वे ऊपरी मंजिल से नीचे आये। उस समय सख्त ठंड पड़ रही थी। तो भी कुछ कपड़े लत्ते न लिये फकत एक चादर डाल ली और इसी हालत में वे टोंक त्याग रवाना हुए। एक दिन में २२ कोस की कठिन मंजिल पार कर शाहपुरा के समीप कादेड़ा ग्राम पहुंचे। भूख थका-

घट और ठंड से उनके शरीर में व्याधि उत्पन्न हो गई । और एक कदम भी आगे चलने की शक्ति न रही । पास में एक पाई भी न थी तथा वहां कोई पहिचान वाला भी न था । समभाव से वेदना सहते ठंड से थर २ धूजते वे खादेड़ा ग्राम में आये । दुःख, भय और चिन्ता के विचार ही मनुष्य की शक्ति को शिथिल करते हैं । हिम्मत और श्रद्धा से कार्य करने वाले को प्राकृतिक सहायता मिलती रहती है । ऐसी दुःखितावस्था में यहां उनकी सार संभाल करने वाला कौन था ? परन्तु पुण्य प्रसाद से नाथूलालजी के श्वसुर शिवदासजी न्हणवाल (घटयाली निवासी) किसी कार्य से खादेड़ा आये थे । उन्होंने श्रीलालजी को राह चलते देख लिया और बाला २ जहां आप ठहरे थे वहां लेगए । वहां खानपान शयनादि की सुव्यवस्था करने के पश्चात् औषधोपचार द्वारा शान्ति होने के अनेक प्रयत्न किये । प्रकृति की गति कृति भिन्न है । पवित्र वृत्ति वाले पुण्यशाली पुरुषों को अनुकूल संयोग अकस्मात् मिल ही जाते हैं । भर्तृहरि यथार्थ कहते हैं कि:—

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये, महार्णवे पर्वतमस्तके वा ।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा, रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥

सब स्थान पर अपने पूर्व कर्म ही रक्षा करते हैं । जबतक कसौटी का प्रसंग नहीं आता तबतक किसी मनुष्य की सहन करने

की शक्ति का नाप नहीं हो सकता। आवश्यकता उपस्थित होती है, तब ही प्राकृतिक अकलकला के प्रदर्शन निरखने का मौका मिलता है। शिवदासजी अग्रवाल श्रीलालजी तथा उनके कुटुम्बीजनों से पूर्णतया परिचित होने से सब हाल जानते थे। इसलिये उन्होंने दूसरे दिन एक ऊंट किराये कर श्रीजी को समझा बुझा टोंक की तरफ़ रवाना किया और जबतक तबीयत नादुरुस्त है तबतक टोंक में रहने की ही हिदायत की। तथा ऊंटवाले से भी खानगी रीति से कहा कि तुम इन्हें टोंक पहुंचाकर चिट्ठी लाओगे तभी भाड़ा मिलेगा। उसी दिन शाम को श्रीजी टोंक पहुंचे।

श्रीजी—एक कपड़े से भगे उसकी खबर नाथूलालजी को मिलते ही वे तुरंत उन्हें ढूंढने निकले। वे कपासन, निम्बाहेड़ा हो खबर मिलते ही पीछे टोंक आये। उस समय श्रीजी भी टोंक आ पहुंचे थे। नाथूलालजी ने श्रीजी से यह गद्गद कंठ से कहा "भाई तुम इस तरह घड़ी २ चले जाते हो इसीलिये हमें बहुत हैरान होना पड़ता है और तुम भी तकलीफ़ पाते हो,,

श्रीजी—यह तकलीफ़ दूर करना तो आपके ही हाथ है दीक्षा की आज्ञा दो कि, सब तकलीफ़ मिट जाय। माजी (वहां हाजर थे) बोल उठे "दीक्षा लेनी थी तो ब्याह क्यों किया? तेरे गए बाद इस बिचारी का रक्षक कौन होगा?,,

श्रीजी—क्षमा करना माजी ! आठ दस वर्ष के लड़के को बिना उसका अभिप्राय लिये माता पिता व्याह देते हैं उसे व्याह क्यों किया ? ऐसा कहने का हक तो होता ही नहीं मेरे व्याह की (लहावा लेने की) इतनी उतावल न की होती तो यह परिणाम भाग्य से ही आता सो भी मैं आपका दोष नहीं मानता। सब उसके कर्मानुसार ही हुआ करता है फिर मैं किसीके रक्षक होने का दावा भी नहीं करता। रक्षण करना न करना उससे शुभ कर्म का ही कारण है। काटेड़ा में भी मेरी रक्षा उसीने की थी।

माजी—मैं बैठी हूं तबतक तूं संसार में रह और बाद में सुख से संयम लेना। महावीर स्वामी ने भी माताजी को दुःखी न करने के लिये वे जीवित रहे वहां तक संयम न लिया था भगवान् जैसों ने भी माता की इच्छा रक्खी थी।

नाथूलालजी—(बीच में ही बोल उठे) और भगवान् ने बड़े भाई की इच्छा भी क्या नहीं रक्खी थी ? माता के लिये २८ वर्ष रहे तो बड़े भाई (नंदीवर्द्धन) के लिये दो वर्ष भी रहे।

श्रीजी—महावीर प्रभु तो तीन ज्ञान के स्वामी थे और मुझे तो एक पल पश्चात् क्या होने वाला है उसकी भी खबर नहीं। महावीर ही कह गए हैं कि, समयमात्र का प्रमाद नहीं करना चाहिये।

माजी—परंतु पुत्र ! मैं एक दिन भी तुझे नहीं देखती हुं तो मेरा आधा रुधिर औटा जाता है मुझे तेरी बहुत फिकर रहा करती है। तुझे तो अपने देह की तनिक भी परवाह नहीं। ऐसी कड़कड़ाती ठंड पड़ती है इसमें एकही कपड़े से भूखा प्यासा २२ कोस तक चला गया और इतना दुःख उठाया (माजी की आंख में अश्रु भर आये)

श्रीजी—एक ही बच्चा हो, मां को प्राण से भी अधिक प्यारा हो। उसके सिवाय उसे दूसरा कोई आधार न हो तो भी निर्दय काल उसे भी उठा ले जाता है ऐसे अनेक उदाहरण अपने सामने प्रत्यक्ष हैं। यह शरीर छोड़ कर पुत्र चला जाता है वह दुःख भी माता को सहन करना पड़ता है। मैं तो घर ही छोड़ कर जाता हूं यहां आप मेरी सार संभाल करते हो वहां मेरे गुरु भी सार संभाल लेंगे आप मेरे शरीर की ही चिंता करते हो वे तो मेरे शरीर की मन की और मेरी अविनाशी आत्मा की भी संभाल लेंगे। इसलिये आपको दुखित होने का कोई कारण नहीं, राजी होकर मुझे आज्ञा दो, आपके आशीर्वाद से मैं सुखी ही होऊंगा।

माजी—मैं प्रसन्न होकर किसी को अपने नयन निकाल लेने की आज्ञा दे सकूं तो तुझे राजी खुशी से दीक्षा की आज्ञा दे सकूं।

तू चतुर है इसीसे समझ ले। और मेरी दया आती हो तो मेरी आंखों के सामने रहकर चाहे जितना धर्म ध्यान कर। तुझे मैं कमाने को नहीं कहती। प्रभु की दया है और भाई जैसा भाई है तुझे कुछ दुःख नहीं देगा।

श्रीजी—माजी! आगे पीछे मुझे यह घर छोड़ना पड़ेगा ही और लम्बे पांव पसार कर परवश दूसरों के कन्धों पर चढ़ इस हवेली से निकलना तो पड़ेगा ही। तो अभी ही खड़े पांव से स्वयमेव मुझे इस बंदीखाने में से छूटने दो और सिंह की तरह स्वतंत्र विचरने दो तो क्या बुरा है?।

श्री मृगापुत्र ने अपनी माता से कहा है कि:—

जहा किंपागफलाणं परिणामो न सुंदरो।
एवं भुत्ताण भोगाणं परिणामो न सुंदरो॥

श्री उत्तराध्ययन सूत्र, १९ अ०।

किंपाक वृक्ष के फल देखने में बड़े सुन्दर हैं परंतु परिणाम भयंकर है उसी तरह संसार के सुख भोग भोगते मिष्ट हैं परंतु परिणाम भयंकर दुर्गति में लेजाने वाला है। श्री कीर्तिधर मुनि ने भी अपने संसार पक्ष के पुत्र सुकोशलकुमार को कुटुम्ब और

संसार का सार समझा उसका जन्म सार्थक किया था, जिससे पुत्र का श्रेय हो उसमें माता को अंतराय न देना चाहिये।

माताजी कुछ बोल न सके उनका हृदय भर आया, आंखों से अश्रु प्रवाह प्रारंभ हुआ। नाथूलालजी की चकोर चक्षुओं ने भी माताजी का अनुकरण किया इस करुणा रसपूरित नाटक के समय श्रीजी के हृदयसागर में तो ऐसी ही तरंगे उठ रहीं थीं कि—

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युस्तस्माद्धर्मं च साधयेत् ॥

श्रीजी बाहर की हवेली में जाने के लिये उठ खड़े हुए। और मातु श्री को आश्वासन देते बोले— " मातु श्री ! आपके संसार मोह के अश्रु आपकी मस्तिष्क की गर्मी को शांत करते हैं तो भी उन्हें देखकर मुझे दुःख होता है।

परन्तु मातु श्री ! आप क्या नहीं जानते की बार २ होते हुए जन्म, जरा और मृत्यु के अनंत दुःखों के सामने यह दुःख किस गिनती में है। आपको दुःख हुआ इसीलिये खमाता हूं। माजी ! यह तो आपका अनुभव किया हुआ आप भूल जाते हैं कि—

" नो मे मित्रकलत्रपुत्रनिकरा नो मे शरीरं त्विदम् "
मित्र, कलत्र, पुत्र, शरीर आदि में से कोई भी अपना नहीं।

" सम्बन्धी जन स्वार्थी अर्थी सघला अंते रहें वेगला "

" व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ।
आयु परिस्रवति भिन्न घटादिवाम्भो
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् " ॥

जरा वाघनी और रोग शत्रुओं के सदा प्रहार होते भी स्वार्थान्ध मनुष्य गफलत में पड़े रहते हैं; परिणाम यह होता है कि, छिद्र वाले घड़े के जल की तरह यह पुण्यायु कम होता जाता है और मनकी मन में ही रह जाती है ।

माजी ! सत्य मानिये कि, मेरा वैराग्य मेण, लाख या काष्ठ के गोला जैसा नहीं है । परन्तु मट्टी के गोला जैसा है । उपसर्ग की अग्नि से वह अधिकाधिक परिपक्व होगा । इसलिये अब भी जो परिसह प्राप्त होंगे वे हँसमुख से सहन करूंगा यह दृढ समझिये ! ऐसा कह श्रीजी चले गए ।

इन शब्दों ने माजी और भाई के मन पर विजली जैसा असर किया उसके परिणाम में उन्हें उपाश्रय जाने की परवानगी मिली और किसी प्रकार का परिसह न देना देना निश्चय किया ।

एक समय वातचीत में श्रीजी ने दर्शाया था कि:--

" लक्ष्मी तणो आ त्रास, ऐवी राज्य गादी ने तजी
भावे थंकी भिक्षुक थई, भागी गया कां भरत जी ?

अपन तो किस गिनती में हैं। अपने भगवान्‌का यही उपदेश है कि, क्षण मात्र भी प्रमाद मत करो कारण कि:—

इंद्रिय सर्व अखंडित छे, तन साव निरोगी अने बल पूरूं।
बुद्धि विचार, विवेक, सहायक, साधन, अन्य न कोई अधुरूं।
उठ अरे ! अभिमान तजी कर उद्यम केम रह्यो करजोड़ी।
वेश घणा धरवा तुजने पण पाछल रात रही बहु थोड़ी।
सुंदर आ तन ते क्षण भंगुर भाई ! अचानक छे पड़वानुं।
'केशव' आलस आज करो पण पाछल थी नहिं कोई थवानुं।

उनके श्वसुर पक्ष के तथा माता पिता के पक्ष के कितने ही सम्बधी उन्हें संसार में रहने के लिये शरमाते और समय २ पर दबाते थे परंतु श्रीजी इन भयों से डरने वाले नहीं थे।

शांति से सब को प्रसन्न करने वाले प्रत्युत्तर दे देते थे। उनके कितने ही मित्र अपने मां वाप की आज्ञा पालन करने के लिये उन से आग्रह करते तब वे उनकी ओर बहुमान प्रदर्शित कर अपने निश्चय पर ध्यान दिलाते थे। उनके उत्तर एक साक्षर के शब्दों में कहें तो " मैं ज़ानता हूं कि, माता पिता की आज्ञा पालना मेरा धर्म

है कारण कि वे ही मेरे जन्मदाता और पालन कर्त्ता हैं। पिता की गोद में रमा हूं, माता के दूध से पला हूं उनके इशारे से विष तक का प्याला पी सकता हूं। तलवार की धार पर चल सकता हूं और अग्नि में कूद सकता हूं, परन्तु उनका दुराग्रह मेरे श्रेय कार्य में बाधक है इसलिये लाचार हूं,,

लोकमान्य तिलक के लिये कहे हुए शब्द यहां स्मरण हो आते हैं " नर रंक के पुत्र रत्नों को निराश होना योग्य नहीं ज्वलंत धर्माभिमान, अचूक सावधानता, अचल श्रद्धा, अडग धैर्य, अखण्ड शौर्य, और अनन्य भक्ति हो तो बाकी सब सरल है.......पास खड़े रहने वाले न थे, सहायता करने वाले कम थे ऐसे संयोगों में भी वह भारत तिलक निराश नहीं हुआ, श्रमित नहीं हुआ, विश्राम लेने नहीं ठहरा, अनेक संकट सहे, अनेक यातनाएं सहन कीं परन्तु अपना मंत्र जप तप तो प्रारंभ ही रक्खा काल उनके घाव भर देगा। दुःख की रात व्यतीत हो कर प्रातःकाल भी होगा "।

उस समय (सं० १९४३) में पूज्य श्री छगनलालजी महाराज टोंक में विराजते थे। उनके पास श्रीजी शास्त्राध्ययन करने लगे परन्तु दीक्षा की आज्ञा न मिली और आज्ञा न मिले वहांतक श्रीजी से कुछ बन सके ऐसा न था।

एक दिन श्रीजी हवेली में आकर अपनी पूज्य मातुश्री के

पांव लगे । माजी उस समय मानिकलाल को रमाती हुई खड़ी थीं. श्रीजी ने उस छः माह के बालक (मानिकलाल) को प्रेम पूर्वक माता के पास से ले लिया और अपनी गोद में बिठाया । थोड़े समय तक उसे रमाया और फिर माजी के हाथ में देकर श्रीजी बोले "इसको अच्छी तरह रखना" माजी बोले "बेटा! इसकी और हमारी संभाल लेने का काम तो तुम्हारा है" श्रीजी मौन रहे । वैराग्य के विचार स्फुरित होने लगे ।

प्रियवाचक ! हम लोग भी एक तत्ववेत्ता के विचारों का मनन करें "इच्छुक हृदय नहीं बोल सकते, अगर बोल सकते हैं तो उन्हें कोई नहीं सुन सकता । किसी को प्रवाह भी नहीं, शोक पूर्ण नयन दर्द नहीं रो सकते" अगर रोते हैं तो लोग हंसी करते हैं......

"आवाज और गति" की यह दुनिया तथा 'शान्ति और एकान्त' का यह जगत् भिन्न २ होने पर भी बहुत समीप २ है......गुप्त जिंदगी की कई इच्छाएं, हृदय के कई उभरते आंसू, बुद्धि की कितनी ही प्रबल तरंगें हमें निष्फल होती मालूम पड़ती हैं । जिन इच्छाओं के परिपक्व होने के लिये संसार में स्थान नहीं, अश्रू के प्रवाह को रोकने के लिये जगत् की सहायता की आवश्यकता नहीं, तरंगों को मूर्त्तिमान् बनाने के लिये दुनियां अनुकूल नहीं ।

—:०:◯:०:—

अध्याय ६ ठा

साधु वेष और सत्याग्रह।

"कितनी उन्नति करने के लिये हम जन्मे हैं? कितनी उन्नति की हमसे आशा कीगई है? और हम प्राय: कितने अंश तक अपनी देह के स्वामी बन सकेंगे? यह हम नहीं जान सकते। अगर हम चाहें तो अपने स्वत: के भाग्य पर सम्पूर्ण अधिकार जमा सकते हैं, जो २ कार्य योग्य हों अपनी आत्मा से करा सकते हैं और हम जैसे होना चाहें वैसे ही हो सकते हैं"।

ओ, स्वे. माडेन

श्रीजी के वैराग्य का वेग बढ़ता जाता था और शास्त्राभ्यास से अनुमोदन भी मिलता था। प्रथम तो एक वीर योद्धा के समान उनका विचार था कि न 'दैन्यं न पलायनम्' परन्तु जब निराशा के प्रवाह में सब प्रयास अदृश्य होने लगे तब इस महासागर में नाव की अपेक्षा एक पटिया के आधार से ही प्रवाह उतरने तक ग्रहण करने का निश्चय किया। अनेक आघात और घाव सहन करते अपने निश्चय को दृढ बनाये रहे। दृढ निश्चय आत्मविश्वास यह एक अलौकिक रसायन है। इस रसायन के सहारे जाने वालों ने ही सब

वीर–सच्चे नायक का नाम पाया है चक्रवर्त्ती के समान सब देश वश किये और श्री चतुर्विध–संघ ने प्रीति कलश से प्रक्षालन कर पूज्य ताज्ज पहिराया।

अंतिम निश्चय कर अपने मित्र गुजरमलजी पोरवाड़ के साथ श्रीजी एक दिन टोंक से गुप चुप निकल गये और अपनी पूर्व परिचित प्रिय रसिक पहाड़ी को देख उसके समझाये अमूल्य तत्वों को याद कर दीक्षा लिये विना टोंक में पग देना ही नहीं यह निश्चय किया। यह गूंगा निश्चय वृक्षों को समझा यह संदेशा प्राकृतिक आन्दोलनों द्वारा अपने कुटुम्बियों को पहुंचाने को कह कर वे रानीपुरा (बूंदी स्टेट) की तरफ चले गए। खबर मिलते ही नाथूलालजी बम्ब उनकी माता गुजरमलजी की मां तथा गुजरमलजी की बहू उनके पीछे पीछे रानीपुर गए। वहां पूज्य छगनलालजी महाराज विराजते थे। पूछ ताछ करने पर विदित हुआ कि, वे दोनों यहां आये थे परंतु एक रात रहकर चले गए हैं। यह समाचार सुन सब वहां से रवाना हुए। राह में खबर मिली कि, एक नाले के नीचे दोनों जनों ने स्वयं साधु के वेष पहिने हैं और साधु के भंडोपकरण ले कोटे की तरफ गए हैं। यह घटना सं० १९४४ में मगसर बद में घटी।

फिर श्रीजी की मातु श्री प्रभृति सब कोटे आये वहां भी पता न चला। फिर निराश हो सब टोंक आये चारों ओर पत्र व्यवहार

शुरु किया तब खबर मिली कि, रामपुरा (भानपुरा) में मुनिश्री किशनलालजी विसनलालजी और बलदेवजी महाराज विराजते हैं उनके पास वे अभ्यास करते हैं।

यह खबर पढ़कर नाथूलालजी तथा गुजरमलजी के भाई हरदेवजी ये दोनों जने उन्हें लिवा लाने को रामपुरा गए परन्तु वे वहां न थे खबर मिलने से वे सुनहेल (इन्दौर स्टेट) गए वहां एक कुनबी के मकान में दोनों साधु के वेष में नजर आये। उस समय श्रीजी सदुपदेश सुना रहे थे श्रोताओं की संख्या १००से१५० मनुष्य के करीब थी। सदुपदेश पूर्ण होने तक दोनों आगन्तुक चुप बैठे रहे। व्याख्यान समाप्त होने पर उन्होंने कहा।

"हमारी बिना आज्ञा के तुमने यह वेष पहिन लिया, सो ठीक नहीं किया, अब हमारे साथ टोंक चलो" उत्तर में उन्होंने कहा "अब पीछे तो आवेंगे नहीं। कृपाकर आज्ञा दो तो हम संतों की सेवा में रह सकेंगे और हमारे ज्ञानाभ्यास में भी वृद्धि हो सकेगी। चाहे जितना मथो मक्खन निकलने की आशा नहीं है, व्यर्थ मोह के वश हो अन्तराय कर्म क्यों बांधते हो।

नाथूलालजी ने कहा "आप एक समय टोंक आवें आप कहेंगे वैसा करेंगे"। यहां बहुत कहा सुनी हुई। श्रीजी तथा गुजरमलजी ने आज्ञा देने के लिये आग्रह किया और उनके भाइयों ने इन्कार किया और दोनों को टोंक ले जाना निश्चित किया।

नाथूलालजी तथा हरदेवजी जब टोंक से रवाना हुए थे तब टोंक रियासत से दोनों को पकड़ लाने के लिये वारंट निकलवाया था। वे वारंट के साथ सुन्हेल के सूबा साहिब को मिले। सूबा साहिब ने कहा तुम फिर से एक वक्त और समझाकर कहो कि, सूबा साहब का हुक्म है इसलिये चल पड़ो। अगर न माने तो फिर मुझे कहो।

उन्होंने आकर वैसा ही किया परन्तु श्रीजी न माने। इसलिये फिर सूबा साहिब से मिले। उन्होंने श्रीलालजी और गुजरमलजी को कचहरी में बुलाया। सुनेल के बहुत से श्रावक भी उनके साथ थे। स्वाभाविक रीति से उन श्रावकों का श्रीजी पर पूज्यभाव प्रकट रहा था। अल्प परिचय से तथा अल्प वय में ऐसी असरकारक सदुपदेश शैली से श्रीजी ने उनके मन जीत लिये थे। विषय की मलिनता से निर्मल होकर निकले हुए शान्ति के प्रभावशाली पुतलों की और सहवास में रहने वालों की अंतरात्मा में गहनभक्ति पूर्णता से भर रही थी।

प्राकृतिक नियम है कि मानव जाति के सहायक शुभेच्छुक और उपदेशक होना चाहते हों उन्हें याद रखना चाहिये कि, अपना अनुभव पूर्वादि महात्माओं की तरह— काइस्ट के कास की तरह संकटों की शूली पर ही प्राप्त होने वाला है। जीवन का सच्चा

रक्त, हृदय का सच्चा तत्व इनकी आत्मत्याग की वेदी पर सोनें से ही सार्थकता सिद्ध होती है। महात्मागान्धी इसी अभिप्राय को अनुमोदन देते हैं—फतह जब बिल्कुल समीप आकर खड़ी रहती है तब उसी राह से संकट भी सब से अधिक आते हैं। इस दुनियां में आजतक किसीको महान् फतह प्रारंभिक अनेक प्रयत्नों और संकटों को पीछे हटाने वाली एक अंतिम असाधारण कोशिश किये बिना नहीं मिली। प्राकृतिक चरम से चरम कसौटी बड़ी कठिन से कठिन होती है। शतान का अंतिम से अंतिम लालच सबसे अधिक लुभाने वाला रहता है। जो स्वतंत्रता अपने को प्यारी हो तो इस प्राकृतिक कसौटी में से अपने बिल्कुल शुद्ध पार उतरना चाहिये, शैतान के चरम लालच के लोभ से हरतरह अलग रहना चाहिये।

श्रावक समुदाय सहित श्रीजी तथा गुजरमलजी सूबा साहिब के आफिस के चौक में खड़े रहे। उन्हें देखकर सूबा साहिब ने आज्ञा दी कि,तुम दोनों इनके साथ टोंक जाओ इनके पास टोंक स्टेट का वारंट है तुम नहीं जाओगे तो कायदेसे गिरफ्तार कर तुम्हें टोंक पहुंचाया जायगा।

यह सुन किसीसे न डरने वाले सत्याग्रही श्रीलालजी पग पर पग चढ़ा एक पांव से खड़े होगये और सूबा साहिब से बोले कि:—

"मैं यहां खड़ा हूं टोंक भेजना तो दूर रहा परंतु मुझे इस स्थान से भी हटाना दुष्कर है हम साधु हैं, बुलाने से नहीं आते। भेजने से नहीं जाते, बैठते हैं तो लोहे की कील की तरह और जाते हैं तो पवन के वेग की तरह। आप राजा के अमलदार हैं परंतु साधुओं को सताने का अधिकार आपको भी नहीं होसकता"।

एक विद्वान् के विचार सत्य हैं कि "किसी आपत्ति से तुम अपनी श्रद्धा कभी मत हिलने दो, जब तक तुम्हारी अपनी आत्मा पर दृढ़ आत्म श्रद्धा होगी, तबतक हमेशा तुम्हारे लिये आशा है। जो तुमने आत्म श्रद्धा नहीं खोई और आगे बढ़ते ही रहे तो संसार आगे पीछे कभी न कभी तुम्हारे लिये मार्ग देगा ही। श्रद्धा श्रद्धा को जन्म देती है, मनुष्य चारित्रबल से और अपने मस्तिष्क को शक्ति से अत्यंत प्रतिकूल संयोगों में भी सफलता सिद्ध करते हैं। श्रद्धा मानसिक सेना का महावीर है। यह दूसरी अनेक शक्तियों को दुगुना तिगुना बल अर्पण करती है जब तक श्रद्धा नेता है तब तक समग्र मानसिक-सैन्य स्थित है, प्रत्येक व्यक्ति में गुप्त बल अविनाशी शक्ति गर्भित है"।

भाग्यदेवी के लाड़ले पुत्र की दृढता और हिम्मत से उच्चारण किये हुए वचन सुनकर सूबा साहिब दिग्मूढ बन गए और 'राजाका हुक्म तुम्हें सिर चढ़ाना ही पड़ेगा' इतने शब्द कह भय से धूजते वे ऊपर

के मकान में चले गए प्रायः एक प्रहर तक श्रीजी एक पाँव से खड़े रहे, अंत में नाथूलालजी को ऊपर बुलाकर सूबा साहिब ने कहा, "भाई! इस मनुष्य को हम टोंक नहीं पहुंचा सकते, इन्होंने चोरी वा ऐसा कोई गुन्हा किया होता तो हम चाहे जैसा कर सकते थे, परंतु साधु का वेष पहिनना कुछ गुन्हा नहीं इस लिये तुम्हें योग्य जंचे वैसा करके ले जाओ और हमें इस फंद से अलग रक्खो।

नाथूलालजी निराश हो श्रीजी के पास आये और घर आने के लिये नम्रता से प्रार्थना की तब श्रीजी ने कहा "आप मोहनीय कर्म को हटाओ कि, जिससे यह सब संताप मिट जाय।

अपने भाई को बहुत समय तक एक पाँव से खड़े देखकर नाथूलालजी गद्गद होगए और कहा कि, आप अपने स्थान पर पधारो और आहार पानी करो फिर हम वार्तालाप करेंगे पश्चात् श्रीजी वगैरह वहां से रवाना हो उस कुनबी के घर पर जहां पहले से ठहरे हुए थे आये। धोवण पानी तथा गौचरी लाये आहार पानी किये पश्चात् नाथूलालजी ने श्रीजी से कहा कि, अभी टोंक से चिट्ठी आई है उसमें लिखते हैं कि, चि. कुंवरीलालजी का ब्याह रुकगया है इस लिये आप श्रीजी को लेकर जल्द आओ।

श्रीजी ने कहा " अभी टोंक आने की इच्छा नहीं, आप आज्ञा देंगे तो ठीक है नहीं तो ऐसी ही स्थिति से हम विचरते रहेंगे, परंतु

बिना संयम लिये टोंक में पाँव भी न देंगे "।

अंत में निराश हो नाथूलालजी तथा हरदेवजी टोंक की तरफ रवाना हुए परन्तु जाते समय टोंक निवासी बालजी नाम के ब्राह्मण को वहीं रखगए और उसे कह गए कि, जहां २ श्रीजी विचरें वहां २ तू इनके साथ जाना इनकी सार संभाल लेना और इनके कुशल वर्तमान से हमें रोज २ स्थान २ सहित टोंक लिखते रहना।

नाथूलालजी ने टोंक आकर माजी प्रभृति से सब समाचार कहे और कहा कि, संसार में रहने की उनकी बिल्कुल इच्छा नहीं है। माजी ने कहा कि, मुझे यह बात नई नहीं मालूम होती अब उसे अधिक सताना मुझे ठीक नहीं जँचता।

श्रीजी तथा गुजरमलजी साधू के वेष में विचरने लगे, मुन्हेल मुकाम पर किशनलालजी बिसनलालजी महाराज (पूज्यश्री अनूपचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के) से समागम हुआ और उनके पास से शास्त्राध्ययन करना प्रारंभ किया। वहां से पांचों ठाणों के साथ २ विहार कर रामपुरा (हो. स्टे.) में चातुर्मास किया। संवत् १९४५।

रामपुरा में केशरीमलजी नाम के श्रावक सूत्र के जाणकार और विद्वान् हैं उनके परिचय से श्रीजी के सूत्र ज्ञान में अधिक वृद्धि

हुई। उनके साथ के ज्ञान संवाद में श्रीजी को अपार आनंद आता और अधिक ज्ञान सम्पादन होता था।

रामपुरा का चातुर्मास पूर्ण हुए पश्चात् झालावाड़ कोटा प्रभृति की ओर हो पांचों महात्मा पुरुष माधोपुर पधारे। पाठकों को विदित होगा कि, माधोपुर में श्रीजी का मौसाल था। और उनके मौसाल पक्ष का धर्मानुराग अधिक प्रशंसनीय था। श्रीजी को कैसे २ परिसह सहन करने पड़े यह सब वे जानते थे। श्रीजी के मामा के पुत्र लक्ष्मीचंदजी (देवबक्षजी के पौत्र) माधोपुर निवासी मायाचंदजी पोरवाड़ प्रभृति श्रीजी तथा गुजरमलजीकी आज्ञा के लिये कोशीश की टोंक आकर इनके कुटम्बियों को नाना विधि से समझा दीक्षा की आज्ञा देने बाबत कहा।

प्रथम श्रीजी की मातु श्री चांदकुंवर बाई को अरज करने पर उन्होंने कहा कि, बहू को (श्रीजी की अर्धांगिनी) पूछने दो। उनकी ओर से क्या उत्तर मिलता है।

माजी ने फिर पुत्र वधू को बुलाकर पूछा कि, दीक्षा की आज्ञा देने में तुम्हारी क्या राय है ? मानकुंवर बाई ने विनय तथा धैर्यपूर्वक उत्तर दिया "आपने संसार में रहने के लिये जितने प्रयत्न हो सके किये परन्तु सब निष्फल गए। अब तो आपको और उन्हें सबको तकलीफ होती है इसलिये आप जो फ़रमायँगे मैं शिरोधार्य

करूंगी " । अपने पति को अपने समीप से टलने की आज्ञा नहीं देने वाली मोह फांस में पति को फांसकर रखने वाली वर्तमानकाल की अर्द्ध दग्ध अर्धांगनाओं को यह अवसर सोचना चाहिये ।

यह उत्तर सुनकर माजी का हृदय भर गया । आंखों से दड़ २ अश्रुपात होने लगा । थोड़े समय तक विचार निमग्न रहे और फिर लक्ष्मीचन्दजी तथा नाथूलालजी से कहा कि, चि. मानिकलाल (नाथूलालजी का पुत्र) को श्रीलालजी के नाम पर रक्खो '' नाथूलालजी ने माजी की यह आज्ञा शिरोधार्य की, फिर माजी ने कहा" "सुख से तुम आज्ञा देने जाओ । मेरा आशीर्वाद है कि श्रीजी सुन्दर रीति से संयम पालें, आत्मा का कल्याण करें और जैन मार्ग दिपावें " । धन्य है ऐसी उत्कृष्ट इच्छा वाली माताओं को ! ❋ इसी तरह गुजरमलजी पोरवाड़ की माता तथा उनकी स्त्री तथा उनके भाई मांगीलालजी को समझा उनकी दीक्षा की आज्ञा भी प्राप्त की । पहिले से ही साधु का वेष पहिन लिया होने से किसी

❋ माता के सम्बन्ध में एक कथा पूज्य श्री कहते कि पांच पुत्र वाली एक माता के एक पुत्र की इच्छा दीक्षा लेने की होने से गुरु श्री ने माता को सदुपदेश दे अपने पुत्र की भिक्षा देने कहा उस माता ने अपने अहोभाग्य समझ एक के बदले दो पुत्रों को गुरुजी के शिष्य बनाये ।

प्रकार की धूम धाम की आवश्यकता न हुई । टोंक से पूर्व में ७ कोस दूर वणेठा ग्राम में उन्हें दीक्षा का पाठ पढ़ाया जाने वाला था। माधोपुर वाले लक्ष्मीचंदजी तथा मुनिराज वगैरह पहिले से ही वहां पहुंच गए थे। और टोंक से श्रीजी की माता की आज्ञा ले उनके भाई नाथूलालजी तथा सेठ हीरालालजी के पुत्र रामगोपालजी लक्ष्मीचन्दजी प्रभृति तथा गुजरमलजी की माता की आज्ञा लेकर उनके भाई मांगीलालजी पोरवाड़ वगैरह चादर कपड़े आदि लेकर वणेठ आये।

संवत् १९४५ के माघ वद्य ७ गुरुवार के दिन सुबह आठ बजे पूज्य श्री अनूपचंदजी महाराज की सम्प्रदाय के पूज्य श्री किशन-लालजी महाराज ने श्रीलालजी तथा गुजरमलजी दोनों को विधि-पूर्वक दीक्षा दी। यहां यह बात सिद्ध हुई कि "हम परिस्थिति के दास नहीं" परन्तु हम जिसके लिये आग्रह पूर्वक विचार कर रहे थे और जिसके लिये अखंड उद्योग करते थे वह प्रत्यक्ष प्राप्त हो ही गया। दीक्षा लेने के प्रथम गुजरमलजी ने श्रीलालजी से कहा कि, मैं आपकी नेश्राय में विचरूंगा अर्थात् आपका शिष्य होऊंगा। तब श्रीजी ने कहा कि, मुझे शिष्य करने का त्याग है।

परस्पर थोड़े बहुत प्रश्नोत्तर हुए पश्चात् जब गुजरमलजी ने श्रीजी से शिष्य के समान अपने को स्वीकार करने की बहुत विनय पूर्वक अर्ज की, तब श्रीजी ने कहा—तुम मेरी आज्ञा में चलोगे?

गुजरमलजीः— (सबके संमुख बोले) मैं सर्वदा आपकी आज्ञा में ही विचरूंगा।

श्रीजीः—बस, तो अभी ही मेरी आज्ञा है कि, अपन दोनों बलदेवजी महाराज की नेश्राय में रहें।

गुजरमलजी ने यह आज्ञा शिर चढ़ाई और दोनों को बलदेवजी मुनि (किसनदासजी महाराज के शिष्य) के शिष्य बनाये। श्रीजी की इच्छा न होते भी किशनलालजी महाराज बोले कि, हमतो गुजरमलजी को आपकी नेश्राय में समझते हैं यह सुनकर गुजरमलजी को अपार आनंद हुआ और वे बोले कि, मुझे सम्यक्त्व रत्न की प्रीति कराने वाले धर्म के मार्ग पर लगाने वाले सच्चे उपकारी गुरु तो श्रीजी महाराज ही हैं।

यद्यपि श्रीजी की इच्छा पूज्य श्री हुकमीचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध विद्वान मुनि श्री चौथमलजी महाराज के पास दीक्षा लेने की थी, तो भी उनके माता पिता के आग्रह से अपने गुरु आमनाय की सम्प्रदायमें अर्थात् कोटे वाले की सम्प्रदाय में दीक्षा देने की थी और इसी शर्त से आज्ञा मिली थी। इसलिये कोटा सम्प्रदाय में उन्होंने दीक्षा ली दीक्षा लेने के पहिले ही आचार सम्बन्धी कितनी ही कठिन शर्तें उनके गुरु से श्रीजी ने मंजूर करवाली थीं।

श्रीजी को दीक्षित हुए पश्चात् श्री किशनलालजी महाराज से नाथूलालजी ने विनय की, कि आप श्रीजी के साथ टोंक पधार कर हमारी मातुश्री के दर्शन की अभिलाषा पूर्ण करो। महाराजने कहा जैसा अवसर।

तत्पश्चात् महाराज साहिब टोंक पधारें और वहां एक ही रात रह दर्शन दे हाड़ोती की ओर विहार किया और वहां से झालरापाटन पधारे।

संवत् १६४६ का चातुर्मास झालरापाटन किया। वहां धर्म का बहुत उद्योत हुआ, परन्तु श्रीजी महाराज के गुरु के भी गुरु श्रीकिशनलालजी महाराज कि, जो उनके ज्ञानादि गुणों की अभिवृद्धि करने वाले आलंबन भूत थे उनका इस चातुर्मास में स्वर्गवास होगया इस कारण श्रीजी को बहुत दुःख हुआ। परन्तु जिन्दगी की अस्थिरता और का संसार असारपना समझने वाले तुरन्त उसे सहन करने के लिये कटिबद्ध होगए और वीर वाक्यों की मलहम पट्टी से इस घाव को भरने लगे।
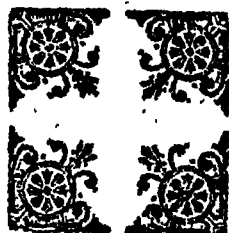
अध्याय ७ वाँ।

सरिता का सागर में प्रवेश।

पूर्व अध्याय में अपन पढ़ चुके हैं कि, श्रीजी की आंतरिक अभिलाषा ज्ञान वृद्धि और चारित्र विशुद्धि विषय में अपनी इष्ट-सिद्धि साधनार्थ श्रीमान् हुकमीचंदजी महाराज की सम्प्रदाय में सम्मिलित होने की थी, चातुर्मास पूर्ण हुए पश्चात् अपना मनोरथ खुले दिल से गुरु की सेवा में निवेदन किया। मुनिश्री किसनलालजी तथा बलदेवजी ने कहा एकतो गुरु वियोग से हमारा हृदय भस्म होरहा है और तुम भी हम से अलग होकर जले पर नमक छिड़कना चाहते हो।

उत्तर में श्रीजी महाराज ने विनय पूर्वक कहा कि, जिस हेतु से मैंने घर द्वार और कुटुम्ब परिवार त्यागा है उस हेतु को पूर्णांश से सिद्ध करना ही मेरा परम ध्येय है।

श्रीजी महाराज अपने उच्चाशय से न डिगे और अपने दृढ निश्चय को सिद्ध करने के लिये गुरुजी की शुभाशीष पाकर रामपुरा पधारे। वहां सुयोग्य सुश्रावक केसरीमलजी सुराना का समागम

शास्त्राध्ययन में अत्यन्त उपयोगी हुआ। श्रीजी अविरत रीति से शास्त्राध्ययन करते लगे। ज्ञानमें अधिक उन्नति की। इनकी व्याख्यान शैली भी उत्तम और आकर्षक होने से श्रावकों में भी ज्ञानरुचि और धर्म भावना बढ़ने लगी।

चातुर्मास पूर्ण हुए बाद रामपुरा से विहार कर श्रीकानोड़ मुकाम पर पंडित मुनि श्री चौथमलजी महाराज विराजते थे वहां पधारे और अपना अभिप्राय कहा। टोंक श्रीयुत नाथूलालजी बम्ब को भी यह खबर मिलते ही वेभी कानोड़ आये और श्रीजी महाराज की इच्छानुसार उन्हें अपनी नैश्राय में लेने के लिये श्रीमान् चौथमलजी महाराज को आज्ञापत्र लिखा दिया, तब उन्होंने अपने बड़े शिष्य वृद्धिचंदजी महाराज के शिष्य बनाकर श्रीजी महाराज को अपनी सम्प्रदाय में ले लिया। यह घटना डुंगरा (मेवाड़) मुकामपर संवत् १९४७ के मगसर शुक्ला १ शनिवार को हुई। तत्पश्चात् वे श्रीमान् चौथमलजी महाराजकी आज्ञामें विचरने लगे। यहां उनकी आत्मिक शक्तिका अधिक विकाश हुआ। ज्ञानी गुरुके समागम से सूत्र ज्ञान में आशातीत उन्नति की, निरतिचार चारित्र पालन से वे गुरु के प्रीतिपात्र होकर लोगों में पूजनीय और कीर्ति के केलिग्रह सदृश होगए। " सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ? "

सं. १९४८ का चातुर्मास सद्गुरुवर्य श्रीचौथमलजी महाराज के साथ कानोड़ में किया।

यहां विशेषतया व्याख्यान श्रीजी महाराज फरमाते थे। पत्थर जैसे हृदय को पिघलादे ऐसा उपदेश और उसका अद्भुत असर देख सब को बडा आनंदाश्चर्य होता और श्रोतृगण पर अवर्णनीय उपकार होता था।

इस चातुर्मास में वे जिस मकान में ठहरे थे वहां एक बड़ा विकराल सर्प रहता था। एक दिन भी ऐसा भाग्य से ही होजाता कि, जिस दिन सर्प देखने में न आता हो। आहार पानी के पाट पर वह कई समय गरल डालता था। रात के समय रास्ते में पग देते या पात्रा टालने जाते तो रजोहरण के साथ ठुकराता। तब दूसरी राहमें आकर फूंकार मारता और सामने होवा था। तथा कचित् समय पाद का प्रहार करता था। दिन में भी वह निडर हो उस मकान में फिरता था। सांप साधुजी से निर्भय था। इसी तरह साधु भी सांप से निर्भय थें। श्रावकोंने मकान बदलने के लिये महाराज से पुनः २ बहुत विनय की, परन्तु यह निष्फल गई। महाराज कहते थे कि पहिले के मुनि सिंहकी गुफा, सर्प के बिल और घोर श्मशान भूमि में स्वेच्छापूर्वक जाकर उपसर्गों को निमंत्रित करते थे। यह सर्प हमारी कसौटी के लिये बिना आमंत्रित किये यहां आया है सो बेशक हमारे सत्संग का लाभ उठा पवित्र जिनवाणी का श्रवण करता रहे। पूर्ण चातुर्मास इसी स्थानं पर सांप के साथ रहकर व्यतीत किया परन्तु पुण्यप्रसाद से तथा तपचारित्र के प्रभाव से सांप

कुछ उपसर्ग न कर सका और साधुओं के धैर्य तथा निर्भयता की कसौटी का यह समय निर्विघ्न समाप्त हुआ। इस युगमें भी चारित्र बल अपना प्रभाव तिर्यंचों पर दिखा सकता है, जिसके अनेक उदाहरण पूज्य श्री के जीवन में मिलेंगे।

संवत् १९५० का चातुर्मास श्रीमान् चौथमलजी महाराज के चरणकमल के समीप रहकर जावदमें किया। श्रीजी के समागम तथा सद्बोध से जैन अजैन इत्यादि लोग हर्षित हुए और ज्ञानवृद्धि कर कर्त्तव्यपरायण बने।

संवत् १९५१ का चातुर्मास निम्बाहेड़ा (मालवा) संवत् १९५२ का छोटी सादड़ी (मेवाड़) और सं० १९५३ का चातुर्मास जावद में किया। श्री जी महाराज चातुर्मास या शेषकाल जहां २ विराजते थे वहां वहां के लोग उनके अपरिमित ज्ञान निर्मल चारित्र वाक्पटुता इत्यादि असाधारण गुणों से मुग्ध बनकर श्रीजी की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते थे। दिन पर दिन उनका विमल यश देश देशान्तरों में विस्तरित होने लगा।

सागर वर गंभीरा।

संवत् १९५३ में तपस्वीजी श्री हजारीमलजी महाराज के साथ श्रीजी महाराज ठाणा ३ रामपुरा पधारे। वहां ऐसे समाचार

मिले कि, आचार्य महोदय श्री उदयसागरजी महाराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं, आचार्य श्री की ओर श्रीजी का अनुपम भक्ति भाव जब गृस्थाश्रम में थे तब ही से था उपरोक्त समाचार मिलते ही उनके चिन्तातुर हृदय और दर्शनातुर नेत्रों ने शीघ्र विहार करने के लिये प्रेरणा की और थोड़े ही दिनों में परम प्रतापी महान् आचार्य श्री उदयसागरजी महाराजकी सेवा में रतलाम पधारे।

श्रीलालजी महाराज का ज्ञानाभ्यास की ओर विशेष लक्ष तथा तदनुसार उत्तम आचार विचार देख आचार्यजी महाराज बहुत प्रसन्न हुए और श्रीजी से पूछा कि अब कौन से सूत्र का अभ्यास करते हो? श्रीजी ने विनयपूर्वक उत्तर दिया:—" कृपानाथ! अभी मैं श्री ठाणांगजी सूत्र का अभ्यास करता हूं" यह सुनकर श्रीमान् आचार्य श्री के मुख कमल से सहल ही ऐसे शब्द निकल पड़े कि, ठाणांग समवायंग सूत्र का अभ्यास करने से 'सागर वर गंभीरा' होओगे। इस आशीर्वचन को महाराज श्री ने परम आदर पूर्वक शिरसावंद्य कर कहा, कि कल्पवृक्ष की सेवा करने से इच्छित वस्तु की प्राप्ति हो उसमें आश्चर्य क्या?

पाठक पहिले पढ़ चुके हैं कि, जब श्रीजी गृहवास में थे तब उन्हें श्रीधर नाम देने वाले भी येही महापुरुष थे। ज्ञान और संयम रूपी श्री (लक्ष्मी) को धारण कर सचमुच श्रीधर बन फिर जब

इन्हीं महापुरुष की सेवा में उपस्थित हुए तो उन्हें 'सागर समान गंभीर होओगे' ऐसी शुभाशिष दी और वह थोड़े बहुत समय में सफल भी हुई। सतत् सत्य का सेवन करने वाले महापुरुषों के वचन कदापि निष्फल नहीं जाते। योग दर्शन के प्रणेता पतञ्जलि मुनि (जिन्हों ने हरिभद्र सूरी को मार्गानुसारी कहा है) कहते हैं कि—

" सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् "

सूत्रार्थः– (साधक योगी के चित्त में) सत्य की स्थिरता होने पर क्रिया तथा फल की स्वाधीनता (होती है)

अर्थात् अपनी इच्छानुसार अन्य को धर्माधर्म तथा स्वर्ग नरकादि प्राप्त करा देने का उस योगी की वाणी में सामर्थ्य है। सत्य जिसे सिद्ध हो गया है ऐसे योगी की वाणी अमोघ, अप्रतिहत होती है। इसलिये ऐसा योगी किसी को कहे कि, तू धार्मिक होजा तो उनके वचनमात्र से हीं वह पापी हो तो भी धार्मिक हो जाता है, किसीको कहदें कि तू स्वर्ग प्राप्त कर, तो उनके कथनमात्र से ही वह अधार्मिक हो तो भी स्वर्ग नहीं देने वाले संस्कारोंको दूर कर स्वर्ग प्राप्त कर लेता है (पातंजल योगदर्शन)

आचार्य श्री के शरीर में व्याधि बढ़ती देख शरीरका क्षण भंगुर स्वभाव समझ उन्होंने सम्प्रदाय की रक्षा और उन्नति के लिये श्रीमान् चौथमलजी महाराज को युवाचार्य पद पर नियुक्त किया। (संवत् १९५२) तत्पश्चात् वेदनीय कर्म के क्षयोपशम से पूज्य श्री को कुछ आराम होने पर उनकी आज्ञा ले श्रीजी ने रतलाम से विहार किया और संवत् १९५३ का चातुर्मास युवाचार्यजी महाराज़ के साथ जावद में किया।

अध्याय ८ वाँ।

मेवाड़ के मुख्य प्रधान को प्रतिबोध।

श्रीजी की अपूर्व ख्याति सुन मेवाड़ के * पायतख्त उदयपुर के श्री संघ ने उनका उदयपुर चातुर्मास होने के लिये आग्रह पूर्वक अर्ज की। इसलिये सं० १९५३ का चातुर्मास उदयपुर में हुआ। वहां व्याख्यान में हिन्दू मुसलमान हजारों लोग आने लगे। कई मंदिर-

---

*मेवाड़ की प्रसिद्धि में अनेक ग्रंथ लिखे गए हैं अपनी टेक कायम रखने के लिये राणा प्रताप ने हजारों संकट सहन किये थे समस्त हिंद में उदयपुर के राजपूत अग्र स्थान पाते हैं मुसलमानों ने चित्तौड़ को पायमाल किये बाद उदयपुर को राजधानी बनाया था। पुरुषों ने अपना हठ कायम रखने और स्त्रियोंने अपना सतीत्व कायम रखने के लिये प्राणों की भी परवाह न की थी। उनके स्मारक अभी चित्तौड़-गढ़ में कायम हैं। भारत के इतिहास में मेवाड़ की कीर्ति सुवर्णाक्षरों से अंकित है. इतनाही नहीं आज भी अपने उस मान के लिये उन्हें गर्व है, सम्राट् जार्ज के दिल्ली दरबार के समय भी हिन्द के दूसरे महान् राज्यों से भी इनके लिये खास व्यवस्था हुई थी और

मार्गी भाई भी नित्य प्रति व्याख्यान श्रवण का लाभ लेने लगे और उनमें से कितने ही ने श्रीजी से सम्यक्त्व भी ग्रहण की श्रीजी महाराज के अनुपम गुणों में सब लोग मुग्ध होते और कहते कि, सचमुच उस महात्मा का अस्तित्व जैन-शासन के पुनरुत्थान के लिये ही है ।

अभी भी उदयपुर राज्य अपने सिक्के में 'दोस्त लंडन' लिखते हैं चारों ओर की उच्च पहाड़ियां प्राकृतिक कोट के रूप में विद्यमान हैं । यहां की जमीन ऊंची होने से कई जगह यहां से पानी जाता है परन्तु कहीं से श्री उदयपुर में पानी नहीं आ सकता मेवाड़ की भूमि भी पवित्र गिनी जाती है । जैनियों के श्री ऋषभ नाथजी श्रीकेशरियाजी, वैष्णवों के श्रीनाथजी और शैवों के श्री एकलिंगजी इन तीनों धामों का राज्य की तरफ से पूर्ण मान सन्मान किया जाता है । श्री ऋषभदेव स्वामी के पाटवी खानदान में होने से अभी तक ये " धर्मरक्षक " के समान अपना धर्म अदा करते हैं । इस राज्य का मूलसिद्धान्त है कि, "जो दृढ राखे धर्म को तिह राखे करतार" चक्रवर्ती राजाओं की सेवा में सोलह हजार और बत्तीस हजार राजा रहते थे वैसा ही हाल श्री उदयपुर के महाराणा साहब का है ये भी अपने सोलह और बत्तीस उमरावों में सूर्य के समान शोभा पाते निकलते हैं । कचहरी सवारी तथा राज्य की दूसरी रीति रिवाज अब

इस चातुर्मास में उदयपुर में संवर और तपश्चरण इतना अधिक हुआ कि, पहिले कभी भी न हुआ था। स्कंध त्याग प्रत्याख्यान इत्यादि इतने अधिक हुए कि, जिनकी कदाचित् नामवार तफ़सील दी जाय तो एक पुस्तक भर जाय।

कई श्रावक श्राविकाओं ने बारह व्रत अङ्गीकार किये—शारीरिक रचना, वैद्यक, नीति करकसर इत्यादि सिद्धान्तों से मांस खाना हानिकारक समझ कई मांसाहारी लोगों ने मांस भक्षण करने का त्याग किया कईयों ने मदिरापान त्याग और कईयोंने शिकार खेलना छोड़ा। कसाइयों को मुंह मांगे दाम देकर छुड़ाने की अपेक्षा मांसाहारियों को समझाने में विशेष लाभ है। शहर में बड़े (वीसा ओसवाल) के मालिकत एक पंचायती हवेली है जिसे

भी शास्त्रानुसार ही होते रहते हैं—जगन्माता गाय को मेवाड़ की सीमा के बाहर कोई नहीं लेजा सकता, बैल, भैंस, पाड़े इत्यादि जानवर भी अजान आदमी या कसाई के हाथ बेचने की सख्त मनह है, मोर, कबूतर, मच्छी, मारनेकी भी मनाई है। वृद्ध जानवरों को नीलाम नहीं करने देते और न कसाई के हाथ ही बेचने देते। राज्य की तरफ से सरकारी पशुशाला में उनका पालन किया जाता है वर्ष के कई महीनों कसाई कंदोई तेली कुम्हार इत्यादिकों से अगते पलाये जाते हैं।

नोहरा भी कहते हैं इसी बड़ी विशाल जगह में साधु मुनिराज चातुर्मास करते हैं वहां हमेशा २०० से ३०० मनुष्य श्रीजी के व्याख्यान में एकत्रित होते थे। दोनों बड़ी २ धर्मशालाएं भर जाने पर तीसरी भोजनशाला है वहां बैठना पड़ता था। श्रीजी की आवाज़ इतनी बुलंद थी कि सब श्रोतृसमुदाय बराबर श्रवण कर सकता था।

चातुर्मास में आमेट के रावतजी साहिब पंचायती नोहरे में पधारे थे श्रीजी महाराज के सदुपदेश से उन्हें बहुत ही आनंद हुआ अहिंसा धर्म की रुचि हुई व्याख्यान के पश्चात् खड़े हो श्रीजी महाराज के पास उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की कि, नवरात्रों में बलिदान होता है उसमें से दो पाड़े और चार बकरे हमेशा के लिये कम करता हूं। इसी तरह कोठारिया के रावतजी साहिब ने भी दो पाड़े और चार बकरे नवरात्रों के बलिदान में से हमेशा के लिये कम करने की महाराज के पास प्रतिज्ञा ली थी. इनके सिवाय दूसरे भी कई जागीरदारों ने तथा राज्यकर्मचारियों ने श्रीजी के अनुपम सद्बोध से नाना-विधि की प्रतिज्ञाएं ली थीं।

चातुर्मास पूर्ण हुए पश्चात् कार्तिक वद १ के रोज विहार कर आहड़ ग्राम कि जो उदयपुर से १॥ माइल दूर अति प्राचीन स्थान है वहां श्रीजी महाराज पधारे वहां श्रीमान् वल-

पूज्यश्रीना साचा सलाह-कारो.

परिचय प्रकरण ४८.
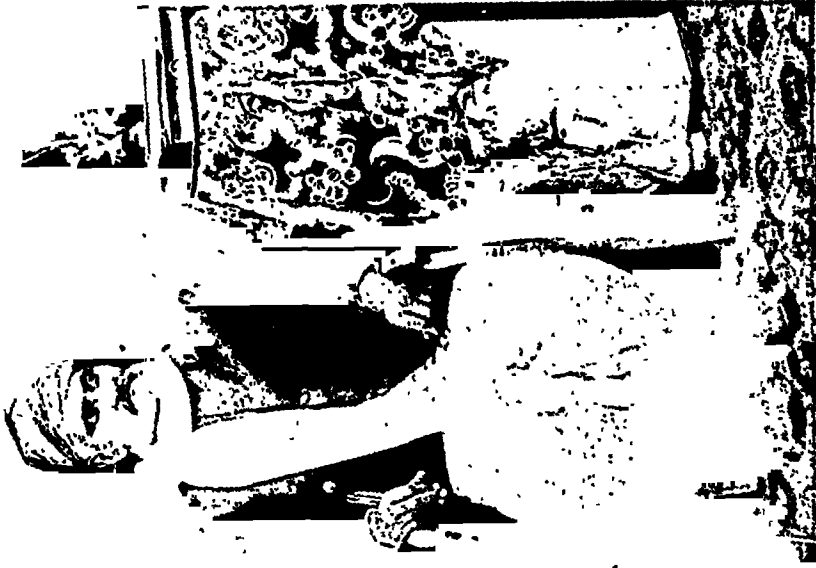
सेठजी वालमुकनजी मुथा–सतारा.
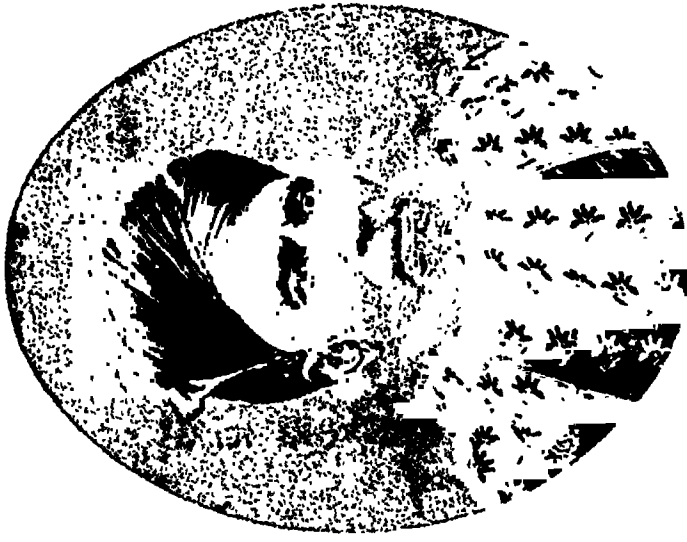
सेठजी अमरचंदजी पीतलीया–रतलाम.

मेवाडना मुख्य प्रधान श्रीमान् कोठारीजी
श्री बलवंतसिंहजी साहेब-उदयपुर.

परिचय-प्रकरण ८-४२-४४-४८.

वंत सिंहजी साहिब कोठारी * उनकी अद्भुत प्रशंसा सुन दर्शनार्थ पधारे दर्शन कर वार्तालाप किया । कितनी ही शंकाएं थीं जिनके निराकरणार्थ विविध प्रश्न किये । उनको महाराज श्री की तरफ से ऐसे संतोष कारक उत्तर मिले कि उनका मन बहुत ही प्रफुल्लित हुआ ।

फिर दूसरे दिन दीवान साहिब आहेड़ पधोर उनके साथ श्रीमान् महेताजी गोविन्दसिंहजी साहिब भी पधोर दर्शन कर एकान्त स्थानमें पूज्यश्री के पास बैठ अनेक बातें बहुत समय तक करते रहे और उसी दिन से श्रीमान् कोठारीजी साहिब के हृदय पर महाराज श्री के वचनामृतों का इतना अधिक प्रभाव गिरा कि जैन

---

* श्रीमान् कोठारीजी साहिब उस समय उदयपुर के मुख्य दीवान थे । साथ के पृष्ठ पर उनका फोटू दिया गया है । वे विद्वान्, बुद्धिमान्, सत्यवक्ता, विचक्षण और सब धर्मों पर एकसा भाव रखते श्रीमान् मेवाड़ाधीश हिंदवा सूर्य महाराणा साहिब की वे अंतःकरण पूर्वक प्रशंनीय सेवा बजाते हैं । उनकी अनुकरणीय राज्यभक्ति के कारण महाराज श्री के प्रीतिपात्र और विश्वासपात्र हो गए हैं। अभी भी राज्य में उनकी मानमर्यादा अधिक है । पाव म सुवर्ण बक्ता हैं और वंश परम्परा की जागीर मिली है ।

धर्म पर उनकी दृढ श्रद्धा हो गई और श्रीजी महाराज के वे अनन्य भक्त बन गए. तत् पश्चात् वहां से विहार कर मेवाड के ग्रामों में विचरते समय लोगों ने उनसे हजारों स्कंध, तपश्चर्या तथा व्रत, प्रत्याख्यान किये।

अध्याय ९ वाँ।

पति की राह पर पत्नी।

क्रमशः मेवाड़ मालवा की भूमि पावन करते श्रीजी महाराज रतलाम पधारे। श्रीमान् युवाचार्यजी महाराज भी जावरा से विहार कर रतलाम पधार गए थे। रतलाम श्री संघने अत्यंत उत्साह भक्ति और हर्ष पूर्वक उनका स्वागत किया। प्रायः दो हजार मनुष्य, उन्हें लेने के लिये सामने गए थे। उस समय आचार्य श्री-उदयसागरजी महाराज की तकलीफ के समाचार देशान्तरों में फैलते ही हजारों लोग पूज्य श्री के दर्शनार्थ आने लगे। टोंक से श्रीयुत नाथूलालजी बम्ब उनके पुत्र मानिकलाल और श्रीमती मान-कुंवर बाई (श्रीजी की संसारावस्था की धर्मपत्नी) भी आई। उस समय हजारों मनुष्यों के बीच सिंहगर्जना से धर्म घोषणा करते श्रीलालजी महाराज की अपूर्व वाणी श्रवणकर मान-कुँवरबाई को वैराग्य उत्पन्न हुआ। पति की राह ग्रहण कर आत्मोन्नति साधने की उत्कंठा हुई अर्द्धांगना का दावा रखने वाली हरएक पत्नी को ऐसी सद्बुद्धि उत्पन्न होती ही है इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं' श्रीमान् आचार्यजी महाराज के पास ऐसी प्रतिज्ञा ली कि, मुझे एक

मास से अधिक समय तक संसार में रहने के प्रत्याख्यान हैं। उपरोक्त प्रतिज्ञा ले मानकुंवरबाई सबकी आज्ञा लेने टोंक गई।

सं० १९५४ माघ शुक्ला १० मी के दिन आचार्य श्री उदय सागरजी महाराज का स्वर्गवास हुआ उनकी ऊर्ध्व दैहिक क्रिया रतलाम के श्री संघ ने बहुत ही उदारता पूर्वक समारंभ से की।

पश्चात् सं० १९५४ के फाल्गुन शुक्ला ५ मी के रोज श्रीमती मान कुंवर बाई ने रतलाम स्थान पर श्रीमती रंगुजी महासतीजी की सम्प्रदायकी सतीजी श्री राजाजी के पास दीक्षा अंगीकार की उस समय श्रीजी महाराज भी रतलाम विराजते थे एक ही मिति को तीन दीक्षाएं हुईं। दीक्षा उत्सव भी बड़ी ही धूम धाम से किया गया रतलाम संघ संत महंत की सेवा और धर्मोन्नति के कार्य में समय २ पर अतुलित द्रव्य व्यय कर जिनमत को दिपाते हैं तथा कर्तव्य पालन करते हैं यह अत्यंत ही प्रशंसनीय है।

श्रीमान् चौथमलजी महाराज आचार्यपदारूढ़ हुए और सम्प्रदाय की सब तरह सार संभाल करने लगे परंतु स्वयं वयोवृद्ध होने से तथा नेत्रशक्ति भी क्षीण हो जाने से उनसे विहार होना अशक्य था इसलिये वे भी रतलाम में ही स्थिर

वास रहे और श्रीजी महाराज को आज्ञा की कि, तुम शेषकाल निकटवर्ती ग्रामों में विहार करते हुए चातुर्मास रतलामही करो अपने पश्चात् अगर सम्प्रदाय का भार उठा सके इतने गुण वाले व योग्यता वाले साधु कोई थे तो ये श्रीलालजी ही थे। और इसी लिये उन्हें अपने पास रख शिक्षित करने की उनकी इच्छा थी। इस लिये सं १९५५-५६-५७ ये तीनों चातुर्मास पूज्य श्री की सेवा में रह रतलाम किये। पवित्र पुरुष जिस स्थान को अपने चरणरज से पवित्र बना रहे हों वही स्थान तीर्थभूमि कहलाता है। उस समय रतलाम शहर सचमुच तीर्थक्षेत्र था। श्रीजी महाराज के सद्बोधामृत का विपुल प्रवाह रतलामवासीयों के अंतःकरण की मैल धो उन्हें पावन करता था। तीन वर्ष के बीच जो २ महान् उपकार हुए वे स्मरणीय हैं। देशान्तरों से भी बहुत लोग दर्शनार्थ रतलाम आते और श्रीजी महाराज के व्याख्यान से बहुत २ संतुष्ट होते थे। इससे श्रीजी महाराज की कीर्त्तिदुंदभी दशों दिशाओं में बजने लगी।
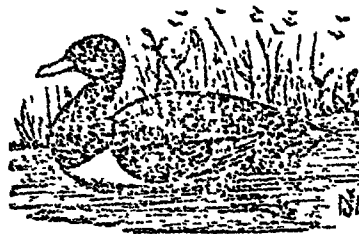
अध्याय १० वाँ

आचार्यपदारोहण

श्रीमान् आचार्य महोदय श्री चौथमलजी महाराज की सेवा में श्रीजी विराजते और अपने अमूल्य वचनामृतों द्वारा जनसमूह पर अपार उपकार कर रहे थे इतने ही में सं० १९५७ के कार्तिक मास में आचार्य श्री चौथमलजी महाराज के शरीर में व्याधि उत्पन्न हुई। क्षमासागर उसे समभाव से सहन करते थे। कार्तिक शुक्ला १ के रोज रात को १०-११ बजे व्याधि बढ़ने लगी। श्रीजी महाराज ने पूज्य श्रीकी सेवामें तन मन, अर्पण किया था। उनके हाथ में नाड़ी न आने से वे बाहर आये। और श्री ऋषभदासजी श्रीमाल जो संवर कर वहीं पर सोए थे उन्हें वह हकीकत कही तुरंत वे श्रीसंघ के अग्रगण्य सेठ अमरचंदजी साहिब पीतलिया तथा श्रीयुत तेजपालजी सचेती इत्यादि को यह खबर दे आये। इसपरसे वे दोनों तथा और कितने ही श्रावक पूज्य श्रीकी सेवामें आये। सेठ अमरचंदजी साहिब ने नाड़ी देखी और पूज्यश्री को आवाज़ दे सचेतन किया तुरन्त सचेतन हो उन्होंने उपस्थित साधु श्रावकों के समक्ष प्रकट आलोयना निंदना की पुनः महाव्रत आरोपण

कर शुद्ध हुए। उस समय सेठजी श्री अमरचंदजी पीतलिया श्रीयुत तेजपालजी इत्यादि श्रावकों ने अरज की कि "श्रीमान् ! आपने तो आलोयनादि करके शुद्धि करली है परंतु अब हमें और चतुर्विध संघको किस का आधार है। उत्तर में पूज्य महाराज ने फरमाया कि "मेरे पश्चात् सम्प्रदाय की सार संभाल श्रीलालजी करें" श्रीजी महाराज के अनुपम गुणों से श्रावक लोग परिचित थे और इसीलिये आचार्यपद को श्रीजी महाराज दिपावें ऐसा वे पहिले से ही चाहते थे सबब सबने पूज्य श्री की उपर्युक्त आज्ञाको अत्यानंद पूर्वक शिरोधार्य किया।

दूसरे दिन कार्तिक शुक्ला २ के रोज दोपहर को चतुर्विध संघ एकत्रित हुआ और श्रीमान् सेठ अमरचंदजी साहिब पीतलिया ने आचार्यश्री की सेवा में पुनः चतुर्विध संघके समक्ष अर्ज की कि "जैनशासनरूप आकाश में आप सूर्यवत् प्रकाश कर रहे हैं यह सूर्य चिरकाल तक प्रकाशित रह हमारे हृदय में व्याप्त अज्ञानान्धिकार को दूर करता रहे यह हमारी हार्दिक भावना है। परंतु आपके शरीर में व्याधि है इसीलिये सम्प्रदाय में जो मुनिराज आपको योग्य जंचते हों उन्हें युवाचार्य पद प्रदान करने की कृपा करें ऐसी मैं श्रीसंघ की तरफ से नम्र प्रार्थना करता हूं" इसपर से आचार्य श्री ने पुण्यपुंज सर्वदा सुयोग्य मुनिश्री श्रीलालजी महाराज को युवाचार्यपद प्रदान करने का हुक्म फरमाया. तब श्रीलालजी महाराज

ने अति नम्रभाव से आचार्यश्री की सेवा में सबके सामने यही अर्ज की कि 'सम्प्रदाय में कई मुनिराज मुझसे दीक्षा में वय में ज्ञान में, गुणों में अधिक हैं इसीलिये मुझपर यह भार न रक्खा जाय ऐसी मेरी अंतःकरण पूर्वक प्रार्थना है।

यह सुन श्रीजी महाराज के गुरु और आचार्य श्री के मुख्य शिष्य श्री वृद्धिचंद्रजी महाराज कि, जो वहां विराजमान थे वे श्रीजी से यों बोले कि " श्रीलालजी ! तुम्हें आनाकानी न करना चाहिये श्रीमान् आचार्यजी महाराज बहुत ही दीर्घदर्शी, पवित्रात्मा, समय के ज्ञाता और चतुर्विध संघ के परमहितैषी हैं उनकी आज्ञा शिरसा वंद्य कर श्रीसंघ की सेवा बजाओ और जैन-शासन को दिपाओ "। इन वचनों को चतुर्विध संघ ने बहुत २ अनुमोदन दिया तब श्रीलालजी महाराज दोनों हाथ जोड़ सिर नमा मौन रहे पश्चात् आचार्यजी महाराज ने श्री चतुर्विध संघ की सम्मति पूर्वक युवाचार्य पद प्रदान किया और चतुर्विध संघ को उनकी आज्ञा पालन करने का हुकम फरमाया, तब चतुर्विध संघ ने हर्ष गर्जना के साथ खड़े हो अत्यंत भक्तिभाव सहित नवयुवाचार्यजी महाराज की सदर्भ वंदना की।

श्रीमान् आचार्य श्री चौथमलजी महाराजने अपना अवसान-काल समीप समझ संथारा किया संथारे की खबर बिजली की तरह चारों

ओर फैलगई. संख्याबद्ध श्रावक श्राविकाएं बाहर ग्रामों से पूज्य श्री के दर्शनार्थ आने लगीं. नित्य चढ़ते परिणाम से कार्तिक शुक्ला ८ की रात को पूज्य श्री चौथमलजी महाराज शांतिपूर्वक औदारिक देह को त्याग स्वर्ग सिधारे।

दूसरे दिन अर्थात् सं० १९५७ के कार्तिक शुक्ला ९ के दिन सवेरे रतलाम संघ आचार्यश्री का निर्वाण महोत्सव करने को एकत्रित हुआ। दर्शनार्थ आये हुए अन्य ग्रामों के श्रावक बड़ी संख्या में वहां उपस्थित थे। उस समय चतुर्विध संघ ने श्रीमान् युवाचार्यजी महाराज को आचार्यपदारूढ़ करने के लिये उनके गुरु श्री वृद्धिचंदजी महाराज से विज्ञप्ति की।

आचार्य श्री के मृतदेह को विमान में पधराया. पश्चात् चतुर्विध संघ की विनय परसे उनके पाट पर श्रीमान् श्रीलालजी महाराज को बिठाये और उनके गुरु श्रीवृद्धिचंदजी महाराज ने आचार्य श्री की पछेवड़ी धारण कराई और चतुर्विध संघ अत्यन्त आनंद और भक्तिभाव सहित आचार्य श्री को वंदना कर जय विजय शब्दों से वधाने लगा शास्त्र और सम्प्रदाय की रीति के ज्ञाता श्रीमान् सेठ अमरचंदजी साहिब ने खड़े होकर बुलंद आवाज से कहा कि " आजसे श्रीमान् श्रीलालजी महाराज आचार्यपदारूढ हुए हैं इस लिये अब सब छोटे बड़े संतों को, आयर्चों को उसी तरह समस्त श्रावक श्राविकाओं को उनकी आज्ञा का पालन

करना चाहिये और सम्प्रदाय की रीत्यानुसार दीक्षा में बड़े मुनिराजों को वे वंदना करेंगे और छोटे मुनिराज उन्हें वंदना करेंगे परंतु सब को उनकी आज्ञा में चलना चाहिये " ये शब्द सुनकर सब ने एक ही आवाज से पूज्य श्री को विश्वास दिलाया कि आजसे आप की आज्ञा को प्रभु आज्ञा समान समझ हम आपकी आज्ञा में विचरेंगे।

पश्चात् सद्गत आचार्य श्री के मृत देह को हजारों मनुष्यों के समूह में मनोहर विमान में पधरा बड़े धूमधाम से जय २ नंदा जय २ भद्रा के शब्दों से आकाश को गुंजाते शहर के मध्य हो श्मशान भूमि में ले गए वहां चंदन, काष्ट घृतादि से अग्निसंस्कार किया।

आचार्य श्री चौथमलजी महाराज अंतिम तीन वर्षों से रतलाम में स्थिरवास थे. कारण कि उनकी नेत्र शक्ति क्षीण हो गई थी इस कारण से और वृद्धावस्था होने से साधुओं की बहुत संख्या वाली एक बड़ी सम्प्रदाय की भली भांति संभाल करने का कार्य आचार्य श्री चौथमलजी महाराज को मुश्किल मालूम होने से सम्प्रदाय की सम्यक् रीति से सार संभाल और उन्नति होने के लिये उन्होंने अपनी आज्ञा में विचरते साधुओं में से चार साधुओं को प्रवर्तक की तरह मुकर्रर कर सब अधिकार उन्हें सौंप दिये थे उन चार प्रवर्तकों के नाम-निम्नांकित हैं।

१ श्रीमान् कर्मचंद्रजी महाराज.

२ ,, मुन्नालालजी महाराज.

३ ,, श्रीलालजी महाराज.

४ ,, जवाहिरलालजी महाराज (वर्तमान आचार्य)

आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज़ दीक्षा में उस समय कई मुनिवरों से छोटे थे, उनका वय भी सिर्फ ३१ वर्ष का था परंतु उन्होंने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की अपरिमित वृद्धि की थी, उनके उदात्त विचार, धैर्य, शांतता, क्षमा, मनोनिग्रह, जितेन्द्रियता, न्यायप्रियता, वाक्पटुता, विनय, वैराग्य आदि २ उत्तम गुण शुक्लपक्ष के चन्द्र की भांति दिन प्रति दिन वृद्धि पाते थे इसमें श्रीमान् हुक्मीचंद्रजी महाराज के सम्प्रदाय की उन्नति हो उसका गौरव विशेष वृद्धि पायगा ऐसी चतुर्विध संघ को पूर्ण उम्मेद हो गई थी और सबके मन सन्तुष्ट थे।

श्रीजी महाराज को अपने प्राप्त अधिकार की महत्ता और जोखमदारी का सम्पूर्ण भान था सम्प्रदाय की उन्नति करने की उनकी तीव्र अभिलाषा थी इसलिये वे आचार्यपद प्राप्त होते ही अति-सावधानी से प्रमाद को त्याग पूर्व से भी विशेष पुरुषार्थ करने लगे ज्ञान, दर्शन, चारित्र के पर्यायों में वे विशेष कर वृद्धि करने लगे, जिसके परिणाम में उनका मतिश्रुत ज्ञान अधिक निर्मल हो गया

कि चाहे जो मनुष्य चाहे जैसे विकट प्रश्न करता उसे वे ऐसी सफाई और खूबी तथा संतोष कारक उत्तर देते कि, प्रश्नकर्ता को पुनः शंका उठाने की प्राय: आवश्यकता न रहती थी, इस प्रकार जैन शास्त्रों का उद्योत करता हुआ भव्यजनों के, हृदयरूप कमल वन को विकसित करता हुआ, पूज्यश्रीरूपपाद विहारी सूर्य भूमंडल में विचरने लगा।

रतलाम का चातुर्मास पूर्ण हुए पश्चात् पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज वहां से विहार कर मालवा और मेवाड़ की भूमि को पावन करते २ अपने पूर्व पुण्य का प्रकाश फैलाते तथा श्री हुक्मीचंद्रजी महाराज की सम्प्रदाय का गौरव बढ़ाते अनुक्रम से उदयपुर शेल-काल पधारे उस समय उदयपुर के मुख्य दीवान श्रीमान् कोठारीजी साहिब व्याख्यान का लाभ लेते थे वे पूज्य श्री से व्याख्यान के बीच में ही खड़े होकर सं० १९५८ का चातुर्मास उदयपुर करने के लिए प्रार्थना करने लगे इसके उत्तर में पूज्य श्री ने फरमाया कि इस वर्ष तो यहां चातुर्मास करने की अनुकूलता नहीं है परंतु तुम्हारे लिये जवाहिर (जवाहरात) की पेटी समान श्री जवाहिरलालजी महाराज को उदयपुर चातुर्मास करने भेज दूंगा और उनके चातुर्मास से आनंद मंगल होता रहेगा तदनुसार सं० १९५८में श्रीमान् जवाहर लालजी महाराज को उदयपुर चातुर्मास करने को भेजा वहां उनके उपदेश से बड़ा उपकार हुआ कई कसाइयों ने जीवहिंसा करने तथा मांस भक्षण करने का त्याग किया इस वर्ष मोतीलालजी

तपस्वीजी महाराज ने ४५ उपवास किये थे उस मौकेपर श्रावण वद ७ से भाद्रपद वद ७ तक कसाई खाने बंद रहे हजारों जीवों को अभयदान दिया गया, कई जीव सुलभ बोधी हुए। महाराज श्री के व्याख्यान की अद्भुत छटा से जैन अजैन श्रोतृगण पर अपूर्व प्रभाव पड़ता था। उदयपुर का श्रावक समुदाय चातुर्मास के दरम्यान पूज्य श्री के वचनों को पुनः २ याद कर उनका उपकार मानता और कहता था कि, सचमुच जवाहिर की पेटी ही हमारे लिये पूज्यश्री ने भेजी है ये जवाहिरलालजी महाराज वेही हैं जो अभी आचार्य पद दिपा रहे हैं आपने दक्षिण के प्रवास में संस्कृत का बहुत अच्छा अभ्यास किया है।
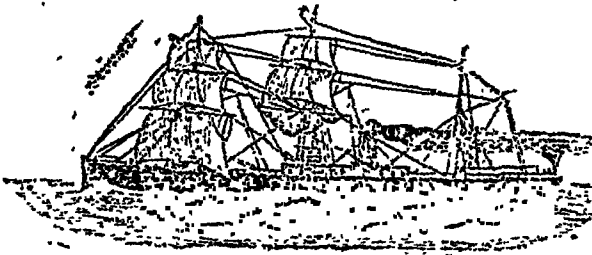
अध्याय ११ वाँ

सदुपदेश-प्रभाव ।

भीलवाड़ा—पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज उदयपुर से भीलवाड़े पधारे शेषकाल कल्पते दिन ठहरे। भीलवाड़ा के हाकिम महताजी श्री गोविंदसिंहजी साहिब ने श्रीमान् के सदुपदेश से सम्यक्त्व रत्न प्राप्त किया। वे व्याख्यान में पधारते थे, जैनधर्म का रंग उनकी हड्डी २ की मींजी में रम गया था, वे पूज्य श्री के अनन्य भक्त बन गए। उपरोक्त हाकिम साहिब ने जीवदया के अनेक बृहद् कार्य किये हैं और जैनधर्म का बहुत उद्योत किया है।

श्रीयुत करोड़ीमलजी सुराणा कि, जो भीलवाड़े के एक श्रीमंत सद्गृहस्थ थे उन्हें पूज्य श्री के सदुपदेश से वैराग्य उत्पन्न हुआ उन्होंने धन, माल, जमीन इत्यादि त्याग कर सं० १६५८ के चैत्र वैशाख वद १ के रोज बड़े ठाठ (धूमधाम) से दीक्षा ली।

श्रीजी के व्याख्यान में स्वमती अन्यमती, हिन्दू मुसलमान सब आते थे, डाक्टर हसमत अलीजी श्रीजी के पास आते थे और उनका जीवदया की ओर पूर्ण प्रेम होगया था।

भीलवाड़े से क्रमशः विहार करते २ नागोर से पूज्य श्री देह पधारे वहां के ठाकुर साहिब कालुसिंहजी राठोड़ पूज्य श्री के व्याख्यान में आते पूज्य श्री की प्रभावशाली वाणी सुन उन्हें अपरिमित आनंद होता था। उन्होंने दारू, मांस हमेशा के लिये त्याग दिया था, रात्रिभोजन का त्याग किया, उनका जैनधर्म पर बहुत प्रेम होगया था। उनकी नवकार महामंत्र पर अतुल श्रद्धा जम गई थी ये ठाकुर साहिब प्रति दिन छः सामायिक करते और महीने के छः पौषध करते थे यह सब प्रताप पार्श्वमणि—समान प्रतापी पूज्य श्री के सत्संग और सद्बोध का था।

जोधपुर (चातुर्मास) सं० १९५७ का चातुर्मास जोधपुर में किया इस चातुर्मास में पूज्य श्री की अमृतधारा वाणी से अनहद उपकार हुआ। वैष्णव धर्मानुयायी प्रायः ४०—५० घर पूज्य श्री के अपूर्व उपदेशामृत का पान कर जैनधर्मानुयायी बने जिनमें खास कर श्रीयुत गुलाबदासजी अग्रवाल तो व्रतधारी श्रावक हो बने।

जावद:— जोधपुर से विहार कर सं० १९५८ के मगसर महीने में श्रीमान् वृद्धिचंदजी महाराज के साथ पूज्य श्री जावद पधारे। वहां पूज्य श्री के उपदेशामृत का पान करते २ वैराग्य दशा को प्राप्त हुए भाई मोडीलालजी और गब्बूलालजी का दीक्षा महोत्सव मगसर वद्य १० के रोज हुआ।

बीकानेरः (चातुर्मास) सं० १६५८ का चातुर्मास पूज्य श्री ने बीकानेर किया वहां धर्म का अपूर्व उद्योत हुआ। यहां के अपने स्वधर्म परायण भाईयोंने अभयदान, ज्ञानदान, आतिथ्य–सत्कार इत्यादि पारमार्थिक कार्यों में पुष्कल द्रव्य व्यय किया पूज्य श्री की कीर्त्ति दशों दिशाओं में विस्तृत होने से दूर २ देशावरों के लोग पूज्य श्री के दर्शनार्थ संख्याबद्ध आते, उनका स्वागत बीकानेर का संघ बहुत उत्कंठा और उदारता पूर्वक करता था। साधु साध्वियों के तपश्चर्या की तथा ज्ञानध्यान की खूब धूम मच रही थी। अनेक श्रावक और श्राविकाएं भी व्रत, प्रत्याख्यान, दया, पौषध, पंचरंगी इत्यादि से अपनी आत्मा का कल्याण करने लगीं। व्याख्यान में स्वमती अन्यमतियों की भारी भीड़ होने लगी। इस चातुर्मास में हजारों पशुओं को अभय दान मिला था।

कितने अन्य मतावलंबियों ने जैन–धर्म अंगीकार किया सुप्रसिद्ध सुश्रावक गणेशीलालजी मालू कि, जो साधुमार्गी जैन धर्म के कट्टर विरोधी थे पूज्य श्री के परिचय और सदुपदेश से दृढ श्रावक बन गए और चातुर्मास में श्रीजी के दर्शनार्थ आये हुए सैकड़ों श्रावक श्राविकाओं के आगत स्वागत तथा भोजन इत्यादि का तमाम प्रबंध उन्होंने अपने खर्च से किया था। इतनाही नहीं परंतु जैनधर्म के उद्योत के लिये तथा जनसमूह के हितार्थ परमार्थ कार्य में इन्होंने लाखों रुपयों का सदव्यय किया और वर्तमान में उनके

दत्तक पुत्र को भी द्रव्य के हक के साथ २ इस सद्गुण का भी हक़ प्राप्त हुआ है।

इस चातुर्मास के दरम्यान एक बख्तावर नाम की वेश्या ने पूज्य श्री के सदुपदेश से वेश्यावृत्ति का बिल्कुल त्याग किया था तथा वह श्राविकावृत्ति धारण कर पवित्र और धर्ममय जीवन व्यतीत करने लगी थी कि, जो अभी भी विद्यामान है।

बीकानेर के चातुर्मास के पश्चात् पूज्य श्री ने जोधपुर की तरफ़ विहार किया। वहां श्री मुन्नालालजी महाराज का समागम हुआ परंतु किसी आचार्य श्री की इच्छा के विरुद्ध वे पृथक् विचरने लगे। इस कारण से श्रीमान् के हृदय में जावरे वाले संतो को अपने साथ शामिल करने की प्रेरणा हुई। फिर वहां से वे क्रमशः विहार कर मेवाड़ में पधारे उदयपुर संघ की कई वर्षों से चातुर्मास के लिये विनन्ती थी इसलिये सं० १६५६ का चातुर्मास उदयपुर में किया।
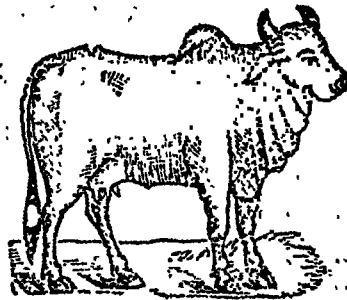
अध्याय १२ वाँ

अपूर्व—उद्योत।
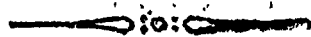
पूज्य श्री का चातुर्मास होने के कारण उदयपुर संघ में आनन्दोत्सव छा गया पहिले कभी किसी स्थान पर पचीसरंगी सामयिक होने का वृत्तान्त नहीं सुना था। वह पचीसरंगी यहाँ पर हुई इस संवर—करणी में ६२५ पुरुषों की उपस्थिति की आवश्यकता होती है। लोगों का उत्साह इतना अधिक बढ़ा था कि, चित्तौड़ निवासी मोडसिंहजी सुराना ने एक ही आसन पर एक साथ १५१ सामायिक किये। एवं दिन रात खड़े रहकर सामायिक का समय व्यतीत किया। इसी भांति घेरीलालजी महता ने १३१, तथा कन्हैयालालजी भंडारी ने १३१ सामायिक खड़े रहकर किये और अति उत्साह-पूर्वक पचीसरंगी के ऊपर सामायिक की पचरंगी तथा नवरंगी की। इस चौमासे में १०८ अठाइयाँ हुई थीं। इसके सिवाय सैकड़ों स्कंध तथा अन्य प्रकार की भी बहुतसी तपश्चर्या हुई थी।

कई खटीकों (कसाइयों) ने हमेशा के लिये जीवहिंसा का त्याग किया। इस प्रकार त्याग करने वाले खटीकों में से

किशोर, गोकल बरधा, और नन्दा ये चारों भाई तथा दूसरे भी कई खटीक और उनकी स्त्रियाँ, साधु मुनिराजों के पास उनके व्याख्यान (उपदेश) सुनने आती थीं। पूज्य श्री के उपदेश से कसाई पने का धन्दा छोड़ने के पश्चात् किशोर आदि की आर्थिक- स्थिति अच्छी होने से बहुत सुखी हो गये थे। वर्तमान समय में भी ब्याज बट्टा तथा हुंडी पत्री का धन्दा करते हैं, और बाजार में उनकी साख (पेठ) इतनी बढ़ गई है कि, उनकी हजारों रुपयों की हुंडियाँ बिक जाती हैं। इनके सिवाय दूसरे भी कई नीच (शूद्र) लोगों ने आजीवन मांस, मदिरा का उपयोग करना छोड़ दिया और कितने ही अन्यमतावलम्बी जैन–धर्मावलम्बी हो गये।

गोचरी करने के हेतु पूज्य श्री स्वयं जाते और सामुदायिक गोचरी करते थे। अन्य धर्म (जैनेतर) तथा दीनावस्था वाले मनुष्यों के यहाँ जाकर मक्की तथा जौकी रोटी ' वेहर ' लाते थे। शास्त्रों में जिन जिन जातियों के यहाँ का आहार ग्रहण करने की आज्ञा है उन उन के यहाँ से आहार ले आने में पूज्य श्री अपने मन में जरा भी संकोच नहीं करते थे।

इस वर्ष भी बाहर से सैकड़ों लोग पूज्य श्री के दर्शनार्थ आते थे। उन सबों के भोजन आदि का प्रबन्ध संघ की ओर से भली भाँति होता थी।

अमीर, उमराव, आफिसर और राज्य-कर्मचारी गण आदि बहु संख्यक लोग व्याख्यान से लाभ उठाते थे, और उनमें से कई जैन धर्म के प्रेमी भी हो गये थे। उन सबों में श्रीमान् महाराणाजी साहिब के ज्यूडिशियल सेक्रेटरी लाला केशरीलालजी साहिब का नाम उल्लेखनीय है। पूज्य श्री के सदुपदेश से उन्होंने जैन-धर्म को स्वीकार किया, इतना ही नहीं किन्तु उन्होंने जैनशास्त्र का उच्च कोटी का ज्ञान सम्पादन करके, जो एक उत्तम श्रावक को शोभा दे, उस प्रकार का अनुकरणीय पारमार्थिक जीवन व्यतीत किया है, और हजारों पशुओं को अभय-दान दिया है। लाला साहिब अब भी विद्यमान हैं। कुछ महीने पहिले (संवत्) १९७७ के अधिक श्रावण की २ के दिनका मुकाम बीकानेर सभा में हमारे जाने से, उनकी भेट का हमें लाभ प्राप्त हुआ था। वर्तमान आचार्य महोदय श्रीमान् जवाहिरलालजी महाराज का चातुर्मास उस समय बीकानेर में था अतः उनके सत्संग का लाभ उठाने के लिये ही वे बीकानेर में आकर रहे थे। इन महानुभाव का संक्षिप्त जीवन-चरित्र उनके ही मुंह से श्रवण करने की हम को अभिलाषा होने से उन्हों ने निम्न लिखित जीवन-परिचय दिया था।

मेरा नाम केशरीलाल है और मेरी जाति कायस्थ माथुर है है मेरा निवास स्थान (वतन) उदयपुर है। मैंने ५० वर्ष तक मेवाड़ दरबार की नौकरी की है। जिनमें से २४ वर्ष तक ज्यूडी-

शियल सेक्रेटरी के पदपर रहकर स्वयं महाराणा साहिब श्री फतेसिंहजी बहादुर के समक्ष मुकद्दमों की पेशी की है, और अब ३ वर्ष से श्री पूज्य १००८ पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के १६ वर्ष के सत्संग और सदुपदेश से निवृत्तिपरायण-जीवन व्यतीत करता हूं।

किशनगढ़ महाराज के सम्बन्धी (कुटुम्बी) सरदारसिंहजी नामक एक राठोड़ राजपूत जो कि, वैष्णवधर्मावलम्बी थे और विरक्त दशा में रहते थे। वे योग विद्या के पूर्ण अभ्यासी थे। मैं उनके पास उदयपुर मुकाम पर, योगाभ्यास करने के हेतु संवत् १९५३ में जाता था एक दिन उनने मुझे सामने के बगीचे में से मेंहदी के झाड़ का फूल तोड़कर ले जाते देखा। उसी समय तुरंत ही आवाज देकर मुझे बुलाया और कहा कि "तुमने डाली के ऊपर से यह फूल किस लिये तोड़ा? यदि कोई तुम्हारी अंगुली काटकर लेजाय तो तुम्हें कितना दर्द हो? क्या तुम नहीं जानते कि, जिस प्रकार तुम्हारे शरीर में दर्द होता है, उसी प्रकार वृक्ष में भी जीव होने से उसको दर्द होता है?" इसके सिवाय उन्होंने फूल में के त्रसजीव (चलते फिरते) भी प्रत्यक्ष रूप से मुझे बतलाये और कहा कि "मुझे मालूम होता है कि, तुमने किसी जैन साधु महात्मा की संगति नहीं की होगी इसी कारण से ही मूर्ख के समान इन जीवों को कष्ट पहुंचाते हो"। मैंने यह सुन,

आश्चर्यान्वित (विस्मित) हो अपने योगी गुरु से प्रार्थना की कि" हम वैष्णव धर्मी हैं, हमको जैन साधु महात्माओं का सत्संग करने की क्या आवश्यकता ?" इसके सिवाय मैंने यह भी सुना है कि" हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्" ।

यह सुनकर उन योगी ने उत्तर दिया कि" यह वचन तो किसी मूर्ख का है अब तुम अवश्य किसी जैन साधु महात्मा की संगति करो" । उन्हीं महात्मा की कही हुई बात है कि "तीर्थंकर सब से बड़े हैं और उन्होंने जो वाणी फरमाई है वह सत्य ही सत्य कही है क्योंकि, वे सर्वज्ञानी और सर्वदर्शी हुए और इस बात का मुझको पूर्ण विश्वास दिलाने के लिये जैनकी कई एक धर्मकथाएं दृष्टान्तरूप से अवसर २ पर फरमाते रहे, मुझे उनकी कृपा से योगाभ्यास में अत्यन्त लाभ हुआ था, और उनके वचनों पर मेरी पूर्ण श्रद्धा जम गई थी, उनकी प्रत्येक बात को मैं अन्तःकरण पूर्वक सत्य मानता था । इस कारण उसी दिन से जैन साधु महात्माओं के दर्शन और सत्संग की उत्कट अभिलाषा हो गई ।

इस अरसे में एक दिन एक मनुष्य गोभी का फूल लेकर जाता था उसके पास से मेरे योगी गुरु ने गोभी मंगाई और एक थरिया (थाली) में खखेरी तो उसमें से बहुत त्रस जीव निकले वे प्रत्यक्ष बताये और गोभी खाने की मुझे शपथ (सौगंध) भी दिलाई ।

उपरोक्त कथनानुसार जैन साधुओं के दर्शन के लिये मेरी अभिलाषा दिनो दिन विशेष बलवती होती गई, और सौभाग्य से संवत् १६५६ में श्रीमान् पूज्यश्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज का चातुर्मास्य उदयपुर होने से उनका पधारना हुआ। यह खबर मिलते ही मैंने उनके चरणकमलों में जाकर वन्दना की और व्याख्यान भी सुना। पूज्यश्री पूर्ण दयादृष्टि से मेरे समान अन्य धर्मी अजान को प्रत्येक बात व्याख्यान द्वारा पूर्ण प्रेम के साथ स्पष्टीकरण करके समझाने लगे। पूज्य श्री ने मेरे मन को जीत लिया और उसी दिन मैंने अपने पहिले योगी महात्मा को यह सब वृत्तान्त निवेदन किया, तो उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक फरमाया कि, तुम प्रति दिन व्याख्यान सुनते रहो और जो सुनो वह मुझे भी यहां आकर कहते रहो। चौमासे के चार महीनों में प्रायः सदैव मैंने व्याख्यान सुना, तब से आज तक लगभग १७ वर्ष हुए, पूज्य महाराज तथा अन्य मुनिराजों का जबजब उदयपुर में पधारना होता रहा, तब तब मैं बराबर उनकी सेवा करता रहा हूं तथा व्याख्यान सुनता रहा हूं। और खास करके पूज्य महाराज जहां विराजते हों वहां देश परदेश में रहकर उनकी वाणी श्रवण करने का लाभ लेता रहा हूं। उनकी कृपा से मुझे अलभ्य लाभ होने लगा है।"

प्रिय पाठक! उक्त शब्द स्वयं लालाजी के ही कहे हुए हैं। उनकी आयु (उमर) इस समय ६८ वर्ष की है, तो भी एक युवा

(जुवान) के समान काम कर सकते हैं। धर्मोन्नति के काम में हमेशा अग्रगण्य रहते हैं, वे एक ही बार भोजन करते हैं, और ७ सात पदार्थों के सिवाय सब पदार्थों का उन्होंने त्याग कर दिया है। मूंग की दाल, रोटी, दूध, चावल, जल, एक शाक यह उनकी खुराक है। सब प्रकार की मिठाई खाना भी आपने छोड़ दिया है।

संवत् १८६३ में वर्तमान आचार्य महोदय श्रीमान् जवाहिर-लालजी महाराज का चातुर्मास था। उस समय उनके सदुपदेश से लालाजी ने अपनी पत्नी के सहित (जोड़ी से) ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया है।

लालाजी को अंग्रेजी, फारसी तथा कायदे कानून का उच्च ज्ञान है। उनकी बुद्धि अत्यन्त निर्मल है। उनका जैनशास्त्र का ज्ञान भी प्रशंसनीय है। वे उत्तम वर्ग के श्रोता हैं। प्रति वर्ष वे सैकड़ों रुपये पशुओं को अभयदान देने आदि धार्मिक कार्यों में व्यय करते हैं और गत तीन वर्षों से उन्होंने अपना जीवन पारमार्थिक कार्य करने के हेतु ही अर्पण कर दिया है। वे पूज्य श्री के अनन्य भक्त हैं।

संवत् १९९० के उदयपुर के चातुर्मास में उपरोक्त लिखे अनुसार, लालाजी केशरीलालजी जैन-धर्म के पूरे अनुरागी हुए। उसी प्रकार उदयपुर के एक बड़े वकील श्रीयुत हीरालालजी ताकड़ियाको जिनके पास हजारों रुपयों की स्थावर तथा जंगम स्टेट (मिल्कियत)

थी उनको पूज्य श्री के उपदेश से वैराग्य उत्पन्न हो गया; इस कारण उनने तथा जावरे वाले एक गृहस्थ श्रीयुत हीराचन्दजी ने पूज्य श्री के पास 'दीक्षा' लेने का निश्चय किया।

चातुर्मास पूर्ण होते ही संवत् १९६० की मंगसर वदि ३ के दिन उन दोनों को कविराज श्री शामलदासजी की बाड़ी में बड़ी धूम धाम के साथ दीक्षा देने में आई। इस प्रकार का दीक्षामहोत्सव इससे प्रथम उदयपुर में कभी नहीं हुआ था।

श्रीवकील हीरालालजी पूज्य श्री के पास दीक्षा लेते हैं, ऐसी खबर मिलते ही श्रीमान् हिन्दवां सूर्य महाराणा साहिब ने कृपा पूर्वक एक हाथी दीक्षा लेने वाले को बैठने के लिये, तथा एक हाथी आगे रखने के लिये, तथा सरकारी बाजे इत्यादि सरकार में से भेज दिये तथा नवदीक्षित को पछेड़ी ओढ़ाने के लिये उत्तम दो थान मल मल के भेज दिये।

श्रीयुत हीरालालजी ताकड़िया हाथी पर बैठे और दूसरे हीराचन्दजी जावरे वाले पालखी में बैठे। एक हाथी निशान समेत आगे चलता था। हजारों मनुष्यों की भीड़ लगी हुई थी। श्रीयुत हीरालालजी ताकड़िया ने रुपयों की एक थैली अपने पास रख ली थी वे उसमें से मुट्ठी भरभर कर भीड़ में फैंकते जाते थे। श्रद्धावान मनुष्य इस प्रकार के पैसों को पवित्र मान कर इकट्ठा कर रखते हैं

दीक्षा का वरघोड़ा बाज़ार के बीच में होकर, घंटाघर के पास होता हुआ हाथीपोल (दरवाजा) के बाहर की कविराजजी की बाड़ी में आ पहुंचा और वहां पर पूज्य श्री ने दोनों महानुभावों को विधि पूर्वक दीक्षा दी। पूज्य श्री को शिष्य करने का त्याग होने के कारण उन्हों ने दोनों मुनि श्रीलालचन्द्रजी महाराज के नेश्राय में कर दिये।

तत्पश्चात् पूज्य श्री उदयपुर से विहार करके 'कणपुर' होकर उदयपुर से १० कोस 'ऊंटाला' नामक ग्राम की ओर पधारते हुए रास्ते में ऊंटाला की हद में एक कसाई ८० बकरों सहित सामने मिला। यह खटीक—कसाई ग्राम 'कपासन' में से बकरे खरीद करके, उदयपुर के कसाइयों के हाथ बेचने के लिये ले जाता था। पूज्य श्री की दृष्टि उन बकरों पर पड़ी और कारुण्य भाव की छाया उनके मुखकमल पर छा गई। 'ऊंटाला' के लोगों ने इसी समय उस खटीक को १७५ रुपये देने का ठहराकर, ८० बकरों को अभयदान दिया और उनको उदयपुर के नगरसेठ के पास भिजवा देने का प्रबन्ध किया। खटीक के हृदय में स्वाभाविक रीति से ही, पूज्य श्री पर अतुलनीय पूज्य भाव प्रकट हुआ और वह पूज्य श्री के पैरों में पड़कर पुनः २ अपने अपराध की क्षमा मांगने लगा। पूज्य श्री ने समयानुसार उसको अत्यन्त प्रभावोत्पादक और उपदेशप्रद ज्ञान के वचन कहे। इसका 'निशाने' के समान ऐसा प्रभाव पड़ा कि, उसने स्वयं महाराज श्री के पास आकर इस प्रकार प्रतिज्ञा की कि,

" महाराज ! मैं आसपास के गामों में से बकरे खरीद करके, उदयपुर के खटीकों के हाथ बेचता हूं, मेरा यही धन्दा है; किन्तु आज से मैं जीऊंगा वहां तक यह धन्दा नहीं करूंगा " । *

वहां से पूज्य श्री कानोड़ पधारे। कानोड़ के रावजी साहिब ने कानोड़ पट्टे के गामों में जहां जहां नदी, नाले और तालाब हो वहां और उसी प्रकार उनका खालसा गाम ' कुणानी ' के पास जो नदी है वहां मच्छी मारने की हमेशा के लिये मनाही कर दी उस आज्ञा की आज तक पालना होती है । इसके सिवाय पूज्य श्री के उपदेश से कानोड़ में ५० के लगभग ' स्कंध ' हुए ।

---

*कुछ मास पहिले उदयपुर वाले जीतमलजी भटा भी हमको कहते थे कि, उपरोक्त खटीक ने यह धंदा बिल्कुल छोड़ दिया है ।

अध्याय १३ वाँ

उपसर्ग को निमंत्रण।

कानोड़ से क्रमशः विहार करते हुए आचार्य श्री चित्तौड़ होते हुए 'मांडलगढ़, पधारे और वहां से कोटे की ओर विहार किया कोटे जाने के दो रास्ते हैं। एक मार्ग जंगल में होकर जाता है वह महाभंयकर है। दूसरा रास्ता जंगल को चक्कर देकर जाता है। पूज्य श्री ने सीधा जाने वाला (पहिला) रास्ता पसन्द किया और मांडलगढ़ से विहार करके खिंगोली पधारे। वहाँ के लोगों ने पूज्य श्री से प्रार्थना की कि "इस रास्ते यदि आप न पधारो तो उत्तम हो क्योंकि, यह रास्ता भूल भूलावणी वाला ' याने इस रास्ते में मार्ग भूल जाने का डर है) और लगभग १०, १२ कोस का जङ्गल है और उसमें सिंह, चीते, रीछ आदि मनुष्य को फाड़ कर खाजाने वाले हिंसक पशु बहुतायत से बसते हैं। दूसरे रास्ते होकर यदि आप कोटे पधारेंगे, तो केवल १५ कोस आपको अधिक चलना पड़ेगा किन्तु इस रास्ते में किसी प्रकार का भय नहीं है। अपने शरीर की पर्वाह नहीं करने वाले, और आपत्तियों को आनन्द पूर्वक आमंत्रण देने वाले पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज ने लोगों की

प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया और सीधा मार्ग पकड़ा। यह दुराग्रह नहीं किन्तु आत्म श्रद्धा का दृष्टान्त है पूज्य श्री के साथ आठ साधु थे। उनमें से अधिकांश साधुओं को उस दिन उपवास था। किसी किसी ने केवल छाछ (मही) पीने का आगार (छूट) रखा था। थोड़ा मार्ग व्यतीक्रम करते ही पहाड़ों में रास्ता भूल गये और दूसरी पगडंडी से चढ़ गये। ज्यों ज्यों आगे बढ़ते गये त्यों त्यों बहुत ही भयावना और घना जङ्गल आने लगा। हिंसक पशुओं की पादपंक्तियें (पैरों के चिन्ह) दृष्टिगोचर होने लगीं, सिंह बाघ इत्यादि के गगन भेदी शब्द श्रुतगोचर (सुनाई देना) होने लगे, इस कारण एक साधुने पूज्य श्री से अर्ज की कि "महाराज यह जङ्गल सचमुच ही महाभयङ्कर है।" महाराज ने कहा "भाई अपन साधुओं को किस बात का डर है ? भय तो उसे होना चाहिये जो मृत्यु को अपने जीवन का अन्त समझता हो, शरीर के विनाश के साथ में अपना नाश मानता हो अथवा मृत्यु के पश्चात् के जीवन को भय और आपदा का स्थान मानता हो। जो सद्गुरु के प्रताप से जिनवाणी का ठीक ठीक रहस्य समझता हो उसको जीवन और मरण में कुछ भी न्यूनाधिकता नहीं समझना चाहिये। जीने की आशा और मरने का भय इन दोनों को जला भस्म करके विचरने में ही अपने संयम–जीवन की सच्ची कसौटी है। माया ममता को हवा में फैंक दो और दृढ़ता धारण करो"।

इतने में एक अन्य साधुने कहा "महाराज ! दूसरा तो कुछ नहीं किन्तु रास्ता भूल गये हैं इससे बहुत ही हैरान होना पड़ेगा"। श्रीजी महाराज ने फर्माया "कुछ पर्वाह नहीं, यकीन रक्खो और श्री नवकार मंत्र का ध्यान धरो", सबों ने आगे चलना शुरू किया हाबी फलका से रास्ता भूले थे लेकिन पूज्य श्री ने जो दिशा साधी थी उसको वे चूके नहीं थे उससे छः कोस दूर वड़दा नामक गाम है वहां पर सब पहुँचे। वहाँ से छाछ मिली और सब कोई आगे बढ़े पैर थक गये थे तो भी आशा उत्साह नहीं थका था। आशा पैरों को नया बल देती जाती थी। उस दिन कम से कम १२ कोस की यात्रा हुई होगी।

मनुष्य स्वभाव का पृथक्करण करने वाले एक अनुभवी के अनुभान सत्य हैं कि: "जिस मनुष्य की वाणी, व्यवहार, चालचलन (दिखावा) विजय का विश्वास बँधाने वाले होते हैं वही मनुष्य विजय के विश्वास का प्रचार कर सकता है और स्वतः के प्रारम्भ किये हुए कार्य को पूर्ण करने में सामर्थ्यवान् है, इस प्रकार की श्रद्धा भी उत्पन्न कर सकता है। जो मनुष्य आत्म-श्रद्धा वाला, निश्चयी एवं आशावादी है वह अपना कार्य सफलता मिलने की प्रतीति सहित प्रारम्भ करता है वह महान् आकर्षण शक्ति भी रखता है। शिथिल महत्वाकांक्षा अथवा अपूर्ण उद्योग से कभी भी कोई कार्य सिद्ध नहीं हुआ। अपनी आशा, श्रद्धा, निश्चय और उद्योग में बल

(शक्ति) होना चाहिये । अपने कार्य को सिद्ध करने वाली शक्ति के सहित निश्चय करना चाहिये ।

भट्टी के बर्तनों को पक्के करने के लिये सुवर्ण को शुद्ध कुन्दन होने के लिये, और धातुओं को आकृति के रूप में आने के लिये अग्नि की आँच सहकर उसमें से निकालना पड़ता है। इस दृष्टान्त से अनेकों विषय की बातें विचार सकते हैं। साधुलोग आत्म-श्रद्धा वाले और मन को दृढ़ रखने वाले हों तो विचारा हुआ कार्य पूर्ण कर सकते हैं। आधि, व्याधि और उपाधि के दास बने हुए डर पोक साधुओं को बिल्कुल समीप दिखाते हुए गांवों के बीच में, अच्छे दिन में विहार करते हुए भी, साथ में मनुष्य रखना पड़ता है यह निर्बलता का नमूना है।

विशुद्ध संयम के प्रभाव के अदृश्य-आन्दोलनों द्वारा प्रकृति पर भी इतना अधिक असर पड़ता था कि, सूर्य की उष्णता से संरक्षण करने के लिये बादलों में भी स्पर्धा (ईर्षा) उत्पन्न होगई थी (याने आसमान में बादलों के आवागमन का क्रम नहीं टूटता था और छाया बनी रहती थी) ठीक दुपहरी (मध्यान्ह के समय) में शीतल वायु का अनुभव होता था और जंगली जानवर भी छिप छुप कर महात्माओं के दर्शन से कृतार्थ होते थे। बहुरत्ना वसुन्धरा। श्री तीर्थंकरों के समोसरण में बाघ, सिंह, बकरे, मैंढे

एक साथ बैठकर क्रीड़ा करते, इन्हीं तीर्थंकरों के चरित्रों (इकाइयों में फूल (पुष्प) नहीं तो फूल की पांखड़ीरूप यह अद्भुत शक्ति हो तो उसमें आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं है। योगी साधुओं की अपार लीला है। दूसरे प्राचीन समय में सब प्रकार की सुविधा होते हुए भी संयमी मुनिराज घोर श्मशान, सर्प की बांबी (बिल, दर) और सिंह की गुफाओं के पास चातुर्मास करते थे। यह सब कुछ पोथियों में बाँध, पिटारे में पूर अपने मनचाहे (इच्छानुसार) स्थान पर ही विराजना और परिसह-कसौटी का अवसर ही न आने देना यह एक प्रकार की काल दोष की भीरुता ही है।
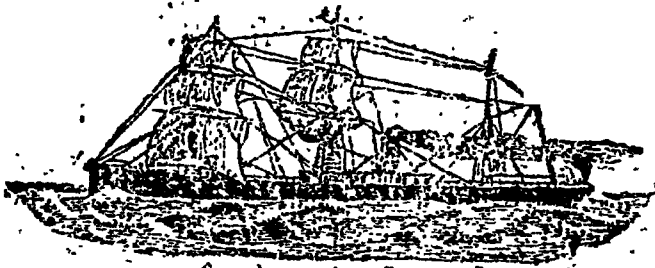
अध्याय १४ वाँ

जन्मभूमि में धर्म जागृति ।

टोंक (चातुर्मास) मेवाड़ में से क्रमशः विहार करते हुए कोटे होकर टोंक पधारे और संवत् १९६१ विक्रमी का चातुर्मास अपनी जन्मभूमि टोंक में किया। यहाँ धर्म का अत्यन्त उद्योत हुआ । अजमेर से दीवान बहादुर सेठ उम्मेदमलजी साहिब लोढा आचार्य श्री के दर्शनार्थ टोंक पधारे थे । ये वहाँ के नवाब साहिब को भेंट करने को गये, उस समय नवाब साहिब के समक्ष आचार्य श्री की दैवी अनुपम वाणी, और उत्तमोत्तम गुणों की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा कि " यह रत्न आपकी ही राजधानी में उत्पन्न हुए होने से जैन इतिहास में टोंक का नाम भी स्वर्णाक्षरों से अंकित होगा,, । यह सुन कर नवाब साहिब अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होंने भी पूज्य श्री की प्रशंसा की ।

पूज्य श्री की अपूर्व प्रशंसा सुनकर खान साहिब महम्मद इब्राहिम खान पूज्य श्री के पास आने लगे और उनके हृदय पर श्रीजी के उपदेश का इतना प्रभावोत्पादक असर पड़ा की, उन्होंने

" आजीवन शिकार नहीं खेलने तथा मांस नहीं खाने की प्रतिज्ञा की ।"

एक गृहस्थ कायस्थ लाला बद्रीलालजी ने अपनी स्त्री विद्यमान होते हुए भी ब्रह्मचर्य व्रत अङ्गीकार किया, श्रावकों के व्रतों का स्वीकार किया, सामायिक प्रतिक्रमण करना शुरू किया और दृढ धर्मी जैन बन गये। पूज्य श्री के हंसते चेहरे से मुख मंडल भव्य मालुम होता था। ज्ञान के प्रभाव से आंखें चमकती थीं। चेहरे पर माधुर्य, गांभीर्य, भव्यता, सामर्थ्य और दैवी-शक्ति का प्रकाश झलकता था। जिससे अपने सामने वाले मनुष्य पर इच्छानुसार प्रभाव पड़ता था।

सरकारी मेम्बर बाबू दामोदरदासजी साहिब जो कि, काठियावाड़ के ब्राह्मण गृहस्थ थे वे श्रीजी के मुखारविन्द की अमृतवाणी सुन कर अत्यन्त हर्षित होते, समग्र समय पूज्य श्री के पास आते। कितनी ही बार तो वे व्याख्यान के प्रारम्भ में ही उपस्थित होजाते और पूज्यश्री मंद मंद स्वर से—

सवैया—वीर हिमाचल से निकसी,
गुरु गौतम के श्रुत कुंड ढली है।
मोह महाचल भेद चली,
जग की जडता सब दूर करी है॥

ज्ञान पयोदधि माँहि रली,
बहु भङ्ग तरङ्गन से उछली है ॥
ता शुचि शारद गङ्ग नदी,
प्रणमी अँजली निज शीशधरी है ॥ १ ॥

यह स्तुति शुरू करते और श्रोता वर्ग उसको झेल कर गाते उस समय दामोदरदासजी को बहुतही रस आता (आनन्द मिलता) किसी भी धर्म की निन्दा न करते हुए सर्व धर्म वालों को सन्तोष देने की पद्धति से पूज्य श्री जहां २ अपने भक्तों में जाते अधिक भर्ती कर सकते इस गृहस्थ ने भी उपकारों के बदले में उत्तम प्रकार के नियम किये हैं।

एक वैष्णव सज्जन खदालालजी अग्रवाल ने पूज्य श्री के समीप सम्यक्त्व ग्रहण करके त्याग पच्चक्खाण किये। प्रतिवर्ष संवत्सरी का उपवास करने की प्रतिज्ञा की और जैन-धर्म के पूर्ण आस्तिक बन गये। इस समय भी उनकी वैसी ही धर्म रुचि है।

टोंक में लगभग ५० घर तेलियों के हैं उन्होंने पूज्य श्री के सदुपदेश से चौमासे में घाणी बंद रखने का ठहराव किया, वे आजतक उसका पालन करते आरहे हैं।

सांसारिक लोगों में कहावत है कि „ घर यह दुनियां का अन्त है। मातृभूमि के उपकार अवर्णनीय है। संसार के सब प्राणियों का हित चाहने वाले जन्मभूमि को किस प्रकार भूल सकते हैं? किसीने ठीक ही कहा है:—

क्या ऐसा नर शून्य हृदय का, इसजग में पाता विश्राम।
जो यह कभी नहीं कहता है 'यही हमारा देश–ललाम'॥
'मेरी प्यारी जन्मभूमि है' इस विचार से जिसका मन।
नहीं उमंगित हुआ वृथा है, उसका पृथ्वी पर जीवन॥

Breathes there the man, with soul so dead,
Who never to himself hath said,
This my own, my native land!

Sir Walter Scott.

उपकार का बदला न दे सकने के कारण सांसारिक दृष्टि से कृतघ्न गिने जाने की पर्वाह वे नहीं रखते थे किन्तु जहां पर उपकार होने का सम्भव होता था वहां वे सब से प्रथम विचरते थे। पूज्य श्री के टोंक में चातुर्मास जैनशासन का बहुत प्रकार से उद्योत होने के सिवाय जैन, अजैन, हिन्दू मुसलमान एवं राजा प्रजा को व्याख्यान के निमित्त परस्पर दृढ सम्बन्ध लाने का हेतु रूप हुआ था। धर्म के समान नाजुक विषय में पृथक् २ धर्म की प्रजा

और राजा परस्पर सहानुभूति रखते हों यह दोनों के कल्याण के लिये आवश्यक है। एक व्यौपारी बनिये का युवा पुत्र, परमार्थ पथ पर कहां तक प्रयास कर सकता है यह प्रयत्न अनुभव होने से वृद्ध लोगों की मंडली बातें किया करती कि " पुरुषों के प्रारब्ध के आगे पत्ता है, उसका यह प्रत्यक्ष प्रदर्शन श्री पूज्यजी महाराज हैं। रसिया के शिखर पर अकेले फिरते हुए श्रीलालजी में और इस समय के पूज्य श्रीलालजी में ' कीड़ी और कुंजर जैसा अन्तर पड़ गया था, इस समय बड़े २ राजा महाराजा और नवाब रसियां के शिखर के प्यारे लाल के पैरों में मस्तक झुकाते थे।

जिस व्यक्ति को हजारों लाखों मनुष्य मस्तक झुकाते हों, वैसी राजवंशी व्यक्तियां जिस समय एक वणिक् युवक के पैरों की रज अपने मस्तक पर चढ़ाने को अपना सौभाग्य समझें उस समय प्रकृति की मालूम न होने वाली कलाबाजी की अपूर्वता सिद्ध होती थी।

एक अनुभवी सत्य कहता है कि ' श्रद्धा गिरिशृङ्गों पर परिभ्रमण करती है, इस कारण उसकी दृष्टि-मर्यादा बहुत बड़ी होती है। अन्य मनुष्य जिस वस्तु को देखने में असमर्थ होते हैं वही वस्तु श्रद्धावान् मनुष्य की दृष्टिगोचर होती है। इससे जिस कार्य का प्रयत्न करना दूसरों को असम्भव प्रतीत होता है उसी

कार्य को करने में श्रद्धावान् मनुष्य विशेष प्रयत्न करता है। पूज्य श्रीजीने इसी प्रकार का प्रयत्न अपने स्थायी धैर्य से प्रारम्भ करने का निश्चय किया।

हम पहिले कह चुके हैं उस प्रकार जावरे के सन्तों को सम्मिलित करने (अपने में मिलाने) की पूज्य श्री की इच्छा थी। पूज्य श्री जब रतलाम पधारे तब अपना यह अभिप्राय वहाँ प्रकट किया। यह हकीकत (समाचार, हाल) जावरे के सन्तों तथा उनके भक्त श्रावकों को विदित होते ही वे आनन्दित हुए, कारण कि, उनकी भी इच्छा यही थी कि, पूज्य श्री की आज्ञा में विचरें। ये सन्त हुकमी-चन्दजी महाराज की ही सम्प्रदाय के हैं किन्तु श्री उदयसागरजी महाराज के समय से उनके साथ का सहभोजन का व्यवहार आदि बन्द करने में आया था जो आज तक कायम था। रतलाम में पूज्य श्री विराजते थे उस समय इनकी सेवा में जावरा के सन्तों की ओर से मुनि श्री देवीलालजी उपस्थित हुए। पूज्य श्री के पास यथोचित समाधान का वार्तालाप होने के बाद उनका सहभोज शामिल किया गया। इस समय उन सन्तों की ओर से मुनि श्री देवीलालजी ने कहा कि, भूत काल में जो हुआ सो हुआ किन्तु भविष्यत् काल में वैसा न हो इस बात का मैं सब सन्तों की ओर से विश्वास दिलाता हूं। उत्तर में आचार्य श्री ने न्यायानुसार फर-माया कि, अपने धर्म की सगाई है अणगार धर्म की मर्यादा में रह

ने वाले साधुओं को ही मैं मेरे साधु मान सकता हूं। यदि इस मर्यादा का कोई उल्लंघन करे तो उसके साथ समाचारी के संबन्ध को भङ्ग करने में मैं तनिक भी संकोच न करूँ इसका कारण यह है कि, जिस कर्त्तव्य के लिये कुटुम्बियों और संसार के सम्बन्ध को छोड़ा है उस कर्त्तव्य में अन्तराय करने वाले का साथ और सम्बन्ध त्याज्य है। परस्पर प्रेम पूर्वक संयम समाधान हो गया।

उचित रीति से विचारें तो मालूम हो कि, सहकार की भी सीमा हो सकती है। शास्त्र की प्रतिष्ठा और चारित्र्य के आदर्श जब तक उज्वल रहें तब तक ही सहकार सम्भव रह सकता है, तत्पश्चात् उसकी हद पूरी होते ही असहकार ही आवश्यक है छाती पर पत्थर बाँधकर अपार समुद्र नहीं तैर सकते। किस हेतु न्याय और कौनसी नीति साधने से सहकार या असहकार करना पड़ता है इसका गम्भीर विचार किये सिवाय किसी प्रकार भी अनुमान नहीं कर सकते। भारी और व्यवस्थित शासन के बिना प्रगति असम्भव ही है। किसी भी कार्य में अव्यवस्था घुसी, अंधाधुंधी और गडबड़ बढ़ती गई। विष प्रचारक चेप रोकने का उत्तम रामबाण उपाय असहकार है। समाचारी यह सहकार का माप दिखने का थर्मामेटर यंत्र ही है।

शरीर से साधु होने के साथ ही मन से भी साधु हो। मस्तक मुंडाने के साथ ही मन को भी मूँड़ा हुआ समझे तभी त्याग का शुद्ध

आँखों ले सकते हैं। "श्वेत कपड़े पहिने हैं पर श्वेत दिल कीना नहीं। सत्य कहता हूं मैं यारो! निज धर्म को चीन्हा नहीं"।

जो समाज को ऐक्यता का सबक सिखाने के लिये संसार त्यागी हुए हैं उनका कतरकर खाने वाला अनैक्यतारूपी कीड़ा निकल जाय और पूर्ववत् सुख शान्ति के साथ शासन की विजय ध्वजा फरके यह दशा देखकर किसका हृदय हर्ष से आल्हादित न हो! हा किन्तु इस हर्ष को सजीवन रखने के लिये महात्मा श्री गांधीजी के निम्नाङ्कित वचनामृत मुनिराजों को अपने हृदयपर अंङ्कित कर लेने चाहिये। ये वचन ऐसे हैं मानों श्री महावीर प्रभु की आज्ञायें ही प्रतिध्वनित हो रही हों! समाधान कर्त्ता को बदले या सौदे के रूप में मत समझो। मैत्री यह कुछ सौदा नहीं है। यह तो केवल धर्म और प्रेम सम्बन्ध हैं। जो सेवा है वही धर्म है और जो धर्म है वही ऋण (फर्ज) है यदि उस ऋण को नहीं चुकाना है तो पापके भागी होइये। अपने सामने वाले के व्यवहार की जिम्मेवारी उसीपर डालना योग्य है। क्योंकि, जितना विशेष दबाव डाला जावेगा उतना ही विशेष विरोध (बैर) होना सम्भव है। इसलिये प्रतिपक्षी (सामने वाले) को बर्त्ताव की जिम्मेवारी उसके खानदान और कर्त्तव्य का खयाल करके यह विषय उसी पर छोड़ देने में 'ही' बड़ी से बड़ी सेवा भरी हुई है॥ यह आत्म शुद्धि का मार्ग है। यह तपश्चर्या—आत्मयज्ञ है।

पूज्य श्री फरमाते थे कि, जैसे जहाज का आधार उसके योग्य कमान पर, रेलवे ट्रेन का आधार एँजिन की ब्रेक पर, और घड़ी का मुख्य आधार उसकी मुख्य कमानी पर है। उसी प्रकार मुनि-जीवन का आधार शुद्ध चारित्र पर है। जैसे आकाश में चन्द्र, सूर्य ग्रहादि अपनी नियमित चाल से चल रहे हैं। उसी प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप का नियत नियमानुसार ही साधुजीवन होना चाहिये।

पूज्य श्री सच्चे समयसूचक थे। उन श्रीमान् की गुण-ग्राहक बुद्धि कभी भी किसीके अवगुणों को याद करने का अवकाश ही न देती थी। वे महानुभाव, इसी प्रकार मानते कि 'दीर्घ दृष्टि से शान्ति पूर्वक समाधान करके समाज की रक्षा करना' यह पहिला धर्म है। आवेश के वेग में और पक्षापक्षरूपी अँधेरे में पड़कर अपना लक्ष्य नहीं चूकना चाहिये। अपने विपक्षी के दोषों (अवगुणों, ऐबों) का प्रदर्शन कराना (बताना) और उसकी निर्बलता के गीत गाते रहना यह कुछ चतुराई और विचारशीलता नहीं है। सांसारिक लोगों की दृष्टि में किसीको गिरा देने की अपेक्षा, यह उस प्रकार की भूलें (गलतियां) पुनः न करे, ऐसा धार्मिक या नैतिक दबाव देना यही बात साधुओं को शोभा देती है और अपने पूर्वजों की महापरिश्रम से रक्षा करके रखी हुई चारित्र-कीर्ति विशेष उज्ज्वल बनाती है।

शुद्ध संयम का पालना तलवार की धार पर चलने के समान है (वैराग्य-पंथ खड्गधार) घोड़े पर चढ़ने वाला पड़ता भी अवश्य है भोजन बनाने वाला अग्नि से जलता भी है, खलासी का काम करने वाले को डूबने का डर भी पहिले है उसी प्रकार सैन्य में आगे चलने वाले सेनापति को तीर, भाला, बन्दूक, तलवार आदि शस्त्रास्त्रों के आघात भी सहन करने पड़ते हैं। आगे चलने वाले की हिम्मत धैर्य बहादुरी पर ही पीछे वालों की विजय निर्भर है, आगे चलने वालों की बुद्धि की, पीछे वाले लोगों के हृदय पर परछांई पड़ती है।

आचार्य श्रीका जावरे के सन्तों को शामिल कर लेने का यह कार्य, सर्व मुनिवरों की सम्मति पूर्वक नहीं हुआ था, इस कारण से सम्प्रदाय के स्वामी श्रीमुन्नालालजी आदि कितने ही मुनिराज इससे अप्रसन्न हुए। इसका कारण यह है कि, वे उनको पूरी तौर से प्रायश्चित दिये बिना सम्मिलित करना नहीं चाहते थे। इसमें कई सन्तों ने पूज्य श्रीके इस कार्य को स्वीकार करने से इन्कार किया। किन्तु पूज्य श्रीकी समयसूचकता, सब को सन्तुष्ट रखने की अद्भुत प्रकार की कार्यदक्षता और समझावट से सबों को शान्त कर, जावरे वाले सन्तों के साथ सहभोजता आदि का व्यवहार शुरू करा सम्प्रदाय में सर्वत्र शान्ति स्थापित की। संसार-व्यवहार में फंसा हुआ प्राणी जो कुछ नहीं देख सकता है, उसी प्रकार की अपूर्वता त्यागी

मुनि देख सकते हैं। इनके अलिप्त रहने से वे सामान्य मनुष्य को अगोचर हो ऐसे भी कुछ २ पदार्थों का अनुभव कर सकते हैं। प्राकृतिक नियमों को स्वयं समझने एवं समझाने का उन्हें पूरा अवकाश मिलता है उनको स्वयं अपनी ही आत्मा का विचार नहीं करने का है किन्तु जो सम्प्रदाय के सिंहासन पर विराजता है उसके श्रेय के लिये भी प्राणपण से (जीतोड़, बहुत ही) प्रयत्न करना पड़ता है। मुखिया की जवाबदारी दूसरे सबों की अपेक्षा सदैव विशेष रहती है।

जोधपुर—(चातुर्मास) संवत् १६६२ का चातुर्मास पूज्य श्रीने जोधपुर में किया स्वधर्मी, अन्यधर्मी, हिन्दू, मुसलमान हजारों मनुष्य सदैव श्रीजी महाराज के वचनामृत का पान कर (श्रवण कर) सन्तुष्ट होते थे। और त्याग, प्रत्याख्यान, तपश्चर्या तथा संवर-करणी द्वारा आत्म साधन करते थे। कई मांसाहारी लोगों ने मांस भक्षण और मदिरापान का त्याग कर दिया और हजारों पशुओं को अभयदान दिया गया।

जोधपुर चातुर्मास पूर्ण करके श्रीमान् पूज्य श्रीजी महाराज ने प्रथम मेवाड़भूमि पवित्र की। मार्ग में पड़ने वाले कई ग्रामों में अत्यन्त उपकार, और बहुत ही त्याग पच्चक्खाण हुए। श्रीजी घाणेराव (मार-वाड़ का एक ठिकाना, सादड़ी की ओर होते हुए "श्रीचारभुजाजी

तथा नाथद्वारा पधारे। उस समय कोठारिया के श्रीमान् रावतजी साहिब भी दर्शनार्थ पधारे और उन्होंने पूज्य श्री से अर्ज की कि 'मैंने प्रथम आपके पास से जो प्रतिज्ञा ली थी उसका मैं यथार्थ पालन कर रहा हूं।'

अध्याय १६ वाँ

रत्नपुरी में रत्नत्रयी की आराधना।

क्रमशः वहां से (कोठारीया नाथद्वारा से) विहार करते हुए पूज्य श्री रतलाम कुछ समय के लिये पधारे। तब उनको श्री संघने चातुर्मास करने के लिये अति आग्रहपूर्वक प्रार्थना की, किन्तु वह अस्वीकृत हुई। और रतलाम से विहार करके श्रीजी पंचेड़ पधारे। रतलाम संघ के कई अग्रगण्य श्रावक भी दर्शनार्थ पंचेड़ गये और वहां के स्वर्गीय कैप्टन ठाकुर साहिब * रघुनाथसिंहजी ने

---

* ये स्वर्गीय ठाकुरसाहिब तथा उनके भाई साहिब वर्तमान ठाकुरसाहिब श्री चैनसिंहजी साहिब दोनों पूज्य श्री पर इतना अधिक (श्रद्धा एवं प्रेम) भाव रखते थे कि, उन श्रीमानों के फोटो इस पुस्तक में यहां पर देना उचित होगा। 'पंचेड़' यह ग्राम मार्ग में ही होने के कारण पूज्य श्री का यहां पर समय समय पर पधारना होता और श्रीमान् ठाकुर साहिब पूज्य श्री के उपदेश का लाभ उठाकर शान्त स्वभाव के होगये थे। पूज्य श्री के दर्शनों का लाभ जिस समय आप रतलाम में आते उस समय भी लिया करते थे।

अर्ज की कि, यदि श्रीमान् रतलाम में चातुर्मास करें तो मैं आजीवन पर्यन्त हरिण का शिकार करने की सौगन्द करता हूं और मेरी सरहद में कोई भी मनुष्य हरिण, खरगोश इत्यादि का शिकार न कर सके इसका दृढ बन्दोबस्त करने को तैयार हूं।

मलवासा के ठाकुर साहिब की ओर से भी मलवासा का जो बेड़ा तालाब है, वहां पर कोई भी मच्छी न मार सके इस बात का पक्का बन्दोबस्त हमेशा के लिये करने में आया, तत्सम्बन्धी पट्टे, परवाने भी करने में आये।

इस प्रकार अत्यन्त उपकार का कारण समझकर रतलाम में चातुर्मास करने की रतलाम संघ की प्रार्थना श्रीजी महाराज ने स्वीकृत की। इससे सब लोगों के हृदय में आनन्द सागर की तरङ्गे कल्लोलित होने लगीं।

रतलाम (चातुर्मास) मेवाड़ में से क्रमशः विहार करते हुए श्रीजी महाराज मालवा देश में पधारे और रतलाम के श्रीसंघ की प्रार्थना स्वीकार कर संवत् १९६३ विक्रमी का चातुर्मास रतलाम नगर में किया। इससे पहिले जितने चातुर्मास हुए उन सबकी अपेक्षा अबका चातुर्मास अत्यन्त उपकारक सिद्ध हुआ। इतने ही समय में आचार्य श्रीजी के ज्ञान, दर्शन और चारित्र के पर्याय इतने विमल होगये थे और पुण्य-प्रताप भी इतना अधिक बढ़ गया था

कि, रतलाम के बड़े २ वयोवृद्ध श्रावकों के मुख में से पुनः २ इस प्रकार के वाक्य निकलते थे कि, "श्रीमान् उदयसागरजी महाराज आदि महापुरुषों के आगमन और उपस्थिति के समान ही लोगों के हृदय पर उग्र प्रभाव तथा उत्कृष्ट उत्साह दृष्टिगोचर होता है"। धर्म, ध्यान, त्याग-प्रत्याख्यान करने के लिए श्रीमान् कदापि किसीको भी आग्रहपूर्वक नहीं कहते थे, उसी प्रकार न किसीको मजबूर करते थे, ऐसी स्थिति में भी उनका उत्कृष्ट चारित्र और आत्म शक्तियों का आकर्षण इतना अधिक बढ़ गया था कि लोग स्वयं ही त्याग-पच्चक्खाण, धर्मध्यान, जप, तप, स्कंधादि विशेष २ उत्साह के साथ हार्दिक उमंगों के साथ करने लगे। इस समय संवर करणी, धर्मजागृति और ज्ञानवृद्धि इतनी अधिक हुई थी कि, पिछले वर्षों से उसको चौगुनी कहने में तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी।

इसके सिवाय विशेष चित्ताकर्षक बात यह है कि, राज्य कर्मचारी गण साधु महात्माओं के सत्संग का लाभ बहुत कम उठाते थे, किन्तु श्रीमान् के विराजने से उनकी अनुपम प्रशंसा सुनकर राज्य के बड़े २ ओहदेदार, अमीर, उमराव, वकील इत्यादि पूज्य श्रीकी सेवा में आने लगे और उनके ऊपर पूज्य श्री का इतना अधिक प्रभाव पड़ने लगा कि, वे पूज्य श्री के पूर्ण गुणानुरागी और प्रशंसक बन गये थे।

रतलाम स्टेट के मुख्य दीवान श्रीमान् पी. बाबूराय साहिब बी. ए, एल- एल. बी, जो कि, उस समय इन्दौर स्टेट में मुख्य कार्य-कारी साहिब के पद पर सुशोभित हुए थे उन्होंने पूज्य श्री के सत्संग का बहुत अच्छा लाभ लिया था। पूज्य श्री के विषय में तथा जैन-धर्म के मूल सिद्धान्तों के विषय में उनको बहुत अच्छा शौक लग गया था। श्रीमान् दीवान साहिब केवल व्याख्यान में ही नहीं किन्तु मध्यान्ह-काल में (दुपहर के समय में) भी किसी २ दिन आया करते थे। प्रेमपूर्वक व्याख्यान श्रवण करते, इतना ही नहीं किन्तु अपनी धर्मपत्नी तथा बालबच्चों को भी पूज्य श्री का धर्मोपदेश श्रवण करवाने के लिए अपने साथ लाते थे। उनकी विमल बुद्धि और स्मरण-शक्ति तीव्र होने के कारण थोड़े ही समय में जैन-धर्म के मुख्य २ सिद्धान्तों का उन्होंने उत्तम ज्ञान सम्पादन कर लिया। जिसके कारण तत्वज्ञान पर उनकी इतनी अधिक अभिरुचि उत्पन्न होगई थी कि, पूज्य श्री के विहार करजाने पर भी (रतलाम से) वे श्रीमान् सर्व साधारण की सभा के सम्मुख नय, निक्षेप, सप्तभंगी आदि महत्वपूर्ण विषयों पर मनन करने योग्य भाषण देते थे। ऐसे ही रतलाम स्टेट के चीफ जज साहिब श्रीमान् पंडित ब्रीजमोहननाथ बी, ए, एल. एल. बी भी पूज्य श्री के उपदेश का लाभ उठाते थे।

रतलाम के मे० पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट मेहताजी श्री लक्ष्तासिहजी साहिब तो दिन में कई बार पूज्य श्री की सेवा में

पधारते थे और खूब परीक्षा पूर्वक चातुर्मास के अन्त में पूज्य श्री के पास से सम्यक्त्व रत्न प्राप्त करके दृढधर्मी श्रावक बन गये थे। संवत् १९६३ की मार्गशीर्ष बदी १ के दिन, रतलाम से विहार करने के समय श्री जी से उन्होंने इस प्रकार अर्ज की कि; "हुजूर ! आज तक मैंने किसीको भी गुरु नहीं किया था, इसका कारण यह है कि, जहाँ तक आत्म-परितोष (आत्मा का समाधान) न हो जाय वहाँ तक गुरु के समान किसी भी व्यक्ति को किस प्रकार स्वीकार कर सकते हैं ? आज मैं आपको अन्तःकरण से शुद्ध श्रद्धापूर्वक गुरु के समान स्वीकार करता हूं"। इस समय से वे श्री जी के अनन्य भक्त बन गये। श्री जी महाराज से उनका सत्संग होने के पूर्व उनकी श्रद्धा किसी भी सम्प्रदाय पर नहीं थी।

संस्थान 'अमलेठा' के स्वर्गस्थ रा० ब० महाराज रघुनाथसिंहजी तथा पंचेड के ठाकुर साहिब केप्टन रघुनाथसिंहजी सदैव पूज्य श्री के व्याख्यान में पधारते थे।

उपरोक्त चातुर्मास में हिन्दू मुसलमान, इत्यादि लोग सहस्रों की संख्या में एकत्रित हो पूज्य श्री के व्याख्यान का अपूर्व लाभ उठाते थे। 'वहोरा' कौम (जाति) के भी एक सद्गृहस्थ 'हिपतुल्लाजी' कभी २ पूज्य श्री के व्याख्यान में आते थे, एक दिन व्याख्यान समाप्त होने के पश्चात् वे खड़े होकर परिषद् (उपस्थित श्रोतृगण) के सामने कहने लगे " आप जैन लोग ऐसे महात्मा

पुरुषों के उपदेश सुनने वाले सचमुच भाग्यवान् हो, आचार्य महाराज के आज के उपदेश से मेरे हृदय पर जो प्रभाव पड़ा है वह ऐसा है जो कि, आजीवन स्मरण रहेगा। आज से मैं कभी भी पशु- हिंसा नहीं करूंगा; इसी प्रकार मांस भक्षण भी नहीं करूंगा, इतना ही नहीं, किन्तु अपने भाई बन्धु, इष्ट मित्रों को भी यही मार्ग बतलाऊंगा। मेरे समान वे भी पूज्य श्री के ऐसे अमूल्य उपदेश का लाभ लेते हों तो कितना अच्छा हो।

यह भाई दूसरे ही दिन अपनी जाति के तीन चार भाईयों को अपने साथ पूज्य श्री के व्याख्यान में बुला लाये थे। और वे अपने साथ के बैठने उठने वाले मित्रों को 'अहिंसा-धर्म' का महत्त्व समझाने को अपना कर्तव्य समझने लग गये थे। (समझते थे)

चातुर्मास पूर्ण होने पर पूज्य श्री ने विहार किया, उस समय स्वधर्मी, अन्यधर्मी हजारों मनुष्यों के सिवाय पुलिस सुपरिंटेंडेंट साहेब अपनी पूरी पल्टन के साथ जन-समुदाय के आगे २ चल रहे थे। और जैन शासन की प्रभावना करके पूज्य श्री के विषय में अपना अप्रतिम पूज्यभाव प्रदर्शित करते थे

आचार्यश्री नगर के बाहर पहुंचे, उस समय श्रीमान् दीवान साहिब की ओर से मेहताजी साहिब (पो. सु.) ने सरकारी बाग में विराजने के हेतु अर्ज की उससे महाराज श्री बाग में विराजे। दूसरे दिन प्रातःकाल के समय में पूज्य श्री विहार करने को उद्यत

इतने में दीवान साहिब आ पहुंचे, एवम् पूज्य श्री से प्रार्थना की कि "यदि आप एक दो दिन यहां विराजो तो बड़ी कृपा हो" इस पर से पूज्य श्री दो दिन तक सरकारी बाग में विराजमान रहे, सरकारी बाग में जैन साधु के विराजने का यह पहिला ही अवसर था। यहां पर गुलाबचक्र के विशाल भवन में पूज्य श्री व्याख्यान देते, राज्य के अधिकांश आफिसर लोग अपने स्टाफ के सहित व्याख्यान का लाभ उठाते थे। इसके सिवाय स्वधर्मी, अन्यधर्मी सहस्रों मनुष्य आते थे। यह प्रसंग भी रतलाम के इतिहास में प्रथम ही था। श्रीमन्महावीर प्रभु के समवसरण का जो वर्णन श्री 'उववाई सूत्र, में है उसकी कुछ २ झांकी इस समय गुलाब-चक्र भवन में होती थी।

श्रीमान् रतलाम दरबार ने उस समय यह बात स्वीकृत भी की कि "पूज्य श्री के पुण्य-प्रताप* से ही रतलाम शहर पर प्लेग का जोर नहीं चल सकता।

रतलाम के चातुर्मास में अजमेर निवासी साधुमार्गी जैन-संघ के माननीय नेता राय सेठ चांदमलजी साहिब तथा जैन-समाज

---

* ऐसा ही मौका मोरबी में भी मिला था जो कि; आगे देख सकेंगे।

के अन्य अग्रगण्य श्रावक लोग श्रीजी महाराज के दर्शनार्थ आये थे, वे तथा उसी प्रकार रतलाम कान्फरन्स सम्बन्धी विचार करने के हेतु रतलाम मुकाम पर एकत्रित हुए थे, ये सब सज्जन श्रीमान् दरबार श्रीकी सेवा में उपस्थित हुए और अर्ज की कि "रतलाम शहर के आसपास सब स्थानों में प्लेग का बड़ा भारी उपद्रव मच रहा है किन्तु रतलाम में ऐसे महात्मा के विराजने से रतलाम में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं है,, यह सुनकर श्रीमान् दरबार श्री ने कहा कि "रतलाम शहर के अहोभाग्य हैं कि ऐसे महात्मा का यहां विराजना हुआ है। यहां पर शान्ति रही यह इन्हीं के पुण्य-प्रताप का फल है; इनके गुरुवर्य श्रीउदयचन्द्रजी महाराज भी यहां पर कईबार विराजे थे और वे भी अत्युत्तम साधु थे।

संवत् १९६३ के रतलाम के चातुर्मास में पूज्य श्री आदि ठाणा ४६ विराजते थे। उस अवसर पर आषाढ शुद्ध १४ भादवा शुद्ध ५ तक तपश्चर्या तथा संवरकरणी निम्न लिखे अनुसार हुई थी।

सत्तरह १७ उपवास का थोक	१६	१५	१३	१२	११	१०
२	२	४	५	६	११	१५

९	८	७	६	५	४	३	२
७१	१८१	२१	२६	६११	७४६	१३००	२७००

एक दिन के अन्तर से दो माह तक (एकान्तर)
३५१

दो माहतक दो दो दिन के अन्तर से (बेले बेले पारना)
२१

तीन तीन दिन के अन्तर से दो माहतक (तेले तेले पारना)
११

धर्म चक्रकी तपश्चर्या,
२१

खंध (चार पंकी)	खंध जमीकन्द के
७४	४१

पोषा कुल	संवत्सरी के पोषा
१०६८६	१६०१

तपस्याकी पचरंगी	दया की पचरंगी
२७	४

पूज्य श्री ने १ आठई, २ तेला, तथा १।। डेढ महीने तक एकान्तर उपवास, तथा इसके सिवाय फुटकल उपवास किये थे। धूलचन्दजी महाराजने ३४ उपवास का थोक किया था। ३४ के पूर के दिन स्वधर्मी अन्यधर्मी, लोगों ने व्यौपार धन्धा बन्द करके यथाशक्ति व्रत, नियमादि किये। कसाईखाने की ४४ दूकानें बन्द रहीं तथा कसेरा, तेली, कंदोई, धोबी, रंगरेज इत्यादिकों का व्यापार

धन्दा बन्द रहा। १०० बकरों को अभयदान दिया गया। इस काम में श्री सरकार की ओर से बहुत मदत दी गई थी।

उपरोक्त लिखे अनुसार रतलाम के चातुर्मास में जैन-धर्म का बहुत ही उद्योत हुआ।

अध्याय १७ वाँ

मेवाड़ और मालवे की सफलता पूर्वक यात्रा

रतलाम से विहार करके श्रीमान् आचार्यजी श्री बड़ी सादड़ी (मेवाड़) पधारे वहां संवत् १९६३ पौष वद्य ३ के दिन श्री लक्ष्मीचन्दजी महाराज जो कि, इस समय विद्यमान हैं, उनके सांसारिक अवस्था के पुत्र पन्नालालजी तथा रतनलालजी * ये दोनों भाई तथा पन्नालालजी की स्त्री हुलास्यांजी ऐसे एक ही कुटुम्ब के तीन जनों ने धन, माल, जीमन इत्यादि का दान करके प्रबल वैराग्यपूर्वक दीक्षा स्वीकार की।

---

* भाई रतनलालजी का (सम्बन्ध (सगाई) हो चुका था और विवाह होने की तैयारी थी, ऐसी दशा में भी उन्होंने दीक्षा ले ली। रतनलालजी की उमर थोड़ी होते हुए भी वे अत्यन्त प्रतिभाशाली, धीर वीर, गम्भीर और संस्कारी पुरुष थे, और उनकी ज्ञानशक्ति भी अत्यन्त बढ़ी हुई थी। उनकी व्याख्यान शैली भी अधिक प्रशंसनीय थी। कई श्रावकों का ऐसा अनुमान था कि, श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय को यह महानुभाव प्रकाशमान

तत्पश्चात् सादड़ी के मेहता कुटुम्ब के एक खानदानी घर की (उच्च कुल की) सावगणजी, नामकी एक श्राविका बहिन ने भी दीक्षा ली थी। एक ही दिन चार दीक्षाएं हुई थीं। इस समय सादड़ी में साधु, साध्वी मिलकर कुल ८४ ठाणा विराजते थे। पंजाब के पूज्य श्री श्रीचन्दजी महाराज भी इस सम्मेलन में विराजते थे।

सादड़ी क्षेत्र इस समय तीर्थस्थान के रूप में होगया था। इस शुभ अवसर पर ६० ग्रामों के लगभग ५००० पांच सहस्र मनुष्य सादड़ी में एकत्रित हुए थे। दीक्षा महोत्सव बहुत ही धूमधाम से—अत्यन्त समारोह पूर्वक हुआ था। राज्य की ओर से हाथी, घोड़ा, मियाना चौबदार, चँवर इत्यादि सब प्रकार की सम्पूर्ण सहायता मिली थी। इस प्रकार की दीक्षा सादड़ी में इससे पहिले कभी भी नहीं हुई थी। यह सब पूज्य श्री के बड़प्पन के कारण ही होने पाया। कहा जाता है कि, बहुत से मुनिराजों के एकत्रित होजाने के

करेगा, उनसे श्रीमान् आचार्यजी महाराज को भी उम्मेद थी। किन्तु आयुष्य कर्म की स्थिति न्यून होने के कारण ११ वर्ष तक संयम पालकर, संवत् १९७४ विक्रमी के मगसर महीने में इस असार संसार को छोड़ वे स्वर्ग को सिधारे।

कारण आहार पानी की अन्तराय न पड़े इसलिये कई दिन तक केवल सूखे आटे में जल मिलाकर आहारकर 'चउविहार' कर लेते थे।

सादड़ी की ओसवाल जाति में प्रथम कुछ अनैक्यता (फूट) थी। चार तड़ें पड़ गई थीं। किन्तु पूज्य श्रीके सदुपदेश से सब ही एकत्रित होगये (याने चारों तड़ें एक होगई) और अनैक्यता का स्थान ऐक्यता ने ग्रहण किया। इसके सिवाय इस चिरस्मरणीय अवसर पर स्कंध त्याग पच्चक्खाण जीवों को अभयदान देना आदि इतना अधिक उपकार हुआ कि, उसका सविस्तर वर्णन करना असम्भव है।

बड़ी सादड़ी के श्रीमान् राजराणा साहिब दुलेसिंहजी भी पूज्य श्रीके दर्शन तथा उनके वचनामृत का पानकर अपने को कृतकृत्य समझते और पूज्य श्रीकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते थे, इतना ही नहीं किन्तु उन्होंने जीवहिंसा न करने, तथा प्राणियों की रक्षा करने के विषय के अनेक त्याग पच्चक्खाण किये। जो कार्य लाखों, करोड़ों रुपयों से नहीं होता, सैन्यबल तथा तोपों की लड़ाइयों से नहीं होता, जो कार्य रोब तथा भय से नहीं हो सकता, ऐसा कठिन-असम्भव और अत्यन्त दुष्कर कार्य भी निःस्वार्थी शुद्धसंयमी, सन्त के वचन मात्र से सिद्ध होता है। पूज्य श्री के सदुपदेश का ऐसा प्रभाव

सबही स्थानों में विजयी सिद्ध हुआ है। इस प्रकार के विजय के लिये आत्म-संयम और चरित्र की-शुद्धचारित्र की प्रथम आवश्यकता है।

बड़ी सादड़ी से विहार करके माघ या फाल्गुन मास में पूज्य श्री १६ ठाणा सहित रामपुरे (होल्कर) स्टेट पधारे। इस समय जावरे के सन्त श्री बड़े जवाहिरलालजी (जो कि, इस समय विद्यमान नहीं है) श्री हीरालालजी, श्री खूबचन्दजी, श्री चौथमलजी, आदि भी श्री आचार्य श्रीकी आज्ञानुसार चलते हुए उनके स्थान में यहां पर जितने समय तक उनको (धार्मिक नियम से) रहना योग्य था याने कल्पता था वहां तक रहे थे। जावरे के उपरोक्त सन्तों ने इस समय श्रीमान् आचार्य महोदय के गुणानुवाद विषय के कई स्तवन, लावनी भजन इत्यादि बनाये थे उनमें से कईओं को मुखाग्र करके श्रावक लोग गाते हैं।

इस अवसर पर श्रीमान् दीवान खुमानसिंहजी साहिब ने दशहरे के दिन जो प्रतिवर्ष इनके यहां पाड़े का वध होता था (मारा जाता था) वह हमेशा के लिए पूज्य श्री के सदुपदेश से बन्द कर दिया और उस विषय का पट्टा-परवाना भी करवा दिया।

राय बहादुर कोठारी हीराचन्दजी साहिब ने भी पूज्य श्री की बहुत ही सेवा भक्ति की। इसके सिवाय अनेकों व्रत, पच्चखाण,

तथा जीवों को अभय-दान आदि उपकार के कार्य हुए! अनेकों मुसलमान वगैरह मांसाहारी लोगों ने मांस भक्षण तथा मदिरा पान करने की कसम ली।

द्रव्य, क्षेत्र काल भावानुसार सदुपदेश से स्वधर्म और स्व-समाज की अच्छी सेवा करके अनेकों निराधार जीवों को अभय-दान दिलाकर धर्म की दलाली की। शुद्ध संयम का प्रभाव ही ऐसा है कि, जहां जावे वहां ही विजय-ध्वजा फरके, धर्म का उद्योत हो और अनेकों जीवों को शान्ति मिले। स्वधर्म का सत्य ज्ञान सम्पादन होने से, मन का मैल धुल जाने से, शंकाओं का समाधान हो जाने से उत्साही युवक धर्म को अवश्य ही प्रकाशित करें।

यहां से विहारकर पूज्य श्री कोटा पधारे, कोटे में रामपुरे बाजार में महारानी साहिबा की कन्याशाला है, वहां पूज्य श्री विराजते थे। उस समय व्याख्यान में कोटे के महारावजी साहिब पधारे थे। पूज्य श्री की अमृतमय वाणी श्रवणकर वे बहुत सन्तुष्ट हुए किन्तु सामायिक व्रत लेकर बैठे हुए कई श्रावकों में महाराजा साहिब को सम्मान देने के लिए खड़े होना, आसन लगाना वगैरह चेष्टाएं कीं उनके विषय में उन श्रीमान् ने अपनी अप्रसन्नता प्रकट की। जिस दिन पूज्य श्री का व्याख्यान श्रवण किया उसी दिन महारावजी साहिब शिकार खेलने के लिए शहर के

बाहर निकले, थोड़ी दूर जाने पर एक मुत्सद्दी (सरदार) ने अर्ज की कि" हूजूर ! आज तो आपने जैन-धर्मी गुरु का व्याख्यान सुना है । इसके स्मरणार्थ आज शिकार नहीं करना चाहिये " ये शब्द सुनते ही बन्दूक का मुंह रुमाल से बांधते २ महारावजी साहिब ने कहा, अच्छा चलो ! आज शिकार नहीं ही खेलें, ऐसा कह कर महाराजा साहिब राजमहल की ओर पीछे फिर गये ।

अध्याय १८ वाँ।

'मरुभूमि में कल्पवृक्ष'

कोटे से विहार करके मार्ग में अत्यन्त उपकार करते हुए पूज्य श्री नसीराबाद होते हुए नयानगर (ब्यावर) पधारे, वहां पर अजमेर के श्रावकों की विनती पर से संवत् १९६४ का चातुर्मास अजमेर में करने का निश्चय किया।

अजमेर (चौंतुर्मास) संवत् १९५६ में श्रीमान् पूज्य श्री नानकरामजी महाराज के सम्प्रदाय के प्रतापी मुनियों का वियोग होने तथा पूज्य श्री विनयचन्द्रजी महाराज का विराजना वृद्धावस्था के कारण जयपुर होने से अजमेर की जैन-समाज में धर्म के विषय में कुछ शिथिलता उत्पन्न होगई थी, किन्तु आचार्य श्री के पधारने से पुनर्जीवन प्राप्त हुआ। पूज्य श्री के प्रताप से बहुत से मनुष्यों को धर्म-ध्यान की रुचि उत्पन्न हुई, और बहुतसों की धर्म-रुचि विशेष रूप से दृढ हुई। त्याग पच्चखाण, तथा अत्याधिक स्कंध और तपश्चर्या आदि बहुत ही उपकार हुआ। तदुपरान्त श्रीजी महाराज के सदुपदेश से बिरादरी में (जाति में) रात्रि भोजन बिल्कुल (नितान्त) बन्द करनेमें आया। बनौरे वगैरह जो रात्रि के समय निकलते थे वे अब भी रात को निकलना बंद होगये।

इस वर्ष में संवत्सरी-पर्व के विषय में एक दिन का मत-भेद था। श्रीमान् की गुरु आम्नाय के अनुसार एक दिन आगे संवत्सरी थी जब कि, दूसरे सम्प्रदाय की एक रोज पीछे थी लेकिन आचार्य श्रीने सब को सम्मिलित करके दोनों दिन अत्यन्त ही धर्म-ध्यान कराया। बहुत से छट्ठे हुए बहुतसी दया पोषे हुए। किसी प्रकार का भेदभाव या राग द्वेष की वृद्धि नहीं होने दी। इतना ही नहीं, किन्तु परंपरा (पूर्वजों के समय) से चली आती अपने सम्प्रदाय की रीति के अनुसार संवत्सरी पहिले दिन कर आगे दिन करने पर इस विषय को लेकर जैन पत्रों में पूज्य श्री के ऊपर कितने ही एक पक्षीय आक्षेप, पूर्ण लेख प्रकाशित हुए किन्तु सागर के समान गम्भीर महात्मा श्री ने तनिक भी खेद न करते हुए उन के आक्षेपों का प्रतिवाद नहीं किया, यह क्षमारूपी आपकी तपश्चर्या अत्यन्त ही कठिन है समर्थ पुरुषों का क्षमा करना, उपशम (शान्ति) भाव धारण करना, ये इनके समान महान् आत्मबली महानुभाव का ही काम है। इसका प्रभाव गुजरात, काठियावाड़ के जैन बन्धुओं के ऊपर ऐसा पड़ा कि, वे श्रीमान् को महान् उच्च आत्मा के समान मानने लगे। इस चातुर्मास में जोधपुर के भाई शोभाचन्दजी को पूज्य श्री के सदुपदेश से वैराग्य उत्पन्न होगया और उन्होंने पूज्य श्री के पास से दीक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् रतलाम निवासी श्रीयुत छुजमलजी चपलोत के भतीजे तख्तमलजी ने भी अल्पायु में ही प्रबल वैराग्य पूर्वक श्रीमान् के पास दीक्षा अंगी-

कार की। जिसका दीक्षा-महोत्सव अजमेर के संघने बहुत ही उत्साह पूर्वक किया। यह उत्सव अजमेर के " दौलतबाग " में हुआ था।

अजमेर के चातुर्मास में तारीख ३-११-१९०७के दिन श्रीमान् मोरवी नरेश सर वाघजी बहादुर जी. सी. एस. आई तथा अजमेर के ज्युडिशियल आफिसर श्रीमान् खांडेकर साहिब पूज्य श्री के व्याख्यान में पधारे थे। श्रीमान् मोरवी नरेश पूज्यश्री के व्याख्यान से अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और उन श्रीमान् ने श्रीजी महाराज से अर्ज की कि, जो आप काठियावाड़ की तरफ पधारेंगे तो बहुत ही उपकार होगा। श्रीजी ने उत्तर दिया कि, जैसा अवसर।

अजमेर का चातुर्मास पूर्ण होने पर श्रीजी महाराज नयानगर (व्यावर) की ओर पधारे। मार्ग में ' दोराई ' मुकाम पर स्वामीजी श्री मुन्नालालजी महाराज जोकि, नयानगर से अजमेर की तरफ पधारते थे उनका समागम हुआ, वहां पर सायङ्काल का प्रतिक्रमण करने के पश्चात् स्वामी श्री मुन्नालालजी महाराज ने श्रीमान् आचार्य महाराज साहिब से अर्ज की कि, मेरी इच्छा पंजाब की ओर विचरने की है, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं उस ओर विचरूं ? आचार्य श्रीने फरमाया कि " आपको जिसमें सुख हो, वैसा करो "

पूज्यश्रीने मुन्नालालजी महाराज को पंजाब में पांच वर्ष तक

विचरने की आज्ञा प्रदान की। श्रीमुन्नालालजी महाराज सरल स्वभावी और सूत्रों के अभ्यास में पूर्ण विज्ञ हैं।

तत्पश्चात् आचार्य श्री मरु भूमि—मारवाड़ को पवित्र करते हुए, अनेक उपकार करते हुए श्री बीकानेर श्री संघ की विनन्ति से यहां पधारे और संवत् १६६५ का चातुर्मास श्रीजी ने बीकानेर में किया।

बीकानेर (चातुर्मास) संवत् १६६५ का चातुर्मास श्रीजी महाराजने बीकानेर में किया, इस वर्ष बीकानेर के श्रावकों में अपूर्व उत्साह छा रहा था। धार्मिक ज्ञान की अभिवृद्धि के लिये श्रावकों ने अधिक उद्योग किया और बालकों तथा नवयुवकों को जैन–धर्म के सर्वोत्कृष्ट (अत्युत्तम) तत्वज्ञान का लाभ मिलता रहे इस उद्देश्य (मतलब) से बीकानेर के संघ ने एक साधुमार्गी जैन पाठशाला की स्थापना की *

---

* उपरोक्त पाठशाला एक वर्ष तक श्री संघ ने चलाई। तत्पश्चात् श्रीमान् सेठ भैरूदानजी सेठी ने अपने स्वतः के व्यय से पाठशाला चलाना शुरू किया, उसमें दिनोदिन उन्नति होती गई और इस समय भी वह पाठशाला बहुत अच्छी नींव पर (अच्छी तरह से) चल रही है। पाठशाला को उपयोग के लिये सेठ भैरूदानजी ने अपना मकान दे रक्खा है। लगभग ८० विद्यार्थी उससे लाभ उठा रहे हैं। सात अध्यापक नियत हैं। लगभग ४००) रुपये मासिक का व्यय है। धार्मिक शिक्षा आवश्यक है। इसके सिवाय हिन्दी, अंग्रेजी

इस चौमासे में तपस्वी मुनि श्री धूलचन्दजी महाराज जो कि, विद्यमान पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज के शिष्य हैं उन्होंने ६१ उपवास किये थे। इस अवसर पर सैकड़ों, सहस्रों मनुष्य दर्शन के लिए आते थे; उनका आतिथ्य सत्कार बीकानेर संघ की ओर से भलीभांति होता था। श्रावकों ने भी बहुत ही तपश्चर्या और अत्यन्त ही व्रत नियम किये थे। पूज्य श्री के सदुपदेश से जावरा निवासी ओसवाल गृहस्थ श्रीयुत ताराचन्दजी तथा उनके पुत्र चांदमलजी ने तथा बीकानेर के सुप्रसिद्ध सेठ अगरचन्दजी भैरूंदानजी के छोटे भाई की विधवा स्त्री रतनकुंवर बाई को वैराग्य उत्पन्न हुआ और इन तीनों का एक ही दिन दीक्षा–महोत्सव हुआ। श्रीमान् बीकानेर नरेश ने दीक्षा महोत्सव के लिए अपना हाथी तथा लवाजमा (घोड़े, नगारा, निशान, आदि अन्य सामान) भेज दिया था। संवत् १९६५ मगसर बद २ के दिन तीनों को एक ही मुहूर्त में पूज्य श्री ने दीक्षा दी थी।

और महाजनी हिसाब और लेखनकला आदि विषय सिखाये जाते हैं। कन्याओं को भी व्यावहारिक और धार्मिक शिक्षा मिले इस मतलब से एक कन्याशाला भी उपरोक्त सेठ साहिब की ओर से थोड़े ही समय में स्थापित होने वाली है। बालकों के पास से कुछ भी फीस नहीं ली जाती है। धार्मिक शिक्षण में सामायिक प्रतिक्रमण, अर्थ सहित तथा शालोपयोगी जैन प्रश्नोत्तर इत्यादि सिखाये जाते हैं।

अध्याय १६ वां।

अजमेर में अपूर्व उत्साह।

श्रीजी महाराज कुचेरे विराजते थे तब अजमेर निवासी राय सेठ चांदमलजी साहिब ने अर्ज की कि, आगामी फाल्गुन मास में अजमेर मुक़ाम पर कान्फरन्स का अधिवेशन है, इसी लिये समस्त हिन्दुस्थान के अग्रेसर स्वधर्मी बांधव वहां पधारेंगे, उस समय आपकेसे समर्थ धर्माचार्य और धर्मोपदेशक वहां विराजते हों तो बड़ा उपकार होने की संभावना है। इत्यादि शब्दों से बहुत ही आग्रह पूर्वक विज्ञप्ति की। इस समय पूज्य श्री का दिल वहां हाजिर रहने का नहीं था, परंतु सेठजी के अत्याग्रह और कितने ही साधुओं की प्रबल उत्कंठा से पूज्य श्री ने अपने साधुओं को सम्बोध न दे कहा जो यह शर्त तुम्हें मंजूर हो तो मैं अजमेर की ओर विचरूं। एक तो साधुमार्गी भाइयों के घर से जबतक अधिवेशन होता रहे किसीने आहार पानी न लाना और दूसरी शर्त यह है कि, अपने को जोधपुर होकर वहां जाना पड़ेगा इससे लम्बे विहार करने से कदाचित् मेरे पांव में तकलीफ हो जाय तो तुम्हें अपने स्कंधों पर बिठाकर मुझे अजमेर पहुंचाना पड़ेगा। साधुओं ने दोनों शर्तें स्वीकार कीं और पूज्य श्री ने सेठजी की विनय मंजूर की।

पूज्य श्री को अपने वचन के लिये ८० कोस का विशेष विहार कर जोधपुर जाना पड़ा, कारण कि, जोधपुर श्रीसंघ ने पूज्य श्री की विनय की थी उस समय उन्हें जोधपुर स्पर्शने का वचन पूज्य श्री ने दे दिया था।

वहां से पूज्य श्री जोधपुर पधारे वहां भी फिर राय सेठ चांदमलजी साहिब विनन्ती करने पधारे और क्रमशः पूज्य श्री विहार करते सं० १९६६ के चैत्र वद २ को अजमेर पधारे पूज्य श्री अजमेर पधारने वाले हैं ऐसी खबर पहिले से ही देश देशान्तरों में फैल गई थी इसलिये बाहर के हजारों श्रावक उनके दर्शनार्थ कान्फरन्स के अधिवेशन के समय आये थे और साधु साध्वी भी वहां बड़ी संख्या में पधारी थीं, इसलिये श्रावक राग वश साधु के निमित्त आहार पानी अधिक निपजावें, अथवा कुछ दोष लगावें इस डर से महाराज श्री ने जाते ही तेला किया और पारणा करते ही दूसरा तेला किया थोड़े ही साधु आहार पानी करते थे। उन्हें भी आज्ञा की कि, अन्य दर्शनियों के वहां से आहार पानी बहर लाया करो। ऐसी तपस्या में भी पूज्य श्री बुलन्द आवाज से व्याख्यान फरमाते थे।

उस समय सब मिलाकर क़रीब १५० साधु अजमेर में थे व्याख्यान श्रीमान् लोढ़ाजी की कोठी में होता था और वहां हजारों मनुष्य एकत्रित होते थे पहिले दूसरे साधु बारी २ से थोड़े समय

तक व्याख्यान फरमाते थे। उस समय किसी २ साधु के व्याख्यान के समय बहुत ही हल्ला होता रहता तो पूज्य श्री के पाट पर विराजते ही शीघ्र सर्वत्र शांति हो जाती और सब लोग चुपचाप रह बराबर व्याख्यान सुना करते थे। पूज्य श्री का व्याख्यान श्रावकों को शूरता चढ़ाने वाला था जब कहीं कुछ गड़बड़ जैसा प्रसंग उपस्थित होता तो उस समय शांत रखने के वास्ते पूज्य श्री प्रभु स्तुति या भक्तिरस मय काव्य छेड़ देते और लोग उसमें शामिल हो जाते थे। महात्मा गांधीजी की भी यही सलाह है कि, संगति का असर बिजली जैसा है गान अर्थात् सुरीली अवस्था यह तत्काल कोमलता और मुलायमपन पैदा करती है।

अहमदाबाद कांग्रेस के समय खादी नगर में निवास करने वालों ने भिन्न २ मण्डलियों के हृदयभेदक भजन सुने होंगे वे जीवन पर्यंत याद करेंगे, इतनाही नहीं, परन्तु वह भावना कभी भूलेंगे नहीं।

श्रीमान् मोरवी नरेश तथा श्रीमान् लींबड़ी नरेश कि जो खास कान्फरन्स का अधिवेशन दिपाने के लिए ही आये थे वे भी व्याख्यान में पधारते थे अजमेर कान्फ़रन्स सं० १९६६ के चैत्र वद्य ३-४-५ तीन रोज हुई थी।

सं० १९६६ के चैत्र वद्य ६ के रोज जोधपुर के वीसा ओस-

बाल श्रीयुत शोभालालजी दोशी ने पूज्य श्री के पास दीक्षा ली, उस समय कान्फरन्स में आये हुए हजारों मनुष्य उत्सव में शामिल हुए थे। श्रीमान् मोरबी और लींबड़ी नरेश भी विराजमान थे, दीक्षा देने के प्रथम पूज्य महाराज ने फरमाया कि, भाई तुम घर कुटुम्ब इत्यादि त्याग कर मेरे पास दीक्षित होने आये हो परन्तु समय का कार्य महान् दुष्कर है। अनुभव हुए बिना कितनी ही बातें ध्यान में भी नहीं आती, इसलिए पूर्ण विचारकर यह साहस करो, फिर दूसरी यह बात भी याद रखना कि, जबतक तुम पंच महाव्रत शुद्धतापूर्वक पालन करोगे वहांतक मैं तुम्हारा साथी हूं, अगर उसमें जरा भी दोष लगाया कि, मैं तुम्हारा साथ छोड़ दूंगा, तुम्हारे और मेरे धर्म की ही सगाई है। यों पूज्य श्री ने सब संयम की दुष्करता दिखाई, उसके उत्तर में श्रीयुत शोभालालजी ने अर्ज की कि, महाराज श्री जबतक मेरी देह में प्राण है तबतक मैं बराबर आपकी और आप मुझे जिसकी नेश्राय में सौंपोंगे उन मेरे गुरुदेव की आज्ञा का पालन सच्चे दिल से करता रहूंगा, फिर पूज्य श्री ने विधिपूर्वक दीक्षा दी।

शिष्यों की संख्या बढ़ाने का पूज्य श्री को बिल्कुल लोभ न था। उन्होंने अपनी नेश्रायका एक भी शिष्य नहीं किया एकदम मुंडन करदेने की पद्धति से वे बिल्कुल विरुद्ध थे। वे दीक्षा के उम्मेदवारों को अपने पास रखकर शास्त्राभ्यास कराते थे। वैरागी को

अनुभव देते और कसौटी पर कसते थे। वैरागी की मानसिक, शारीरिक और सामुद्रिक चिकित्सा किये बाद उन्हें मुनि मार्ग में लेते थे। इस प्रवृत्ति के समय महात्मा गांधीजी का अनुभव याद आता है, वे कहते कि, एक भी अकस्मात् आ खड़े रहने वाले को पूर्ण स्वयं-सेवक की तरह मैं तो दाखिल न करूं, ऐसा स्वयंसेवक मदद करने के बदले अड़चन करने वाला ही होता है, यह सिद्ध है, मैदान में लड़े हुए सैनिक कवायती (शिक्षित) सिपाई की हार में एक बिन कवायती (शिक्षित) बिन अनुभवी नये सिपाई की कल्पना कर देखो, एक क्षण भर में ही वह समस्त सैना को गड़बड़ में डाल देगा।

इस अवसर पर पूज्य श्री की उदार वृत्ति का संख्याबद्ध श्रावकों को परिचय हो गया था. प्रायश्चित्त लेकर संभोग किये हुए साधुओं में पुनः भूल करने वाले साधुओं को योग्य आलोचना करने पर सम्प्रदाय में लिया. रतलाम के वयोवृद्ध संसारी वेष में ही साधु जीवन बिताने वाले सेठजी अमरचंदजी पीतालिया और राय सेठ चांदमलजी रीयां वाले ने इस मामले में पूज्यश्री को समयोचित सलाह दी थी। पूज्यश्री ने श्रोताओं को समझाया था कि, ग्रीष्म का सख्त ताप और त्याग की दीव्य जोति आलोचना से ही देदीप्यमान हो जाती है। गफलत करने से, आलसी रहने से विद्या विदा होने लगती है और विद्या-हीनता से विवेक भ्रष्टता होवे आत्मिक उत्कर्ष को अंतराय लगती है।

साधु-जीवन को क्षीण करने वाली त्रुटियां जो संयम के आ-दर्शों के प्रतिकूल और संस्कृति की विघातक हों वे दूर करने की जगह उन्हें पुष्टि देने से तो असह्य अनर्थ उत्पन्न होता है। पुष्टि देने वाले और ऐसे साधनों की सरलता करने वाले श्रावक अपने कर्तव्य पथ से गिर पड़ते और साथ में ही ऐसे शिथिल साधुओं को भी ले पड़ते हैं। कर्तव्य-बुद्धि की बेपरवाही, सहृदय हिम्मतवान श्रावकों की शिथिलता और ऐसी बातें टालने वाले बेफिक्र संसारी ऐसे समुदाय को सुधारने का मौका देने की जगह बिगाड़ते हैं परिणाम में पत्थर के साथ आप भी डूबते हैं।

'चलने दो' अपने को क्या करना है, ऐसे मंद विचारों और लापरवाही से समाज सड़ जाता है और फिर सड़े हुए समाज में हृदय को हर्ष या तृप्ति न मिलने से छोटा समाज निचोवाता चला जाता है खेत के पाक को पूर्ण रीति से फलने देने के लिये पासही उत्पन्न हुए कचरे का नाश करना ही चाहिये। समाज को सड़ाने वाले सड़ों का नाश होना ही चाहिये।

भारत की धर्म भोली प्रजा 'साधुओं को' ईश्वर अंश सम-झने वाली है। यह दृढता, यह पूज्य भाव, प्राचीन समय से प्रचलित है और इस दैवी अधिकार की मान्यता ने प्रजा में इतने गहन मूल रोपे हैं कि, इस दैवी हक की, खुमारी में समय २ पर असह्य व्यवहार के लिये भी आंख के ओट कान करने में धर्मभाव समझा

जाता है। जयपुर में ऐसे दृष्टान्त प्रत्यक्ष देखकर लेखक घबड़ा जाते हैं।

हिन्द अत्यन्त श्रद्धालु, धर्म प्रेमी-और आस्तिक देश है उसमें भी सब कौमों की अपेक्षा पोची से पोची वनिक बंधुओं की डरपोक आस्तिकता तो अजब गजब में डाल देती है। प्राचीन समय के साधुओं के शुभ संस्कार जो वंश परम्परा से गर्भित होते आये हैं उन्हींका यह परिणाम है। ये पवित्र संस्कार जाज्वल्यमान बने रहें ऐसा अपन अंतःकारण पूर्वक चाहते हैं परन्तु अपनी इस भावना को भोलेपन या संदेह के वेगमें बहाने से 'देवांशी हक' का दावा करने वाले एक तरह से समाज को नीचा दिखाने जैसा काम कर बैठते हैं।

बहुत समय से स्थित रहे ये संस्कार वर्तमान समय में आवश्यक हैं ऐसे गहन विचार में पैठने से दिल घबड़ा जाता है परन्तु यह बात तो सत्य है कि, यह मान्यता जब प्रारंभ हुई होगी तब तो सबके चारित्र अत्यन्त ही पवित्र और इस 'देवांशी हक' को पूर्ण योग्यता सिद्ध करने वाले होंगे ऐसा प्राचीन साहित्य विश्वास देता है परन्तु साथही साथ उसी साहित्य में यह बात भी मिलती है कि, इन हकों का दुरुपयोग करने वालों को असाधारण अपराधी से विशेष सजा मिलती थी। एक अज्ञान मनुष्य और एक सब कानून का ज्ञाता वही गुन्हा करता है तो

अज्ञान मनुष्य की अपेक्षा कानून जानने वाले को विशेष सजा मिलती है और वही अधिक तिरस्कृत होता है।

अपने समाजिक नियमों (Social Contract) के अनुसार नहीं चलने वालों के सामने सख्त कदम भरने की परवानगी है कारण इस दृष्टान्त से दूसरों को उलट सुलट चाल चलने की जगह मिलती है एक दो को माफी दे देने से दूसरे बाईस जनोंको इस हक्क की खुमारी में समाज में विषैला जल फैलाने तक का अधिकार मिलता है। योग्य को योग्य मान देने में अपन अपनी श्रद्धा की सीमा नहीं उलांघते। संयम और साधु-धर्म की बहुमान्यता निभाने में अपने को विनय-धर्म आदरना चाहिये परन्तु इस विनय से ऐसा अर्थ न निकालना चाहिये कि, इस समुदाय की चाहे जैसी चाल हो निभालेना या प्रसन्नता, बड़ाई, करनी चाहिये अपने दैवी हक की कुछोड़ के सहारे व्यर्थ घूमते हुए नामधारियों को कर्म के अचल नियमों का अभ्यास करना चाहिये। सत्य सनातन धर्म जिनमें तो देव जैसे उच्च सात्विक गुण हों उसे ही दैवी हक प्रदान करना पसंद करता है। साधु-वर्ग और श्रावक-समुदाय अपने २ कर्तव्य में अपनी २ जवाबदारी समझ समय और भाव को सन्मुख रख जीवन सार्थक करेंगे ऐसी लेखक की हार्दिक भावना है।

अध्याय २० वाँ ।

राजस्थानों में अहिंसा धर्म का प्रचार ।

अजमेर से विहारकर राह में अनेक भव्य जीवों को धर्मोपदेश देते सं. १९६६ का चातुर्मास पूज्य श्री ने बड़ी सादड़ी मेवाड़ में किया । वहां जीवदया के महान् उपकार हुए । साधुमार्गी जैन कान्फरन्स के मेवाड़ प्रांत के प्रांतिक सेक्रेटरी नीमच निवासी श्रीमान् सेठ नथमलजी चोरड़िया ने इन उपकारों की सचित्र टीप सांवत्सरिक क्षमापना के साथ छपाकर प्रसिद्ध की है उनमें को खास बातें नीचे दी गई हैं ।

विशेष आनन्ददायक समाचार यह है कि, जिस तरह श्रीमान् मोरवी नरेश सर बाघजी बहादुर जी० सी० आई० ई० तथा श्रीमान् लींबड़ी नरेश श्री दोलतसिंहजी बहादुर श्री जिन प्रणीत अहिंसा धर्म की प्रीतिपूर्वक सेवना करते हैं और साधु महात्माओं के आगमन के समय धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए व्याख्यान में पधारकर सभा को सुशोभित करते हैं उसी तरह यहां श्रीमान् बड़ी सादड़ी राजराणा साहिब श्री दुलेहसिंहजी जिनकी पीढ़ी दर पीढ़ी से इस धर्म की संरक्षा होती आई है पूज्य श्री महाराज की असर

कारक वाणी-अमृतधारा-वृष्टि से तृप्त हो अपने राज्य में नीचे लिखे अनुसार जीव दया का प्रबंध किया है।

(१) नवरात्रि में जो आठ भैंसे तथा १० बकरों का वध होता था वह हमेशा के लिए बंद किया।

पाड़ा, हिंगलाज माता को पाड़ा १, पंडेड में पाड़ा १— गाजन देवी पाड़ा १, लक्ष्मीपुर में पाड़ा १, वरदेवरा कुजूं में पाड़ा २, उदपुरा फाचर में पाड़ा दो यों कुल पाड़े आठ।

बकरा। पालाखेड़ी में बकरे ४, वागला के खेड़े में बकरा १, रणावतों के खेड़े में बकरे ३, भँवरडी में बकरा १ और बरिया खेड़ी में १ यों बकरे कुल १०।

कुल जानवर अठारह का वध प्रतिवर्ष होता था वह बन्द कर दिया गया।

(२) कसाई खाना बंद (३) तालाब में मच्छी मारना बन्द (४) कस्बे में अगते मंजूर.

श्रीमान् रावराणा साहिब की ओर से कसाईखाना बंद और तालाब में मच्छी मारने की मुमानियत हुई इसके सिवाय ठाकुर सरदारसिंहजी ने शिकार करने तथा मांस भक्षण करने का हमेशा के लिये त्याग किया। ठाकुर दलेलसिंहजी ने अपनी जागीर के गांवों में जो पाड़े प्रतिवर्ष मारे जाते थे वे बंद कर दिये तथा कितने

ही जानवरों के शिकार करने तथा मांस भक्षण करने का त्याग किया, सिवाय उनकी रियासत के छड़ीदार, हवालदार, दरोगा इत्यादि ७० आसामियों ने शिकार करना तथा मांस भक्षण करना छोड़ दिया।

कस्बे के लोग यानी समस्त तेलियों ने एक मास में ६ दिवस घानी करना बंद किया। समस्त सुतार, लुहार, कुम्हार, कलाल, नाई, धोबियों ने एक मास में तिथी ५ यानि ग्यारस २ चवदस २ अमावस १ हमेशा के लिये अपना २ आरंभ त्याग कर दिया।

राजस्थानों के ठिकाणदारों की तर्फ से जीव-दया के प्राबंधिक पट्टे परवाने।

ठिकाना वान्सी-के श्रीमान् रावतजी श्री ५ तख्तसिंहजी ने अपने इलाके में श्रावण कार्तिक और बैशाख महीनों में जानवर और शिकार वास्ते खुराक मारने की हरमास की ग्यारस व अमावस में जीव मारने की मुमानियत की व सनद परवाना नम्बरी ३८२ भेट फरमाया।

ठिकाना भेंदसर-के श्रीमान् रावतजी श्री ५ भोपालसिंहजी ने भी अपने इलाके में उपरोक्त हुक्म निकालकर पट्टा नम्बरी १२ भेट फरमाया।

ठिकाना बोरड़ा-के श्रीमान् रावतजी साहिब श्री ५ नाहरसिंहजी

की तरफ से इस चातुर्मास में कसाईखाना बन्द, बाहर वाले को मवेशी बेचना बंद किया गया।

ठिकाना लूणदा—के श्रीमान् रावतजी साहिब श्री ५ जवानसिंहजी की तरफ से चातुर्मास में कसाईखाना बंद, बाहर वाले को मवेशी बेचना बंद, ग्यारस और अमावस को शिकार बंद, पट्टादस्तखती २३ नं० भेट फरमाया।

ठिकाना साटोला—के श्रीमान् रावजी साहिब श्री ५ दलपतसिंहजी की तरफ से उपरोक्त सिवाय श्रावण-कार्तिक और वैशाख में जानवरों का मारना बंद, किया और पट्टा नं० २३ भेट किया गया।

ठिकाना वंबोरी—के श्रीमान् ठाकुर साहिब के यहां समस्त कुम्हार वगैरह में ११ व अमावस का व्यापार बंद हुआ, इस चातुर्मास में शिकार बंद किया और पट्टा नं० १६.

ठिकाना जलोदिया—के ठाकुर साहिब श्री दौलतसिंहजी ने चंद तरह के जानवरों का शिकार करना छोड़ा।

उपरोक्त ठिकाणों के उमराव मुल्क मेवाड़ ने अपने २ इलाकों में जो परोपकार के कार्यों में सहायता की है इसका कोटिशः धन्यवाद है व प्रभु से प्रार्थना है कि, इन नामदारों की दीर्घायुष्य व सदैव ऐसे परोपकारी कार्यों में उदारवृत्ति बनी रहे।

इलाके बड़ी सादड़ी के जागीरदारान की तरफ से जीव-दया के पट्टे परवाने।

१ गांव तलावदे-के ठाकुरसाहिब अमरसिंहजी ने अपने गांव में सदैव के लिये कार्तिक, वैशाख व चार महीने चातुर्मास में शिकार करना या खुराक के लिये जानवरों का वध करना बंद किया। व ठाकुर गिरवरसिंहजी ने सदैव के लिये शिकार करना, मांस भक्षण करना व मदिरा पान करना त्याग दिया।

२ पालखेडी-के ठाकुर साहिब श्रीचतुरसिंहजी ने नवरात्रों में जीव-हिंसा बंद की, नदी में मछलियां मारना बंद का हुक्म जारी किया। ठाकुर श्री जालमसिंहजी व दूसरे लोगों ने शराब पीने व चन्द तरह के जानवरों का वध व शिकार करना छोड दिया व जो २ बकरे मारे जाते थे उनको अमरया करने का हुक्म दिया।

३ वागेला-के ठाकुर साहिब श्रीमोड़सिंहजी ने नवरात्रों की जीव-हिंसा बंद की और बाहर वालों को अपने यहां से मवेशी बेचना बंद किया।

४ गुड़ली-के ठाकुर साहिब श्री प्रतापसिंहजी ने अपने गांव में चातुर्मास में जानवरों का शिकार व वध बिल्कुल बंद व वैशाख श्रावण तथा कार्तिक तीनों मासों में खुराक वगैरह के लिये प्राणी वध बिल्कुल बंद किया।

५ इडमातिया—के ठा. श्रीसरदारसिंहजी ने अपने ग्राम में व चातुर्मास में जानवरों का शिकार व वध बंद किया व चंद तरह के जानवरों का शिकार खुद ने छोड़ा।

६ हिंगोरिया—के ठाकुर श्रीमोड़सिंहजी,

७ करमद्या खेड़ी—के ठाकुर श्री निर्भयसिंहजी,

८ उम्मेदपुरा—के ठाकुर श्री भभूतसिंहजी, इन तीनों नामदारों ने चंद तरह के जानवरों का शिकार बंद किया व औरों को भी अपने शरीक किया।

९ खेड़े—के ठाकुर साहिब श्रीकरनसिंहजी ने चातुर्मास में जानवर अपने यहां न मारने का व चंद तरह के जानवर सदैव के लिये मारना बंद किया।

१० रणावतखेड़े—के तथा आकोला—के ठाकुर साहिब श्री दलेलसिंहजी ने हमेशा के लिये मांस भक्षण व जानवरों का शिकार बंद किया व नवरात्रों में होती हुई जानवरों की कुरबानी को मौकूफ किया।

११ नहारजी खेड़ा—के ठाकुर जालसिंहजी।

१२ खां खारिया खेड़ी—के ठाकुर मोड़सिंहजी ने ताजिंदगी अपने यहां चातुर्मास में जानवर जवा न होने देने का हुकम जारी किया व चन्द तरह के जानवरों का शिकार व मांस भक्षण बंद किया।

१३ कीरतपुरा—के जागीरदार मीर मोहम्मदखांजी ने मय अपने रिश्तेदारों के जानवरों का शिकार छोड़ दिया इसके सिवाय

इलाके मेवाड़ के अन्य ग्रामों की तरफ़ से जीवरचा की तफसील ।

१ सरतला २ लीकोड़ा ४ चैनपुर ४ चीतोड़ ५ सूजब जिला (ग्रामवारा) ६ सरदारपुर ७ करारण ८ खोड़ीय ६ खर-देयरा १० करजू ११ उम्मेदपुर १२ नांहोली १३ खेड़ा १४ कचूं-करा १५ जंताई १६ देवरी १७ सतीराखेड़ा ग्राम ४ १८ भाणूजा १६ ऊंदपुरा २० फतेहसिंहजी का खेड़ा २१ पारड़ा २२ वरया-खेड़ा २३ भंवरडीननाणा २४ फाचर २५ बादड़्या २६ चांदखेड़ी २७ तलाइखेड़ा वगैरह कुल ६५ ग्रामों में पांचसो पचीस (५२५) क्षत्री, हिन्दू, मुसलमान, जागीरदारों ने पूज्य श्री महाराज के सदुपदेश के प्रभाव से अनेक जात के परोपकार व दया के कार्य किये, जिससे सहस्रों मूंगे-गरीब प्राणियों को दुःखजनक मृत्यु के मुख से बचा अभयदान दिया गया है और भी किसान यानी खहूती लोगों ने जंगल में दव लगाने (लाय लगाने) व बहुत से लोगों ने मदिरा मांस का त्याग किया है ।

व्याख्यान में स्वमति अन्यमति हजारों की संख्या में एकत्रित होते हैं महाराज श्री के अमूल्य शास्त्रोक्त वचन श्रवण करने से जो इस सात उपकार हुए हैं वे संक्षिप्त में ऊपर लिखे हैं तदुपरांत कन्या-विक्रय, काल-लग्न, आतिशबाजी इत्यादि की तथा व्यर्थ खर्च

न करने की कई लोगों ने प्रतिज्ञा ली है । इस आनन्दोत्सव में शामिल होने तथा महाराज साहिब के अमूल्य व्याख्यानों का लाभ लेने के लिये बाहर गांवों से हजारों श्रावक श्राविकाएं आये थे ।

तपश्चर्या साधुओं में—श्रीमान् पूज्यजी महाराज के १ अठाई १ पचोला १० वेला तथा एकांतर मास २ की । अन्य मुनिराजों में भी बहुत ही तपश्चर्या हुई थी ।

तपश्चर्या श्रावक श्राविकाओं ने:—

२७	१७	१६	११	१०
१	१	१	१	५

९	८	७	६	५	४	३	२	१	दया
४	२५	९	३१	१२१	१६१	२६६	३३१	१५०५१	३७१

संवत्सरी के	पौषध	एकान्तरउपवास	एकांतर वेला	स्कंध
	५५१	८१	३५	३०१

पचरंगी तपश्चर्या की,	पचरंगी दया पोषध की.
२५	१७

कानोड़ निवासी भाई धनराजजी को पूज्य श्री के सदुपदेश से वैराग्य उत्पन्न हुआ और सं० १९६६ के मगसर वद १ के रोज सादड़ी स्थान पर श्रीजी महाराज के पास उन्होंने दीक्षा ली उस समय भी बाहर ग्राम के सैकड़ों स्वधर्मी बंधु जन पधारे थे और दीक्षा उत्सव बड़ी धूमधाम से किया गया था ।

वहां से शेष काल उदयपुर पधारे बहुत धर्मोन्नति हुई ।

वहां से अनुक्रम विहार करते आचार्यश्री १२ ठाणों से गंगापुर हो कपासन पधारे, यहां श्रीजी के चार व्याख्यान हुए। जैन, वैष्णव, मुसलमान इत्यादि सब धर्म वाले मिलाकर प्राय: २००० मनुष्य व्याख्यान में उपस्थित होते थे, जीव-दया का पूज्य श्री के मुंह से उपदेश सुनते २ वहां के श्री संघ के दिल में दया आई और जीवों को अभयदान देने के लिये एक स्थायी फंड कायम करने का प्रयत्न किया- तुरन्त ही उस फंड में १०००) रु० एकत्रित हो गए, व्याख्यान में कोठारीजी बलवंतसिंहजी साहिब तथा हाकिम साहिब जोधसिंहजी तथा चित्तौड़ के हाकिम श्री गोविन्दसिंहजी प्रभृति भी पधारते थे।

बड़ीसादड़ी का चातुर्मास पूर्ण किये पश्चात् आचार्य महाराज रतलाम की ओर पधारे। वहां श्री जैन ट्रेनिंग कालेज के विद्यार्थी भाई मोहनलाल मोरवी वाले ने उत्कृष्ट वैराग्य से पूज्य श्री के समीप दीक्षा ली, जिनका दीक्षा-महोत्सव रतलाम श्रीसंघ ने अत्यंत ही हर्षोत्साहपूर्वक किया वहां से विहारकर मार्ग में अगणित उपकार करते हुए पूज्य श्री मालवा मारवाड़ को पावन करते विचरने लगे। कितने ही भव्य जीवों ने वैराग्योत्पन्न होनेसे दीक्षा ली।

अध्याय २१ वाँ

एक मिति को पांच दीक्षा।

ब्यावर—(चातुर्मास) सं० १९६७ का चातुर्मास श्रीजी ने ब्यावर (नयेशहर) में किया। साधुमार्गी जैनों की बृहत् संख्या वाला यह शहर पूज्य श्री स्वयं अतुलनीय पूज्य भाव रखता हुआ भी आजतक चातुर्मास से वंचित रहा था, इसलिये ब्यावर के श्रावकों की तरफ से अत्याग्रह पूर्वक की गई विनय को स्वीकारकर इस वर्ष पूज्य श्री ने ब्यावर पर अनुग्रह किया। पूज्य श्री का चातुर्मास होने वाला है ऐसी वधाई मिलते ही श्री संघ में आनंद मंगल छा गया। यहां के श्रावकों का धर्मानुराग पहिले से ही प्रशंसनीय था फिर आचार्य श्री के आगमन से अत्यंत अभिवृद्धि हुई, बहुत धर्मोन्नति हुई, अति तपस्या, दया, पौषध, व्रत, नियम, और ज्ञान ध्यान की धूम मचगई। देशावरों से भी सैकड़ों लोग पूज्य श्री के दर्शन और वाणी श्रवण का लाभ लेने आने लगे।

पूज्य श्री की इच्छा कुछ निवृत्ति प्राप्तकर संस्कृत के अभ्यास करने की थी, उस समय भीनाय वाले पं० बिहारीलाल शर्मा कि, जिन्होंने आठवर्ष तक काशी में रहकर सिद्धांत कौमुदी वगैरह का अभ्यास

किया था, वे ब्यावरही में थे और पूज्य श्री के पास आते भी थे, उन्होंने महाराजश्री को संस्कृत पढ़ाना अत्यंत हर्ष पूर्वक स्वीकार किया और महाराज श्रीने भी पूर्ण जिज्ञासा पूर्वक संस्कृत—व्याकरण का अभ्यास प्रारंभ किया और चार मास तक अभ्यास कर सारस्वत की तीन वृत्ति पूर्ण की उपरोक्त पंडितजी गत श्रावण मास में कमेटी के समय हमें बीकानेर में मिले थे, वहां पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज के दर्शनार्थ आये थे और संघ के आग्रह से चातुर्मास दरम्यान वहीं रहकर महाराज श्री की सेवा की थी, पंडितजी कहते थे कि, पूज्य श्रीलालजी महाराज की जितनी स्मरणशक्ति और कुशाग्र बुद्धि थी वैसी दूसरे व्यक्ति की आजतक मैंने नहीं देखी। नित्यनियम, व्याख्यान, शास्त्र पढ़ना, शास्त्र पर्यटन, स्वाध्याय, प्रतिलेहना, प्रतिक्रमण आदि २ प्रवृत्तियों में से उन्हें थोड़ा ही समय बहुत कठिनाई से मिलता था। दूर २ के कई श्रावक उनके दर्शनार्थ आते उनके साथ धर्म सम्बन्धी वार्तालाप करने में तथा जिज्ञासु श्रावकों के साथ ज्ञान चर्चा करने में भी कितनाही समय व्यतीत होता था। इतने पर भी उन्होंने चार महीने में सारस्वत—व्याकरण की तीन वृत्तियां सम्पूर्ण सीख ली, यह देखकर क्या मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। पंडितजी कहते कि, मुझे उनकी दिव्य शक्ति देख बड़ा आश्चर्य होता और समय २ पर ऐसा भान होता था कि, यह कोई मनुष्य है या देव है। अपने को अभ्यास करने के लिये विशेष समय नहीं

मिलने से वे कई बार लाचारी दिखाकर कहते कि "मेरी आत्मिक उन्नति के मार्ग में अन्तराय मुझे दिवाल की तरह बाधक मालूम होती है" पूज्य श्री के ये वाक्या कहकर पंडितजी उनके अतिशय निरभिमान-वृत्ति की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे थे।

राजकवि कलापी यथार्थ कहते हैं किः--

कीर्तिने सुख माननार सुखथी कीर्ति भले मेलवो।
कीर्तिमा मुजने न कांइ सुख छे ना लोभ कीर्ति तणो॥
पोलुं छे जगने नकी जगतनी पोलीज कीर्त्ति दिसे।
पोलुं आ जग शुं थतां जगतनी कीर्ति सहेजे मले॥

इस चातुर्मास के दरम्यान एक ही मिति को पांच जनों ने प्रबल वैराग्य पूर्वक पूज्य श्री के पास दीक्षाली थी इन पांचों में सेचार तो एक ही ग्राम के निकले हुए थे जोधपुर स्टेट के बालेशर ग्राम के ओसवाल गृहस्थ १ हंसराजजी २ मेघराजजी ३ किशनलालजी और ४ गुलाब चंदजी ये चार तथा ऊंटाला (मेवाड़) निवासी ओसवाल गृहस्थ श्रीयुत पन्नालालजी यों पांचों जनों ने दीक्षा ली जिनका दीक्षा-महोत्सव अत्यंत ही समारम्भ सहित करने में आया था और उसमें ब्यावर संघ ने अत्यंत ही उदारता दिखाई थी।

पूज्य श्री हुकमीचंदजी महाराज के पास बीकानेर एकही मिति पर पांच जनों ने दीक्षाली थी पश्चात् एकही साथ पांच दीक्षा लेने

को यह प्रथम ही अवसर था इनके सिवाय सं० १९६७ के कार्तिक शुक्ल ८ के रोज एक दूसरी दीक्षा भी हुई।

पूज्य श्री के व्याख्यान का लाभ स्वमति अन्यमति लोग बहुत बड़ी संख्या में लेते और उनके फल स्वरूप महान् उपकार होते थे। कई लोगों ने हिंसा करने का तथा मांस भक्षण और मदिरा पान करने का त्याग किया था। उपरांत सैंकड़ों पशुओं को अभयदान मिला था। श्रीयुत घीसुलालजी चोरड़िया तथा श्रीयुत सतीदानजी गोलेच्छा ने जीवरक्षा के कार्य में पूज्य श्री के सदुपदेश के कारण भारी आत्मभोग किया था।
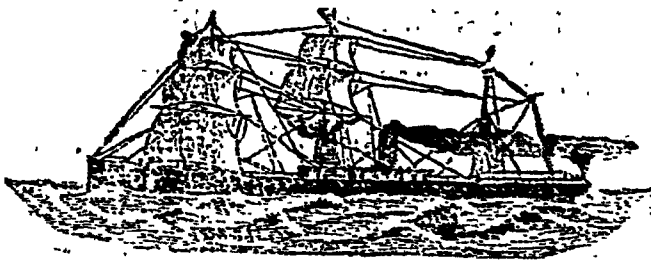
अध्याय २२ वाँ

सौराष्ट्र की तरफ विहार।

काठियावाड़ के केन्द्रस्थान राजकोट शहर के श्री संघ की ओर से काठियावाड़ में पधारने के निमित्त पूज्य श्री से विनंती करने के लिये बारह व्रतधारी सुश्रावक शेठ जयचंद भाई गोपालजी* वडाली वाले ब्यावर आये और उन्होंने पूज्य श्री की सेवा में अत्याग्रहपूर्वक प्रार्थना की कि, राजकोट संघ और काठियावाड़ के कई श्रावक आप के दर्शनों के लिये तड़फ रहे हैं कितने ही उत्तम साधु मुनिराजों की इच्छा भी ऐसी है कि, पूज्य श्री सौराष्ट्र की भूमि पावन करें तो बड़ा उपकार हो इत्यादि २।

---

*शेठ जेचंद भाई की राजकोट तथा अदन कॅम्प में बड़ी भारी दुकानें थीं परन्तु केवल धर्म परायण जीवन बिताने के लिये उन्होंने हजारों की आमदनी का प्रत्यक्ष धंधा त्याग दिया और प्रतिमाधारी श्रावक हो ज्ञानाभ्यास, धर्मानुष्ठान, समाजसेवा, प्राणिरक्षा और उत्तम साधु सन्तों के सत्संग प्रभृति पारमार्थिक प्रवृत्तियों में ही अपना समय, शक्ति और द्रव्य का सद्व्यय करने लगे थे। अभी

सेठ जयचंद भाई पहिले भी एक समय विनन्ती करने के लिये स्वयं आये थे। उसी तरह सं० १९६० में मोरवी निवासी देसाई वनेचंद राजपाल तथा लेखक पूज्य श्री के दर्शनार्थ तथा मोरवी कान्फरन्स में पधारने का उदयपुर श्री संघ को आमन्त्रण देने के लिये उदयपुर गए थे। तब भी काठियावाड़ में पधारने की विनय की थी, सिवाय अजमेर कान्फरन्स के समय काठियावाड़ से आये हुए कई श्रावकों ने पूज्य श्री की असाधारण प्रभावशाली वक्तृतासे मुग्ध हो काठियावाड़ को पावन करने की पूज्य श्री से बहुत ही आग्रह के साथ प्रार्थना की थी, उसमें श्रीमान् मोरवी तथा लींबड़ी नरेश भी शामिल थे। हर एक समय श्री जी महाराज ने कुछ न कुछ आश्वासन रूप ही उत्तर दिये थे। इसलिये इस समय श्रीयुत जयचंद भाई की प्रार्थना स्वीकृत हो गई।

व्यावर का चतुर्मास पूर्ण होने के बाद आचार्य महाराज क्रमशः विहार करते मरु भूमि को पावन करते पाली पधारे वहां पर फाल्गुण वदी १३ को श्री मनोहरलालजी की दीक्षा हुई। और पाली से

थोड़े वर्ष पहिले ही उन्होंने दीक्षा ले ली है और वर्तमान समय में वे एक उत्तम साधु हो काठियावाड को पावन करते हुए विचरते हैं। वे अत्यंत आत्मार्थी और उत्तम आचारवान् साधु हैं। संसारावस्था में प्रत्येक चातुर्मास में वे पूज्य श्री की सेवा करते थे।

सं० १६६७ के फाल्गुण शुक्ला १४ के रोज २० ठाणों से उन्होंने गुजरात काठियावाड़ की ओर विहार किया। साधु क्षेत्रों का प्रतिबंध त्याग देशांतरों में विचरते रहें तो परस्पर विचार विनिमय और ज्ञान की चर्चा से अत्यंत लाभ हो और श्रावक समुदाय को भी भिन्न २ सम्प्रदाय के और पृथक् २ देशों के साधुओं की सेवा का और उनके विविध विषयों पर प्रकाश डालने वाले व्याख्यान श्रवण करने का अमूल्य लाभ मिलता रहे ऐसी श्रीजी महाराज की मान्यता थी इसलिये प्रथम वे स्वयं गुजरात काठियवाड़ में जा वहां के विद्वान् मुनिराजों को मालवा मारवाड़ की ओर आकर्षण करना चाहते थे और काठियावाड़ में पधारने के बाद उन्होंने कितने ही मुनिराजों को इसके लिये आमंत्रण भी किया था।

पाली से जल्द २ विहारकर और राह के अनेक विकट परिसह सह के कर ता० १३ $\frac{3}{11}$ के रोज पालनपुर पधारे राह विकट होने से साथ के कितने ही साधु मुसाफिरी के कष्टों से घबड़जाते, तो उनको पूज्य श्री समयोचित शास्त्र वचनों से कर्तव्य का भान कराते और प्रोत्साहन देते थे। पालनपुर में पूज्य श्री २२ दिन ठहरे थे। दिल्ली दरवाजे के बाहर पालनपुर के भूतपूर्व दीवान महेताजीश्री पीताम्बरदास हाथीभाई की धर्मशाला के अति विशाल मकान में पूज्य श्री विराजते थे, वहां जैन जैनेतर प्रजा ने पूज्य श्री की दिव्य वाणी श्रवण करने का सम्पूर्ण लाभ उठाया था। सैयद कौम के एक

शिक्षित मुसलमान युवक ने मांस भक्षण करने का सर्वथा त्याग किया था तथा दया, पौषध और तपश्चर्या भी बहुत हुई थी।

वर्तमान की विलास-प्रिय प्रजा वैराग्य और भक्ति के नाम से भड़क भागती है। वह तरगंवश अमन चमन करने में ही अपना जीवन सफल समझती है उसको वैराग्य, भक्ति और परोपकार की मात्रा देने में पूज्य श्री अनुभवी वैद्य थे।

इन अरुचिकर दवाओं में असरकारक और उपदेशाकारक सत्य दृष्टांतों, काव्यों, श्लोकों, और श्री महावीर की आज्ञाओं, को ऐसी रीति से कहते कि, लोग बाँसुरी पर मुग्ध नाग की तरह नाचने लग जाते थे, लोगों को रुचिकर दृष्टांत संकलन करने में वे पूर्ण कुशल थे और यह तथ्य पथ्य अनुपान वाली कटु दवा भी पूर्ण श्रद्धा से कंठ तक उतार देते थे, श्रोताओं पर भारी प्रभाव गिरने से लाखों मन लोह लोह-चुम्बक की ओर खिंचाता था। गुजरात की पवित्र भूमि पर पांव देते ही महाराज श्री का उचित आतिथ्य श्री पालनपुर संघ ने किया और Well begun is half done 'शुभ प्रारंभ अर्द्ध सफलता सुझाता है यह सत्य अंत में सफल हुआ ऐसा आगे पाठक देखेंगे।

पवित्र समय में आरोपित भक्ति के इन बीजों ने अपूर्व फल उत्पन्न किया। पालनपुर आज भी शुद्ध संयमी और आत्मार्थी साधुओं को

हृदय से सन्मान देता है पूज्य श्री श्रीलालजी की जीवन पर्यंत पा-लनपुर ने सेवा की है चाहे जितनी २ दूर पूज्य श्री के चातुर्मास होते परन्तु पालनपुर के श्रावक वहां जाने से नहीं रुकते उनमें जोहरी मानिकलाल जकशी, जोहरी मोहनलाल रायचंद, जोहरी अ-मृतलाल रायचंद इत्यादि तो भिन्न मकान ले सपरिवार एक दो माह पूज्य श्री के सदुपदेश का लाभ लेने को वहां ठहरते और अब भी यही रीति कायम रख वर्तमान पूज्य श्री की ओर ऐसे ही भाव से कृतज्ञता बताते रहे हैं। दुनिया को सिर्फ बताने के लिये ही यह ज्ञान नहीं है परन्तु भक्ति—भाव के प्रत्यक्ष और अनुकरणीय दृष्टांत हैं।

नवचेतन के लिये 'नवजीवन' निम्नांकित मंत्र सिखाता है।

"स्वधर्म अग्नि के समान है इसके सहवास से अपने दुर्गुण (एब) जल जाते हैं और फिर वह अपने को अपने समान ही तेजस्वी बना देता है आज इस अग्नि पर कुसंस्कार की क्षार ढक गई है तो भी उसकी परवाह न करते उस पर पानी डालते अपने स्वतः के प्राणों से फूँककर उसे जागृत करो"।
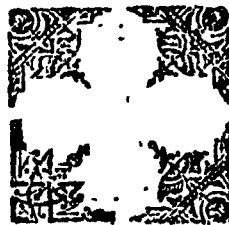
अध्याय २३ वाँ

काठियावाड़ के साधु मुनिराजों ने किया हुआ स्वागत ।
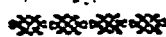
पालनपुर से विहारकर सिद्धपुर, मेसाणा, वीरमगाम, और लखतर हो श्रीजी महाराज चैत्र माह में वढ़वाण पधारे। उस समय वढ़वाण शहर में द्रोसा वोरा के उपाश्रय में लींबड़ी सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध मुनि श्री उत्तमचंदजी महाराज ठाणा ५ सुंदर वोरा के उपाश्रय में मुनि श्री मोहनलालजी लक्ष्मीचंदजी ठाणा ७ तथा दरियापुरी उपाश्रय में मुनि श्री अमीचंदजी ठाणा ५ कुल मिलाकर १७ मुनिराज विराजमान थे. ये सब मुनिराज पूज्य श्री के व्याख्यान में पधारते थे। श्रोतृवर्ग में देरावासी श्रावक, गिराशिया, ब्राह्मण प्रभृति सब जाति और सब धर्म के लोग दृष्टिगत होते थे। अजमेर के सुप्रसिद्ध करोड़पति सेठ गाढमलजी लोढ़ा तथा श्रीयुत वाड़ीलाल मोतीलाल शाह इत्यादि यहां पूज्य श्री के दर्शनार्थ पधारे थे। पूज्य श्री पालनपुर विराजते थे तब राजकोट से सेठ जयचंद गोपालजी इत्यादि श्रावक पूज्य श्री को राजकोट तरफ पधारने की विनय करने आये थे और चातुर्मास राजकोट का मंजूर हुआ था।

वढ़वान से राजकोट जाने की जल्दी थी, परन्तु श्रीमान् पंडित प्रवर मुनि श्री उत्तमचंदजी महाराज के अत्याग्रह से श्रीजी महाराज लींबडी पधारे. इन दोनों महापुरुषों के इतने अल्प समय में परस्पर इतना अधिक धर्म स्नेह होगया था कि, मानो एक ही सम्प्रदाय के दोनों गुरु भाई हों, इतना ही नहीं परन्तु लींबडी सम्प्रदाय के पूज्य श्री मेघराजजी स्वामी तथा पं० मुनि श्री उत्तमचंदजी स्वामी इत्यादि ने खास तौरपर अग्रेसर श्रावकों द्वारा ऐसा प्रबंध कराया कि, इस देश में मारवाडी मुनि पधारे हैं तो इस सम्प्रदाय के चातुर्मास करने के क्षेत्रों में (काठियावाड़, कच्छ इत्यादि देशों में अपने मुनियों में ऐसी रसम प्रचलित है कि, किसी ग्राम में किसी सम्प्रदाय के कोई मुनि चातुर्मास में विराजते हों तो वहां दूसरे सम्प्रदाय के मुनि चातुर्मास नहीं कर सकते) चाहे जिन स्थानों पर इन मुनियों को चातुर्मास करने की छूट है इतनाही नहीं परन्तु श्रावकों ने भी इन्हें दूसरी सम्प्रदाय के समझ भेदभाव न रखना चाहिये और सब तरह से उचित सेवा करनी चाहिये । इस प्रकार लींबडी सम्प्रदाय के समय के जानकार मुनिराजों ने भेदभाव त्याग भ्रातृभाव बढ़ाने की अनुपम और अनुकरणीय आज्ञा की कि, शीघ्र ही वढ़वान में विराजते लींबडी संघवी सम्प्रदाय के महाराज श्री मोहनलालजी तथा दरियापुरी सम्प्रदाय के महाराज श्री अमीचंदजी ने भी ऐसी ही उद्घोषणा अपने क्षेत्रों में करी ।

वढ़वान से पंडित उत्तमचंदजी महाराज आदि लींबड़ी पधारे और उसके दो डेढ़ घंटे बाद ही पूज्य श्री भी लींबडी पधारे थे। उस समय लींबडी संघ का उत्साह अपूर्व था। पूज्य श्री के सामने स्टेशन जितने दूर श्री उत्तमचंदजी स्वामी प्रभृति कई मुनि तथा श्रीसंघ के सैंकड़ों स्त्री पुरुष गए थे।

लींबडी हाईस्कूल के वृहत् हाल में पूज्य श्री विराजते थे। वहां पूज्य श्री को गत सैके की उभय सम्प्रदाय की तमाम हुई हकीकत (दौलतरामजी महाराज तथा अजरामरजी महाराज की जो हम गुर्वावली में लिख चुके हैं) श्री उत्तमचंदजी महाराज ने पढ़ सुनाई। श्रीजी महाराज ने फरमाया कि, दौलतरामजी महाराज छठी पीढ़ी में मेरे गुरु हैं। उन्होंने गुजरात काठियावाड़ में पांच चातुर्मास किये थे। लींबडी में उन्होंने प्रथम चातुर्मास सं० १८४६ में किया था, पश्चात् लींबडी के सुप्रसिद्ध सेठ करमसी प्रेमजी उन्हें अत्याग्रह से सं० १८५१ में लींबडी लाये थे और फिर सं० १८५८ में उन्होंने तृतीय वार लींबड़ी चातुर्मास किया था। इन तीनों चातुर्मासों में श्री दौलतरामजी तथा श्री अजरामरजी महाराज साथ ही बिराजे थे और दौलतरामजी महाराज के आग्रह से अजरामरजी महाराज ने एक चातुर्मास जैपुर किया था और उस समय जैपुर में अपूर्व आनन्द मंगल छा गया था।

लींबडी में भी वढ़वान की तरह दूसरे व्याख्यान बंद थे और सब मुनि पूज्य श्री के व्याख्यान में पधारते थे। नामदार ठाकुर साहिब (लींबडी नरेश) दीवान साहिब, अधिकारी समुदाय इत्यादि श्रीजी महाराज के व्याख्यानों का लाभ ले अत्यन्त संतुष्ट हुए थे। श्रोतृवर्ग पर श्रीजी महाराज के व्याख्यान का ऐसा उत्तम प्रभाव पड़ा कि, हमेशा व्याख्यान के लाभ लेने की तीव्र जिज्ञासा हर एक को हुई इस से ना० दरबार साहिब ने ऐसा ठहराव किया कि "गरमी के दिनों में कोर्ट में सुबह का समय है इसलिये अधिकारी वर्ग को व्याख्यान में आने में तकलीफ होती है इस कारण कोर्ट तथा स्कूल का समय थोड़े दिनों के लिये दुपहर का रक्खा जाय" उपरोक्त आज्ञा से सबको व्याख्यान सुनने का समय मिलने के लिये जबतक पू० श्री लींबडी बिराजते रहे, कोर्टों का टाइम दोपहर का रहा। ठाकुर साहिब दीवान साहिब तथा अन्य अमलदारों के साथ दररोज व्याख्यान में पधारते थे। नामदार श्री को आपके उपदेश से अत्यन्त सन्तोष प्राप्त हुआ और प्रतिदिन उपदेश श्रवण करने की जिज्ञासा की वृद्धि होती रही। नामदार के साथ उनके गादीवर कुंवर श्री दिग्विजयसिंहजी भी पधारते थे। पूज्य श्री के समयानुकूल और सर्वमान्य उपदेश से हरएक धर्म वाले अत्यन्त आनंदित होते थे।

व्याख्यान में आर्य—विद्या और अनार्य—विद्या की समानता, गौरक्षा पर विशेष विवेचन, गौरक्षा से देश को होवें अनेक लाभ

इत्यादि दृष्टांतों के साथ समझाने से तथा विद्यादान और उससे इस लोक और परलोक में प्राप्त होने वाले महान् सुखों से सम्बन्ध रखने वाले असरकारक उपदेश से महाराजा साहिब बड़े प्रसन्न हुए और कई मनुष्योंने अनजान मनुष्य के हाथ गाय, भैंस वगैरह बेचने की प्रतिज्ञा ली। सिवाय रोने कूटने से होते हुए गैर लाभ दिखाने से लींबड़ी के श्री संघ ने जनरल मीटींग बुला सर्वानुमत से रोने कूटने का रिवाज बड़े अंश में बंद करने वाला ठहराव पास किया था यहां नौ दिन ठहर कर पूज्य श्री चूड़े पधारे। महाराज श्री उत्तमचन्द्रजी के विशाल सूत्र ज्ञान और कितनी ही कुंजियों से श्रीजी ने लाभ उठाया और अपनी कई शंकाओं का समाधान किया। महाराज श्री उत्तमचंदजी पर पूज्य श्री की आदर बुद्धि होने से समय २ पर ज्ञान प्रश्नोत्तर होते रहते थे।

ता० १३-५-१९११ के रोज पूज्य श्री चूड़े पधारे और दरबारी कन्या-पाठशाला में ठहरे ना० ठाकुर साहिब कि, जो जालंधर की अपनी कान्फरन्स में पधारे थे वे दीवान साहिब तथा अमलदार वर्ग के साथ व्याख्यान में पधारते थे. व्याख्यान में अनेक धार्मिक तथा ऐतिहासिक दृष्टांत आने से और मनुष्य कर्तव्य सम्बन्धी अमूल्य उपदेश होने से लोगों को अत्यंत रस आता था गुणानुरागी होना वैरभाव त्यागना, पक्षपात न करना, समभाव करना सीखना, सब धर्मों पर समान दृष्टि रखना आदि उपदेशों से सबको बहुत आनन्द होता था।

अध्याय २४ वाँ

राजकोट का चिरस्मरणीय चातुर्मास।

पूज्य श्री रास्ते के विहार में बीमार होगये थे; पांव में वायु की व्याधि बहुत बढ़ गई थी परन्तु वे समय २ पर कहते कि, मुझे चातुर्मास राजकोट करना है यह मेरा निश्चय है बाकी तो केवलीगम्य है। आत्मबल बहुत काम करता है। अष्टावक्र जिनके आठों अंग टेढ़े थे तोभी वे आत्मबल से कितने प्रभावशाली हुए यह सुप्रसिद्ध ही है। आत्मश्रद्धा; आत्मबल के प्रमाण से ही कार्यसिद्ध होता है यह अनुभव सत्य है कि, भाग्य के भोगी होने के बदले अपन भाग्य को बदल सकते हैं और आगे क्या होगा उसका निर्णय भी कुछ अंश में अपन कर सकते हैं' श्रीयुत मार्डन सत्य का समर्थन करते हुए कहते हैं कि "शिथिल महत्वाकांक्षा अथवा ढीले उद्योग से कभी कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता, कार्य को सिद्ध करने वाली शक्ति के साथ अपना निश्चय दृढ होना चाहिये।

दूसरे कोई होते तो ऐसे समय विहार की तकलीफ न उठाते, 'यहीं द्वारिका' कर लेते; परन्तु राजकोट में व्याप्त जडवाद को शिथिल करने का प्रकृति का निश्चय था। उस प्रकृति ने पूज्य श्री को

राजकोट की ओर प्रयाण कराया। चूड़ा से सुदामड़ा, धांधलपुर, चोटीला और कुवाडवा हो राजकोट पधारे, जिसके दूर से ही मुंह निकाले छप्पर इङ्गित होते थे।

राजकोट से चार पांच गाऊ दूर पूज्य श्री के पधारने की वधाई मिलने पर इन महँगे यजमान का आतिथ्य करने के लिये राजकोट ऊंचा नीचा हो रहा था। राजकोट के हर्ष की प्रतिच्छाया उनके मुख मंडल पर प्रकाशित होने लगी। राजकोट शहर के ऊपर स्वच्छ आकाश में प्रभात की सूर्य किरणों ने सुनहरी रंग पोता किलोल करते, घोंसले से उड़कर आते हुए पक्षियोंने वधाई दी और लम्बे समय से लगी हुई आशा सफल हुई समझ श्री संघ सत्कार के लिये प्रस्तुत हुआ। सूर्योदय होते ही जैसे कमल के वन प्रफुल्लित होते हैं वैसे ही श्रीजी महाराज के पदार्पण से राजकोट के श्रावकों के हृदय कमल प्रफुल्लित होगए।

शहर के समीप वनिक भोजनशाला के मकान में आप उतरे। सं० १९६८ का चातुर्मास पूज्य श्री ने कितने ही संतों के साथ राजकोट में किया। दूसरे मुनिराजों को मूली तथा बोटाद चातुर्मास करने की आज्ञा दी और वहां भेजे। व्याख्यान भोजनशाला में ही होता था और निवास जैन पाठशाला में रक्खा।

महाराज श्री का यह चातुर्मास राजकोट के इतिहास में बल्कि समस्त काठियावाड़ के इतिहास में सुवर्णाक्षरों से अंकित रहेगा,

सं० १९६८ का चातुर्मास निष्फल जाने से बड़ा दुष्काल पड़ा, प्रारंभ से ही मेघराज की कुकृपा देख, दुष्काल संभव समझ, दया और परोपकार विषय पर महाराज श्री ने अपनी अमृत तुल्य वाणी का अमोघ प्रवाह रूप उपदेश देना प्रारंभ कर दिया। महाराज श्री के हरएक रोज के व्याख्यान में स्थानकवासी, देरावासी, जैन भाइयों के उपरांत दूसरे धर्म के भी संख्याबद्ध मनुष्य उपस्तिथ होते थे और राजकोट वकील वरिस्टरों से भरपूर और सुधरे हुए देशों की पंक्ति में है, तो भी अमलदार वर्ग या दूसरे अग्रेसर गृहस्थों में शायद ही ऐसा कोइ निकलेगा कि, जिसने व्याख्यान का लाभ न लिया हो। पूज्य श्री सरल परन्तु शास्त्रीय पद्धति से ऐसा सचोट उपदेश फरमाते कि, मध्य में किसी को कुछ प्रश्न करने की आवश्यकता ही न रहती थी। अनेक शंकाओं का समाधान होता और अनेक प्रश्नों का निराकरण होता था।

पूज्य श्री के प्रभाव का डंका समस्त काठियावाड़ में बहुत दूर तक बज चुका था और राजकोट काठियावाड़ का केंद्र स्थान होने से बाहर से आये हुए अमलदार दरबार इत्यादिकों को व्याख्यान श्रवण करने का लाभ मिलता था। नामदार लींबडी के ठाकुर साहिब राजकोट पधारे तब व्याख्यान में उपस्थित हुए थे। पूज्य श्री के दर्शनार्थ बाहर से आने वाले स्वधर्मी बन्धुओं का आतिथ्य सत्कार करने का खास प्रबंध किया गया था। भिन्न २ स्थान उतरने के

लिये और भिन्न २ भोजनालय भोजन के लिये थे, इनके सिवाय उनको भिन्न २ श्रावकों की ओर से टी पार्टी मिहमानी इत्यादि भी दी जाती थीं। पूज्य श्री के वचनामृतों का पान करने, संतोषकारक आतिथ्य होने और व्याख्यान की धूमधाम तथा ज्ञानचर्चा की प्रबल धूम होने से आने वाले मन में धार कर आये हुए दिनों से भी दो चार दिन सहज ही ज्यादा ठहरते थे। सत्कार के उत्साही कार्यकर्ता भाई श्री चुन्नीलालजी नागजी वोहरा और सुप्रसिद्ध आर्टिस्ट छोटालाल तेजपाल सतत श्रम उठाते रहते थे।
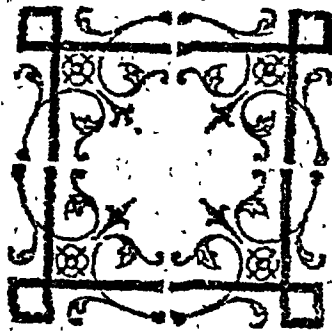
अध्याय २२ वाँ

परोपकारी उपदेश का भारी प्रभाव।

गोंडल के भूतपूर्व दीवान साहिब मरहूम खान बहादुर बेजनजी मेहरवानजी भी महाराज के व्याख्यान में पधारे थे, उस समय उनका स्वास्थ्य ठीक न होने से एक साथ पंद्रह मिनिट भी वे बैठ न सकते थे, तौभी महाराज श्री के व्याख्यान में उन्हें इतना अधिक रस उत्पन्न हुआ कि, वे क़रीब पौन तास तक ठहरे और महाराज श्री का दया तथा परोपकार विषय पर जिसमें "खासकर दुष्काल पड़ने के डर से उस समय किस तरह दया करनी चाहिए और मनुष्य के साथ कितने अंश तक हर एक मनुष्य को अपना कर्त्तव्य अदा करना चाहिये" इस विषय पर विवेचन सुनकर तो उन पारसी गृहस्थ की आखों से दड़दड़ आंसू बहने लग गए।

पूज्य श्री सूत्रों के सिद्धांत समझा मनुष्य जन्म की महत्ता दिखा विशेष समयमें कीहुई सहायता साधारण समय से सहस्त्रों गुणी विशेष फल देने वाली है यह उदाहरण दलील और फिलॉसोफी के सिद्धांत पर घटित कर प्रस्तुत समय को किस धैर्य से निभा लेना चाहिये यह वृद्ध अनुभवी से भी अधिक प्रभावोत्पादक रीति से श्रोताओं के हृदय में बिठा देते थे।

अपने संयम को प्रतिपालते, सम्प्रदाय की सीमा न टालते। श्रोताओं को उनके कर्तव्य का भान भासित करने वाली श्री जी की कुशल बुद्धि राजकोट जैसे सुधरे हुए क्षेत्र में विजय प्राप्त करे यह पूज्य श्री की योग्यता का सब से बड़ा प्रमाण है। श्री महावीर प्रभु के बचनामृतों को अक्षरशः अनुमोदन देने वाले विद्वान् अबुबनि आदम का एक काव्य इस मौके पर पाठकों को अति रस देगा काव्य बड़ा भारी है परंतु यहां पर उसका थोड़ासा अनुवाद दिया जाता है।

"देवदूत—सत्य है! मृत्यु लोक यही स्वर्ग लोकका द्वार है जो सीधा जाना पसंद करते हों—तो मेरे दूतों ने तुम्हें कभी व्रत या तप करते नहीं देखा, तुमने बड़े २ दान भी न किये, यात्रा करके तुमने देहको सार्थक नहीं किया, प्रभु मंदिर में कभी पांव भी न रक्खा, ऐसे ज़ीवनको क्या मैं अपने प्रभुके पास ले जाऊं? नहीं २ ऐसा तो कभी नहीं हो सका।

दीनबन्धु—दयालुदेव! दिव्य नयनों से देखो यों मैंने अपना कल्याण न भी किया हो परन्तु जगत् के दुःखी अज्ञान और दिल के दर्दियों का दर्द दूर करने में मैंने अपना भाग दिया है, मैंने व्रत, तप करके देह दमन न किया हो, परन्तु प्रभो! गरीबों के लिये मैंने अपनी देह सुखादी है, मैं पाप धोनेवाली गंगा में नहाया नहीं परन्तु दीनों की मीठी दुआओं से मैंने अपनी आत्मा का मैल

धोया है, मैं पैसे का (अन्न वस्त्र की शक्ति न होने से) दान न किया परन्तु समस्त समाज को अपनी देह दान में दे चुका हूं. मैंने सिर्फ मंदिर में ही प्रभु को नहीं देखा, परन्तु अखिल विश्व में प्रभु की दिव्य प्रतिमा मैंने पूजी है। अन्य भक्तों ने पत्थर के पुतले में प्रभु माना, मैंने हर एक मनुष्य में माना, दुनियां में दयानिधि देखे हैं और सेवा की है। मैंने उन तीर्थों की तीर्थ यात्रा नहीं की परन्तु गरीब-यात्रा दुःखी-यात्रा मनुष्य-यात्रा की है, अर्थात् गरीबों की दीनता का, मनुष्य की मनुष्यता का, दुःखियों का दुःख का विचार किया है भगवान् को भजन के बदले मैंने अपने भोले भाईयों का भजन किया है, भक्तों ने एक ही भगवान् माना होगा, मैंने तो अनेक भगवान् माने हैं। प्रत्येक मनुष्य में एक २ प्रतिमा विराजमान है। मनुष्य के हृदय में जान्हवी है व्रत, तप की शांति है तीर्थ-यात्रा महिमा है, और मोटाई है मालिक के दान का अनंत गुणा पुण्य भार है। दूसरों ने पापियों के लिये धिक्कार बरसाया होगा परन्तु वे भी मेरी दया के पात्र बने हैं......................अन्य के अश्रु पूछना ही मेरा धर्म है। सत्य मेरी शक्ति है और सेवा मेरी भक्ति है।

प्रभुजी—(दीन बन्धु के सिर पर हाथ रख कर) मेरे भक्त! तेरी सेवा सच्ची सेवा है तेरी भक्ति सच्ची भक्ति है। मुझे रामचंद्र या कृष्णचंद्र के रूप में देख, भक्ति करने की अपेक्षा एक दीन

दर्दी अज्ञानी या पापी के स्वरूप में देख भक्ति करना अधिक पसंद है, गरीब या अनाथों का अनादर वह मेरा ही अनादर है, उनका सत्कार वह मेरा सच्चा सत्कार है। मेरा तमाम ऐश्वर्य प्रभु के ऐसे भक्तों के ही चरण में समर्पण है।

इस काव्य के पृथक् २ विचार भी पूज्य श्री के सदुपदेश को अनुमोदन देते हैं कि, जगत् में कल्याण का एक भी श्वास लिया होगा, दया से एक भी अश्रु गिराया होगा, तो वही दिन साफल्य हैं आज किसीका भला न किया हो तो प्रायश्चित्त कर और हे जीव! तेरी बेपरवाही का बदला देने प्रस्तुत हो। कल गरीब का–समाज का छिप २ कर काम करना अर्थात् आज का देना चुकता हो जायगा जो जीवन अपने पश्चात् कोई चिन्ह न रख सका जिस जीवन की ज्योति से अंधकार विलीन न हुआ, जिस जीवन ने भूत–प्राणी को संतोष न दिया वह जीवन सचमुच देखा तो पान खर ऋतु के जैसा ही व्यतीत हुआ समझा जाता है।

संवत्सरी के दिन ढोरों के निभाने के लिये फंड करते समय अपने जैन भाईयों से ही रु० पांच हजार की रकम इकट्ठी की थी और राजकोट के नामदार ठाकुर साहिब के सभापतित्व में जो वृहद् जाहिर सभा ढोर संकट निवारण फंड के लिये की गई थी उसमें वह रकम न बताते ना. ठाकुर साहिब ने उसी समय

रु० ७००० सात हजार की रकम उस फंड में दे फंड का कार्य प्रारंभ किया था और सब जाति की एक कार्यकारिणी कमेटी मुकर्रर की थी। दुष्काल में दुष्काल पीड़ित मनुष्यों को मदद करने, उसी तरह ढोरों की रक्षा करने में दूसरों के साथ जैन भाईयों ने भी अग्रेसर हो भाग लिया था, मारवाड़ छारियों को खास सस्ते भाव से, उधार या मुफ्त घास और अनाज दे अपने जानवरों को निभाने के लिये सरलता की थी, राजकोट के प्रसिद्ध वकील रा. रा. पुरुषोत्तम भाई मावजी ने दुष्काल के दस महिनों में अपना काम धंधा बिल्कुल त्याग महाराज श्री के पास दुष्काल सम्बन्धी कामकाज ही करने की प्रतिज्ञा ली थी। इस दुष्काल में मनुष्यों एवम् ढ़ोरों के लिये उन्होंने बड़ा श्रेष्ठ कार्य किया था। राजकोट के प्रसिद्ध जैन भाईयों रा० रा० जयचंद भाई गोपालजी (वर्तमान जयचन्द्रजी स्वामी) रा० रा० बेचरदास गोपालजी, रा० रा० भाईदास बेचरदास, रा० रा० न्यालचन्द सोमचंद, रा० रा० पोपटलाल केवलचन्द शाह को साथ ले वे उस समय के दुष्काल के लिये बम्बई, धरमपुर, रतलाम, इन्दोर, उज्जैन, जावरा, मंदसौर, अजमेर, बीकानेर और उदयपुर इत्यादि स्थानों पर ढोर संकट निवारण के लिये फंड जमा करने गये थे। उस फंड में लगभग रु० ५०००० पचास हजार एकत्रित कर ढोरों का अच्छी तरह बचाव किया था, उक्त गृहस्थों ने मुसाफिरी खर्च अपने पास से दिया था और फंडखाते से एक पैसा भी न लिया था।

राजकोट में इस समय सेवाधर्म का सिद्धान्त पूज्य साहिब ने इतनी श्रेष्ठ असरकारक रीति से समझाया था कि उनके व्याख्यान सुनने वाले उसका प्रत्यक्ष अनुभव लेने के लिये गतिस्पर्द्धिता चढे थे उस समय संख्याबद्ध ढोर बिना मालिक के फिरते थे। पंजिरापोल उपरान्त शहर के भिन्न २ स्थानों पर खास 'केटलकेम्प , पशुगृह खोलकर स्वयं सेवकों ने बड़ी फिक्र के साथ सेवा की थी। सेठ और गृहस्थी इस्त्री किये कपड़ों वाले अपने हाथों से बीमार जानवरों को बिठाते, उनको दवा लगाते और उन्हें पुचकारते थे।

सेठ, गृहस्थ और युवा मित्र मंडल के साथ मौज उड़ाने, लब में या हवा खोरीपर जाने के बदले या गप्प सप्प मारने, मिथ्या हंसी उड़ाने के बदले, अवकाश का समय 'सेवाधर्म' में व्यतीत करें यह वर्तमान समय के लिये अत्यावश्यक है। कमीज की बाहें चढ़ाकर एक मनुष्य जानवर का मुंह पकड़े। दूसरा मित्र नाल से उस के मुंह में दूध डाले। तृतीय मित्र डब्बे में से दवा ले उसके लगावे और चौथा मित्र रेशमी रुमाल से पशु की धाराओं पर बैठती हुई मक्खियां उड़ावे; यह दृश्य दूसरों को सेवाधर्म में लगाने के लिये [illegible]ी है। राजकोट 'केटल केम्प' का एक फोटो मिलगया है वह पास के पृष्ट पर देखें जिस में सोनी मोहनलाल केशवजी, कंसारा ठाकुरसी केशवजी इत्यादि स्वयंसेवकों का परिचय मिलेगा।

राजकोट दुष्काल केटल केम्प.
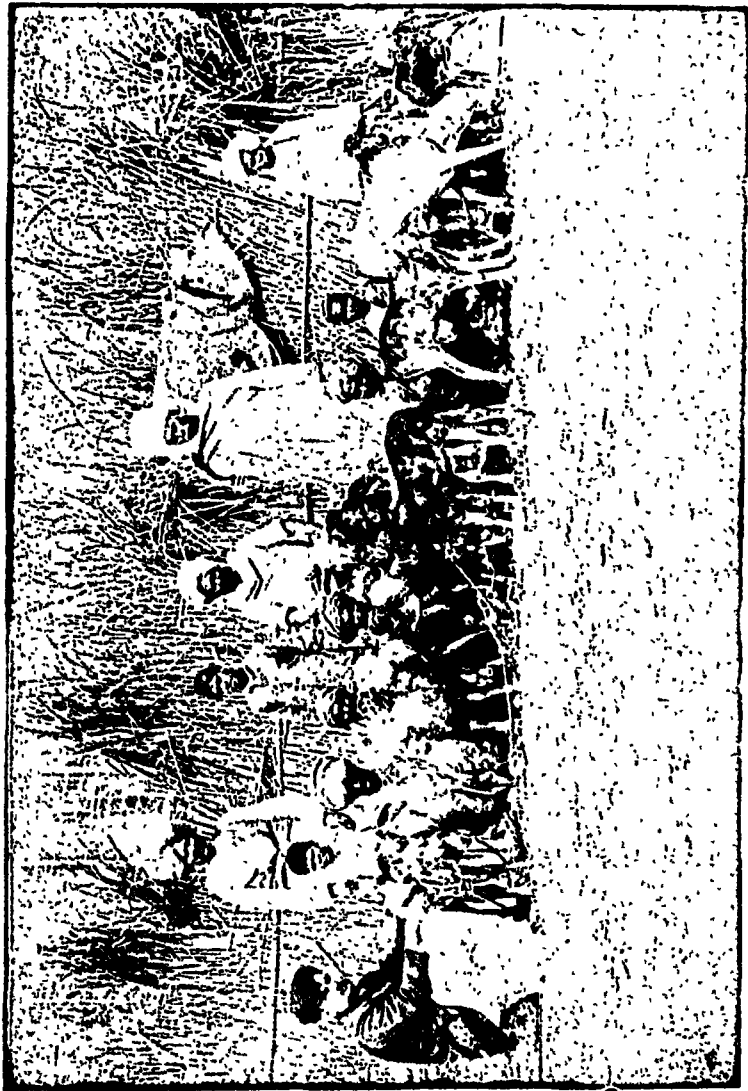
परिचय–प्रकरण २५.

परिचय—प्रकरण

राजकोटमां छाशनी व्हेंचणी.

राजकोट में ही मनुष्य जाति की सहायता में तथा ढोरों के रक्षार्थ लगभग रु० १२५००००) एक लाख पच्चीस हजार खर्च हुए थे।

काठियावाड़ में 'छाछ' खाने का रिवाज दूसरे देशों की अपेक्षा अधिक प्रचलित है। छाछ करने के लिये कई जगह कुटुम्बों में गाय भैंस रखने की पद्धति प्रचलित है। अगर ऐसा प्रबन्ध नहीं हुआ तो सगे सम्बन्धी या अड़ोसी पड़ोसियों के यहां से लाने का रिवाज है। दुष्काल जैसे समय 'छाछ' की तकलीफ होने के कारण लोगों को छाछ की सुलभता कर देने से बड़ी मदद मिलती है राजकोट के सोनी मोहनलाल इत्यादि स्वयंसेवकों ने छाछ का भी उत्तम प्रबन्ध कर दिया था। बम्बई की एक पारसी बाई ने 'छाछ' कितने ही माह तक अपने खर्च से ही देने की इच्छा प्रकट की थी, इसलिये बहुत सी छाछ बनती थी। छाछ बांटने की संस्था का पास का चित्र देखने से पाठकों को जरा खयाल होगा।

ता० १०।६।१९११ के रोज पूज्य श्री के व्याख्यान का लाभ लेने के लिये नामदार राजकोट के ठाकुर साहिब पधारे थे, और डेढ़ घंटे तक सावधानी के साथ पूज्य श्री के प्रवचन श्रवण किये थे। उस समय २००० से ३००० श्रोताओं की उपस्थिति में पूज्य श्री ने 'मनुष्य कर्तव्य' समझाया था।

प्रथम लोक में प्रभु स्तुति किये बाद देवता मनुष्य तिर्यंच और नारकी इन चार गतियों में मनुष्य क्यों विशेष उत्तम है और इस

चार गतियों में से मात्र एक मनुष्य की गति ही से क्यों मोक्ष प्राप्त हो सकता है वह समझाया। मनुष्य जन्म की दुर्लभता समझाई और जब मनुष्य जन्म दस बोलों सहित प्राप्त हो गया है तो उसे किस तरह सफल कर सकते हैं इस पर विवेचन किया। अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह इन पांचों यमों के विषय पर महाभारत के शांतिपर्व में से कितने ही उदाहरण दे मनुष्य के कर्तव्यों में वे किस रीति से गिने गए हैं यह समझाया। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रों के धर्म समझाते हुए क्षत्रिय राजाओं का चारित्र कैसा निर्मल होना चाहिये यह समझाया। एक धर्म के आचार्य दूसरे धर्म के आचार्य पर हमला करें तथा धर्म का भिन्न २ स्वरूप किस हेतु से घटित किया है वह न समझ अनेक शाखा, मतों ने लोकों में जो भ्रांति उत्पन्न कर दी है और विषवाद बढ़ाया है जिससे अपने को कितनी हानि पहुंची है यह समझा कर सम्प को मनुष्य के कर्तव्य की श्रेणी में बिठा उसके कितने ही उदाहरण दे फिर निम्न श्लोक पर विवेचन कर तत्व, व्रत, दान और वाणी इन विषयों पर विशेष विवेचन किया।

शुद्धेः फलं तत्वविचारणञ्च
देहस्य सारं व्रतधारणञ्च।
वित्तस्य सारं करपात्रदानं,
वाचो फलं प्रीतिकरं नराणाम्॥ १॥

गोरक्षा * तथा प्रजा के चारित्र की सुधारणा की तरफ अधिक लक्ष देने के कारण ना. ठाकुर साहिब की योग्य बड़ाई कर सब श्रोताजनों को जीवरक्षा सम्बन्धी असरकारक उपदेश दे *अपना व्याख्यान पूर्ण किया था। ना. ठाकुर साहिब ने व्याख्यान* समाप्त होने के बाद ही अपनी जगह छोड़ी। उपस्थित सज्जनों ने नामदार का उपकार माना, फिर सब लोग उपरोक्त व्याख्यान की अत्यन्त तारीफ करते हुए बिखर गए।

गोंडल संघाणी संघाड़े की पवित्र पुण्यशाली तपस्विनी महासतीजी जीवी बाई महासती ने मंदवाड़ में आचार्य श्री के श्रीमुख से धर्म सुनने की इच्छा प्रकट की, वह श्रीयुत पोपटलाल केवलचंद शाहने आचार्य श्री से विनन्ती निवेदन की, तब पूज्यश्री वहां पधारे परंतु उपाश्रय में बैठने की इच्छा न की। परम्परा अनुसार उन्होंने ऐसा कहा, परन्तु इससे बीमार महासतीजी के तकलीफ में अधिकता होगी ऐसा हमें समझा अंत में दूसरे दरवाजे पर महासतीजी का पाट तनिक उठालाया गया था और वहाँ से आचार्यश्री ने उन्हें

---

* राजकोट नरेश गादी पर बैठे तब आपने अपने समस्त राज्य में तथा राजकोट सिविल स्टेशन के एजन्ट टु दी गवर्नर को लिख कर गोवध हमेशा के लिये बंद कर दिया था।

साधुधर्म की अपेक्षा से अत्यंत सरल उपदेश दिया। महासती बहुत गुणवती और सिद्धांत रस की पिपासु थीं, इन्होंने 'तहेत्ति' कहकर यह उपदेश सिर चढ़ाया, ऐसी महासती वर्तमान समय में होना मुशकिल है। गोंडल संघाड़े के आचार्य श्री जसराजजी महाराज जो उपाश्रय में विराजते थे, वह उपाश्रय मार्ग में होने से द्वार पर से सुख साता पूछ सहजही धर्मालाप कर आचार्य श्री खुश हुए थे।

महाराज श्री के शिष्य मुनि श्री छगनलालजी महाराज ने इस चातुर्मास में पैंतीस उपवास की तपश्चर्या की थी और उनके अंतिम उपवास के दिन तथा पारणे के दिन नामदार ठाकुर साहिब के हुक्म से कसाई खाने बंद रक्खे गए थे।

काठियावाड़ में राजकोट शहर इंग्लिश शिक्षा में सबसे अधिक आगे है। आधुनिक शिक्षा में धार्मिक शिक्षा का अभाव होने से नई रोशनी वालों के हृदय में आर्यावर्त के अध्यात्म वाद की अपेक्षा पाश्चात्य जडवाद की ओर विशेष लक्ष होने के अपन कई दृष्टान्त देखते हैं। वर्तमान की शिक्षा से शिक्षित हुए कई नवयुवक धर्म से पराङ्मुख होते जाते हैं ऐसे कितने ही युवा पूज्य श्री के धर्मोपदेश से तथा सत्समागम से धर्मप्रेमी बन आत्मोन्नति के मार्गारूढ हो गए। पूज्यश्री के चारित्र और वाणी का प्रभाव ही ऐसा अलौकिक 'सत्सङ्गात् भवति हि साधुता खलानाम्' अर्थात् सत्सङ्ग से खल पुरुषों में भी

साधुता प्रकट हो जाती है। तो फिर पढ़े लिखे योग्य पुरुषों को सत्संग से अपूर्व लाभ प्राप्त हो इसमें क्या आश्चर्य है।

पूज्य श्री की प्रशंसा सुनकर उच्च इंग्लिश शिक्षा प्राप्त वकील, बरिस्टर और सरकारी आफिसर इत्यादि उनके पास आने लगे। पूज्य श्री को इंग्लिश का बिल्कुल अभ्यास न था। तो भी वे नई रोशनी वाले शिक्षित समाज पर अपने चारित्र बल से अपूर्व छाप डालते थे और धीरे २ वेही पूज्य श्री के प्रशंसक, अध्यात्म मार्ग के अनन्य उपासक और धर्मपर सम्पूर्ण श्रद्धा रखने लग जाते थे। यों पूज्य श्री के संसर्ग से कई विद्वानों ने बड़ा भारी लाभ उठाया। मिसिज स्टीवनसन नामक एक अंग्रेज युवती भी पूज्य श्री के व्याख्यान का लाभ कुर्सी पर नहीं परन्तु नीचे बैठकर लेने लगीं। पूज्य श्री के साथ धर्मचर्चा में उसे बड़ा आनन्द प्राप्त होता। संवत्सरी के प्रतिक्रमण में उपस्थित हो सब विधियों की वह ज्ञाता बनी थी। यह बाई व्याख्यान में मुंहपत्ति बांधकर बैठती। व्याख्यान के अंशों को उद्धृत कर लेती। इस विदुषी अंग्रेज युवती ने जैन धर्म पर Heart of Jainism नामक एक पुस्तक लिखी है उसमें उसने पूज्य श्री के सम्बन्ध का उल्लेख यों किया है।

The present writer had the pleasure of meeting the Acharya of the Sthankwasi sect, a gentleman named Srilalji, whom his followers hold to be the 78th

Acharya in direct succession to Mahavira. Many sub-sects have risen amongst the Sthankwasi Jaina and each of these has its own Acharya but they unite in honouring Shrilalji as a true Ascetic.........when the writer for instance had the pleasure in Rajkot of meeting Shrilalji Maharaja (who is considered the most learned Sthankwasi Acharya of the present time) he had travelled thither with 21 attendants "Sadhoos"

भावार्थ:—लेखक को स्थानकवासी सम्प्रदाय के एक आचार्य श्रीलालजी की मुलाकात का आनन्द प्राप्त हुआ था। जिन्हें श्री महावीर के गादी के ७८ वें आचार्य उनके अनुयायी मानते हैं, स्थानकवासी जैनों में जो कि, कई शाखाएं हैं तो भी श्रीलालजी महाराज को एक सच्चे त्यागी समझ वहुत से उन्हें मान देते हैं··· श्रीलालजी महाराज जिन्हें वर्तमान समय के बहुत से विद्वान् स्थानकवासी आचार्य गिनते हैं उनसे राजकोट में मिलना हुआ तब वे २१ मुनिओं के साथ पधारे थे।

इसके सिवाय गुर्जर भाषा के अद्वितीय कविवर जय जयंत इंदुकुमार आदि अनुपम काव्यों के रचयिता सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान् न्हानालाल दलपतराम कवीश्वर M.A जिन्होंने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने की स्वीकृति प्रसन्नतापूर्वक दी है वे तथा उनके

सन्मित्र अनेक लोकोपयोगी ग्रंथों के कर्ता साधुचरित श्रीयुत अमृतलाल सुंदरजी पढीयार आदि जैनेतर विद्वान् भी मुनिराज के सत्संग का प्रेमपूर्वक लाभ उठाते थे। परस्पर ज्ञानचर्चा से अपूर्व आनंद आता था। उक्त विद्वानों के अतिगहन और तात्विक प्रश्नों के उत्तर आचार्य श्री अत्यंत बुद्धिमत्ता पूर्वक और जैन-शास्त्र के अनुकूल देते कि, जिन्हें सुनकर प्रश्नकर्ता सानंदाश्चर्य में हो जाते। श्रीकृष्ण जन्म इत्यादि पूज्य श्री के श्री मुख से सुनते समय श्रीकृष्ण वासुदेव को जैनों ने कितनी उच्च श्रेणी पर स्वीकृत किया है वह समझाया था। कवि श्री न्हानालाल भाई कहते हैं कि, मुझे और सौराष्ट्र के सद्गत साधु अमृतलाल सुंदरजी पढ़ियार को ये महात्मा एक परिव्राजकाचार्य से भी अधिक महान् अधिक उदार और अधिक क्रियापात्र, अधिक तपस्वी एवम् अधिक वैराग्यवंत मालूम होते थे। सुनने के अनुसार पूज्य श्री के विहार के समय कवि श्री कितना ही समय साथ बिताते और कठिन क्रिया एवम् संयम के कायदों की बारीकी देख आनंदित होते थे।

काश्मीर राज्य के दीवानजी श्रीमान् अनंतरामजी साहिब एल. एल. बी. जो एक स्थानकवासी जैन गृहस्थ हैं वे काश्मीर राज्य से एक डेपुटेशन ले किसी कार्यवश राजकोट आये थे। दीवान अनंतरामजी के सभापतित्व में आये हुए इस डेपुटेशन में कितने ही राज-

पूत, अमीर तथा वजीर भी थे । चार दिन के उनके मुकाम में वे हररोज आचार्य श्री के व्याख्यान में पधारते थे।

पंजाब में उस समय विचरते पूज्य श्री की सम्प्रदाय के महाराज श्री मुन्नालालजी के सम्बन्ध से पूज्य श्री ने दीवान साहिब के साथ बात चीत की थी, बीमार मुनिराजों की सुख साता पुछाई थी और मुनियों की मदद की अवश्यकता हो तो मैं भेजने के तैयार हूं ऐसा कहा था परन्तु दीवान साहिब के जम्मू पहुंचने पर किसी मुनि को सहायता के लिये भेजने की आवश्यकता नहीं ऐसे समाचार आजाने से दूसरे मुनियों को उधर नहीं भेजा थां।

राजकोट इत्यादि स्थलों में एक जाति के नहीं परंतु अनेक जाति के स्त्री पुरुष उनके व्याख्यान में आते परंतु यों मालूम नहीं होता था कि, हमारा ही धर्म हमें समझा रहे हैं ।

आत्म—कल्याण की ही बातें कह रहे हैं ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, अनुभव, तप, आश्रम; धर्म का अखंडपालन हृदय की विशालताएं ये सब सद्‌गुण जन—समूह को स्वाभाविक रीति से श्रीजी की तरफ आकर्षित कर लेते थे।

सैकड़ों अनपढ़ ग्राम वालों की सभा को कथा, कविता, या अशक्य गप्पों से रिझा लेना सरल है परन्तु वाक्य वाक्य शब्द २ पर

विवेचन और अशंका करने वाले शक्तिशाली मनुष्यों को समझाकर उनके कंठ उतारना बिना विशाल ज्ञान व अनुभव के नहीं हो सकता। अंग्रेजी, फारसी तो क्या परन्तु जिन्होंने मातृभाषा की भी उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की थी ऐसे पूज्य श्री को गुरुगम और अनुभव से प्राप्त शास्त्रीय और ऐतिहासिक ज्ञान से बेरिस्टरों और विद्वानों का भी संतोष होता था यह पूज्यश्री के उत्कृष्ट संयम और पदवी का प्रभाव था।

राजकोट संस्थान के डेप्युटी एज्यूकेशनल इन्स्पेक्टर श्रीयुत पोपटलाल केवलचन्द शाह अपना अनुभव लिखते हैं कि:—

आचार्य श्री जब धर्मध्यान में चित्त लगाकर बैठते तब वे काया को सचमुच वोसरा ही देते थे, जब वे एकान्त में समाधि चित्त में रहते तब बहुत ही थोड़ों को उनके दर्शन का लाभ मिल सकता था। कारण कि, उनके शिष्य द्वार को रोककर इस तरह बैठते कि, आचार्यश्री के एक चित्त में किसी तरह से कोई खलल न पहुंचे। मुझपर आचार्य श्री की कुछ कृपादृष्टि थी उनके एकाग्र धर्मध्यान में विक्षेप नहीं डालूंगा ऐसा मेरा उन्हें पूर्ण विश्वास था जिससे किसी २ समय मुझे ऐसी स्थिति में भी उनके दर्शन का लाभ मिलता था। कितने ही कहते हैं कि, जैन में सिर्फ उपवासादि तपस्या रही है परंतु योग-समाधि तो उनके यहां प्रायः लुप्त है परंतु इन आचार्य ने एवम् एक दूसरे सुपात्र साधु महात्माने मेरे दिलमें यह विश्वास

पिठा दिया है कि, जैनियों में भी योग निष्ट महात्मा पुरुष हैं।

दिवाली के दिन वे छठ (दो उपवास) करते। एक अहोरात्रि धर्मध्यान में बिताते, व्याख्यान सिवाय बाकी दिन के समय में और विशेष रात को वे योग समाधि में रहते थे। राजकोट में दिवाली की पिछली रात को संवर पौषध में रहे हुए तथा दूसरे श्रोताजनों को श्री उत्तराध्ययन सूत्र पूर्ण तीन घंटे में श्री मुख से सुनाया था। दिवाली का दिन श्री श्रमण भगवान् महावीर प्रभु के निर्वाण का पवित्र दिन है। उन महावीर प्रभु ने शिष्यों को निर्वाण के समय जो उपदेश दिया था, सोलह प्रहर तक जो धर्मदेशना दी थी उस देशना को गूंथ कर गणधरों ने श्री उत्तराध्ययन सूत्र की रचना की है जिससे दिवाली के पिछली रात्रि को समर्थ पवित्र आचार्य के श्री मुख से उत्तराध्ययन सुना जाय तो ठीक हो—इस इच्छा से जब उनका दूसरा चातुर्मास मोरवी हुआ तब दिवाली के दिन मैं मोरवी गया, वहां मेरी समझ में आया कि, आचार्य श्री श्रावकों को भी उत्तराध्ययन सुबह अर्थात् कार्तिक शुक्ला १ को सुनाने वाले हैं इससे मैं कुछ २ निराश हुआ, क्योंकि, श्रमण भगवंत दिवाली की पिछली रात्रि को निर्वाण पाये थे, वह उत्तराध्ययन पिछली रात्रि को पूर्ण हुआ था जिससे उस समय सुना जाय तो सामयिक गिना जाय। जिससे मैंने अपनी निराशा आचार्य श्री से निवेदन की। आचार्य श्री ने समझाया कि, राजकोट के श्रावकों को मालूम हो गया था कि,

पिछली रात्रि को उत्तराध्ययन को सुनाया जावेगा जिससे कितने ही श्रावक घर से शीघ्र उठ एकन्द्रियादि जीवों की घात करते उत्तराध्ययन सुनने मेरे पास आये थे, इस लिये दूसरे दिन गुलाबचंद्रजी ने टीका की थी कि इसमें तो लाभ की अपेक्षा हानि अधिक है। गुलाबचंद्रजी की टीका मुझे योग्य जची, इसलिये यहां मैंने श्रावकों से स्पष्ट कह दिया कि मैं सुबह व्याख्यान के समय ही उत्तराध्ययन सुनाऊंगा, परंतु हां तुम राजकोट से खास, इसी लिये आये हो तो संवर या पौषध करना और धर्म जागरण करते हुए जगो तब ऊपर आकर करीब ३ बजे चांदमलजी को कहना, फिर मैं अपने ध्यानसे निवृत्त होकर तुम्हें तुरंत बुलाऊंगा। इस उत्तर को सुनकर मैं बहुत खुश हुआ, परन्तु कहे बिना न रहा कि, पूज्यजी साहिब इससे आप को दो वक्त उत्तराध्ययन सुनाना पड़ेगा और दूना श्रम होगा। तब पूज्य श्री ने फरमाया कि " मुझे स्वाध्याय का दुगुना लाभ होगा। हमेशा की रीत्यनुसार दिवाली की पिछली रात्रि को उत्तराध्ययन स्वाध्याय रूप मुंह से कहुंगा और श्रावक श्राविकाओं को सुनाने के लिये फिर सुबह याद करूंगा।

दिवाली के संध्या समय मोरबी में निर्मला बहिन ने महाराज साहिब के गुणगान की कविता परिषद् में गाई। मैंने शास्त्री जी के श्लोक गाये और मेरी ओर से महाराज श्री के जीवन चरित्र की कुछ रूप रेखाएं दिखाने वाली कविता गाये बाद श्रीयुत मगनलाल दफ्तरी, भाई दुर्लभजी

जोहरी और मैंने समयानुसार कुछ विवेचन किया पश्चात् आचार्य श्री के काठियावाड़ में और खासकर हालार में चातुर्मास करने से कितना उपकार हुआ यह बताया। पिछली रात्रि को मुझे तो उत्तराध्ययन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और सुबह भी लाभ मिला। सुबह जब कितने ही अध्यायों का स्वाध्याय होगया तब मैंने अपने समीप बैठे हुए श्रीयुत जोहरी से कहा कि महाराज साहिब यह दूसरी वक्त स्वाध्याय कर रहे हैं इसीलिये दूसरे वक्त के श्रम को मान देने के लिये समस्त परिषद् खड़ी होगई और जब महाराज ने सुना कि, खड़े २ सुनने का यह कारण है तब वे भी शिष्यों सहित खड़े हो गए, जिस तरह तीर्थंकर भी "नमोतित्थस्स,, कह चतुर्विध संघ को मान देते हैं इसी तरह खड़े होकर पूज्यश्री ने मुखसे पूर्ण उत्तराध्ययन सुनाया, इतनी सी हकीकत ही आचार्य श्री के कितने गुण सिखावेगी।

गोंडल, जेतपुर, जामनगर, पोरबंदर जैसे शहरों में या थोराला जैसे ग्रामों में जहां २ में महाराज साहिब के विहार में उनके दर्शनार्थ दूसरों के साथ २ मैं गया, वहां २ हिन्दू मुसलमान सबकी ओर से पूज्य श्री के लिये जो मानवाचक और पूज्यता प्रदर्शक शब्द बोले जाते थे उन्हें सुनकर मुझे बड़ा आनन्द होता और चाहता था कि, अपनी जैन-समाज में ऐसे प्रभाविक महापुरुष अधिक हों तो क्या ही अच्छा हो! अहिंसा धर्म का कितना अधिक प्रसार हो जाय, पोरबन्दर से हम राजकोट पिंजरापोल के लिये चन्दा इकट्ठा

फरने को मारवाड़ की तरफ गए थे तब पोरबंदर के भाइयों ने तथा मार्ग पालनपुर के भाइयों ने उसी तरह मालवा मेवाड़ मारवाड़ में जो हमारा आदर सत्कार हुआ वह अबतक कृतज्ञता से स्वीकार करता हूं। यह आदर सत्कार और मिली हुई आर्थिक मदद यह सब निर्लोभ महानुभाव आचार्य श्री के प्रभाव का ही प्रताप है ऐसा कहूं तो कुछ अतिशयोक्ति न होगी।

राजकोट जैन-वणिक बोर्डिंग हाउस के स्थानकवासी विद्यार्थी हमेशा पूज्य श्री के दर्शनार्थ और छुट्टी वगैरह की अनुकूलता से व्याख्यान सुनने आते थे। पश्चिम के जडवाद की शिक्षा लेते युवा वर्ग में स्वधर्म-प्रेम प्रेरने वाले सद्गत त्रिभुवन प्रागजी पारेख का यहां स्मरण हुए विना नहीं रहता। सच्ची दिली इच्छा से गुपचुप परोपकार के कार्य करने वाले ऐसे नर थोड़े ही होंगे। अपने परोपकारी जीवन से उत्तम दृष्टांत छोड़ जाने वाले पूज्य श्री के इस भक्त के जीवन पर प्रकाश डालना यहां अनुचित नहीं होगा।

अन्य ग्रामों से राजकोट में पढ़ने के लिये आने वाले विद्यार्थियों की तकलीफ का अनुभव कर राजकोट में वणिक जैन बोर्डिंग प्रारंभ करने वाले यही गृहस्थ हैं उन्होंने जीवन पर्यंत इसके लिए श्रम उठाया है। इतना ही नहीं, परन्तु साढ़े तेरह हजार वार जमीन बोर्डिंग के मकान के लिये अभी दी है और अब उसपर रु० २५०००) खर्च कर बोर्डिंग

का मकान तैयार किया गया है इस संस्था द्वारा आज संख्याबद्ध विद्यार्थी लाभ ले रहे हैं और स्वधर्म के तत्वों का भी पालन कर भाग्यशाली बन रहे हैं।

वे अनाथ या निराधार विद्यार्थी को अपने यहां रखकर जिमाकर और सेवा-चाकरी करके पढ़ाते थे और उनकी पत्नी भी इस कार्य में उन्हें मदद देती थी। जहां २ उनकी बदली हुई वहां २ उन्होंने परोपकार के कई कार्य किये हैं।

उनका इसके साथ दिया हुआ फोटो उनके शांत और निरभिमानी परोपकारी जीवन की पाठकों को खात्री देगा। उनकी स्वधर्म पर अत्यंत दृढ श्रद्धा थी और वे पोषध संवर बहुत करते थे। स्वधर्म के ज्ञान के लाभ के साथ व्यवहारिक ज्ञान की सुविधा होजाय तो अत्यंत लाभ हो, इसलिये उन्होंने एक बड़ी संस्था कायम करने के प्रयास किया था। रतलाम जैन ट्रेनिंग कालेज वहां से उठाकर राजकोट लाने के लिये वे रतलाम कमेटी में गए थे और कमेटी ने बहुत खुशी से यह संस्था उन्हें सोंपी थी, परन्तु समाज की ऐसी सेवा बजाने की उनकी इच्छा पूरी न हुई और सं० १९७४ के वैशाख वद्य ११ के रोज उनका स्वर्गवास होजाने से रतलाम स्टेशन पर गया हुआ कालेज का सामान पीछा लाना पड़ा था. परोपकार के कार्य के लिए ही उन्होंने भविष्य की शुभ आशाएं होते भी नौकरी से छुट्टी ले परोपकारी जीवन बिताया था। उनके स्मरणार्थ उनके मित्रों ने रु०

३०००) एकत्रित कर उनके नाम का राजकोट पिंजरापोल में एक बोर्ड कराया है जिसकी नींव धर्मपुर के मर्हुम महाराणा श्री मोहनदेवजी ने रखी थी।

सद्गत त्रिभुवन भाई के जेष्ठ बंधु देवजी भाई मर्हुम का अनुकरण कर अपने द्रव्य का सदुपयोग करते हैं लेखक की उनके साथ धार्मिक सगाई थी और समय २ पर परस्पर मिलना जुलना होता था, वे श्री संत समागम के लिए जैपुर भी पधारे थे और जहां २ पूज्य श्री का चातुर्मास होता था वहां २ पहुंचते थे।

सद्गत की प्रेरणानुसार बोर्डिंग का निज का मकान और एक 'सनीटोरियम' राजकोट में शीघ्र तैयार हुए अपन देखेंगे। उनका अनुकरण करने को ललचाने के लिए ही इतना विस्तार किया है।

पूज्य श्री ने राजकोट का चातुर्मास पूर्ण कर विहार किया तब श्रोताओं को बहुत धक्का पहुंचा था श्रीयुत सौभागचंद वीरचंद मोदी जो 'सुभागी के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्होंने गद्गद कंठ से नीचे के काव्यों से श्रोताओं को धैर्य धराया था।

सवैया

बुल्बुल बागथी उडी जशे, पण रागथी रागी जनों रिझवीने,
इंद्रधनुष समाई जशे, पण रंगथी सर्वनी आंख भरीने
केशरी अन्य अरण्य जशे, वीर हाकथी जंगलने गजवीने,
तेमज संत श्रीलाल जशे, बहु भेख अलेख अहिं जगवीने॥

अध्याय २६ वाँ

सौराष्ट्र का सफल प्रयास ।

राजकोट का चातुर्मास पूर्ण हुए पश्चात् संवत् १९६८ के मगसर वद १ के रोज विहार कर पूज्य श्री गोंडल पधारे । गोंडल में श्रीजी महाराज के व्याख्यान में बहुत से मुसलमान भाई भी आते थे । पूज्य श्री के सदुपदेश का सुंदर असर उनके हृदय पर इतना अधिक हुआ था कि, जीवदया के लिये जो फंड किया गया था उसमें मुसलमान भाईयों ने भी अच्छी रकम दी थी । पूज्य श्री ने गोंडल से विहार किया तब मुसलमान भाईयों ने गोंडल में और ठहर कर आपकी अमृतमय वाणी श्रवण करने का लाभ देने की बहुत आग्रह पूर्वक अर्ज की थी ।

गोंडल से विहार कर गोमटा, वीरपुर, पीठड़िया, जेतपुर, और जेतलसर हो धोराजी पधारे । यहां दशाश्रीमाली जाति के भव्य मकान में पूज्य श्री विराजते थे । और व्याख्यान में स्वपरमति हिन्दू मुसलमान तथा अमलदार इत्यादि हजारों की संख्या में उपस्थित होते थे । धोराजी से जल्द ही विहार करने का पूज्य श्री का विचार था परन्तु पग में तकलीफ होजाने से एक माह धोराजी में

रुकना पड़ा था। जिसके फल स्वरूप वहां बहुत ही धर्मोन्नति हुई थी। बाहर से भी लोग बड़ी संख्या में पूज्य श्री के दर्शनार्थ आते थे।

कंठाल के श्रावक श्राविकाओं का अत्यन्त आग्रह देख एवं उनके धर्मानुराग की प्रशंसा सुन पूज्य श्री की इच्छा कंठाल (वेरावल, मांगरोल और पोरबंदर) में विचरने की थी। इसलिये धोराजी से विहार कर जूनागढ़ पधारे। वहां भी धर्म का बहुत उद्योत हुआ। वहां से अनुक्रम से विहार करते २ श्रीजी महाराज वेरावल पधारे और वहां बहुत उपकार हुआ।

वेरावल विहार कर चोरवाड़ हो श्रीजी महाराज महा वदी १० के रोज मांगरोल पधारे। उस समय मांगरोल में गोंडल सम्प्रदाय के मुनी श्री जयचन्द्रजी स्वामी विराजते थे। वे आचार्य श्री के पधारने के समाचार सुन बहुत आनंदित हुए और लेने के लिये मांगरोल शहर के बाहर कितने ही दूर तक आये। श्रावक भी बड़ी संख्या में सन्मुख आये थे। यहां भी स्वमति अन्यमति लोग बड़ी संख्या में पूज्य श्री के व्याख्यान का लाभ उठाते थे और मुनि श्री जयचन्द्रजी स्वामी इत्यादि भी आपके व्याख्यान में पधारते थे। पूज्य श्री यहां १५ दिन ठहरे थे।

यहां से विहारकर श्रीजी महाराज पोरबंदर पधारे थे और अपने अमूल्य सदुपदेश से पोरबंदर वासी जैन अजैन प्रजा पर

सुंदर असर डाला था। मांगरोल, पोरबंदर और वेरावल के लोगों के धर्म-प्रेम की पूज्य श्री ने अत्यन्त प्रशंसा की थी। और श्राविकाओं का ज्ञानाभ्यास बहुत संतोषकारक देख उन्हें सानंदाश्चर्य हुआ था। स्त्री शिक्षा की ओर विशेष लक्ष देना चाहिये और उन्हें जैन-धर्म के रहस्य बहुत सुंदर रीति से समझाने चाहिये ऐसी पूज्य श्री की मान्यता थी।

पोरबंदर से अनुक्रमशः विहार करते भाणवड़ हो श्रीजी महाराज जामनगर पधारे और वहां एक मास तक स्थिर रहे। जामनगर के शास्त्र के ज्ञाता श्रावकों के साथ की चर्चा में पूज्य श्री को बड़ा आनन्द आता और पूज्य श्री के प्रताप से श्रावकों के ज्ञान में भी बहुत अभिवृद्धि हुई थी।
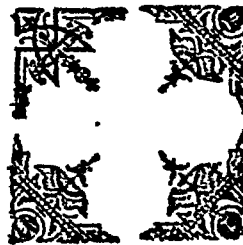
अध्याय २७ वाँ।

मोरवी का मंगल चातुर्मास।

कुँए में हाथी।

मोरवी के नामदार महाराज साहिब और श्रावकों के बहुत समय के अत्याग्रह और इच्छाएं बहुत दिनों में सफल हुई। संवत् १९६९ का चातुर्मास मोरवी में हुआ, पाईलेट की तरह पहिले कितने ही शिष्य पधारे थे जो जैनशाला में ठहरे थे। पूज्य साहिब का स्वागत संख्याबद्ध श्रावक श्राविकाओं ने सन्मुख जाकर किया था, वे मंदिर-मार्गी भाइयों की धर्मशाला में ठहरे थे। जैनशाला के मकान में तथा एक दूसरे भव्य मकान में मेरे लिये कुछ रिपेअर-काम हुआ यह सुन पूज्य श्री बड़े दिलगीर हुए और उसमें उतरे हुए शिष्यों को प्रायश्चित्त दिया, ये दोनों मकान चातुर्मास के लिये अकल्पनिक होने से वे सेठ सुखलालजी मोनजी के मकान में पधारे, परंतु श्रीजी के प्रभावशाली व्याख्यान और दर्शनार्थ बड़ी भारी गिरदी होने लगी।

मोरवी में पधारते ही पच्चीस लाख गाथाओं का स्वाध्याय करना उन्होंने धारा था, बहुत समय तक पूज्य श्री एकांत में स्वाध्याय करने में ही मस्त रहते थे। मोरवी के दो हजार तो संघ के ही मनुष्य इस

के उपरांत मंदिर मार्गी तथा अन्य जैनेतर प्रजा भी व्याख्यान के लिये आतुर थी, इन सबको लाभ मिले इसलिये बड़े मकान की आवश्यकता थी जो रा० रा० हेमचंद रामजी भाई महेता एल० सी० ई० इंजिनियर के सख्त श्रम से सफल हुई, उन्होंने महाराज साहिब से अर्ज कर दरबारगढ़ के पास के स्कूल के विद्यार्थियों को दूसरे मकान में भिजवाया। और स्कूल में पूज्य श्री ने चातुर्मास किया।

यह चातुर्मास इतना सफल हुआ कि, वृद्ध से वृद्ध श्रावकों के मुंह से मैंने सुना कि, ऐसा चातुर्मास हमारी जिंदगी में हमने नहीं देखा। इन वृद्धों में से एक संघवी सांकलचंदजी कि, जो रतलाम युवराज पदवी के महोत्सव के समय भी हाजिर थे, वे समय २ पर कहते थे कि, कुँए में हाथी किसने डाल दिया' अर्थात् मोरबी जैसे कोने में पड़े हुए ग्राम में पूज्य साहिब जैसे प्रसिद्ध विदेशी मुनिराज का चातुर्मास कैसा सफल हुआ ? विशेष आनंद की बात तो यह थी कि, दर्शन निमित्त आने वाले तमाम श्रावकों का स्वागत करने का तमाम खर्च एक ही सद्‌गृहस्थ सेठ सुखलाल मोनजी ने उठा लिया था दूर देशावरों से आने वाले स्वधर्मियों की स्वयंसेवक सब सहूलियत कर देते थे, इतना ही नहीं, परंतु मोरबी के नगर-सेठ स्वयं दूसरे सेठों के साथ हमेशा मिहमानों के निवास स्थानों पर उनकी खबर लेने पधारते और भिन्न २ गृह का निमंत्रण दे कृतार्थ होते थे।

संवत् १९६८ के आषाढ में मोरवी में कालेरा का उपद्रव प्रारंभ हुआ। कितने ही श्रीमंत ग्राम छोड़ कर बाहर जाने की तैयारी में थे, परन्तु पूज्य साहिब के पधारने से यह बीमारी नरम होगई थी। एक दिन संध्या समय खिड़की के पास स्वाध्याय करते पवन बदला हुआ देख ऐसे प्राकृतिक परिवर्तन का अनुभव रखने वाले पूज्य साहिब ने समीप में बैठे हुए मनुष्यों को तुरंत समझाया कि, यह पवन का परिवर्तन सुधरने की आशा दिलाता है ऐसे समय श्री शांतिनाथ जी के जाप से कई जगह शांति हुई है मित्र–मंडल के साथ युवावर्ग बहुत रात तक पूज्य श्री के पास धर्मचर्चा कर धर्मज्ञान बढ़ाते थे। दूसरे दिन सोमवार की रजा होने से श्रीशांति जाप की योजना की गई और ५१ उत्साहियों से उसी स्कूल में नीचे के शांत भाग में बरोबर बजे १२ सामायिक ग्रहण कर जाप करने की खानगी सूचना इस पुस्तक के लेखक को मिली। परिणाम स्वरूप बारह का डंका लगते ही श्री शांतिनाथ का जाप प्रारंभ हुआ सवालाख जाप होने के पश्चात् सब साथ मिल कर पूज्य श्री के पास मंगलिक सुनने गये। इस जाप के समय की शांति और अलौकिक दृश्य तथा पवित्र आंदोलन के फव्वारों ने उपस्थित सज्जनों के मस्तिष्क को इतना अधिक तर कर दिया कि, वे अपनी जिंदगी में ऐसा समय प्रथम ही है और अपूर्व है ऐसा कहते थे। शुभ शकुन समझ सब साधकों को नारियल दिये थे, पूज्य श्री के अनुमान सुना-

बिक पवन बदलते बीमारी शांति हो गई और उस वर्ष में तो एक भी भोग लिये बिना बीमारी भग गई।

अपनी जन्मभूमि में सद्भाग्य से प्रारंभ हुए उपदेशामृत का पान करने को लेखक भी चातुर्मास दरम्यान मोरवी रहा था देश देश के रिवाज मुताबिक मुझे वाकिफ करने के लिये पूज्य श्री ने चिताया था, उस मुताबिक पूज्य श्री प्रसंगोपात्त से की हुई विनय को सहर्ष स्वीकृति देते थे। पूज्य श्री की वाणी इतनी मिष्ट और सरल थी कि, बोली हिन्दी होते हुए भी अपढ़ बाइयां भी बराबर समझ सकती थीं एक समय गोचरी के समय एक दरजी ने पूज्य श्री को अपने यहां पधारने बाबत आग्रह किया, मोरवी कि, जहां पर छः सो घर बनियों के उपरांत बाणियां खोजी बाणियां कंदोई और ब्राह्मणों इत्यादि की बड़ी संख्या बसी होने से दरजी के वहां अपने धर्मगुरु वहरने जांय यह जरा इस तरफ गौरवपूर्वक न गिना जाता है ऐसा समझ पूज्य श्री ने फिर ऐसे वर्ण की गोचरी खासकर न की, राजकोट में भी उस सम्बन्धी सहज अर्ज की थी। इसके फल स्वरूप में शुद्ध वैष्णव भी पूज्य श्री के पास बैठ उनके कपड़े का स्पर्श करने में नहीं हिचकते थे।

मोरवी की अनुकूलता अनुसार सुबह साढ़े छः बजे एक मुनि व्याख्यान प्रारंभ कर देते थे और पूज्य सवा सात से नौ बजे तक अखंडधारा से उपदेशामृत बरसाते थे, जैन और जैनेतर प्रजा व्या-

स्थान में से अपने ग्रहण करने योग्य बहुत ले जाते और लोग मुक्तकंठ से कहते थे कि, यहां तो अभी 'चौथा आरा' वर्तता है। श्री जम्बूचरित्र के ऊपर का पूज्य श्री का व्याख्यान हमेशा थोड़े बहुत मनुष्यों की आंख तो गीली कराता ही था, चलती मां चीलती, खांडो पापड, उदयपुरना राणाओ, जोधपुर के महाराजाओ, जैपुर के महाराज पर एक कवि की लिखी हुई हुंडी, कच्छ के लाखा फुलाणी इत्यादि असरकारक तथा ऐतिहासिक दृष्टांतों से श्रोताओं पर बड़ा भारी असर होता था और व्याख्यान का लाभ चूकने वाले अपने अंतराय कर्म के लिए दिलगीर होते थे! श्रावकों की दुकानें तो व्याख्यान बाद ही खुलतीं थीं।

बनावटी और कल्पित कथाओं के वे कायर नहीं थे, सत्य कथा या बने वहां तक अपने अनुभव में आई हुई या ऐतिहासिक दृष्टांतों से ही पूज्यश्री अपने सिद्धान्तों को पुष्टि देते थे। उन्होंने अपने काठियावाड़ के प्रवास में इसके प्राचीन अर्वाचीन इतिहास का अभ्यास किया था, भिन्न २ राज्य के अनुभवी अमलदार और विद्वानों से काठियावाड़ की कीर्त्ति का पान किया था। मैं हमेशा एक घंटे भर पूज्यश्री को इतिहास पढ़कर सुनाता था- प्रसिद्ध वक्ता रा० रा० दफ्तरी मगनलाल 'साधना, नामक पुस्तक समझाते और देशाई वनेचंद राजपाल जैसे श्रीमन्त श्रावक दोपहर की निद्रा को एक तरफ रख दोपहर को १२ से २ बजे तक इतिहास इत्यादि के पुस्तक पढ़कर सुनाते थे। जो

हमेशा खस की टट्टी के पवन में दोपहर में विश्रान्ति लेने वाले निद्रा को याद न कर पूज्यश्री के प्रताप से खरी दोपहर में पढने में लीन हो जाते थे, उनकी सुपत्नी अ० सौ० नानूबाई तथा उनकी विद्या-विलासी पुत्रियां भी पूज्यश्री की सेवा कर विविध रीति से ज्ञान की वृद्धि करतीं थीं, गोंडल सम्प्रदाय की आर्याजी मणिबाई ने पूज्यश्री को सूत्र सिखाये थे, मारवाड़ी श्रावक श्राविका दर्शन करने आती उनके लिये पूज्यश्री के सामने प्रथम पंक्ति में ही जगह रिझर्व रक्खी जाती थी और देशाई वनेचंद्र भाई जैसे आने वाले श्रावकों का खड़े हो सन्मान कर आगे बिठाते थे, श्रीमती नानूबाईने निडर हो पूज्य श्री से कह दिया था, कि " मारवाड़ी श्रावकों को आप चाहे जितने दृढ सम्यक्त्व धारी गिनो परंतु उनमें सैकड़ा ९० तो गले में या हाथ में या किसी जगह डोरियां या तावीज बांधने वाले हैं, श्री जिनेश्वर देव की श्रद्धा या सम्यक्त्व के मादलिये ही धारण किया तो हमें कुछ कहना नहीं है परंतु जो दूसरों के हों तो स्वधर्म पर उनकी पूर्ण श्रद्धा या विश्वास नहीं है ऐसा हम मानेंगे। श्रीमती नानु बाई की पुत्रियां प्रसंगोपात्त पूज्यश्री की स्तुति संस्कृत काव्य बना कर कहतीं और जितना लाभ लूट सकती थीं लूटती थीं। पूज्यश्री साहिब ने उनके शास्त्री के पास से मुनिश्री चांदमलजी इत्यादि को संस्कृत का अभ्यास कराया था।

पूज्यश्री पंद्रह साधुओं सहित चातुर्मास रहे थे। पूज्यश्री का शिष्य मंडल स्वाध्याय और ध्यान में इतना अधिक लीन रहता था कि,

उनमें से दो चार को भी कभी एकत्रित हो गप्प सप्प मारते या व्यर्थ हंसी दिल्लगी करते हमनें नहीं देखा। स्वाध्याय और शास्त्र वचनों की धुन लगी रहती थी। संध्या को प्रतिक्रमण किये बाद ज्ञान चर्चा और प्रश्नोत्तरों की धूम मचती थी। प्रतिक्रमण पूर्ण होते ही जैनशाला के विद्यार्थी पूज्य श्री को वंदना करते और सब हाथ जोड़ स्तुति बोलते थे। पूज्य श्री को प्रिय नीचे की स्तुति हमेशां की जाती थी। उस समय पूज्य श्री नयन मूंद उसमें तल्लीन हो जाते थे। पूज्य श्री ने उसे कंठस्थ याद किया था और पूज्य श्री के साथ वाले मुनि मण्डल ने भी इस स्तुति को कंठाग्र करालिया था।

गुणवंती गुजरात (यह राग)

जयवंता प्रभु वीर, अमारा जयवंता प्रभु वीर।
शासन-नायक धीर, अमारा जयवंता प्रभु वीर।
शास्त्र सरोवर-सरस आपनुं, तत्व रसे भरपूर।
तेमां न्हातां तरतां नित्ये, शुद्ध थाय अम उर। अमारा

सात्विक भावे जेह प्रकाश्युं, वास्तविक तत्व-स्वरूप।
आस्तिकतामां रमिये एथी, आनन्द थाय अनूप। अमारा

आप प्रकाशित ज्ञान-बगीचे, खील्या छे बहु फूल।
सुगंधी वायुनी सरस लहरथी, अमे छीए मश्गूल। अमारा -

आप विशाल-विचार भूमिए, उछर्या कल्प अंकूर ।
रस-भर तेना फल चाखीने, रहीशुं आप हजूर । अमारा-

नाम आपनुं निशिदिन प्यारूं, रमी रह्यूं अम उर ।
तेनी खातर प्राण अर्पवा, अपने छे मंजूर । अमारा-

मार्ग बताव्या अम ऊपरजे, कर्यो महा उपकार ।
अर्पण करिये सर्व तथापि, थाय न प्रत्युपकार । अमारा-

चरण आपनां शरण हमारे, मरण जन्म भय दूर ।
(रत्नचन्द्र) जेम लोभी चातक, तम दर्शन आतुर । अमारा

—शतावधानी पं० रत्नचन्द्रजी

जैन शाला के विद्यार्थी कि जिनपर पूज्य श्री का बड़ा भाव था वे विद्यार्थी पास के चित्र में देख सकेंगे ।

नामदार मोरवी महाराज साहिब के समीप के सम्बन्धी शिवसिंहजी व्याख्यान में समय २ पधारते थे उनका निम्नाङ्कित काव्य उनके भाव की खात्री देगा ।

कवित्त ।

मालवदेश पवित्र करी श्री मुनीशजी, मोरबी मांहि पधार्या ।
मोरबी संघ तणी जोइ लागणी दीनदयाल दिले हरषाया ।

श्रीलालजी स्वामी छो विद्या विशारद शास्त्र तणा प्रभु पारने पाम्या
अधम उधारी करीने कृपा मुनि आशिर्वाद अनेक पाम्या ।
महान् आभार 'मयुरपुरी' संघ आपतणो स्वामी दिलमां माने-
दर्शन आप तणां शिष्य-मंडली सहित थयां घणे पूरव दाने ।
एवा ग्रहरूप शिष्य संघाते चन्द्र-तुल्य गुरु पूर्ण-प्रकाशी ।
मोरवी संघ हृदय कुमुदो दर्शन थी प्रभु थाय विकाशी ।
पावन करी भूमि पाद—पद्मथी सहज दयालु दया दिले लावी
धर्मांकुरो करो जीवित, उपदेशामृत—वारि वरसावी ।
एज इच्छु आगमनथी आपना कल्याण-कारक अम उर भावी ।
संसार-सागर तारो 'शिव' कहे अरिहंत अरिहंत मुख भजावी ।
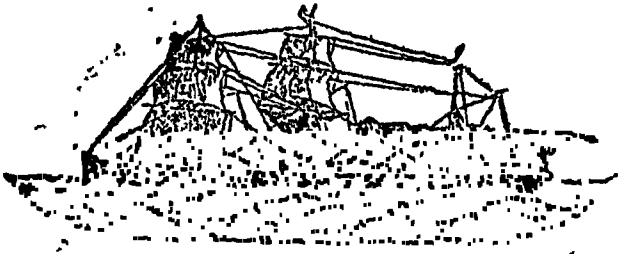
अध्याय २८ वाँ ।

मोरवी में तपश्चर्या–महोत्सव।

सोमवार या रजा (अवकाश) के दिन मोरवी में विराजते मुनियों के पास जैन और जैनेतर विद्वान् वकील और अमलदार मिल कर ज्ञान चर्चा चलाते थे और हेडमास्टर तथा राज वैद्य उपरांत महामहोपाध्याय शास्त्रोत्तम श्रीयुत शंकरलाल माहेश्वर भी प्रसंगोपात्त पूज्य श्री के पास आते थे।

पूज्य श्री के पधारने से हैजा बिल्कुल बंद होगया इसलिये तमाम नगर निवासियों की पूज्यश्री की ओर पूज्य–बुद्धि होगई और आवाल वृद्ध सबकी यह मान्यता थी कि, महात्माओं के पधारने से ही यह दुःख दूर हुआ। मार्ग में निकलते तब राजा महाराजाओं को भी न मिले ऐसा आन्तरिक मान सब कौम और सब धर्म के मनुष्यों की ओर से आपको मिलता था। तपस्वी मुनि श्री छगनलालजी ने ६१ उपवास किये थे ऐसी तपश्चर्या मोरवी में प्रथम ही होने से श्रावकों में भी अत्यंत उत्साह था। सुबह और दुपहर दोनों व्याख्यान के समय लगातार ६१ दिनतक प्रभावना अखंडित शुरु रही जिसमें सच्चा प्रभाव तो यह था कि, प्रभावना के लिये किसी को कुछ कहना न पड़ता था।

पारणे के दिन पूज्य श्री तपस्वीजी के साथ गोचरी पधारे थे और चार घंटे तक फिरकर बीच में किसी गृह को न टालते सूझता मिला वह आहार पानी ले सबको लाभ पहुंचाया था। कितने ही मनुष्यों ने पारणे का प्रथम लाभ मुझे मिले तो मैं अमुक प्रतिज्ञा करता हूं ऐसी पूज्य श्री से विनय की थी परंतु पूज्य श्री तो पक्षपात त्याग कर रंक श्रीमंत सबके यहां पधारे थे।

तपस्वीजी के दर्शन करने के लिये देशावारों से कई श्रावक एकत्रित हुए थे। उनका योग्य स्वागत हुआ था, तपश्चर्या के पूर अंतिम दिन संवर पौषध अनेक हुए थे, और पारणे के दिन उत्सव जैसा दृश्य था। जीवों को अभय-दान दिया गया लूले लंगड़े जानवरों को गुड़ खिलाया गया और अनेक प्रकार के दान पुण्य हुए। जीव-दया का फंड हुआ था जिससे कई जीवों को शांति पहुंचाई थी।

पूज्य श्री का शिष्य-मंडल हमेशा संयम से सम्बन्ध रखने वाली क्रियाओं और स्वाध्याय में तल्लीन रहता था और परदेश में पत्र व्यवहार करना अकल्पनिक होने से ज्ञान चर्चा के सिवाय अन्य प्रवृत्ति में पड़ने का कोई कारण ही न था।

प्रतिक्रमण किये पश्चात् खास दोष या पाप के प्रायश्चित्त के लिये साष्टांग नमन हुए बाद दोनों हाथ जोड़ शुद्ध हृदय से आत्म विशुद्धि की औषधी की याचना होती थी और पूज्य श्री उपवास,

बेला, तेला, इत्यादि प्रायश्चित्त फरमाते थे, तब इस पदवी का प्रभाव और शिष्यों के विशुद्ध होने की चिन्ता आखों से देखने वाले का राजा महाराजाओं से भी विशेष प्रभाव शाली पूज्यपदवी की ओर पूज्यभाव उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता था–बारी से नयां पाठ लेने आने वाले और प्रश्न पूछने वाले का मन संतुष्ट हो ऐसा पूज्य श्री समाधान कर देते थे और अपने नित्य नियम में मशगूल रहते थे। पूज्यश्री के सुबह के चार बजे से रात की ११ बजे तक के कार्य–क्रम की प्रतिलिपि जितने मुनिराजों ने करली होगी वे चौथे आरे की वानगी की बड़ाई किये बिना नहीं रहेंगे। इस पवित्र भारत–भूमि में अनेक धर्मात्मा होंगे परंतु श्वे० स्था० जैन समाज में पूज्य श्री की समानता में खड़े रहने वाले उस समय विरेल मुनिराज ही होंगे, ऐसा होते भी पूज्यश्री की खास खूबी यह थी कि, व्याख्यान में या बातचीत में कभी किसी साधु की आचार शिथिलता या निंदा का एक अक्षर भी पूज्य श्री के मुंह से न निकलता था, गुण ग्राहक बुद्धि यह उनका आदर्श गुण उनकी ओर हरएक को आकर्षण कर लेता था। आहार लाते समय वे खास चेतावनी देते थे और युवा शिष्यों को कई दिन तक रूखा सूखा आहार ही खाने देते थे। इंद्रियों को वश करने के लिये भोजन की अत्यंत संभाल रखने का उनका आदेश था। काठियावाड़ और खासकर मोरवी में गरमागरम बाजरी का रोटला और उड़द की दाल वे बहुत पसंद करते थे और कहते थे

कि, श्रावक स्वतः पेट में नहीं खाते हैं परंतु मुनिराजों के पात्र घी दूध से या मिष्टान्न की पौष्टिक खुराक से भर देते हैं यह उनका साधुओं की ओर स्तुत्य भाव है परंतु परिणाम हमेशा विचारते रहना चाहिये ऐसा पौष्टिक आहार करना आलसी हो लेटना और फिर इंद्रियां मस्ती करें तब अपने वेष को भूल इंद्रियों का दास होना इसकी अपेक्षा प्रथम से ही सात्विक–सादा भोजन करना साधुओं का प्रथम धर्म है और कदाचित् पौष्टिक भोजन कर लिया गया तो तपश्चर्या प्रभृति से उसका वेग कमकर देना चाहिये।

जो स्वतः ही तपश्चर्या नहीं कर सकता है तो उसकी ओर से दूसरों को यह उपदेश कैसे मिल सकता है? प्रथम आप ऐसा न करें और अपना बर्ताव उसके अनुसार रक्खें तब ही उपदेश दिया जा सकता है पाट पर बैठ ललकारने वाले तो लाखों हैं परंतु कहने जैसे रहने वाले ही धन्य हैं। वे ही वंदनीय हैं, उन्हीं का संयम सफल है।

पूज्य श्री फरमाते थे कि, रोगियों को सुधारने की औषधियों के बदले इस जड़वाद के समय में अनीतिवान्, आलसी, व्यर्थ जीवन बिताने वालों को सुधारने की संस्थाएं कायम होनी चाहिये शास्त्र सदुपदेश के श्रवण रूपी औषध सह नीतिमय जीवन का अनुपान चाहिये।

मोरवी के उस समय के नगर सेठ अमृतलाल वर्द्धमान की नम्रता और कार्य–दक्षता की पूज्य श्री तारीफ करते और मोरवी के सम्प का अनुकरण करने के लिये वे सबको उपदेश देते थे। सवा पांच सौ घर का वृहद् श्री संघ फक्त एक ही अग्रेसर की आज्ञा में चले सका अनुभव पूज्य श्री को मोरवी में ही हुआ। नगरसेठ की प्रमुखता के नीचे दूसरे चार सभ्य श्रीसंघ की ओर से चुने हुए रहते हैं इन पांचों को सब सत्ता दे रक्खी है ये पंच जो करते हैं वह सकल संघ (पांच सौ घर ही) मान्य करता है।

अजमेर से राय बहादुर सेठ छगनमलजी भी मोरवी में पूज्य श्री के दर्शनार्थ पधारे थे और अपनी तरफ से स्वामी वत्सल कर एक ही स्थान पर सब भाईयों के दर्शन का लाभ लिया था। उस समय सेठ वर्द्धभाणजी पीतलिया भी वहां उपस्थित थे उन्होंने भी सक्कर की लहाणी कर लाभ लिया था। दर्शन करने आने वाले दूसरे २ श्रीमंतों ने भी जीव–दया इत्यादि में अच्छा खर्च किया था।

पूज्य श्री ने एक दिन 'जुवार के मोती बनने' का दृष्टांत दिया था। उस समय का लाभ ले मेरे रिश्तेदार ने सजोड़ शीलव्रत का स्कंध लिया था और इस धार्मिक वृत्ति की खुशी में 'नवकारशी' का जीमन करने का हमें अवसर मिला था पूज्य श्री को प्रातःकाल के समय आज्ञा देने का मुझे सौभाग्य प्राप्त होता था और इसी

कारण कुछ न कुछ त्याग व्रत का भी लाभ मिलता था पूज्य श्री ने चातुर्मास में चारों स्कंध मुझे कराये थे और आत्म प्रशंसा के लिये मुझे माफी दी जायतो मुझे यहां कहना ही पड़ेगा कि, पूज्य श्री ने मुझे विशेप प्रवृत्तियां त्याग निवृत्तिमय जीवन बिताना सिखाया था। विस्तार वाला कुटुम्ब और विशाल व्यापार होने से दौड़ादौड़ करनी पडती थी, परन्तु पूज्य श्री की अभिदृष्टि से इस चातुर्मास में आराम के साथ आनन्द का अनुभव लिया था। पूज्य श्री के व्याख्यान में हमेशा कुछ न कुछ नया ज्ञान मिलता था। शास्त्रों के अर्थ सरल कर खूबी से समझाते और बीच २ में काव्य और दृष्टांतों से ऐसा अद्भुत रस उत्पन्न होता था कि, चाहे जितनी देर होजाय तो भी उठने की इच्छा न होती थी।

पूज्य श्री के विहार के समय का दृश्य मुझे जीवन पर्यंत याद रहेगा. बाजार में उच्च स्वर से 'जय २' के गगन भेदी आवाज और 'घणी खम्मा' के मारवाड़ी पुकार जो बडे २ महाराणाओं की सवारी में भी न सुने जांय पूज्य श्री की कीर्ति को प्रसारित करते थे। मारवाड़ी स्त्रियाँ जहां पूज्य श्री के पांव गिरे हों वहां की रज खोले में ले सिर चढ़ातीं और मानो वह अमूल्य प्रसाद हो साथ ले जाने के लिये रुमाल में बांधती थीं, पूज्य श्री ने मोरवी को इतना अधिक अपने में लीन बना दिया था कि, पूज्य श्री से से विदा होते समय संख्या बद्ध उमर लायक श्रावक आंखों से अश्रुपात करते थे। नगरसेठ के भाई दुर्लभजी

वर्द्धमान को तो मूर्च्छा तक आगई थी, मेरे पिता दो चार दिन पूरे जीमे भी न थे और पीछे २ सनाला, टंकारा, तथा जामनगर तक गये थे। स्वर्गवासी इंजिनियर गोकुलदास भाई भी सनाले में पूज्यश्री से विदा होते रोने लग गए थे। इन सरलस्वभावी भोले भक्तों को फिर से लाभ देने के लिये काठियावाड़ में विशेष ठहराने की सब की इच्छा थी परन्तु वह पार न पड़ी।
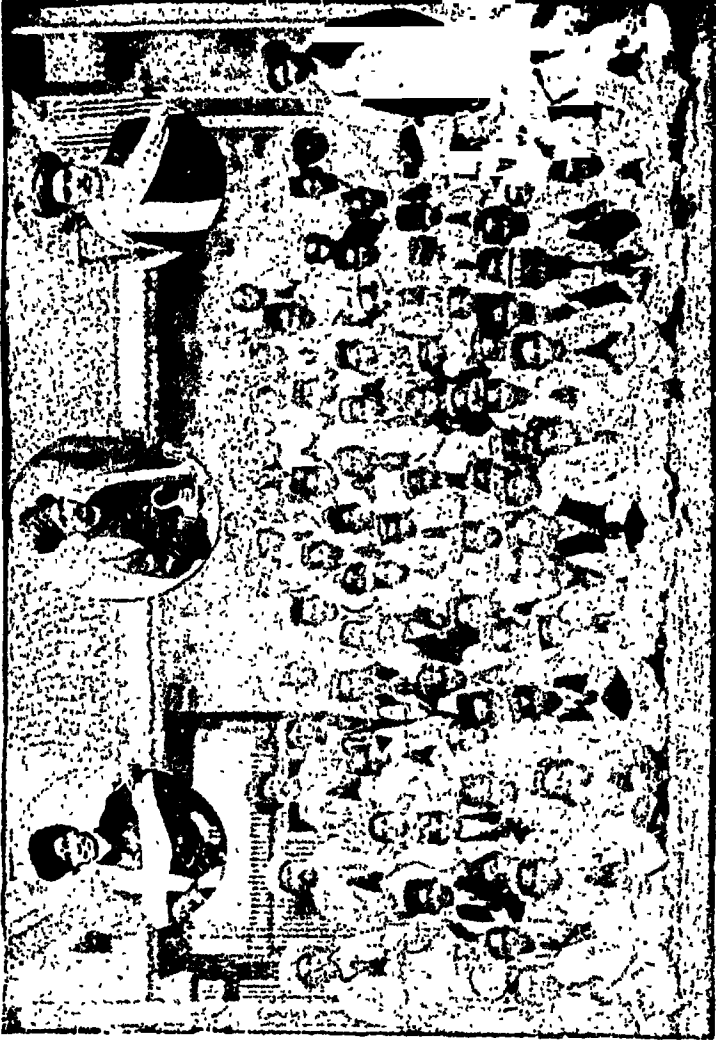
श्री मोरवी जैनशाळा–मास्तरो अने कार्यवाहको पूज्यश्री पासे धर्मशिक्षण श्रवण करे छे. परिचय–प्रकरण २७.
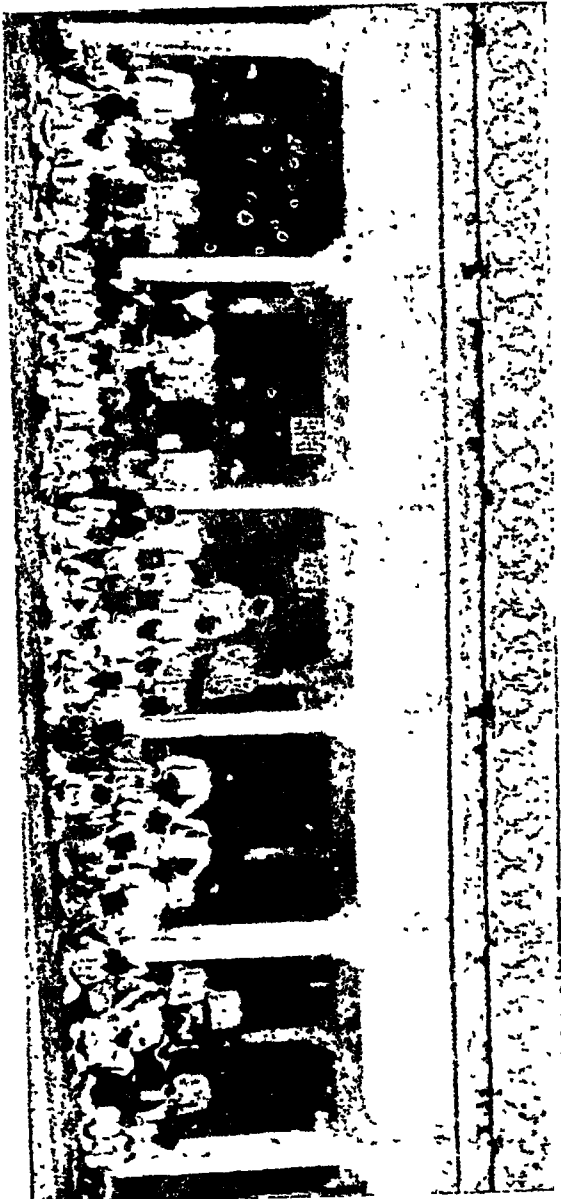
श्री उदयपुर स्था. जैन पाठशाला तथा कार्यवाहकों.

परिचय—प्रकरण ३५.

अध्याय २६ वाँ।

परिचय।

लेखक–शतावधानी पं० रत्नचन्द्रजी महाराज।

प्रवर पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज काठियावाड़ में पधारे तब हम कच्छ में थे। परन्तु वहां उनकी स्तुति सुन उनसे मिलने के लिये मनमें उत्कंठा जगी। सं० १९६८ के साल में कच्छ का रण उतर कर झालावाड़ में आये। लींबडी साधु परिषद् का कार्य पूर्ण हुए पश्चात् हमारा चातुर्मास धोराजी ठहरा था, इसीलिये उस तरफ प्रयाण किया। तब श्रीलालजी महाराज बाँकानेर विराजते हैं ऐसा समाचार सुन सं० १९६९ के आषाढ वद्य १३ के रोज महाराज श्री गुलाबचन्दजी स्वामी, महाराज श्री वीरजी स्वामी आदि ठाणे चार से बाँकानेर पहुंचे। वहां पूज्यपाद के दर्शन हुए। हम उपाश्रय में ठहरे वे भी ठाणे १० से उपाश्रय के पास दशा श्रीमाली की धर्मशाला में ठहरे थे। तमाम दिवस तथा रात्रि के दस बजे तक इधर उधर की ज्ञानचर्चा चलती थी उपाश्रय और धर्मशाला एक दूसरे के इतने समीप थे कि, रात्रि को भी खिडकी में से आमने सामने एक दूसरे की बातचीत सुनी जा सकती थी।

काठियावाड़ के दूसरे शहरों की तरह यहाँ भी पूज्यपाद ही व्याख्यान दें, यह पहिले दिन ही ठहराव हो चुका था इसीलिये धर्मशाला में व्याख्यान होता था। वहां हम पूज्यपाद की वाणी को सुनने उपस्थित रहते थे। किसी समय जब पूज्य श्री मुझे फरमाते, तब मैं भी चालू विषय पर बोलता था। सभा में बाइयों और भाइयों से हाल खूब भर जाता था। लोगों को पूज्यश्री की वाणी इतनी रस दे रही थी कि, दो तीन घंटे तक या इससे भी अधिक समय तक व्याख्यान होता रहता था। तोभी किसी की इच्छा जाने की न होती थी, और भी अधिक व्याख्यान होता रहे तो ठीक, ऐसी प्रत्येक की जिज्ञासा रहती थी। व्याख्यान में शास्त्रीय तात्विक उपदेश के पश्चात् ऐतिहासिक दृष्टान्त बड़े प्रमाण में आते, उनका शास्त्रीय विषयों के साथ ऐसा मिलान किया जाता कि, श्रोतृगण उस समय तल्लीन बन जाते और करुणारस समय में अश्रुप्रवाह झरने लग जाता था, तथा वीर रस के समय रोमांच खड़े हुए दृष्टिगत होते थे। व्याख्यान की इस शैली से क्या जैन क्या अजैन सब इतने फिदा होते थे कि, दूसरे दिन सुबह कब हो कि, फिर से व्याख्यान प्रारंभ हो। व्याख्यान का मार्ग हर एक आतुरता से देखता था, सत्रह दिन हम साथ रहे, उनमें प्रथम से अंततक वृद्धिगत उत्साह देखने में आया था।

हम गए उसी दिन पूज्यश्री ने फरमाया कि, मुझे चंद्रपन्नत्ति सूत्र पढ़ना है। मैंने कहा आपको पढ़ाने योग्य मैं नहीं। उन्होंने

कहा तुमने गुरुमुख से सुना है तो मुझे पढ़ाओ। मेरा यह नियम है कि, कोई भी सूत्र एक समय किसी से पढ़ फिर स्वतः पढ़ूं जिसमें भी चंद्रपन्नत्ति जैसा शास्त्र गुरुगम से ही पढ़ना ऐसा मेरा इरादा है। तब मैंने कहा, बेशक, आपका आग्रह है तो आप और हम दोनों साथ पढ़ेंगे। उसी दिन से पढ़ना प्रारंभ किया। शास्त्र की एक २ प्रति तो उनके पास रखते दूसरी एक प्रति टीकावाली लेकर दोपहर को एक बजे से संध्या के पांच बजे तक पढ़ना प्रारंभ रखते थे। लगभग पन्द्रह दिन में चंद्रपन्नत्ति सूत्र पूर्ण किया पूज्यश्री की समझ और प्रज्ञा इतनी तो सरस कि, चंद्रपन्नत्ति से भी कदाचित् कोई गहन विषय हो तो भी वे स्वतः अच्छी तरह समझ लें, और दूसरों को समझा दें, परन्तु एक साधारण सूत्र भी आप स्वतः न पढ़ें यह भावना कितने अधिक विनय और विवेक से भरी हुई है यह सहज ही ध्यान में आजाता है इसीलिये उनकी स्तुति में कहा गया है कि,

" विद्याविवादरहिता विनयेनयुक्ता "

" प्राचीन या अर्वाचीन अच्छा हो सो मेरा।

कितने ही वृद्ध प्राचीन पद्धति को ही मान देते हैं तो कितने ही युवा नया २ हो उसे स्वीकारते हैं, सचमुच में ये दोनों खयाल भूल से भरे हुए हैं। जूना या नया चाहे जो हो अच्छा हो उसे स्वीकार और

खराब हो उसे त्याग देना यह समझदार मनुष्य का लक्षण है। पूज्य पाद पुरानी या नई पद्धति का आग्रह करने वाले न थे, परन्तु 'भला सो मेरा' इस मंत्र को स्वीकारने वाले होने से वृद्ध एवम् युवावर्ग दोनों को एकसे प्रिय हो गए थे। राजकोट के युवकों का बड़ा भाग धर्म की ओर अश्रद्धा रखने वाला गिना जाता है, परंतु पूज्यश्री के राजकोट के चातुर्मास में नास्तिक कोटि में गिनाता युवावर्ग पूज्यपाद की ओर आकर्षित हो आस्तिक बन गया था, ऐसा कई जनों के मुँह से सुना है। वाँकानेर में तो मुझे स्वतः को अनुभव हुआ है वाँकानेर की पब्लिक (प्रजा) की ओर से पब्लिक-व्याख्यान के लिये जब मुझ से आग्रह हुआ तब वाँकानेर के जैन युवाओं ने स्कूल में आम व्याख्यान देने के लिये व्यवस्था की। वाँकानेर महाराज साहिब को भी आमंत्रण दिया। तब दरबार अपने स्टाफ सहित वहां पधारे। तमाम अमलदार तथा प्रत्येक वर्ग के लोगों से सभा खूब भर गई। इस तरफ कुछ अंश में और मारवाड़ में विशेष अंश में जूने विचारवाले आम व्याख्यान की पद्धति को नई कहकर धकेल देते हैं जब पूज्यपाद उस रास्ते से निकले उनसे स्कूल में पधारने की प्रार्थना की गई, आप स्वयम् वहां पधार गए इतना ही नहीं परंतु चालू विषय को संजीवन बनाने के लिये आप इतने सरस बोले थे कि, उसे सुनने वाली सभा एकतार लीन हो गई थी। पुराने शास्त्रीय विषय की नई शैली से चर्चा करने की

उनमें ऐसी खूबी थी कि, पुराने तथा नये दोनों वर्गों को वह रुचिकर हो जाती थी। दरबार तथा अन्य श्रोताओं ने दूसरे दिन फिर व्याख्यान के लिये आमंत्रण दिया, तब दूसरा व्याख्यान वीसा श्रीमाली की धर्मशाला में दिया गया था। दोनों व्याख्यानों का असर आम प्रजा पर अच्छा हुआ। सारांश सिर्फ इतना ही कि, पूज्य श्री रूढि को चाहे मान देवे तोभी आंतरिक योग्यायोग्य का विचारकर रूढि से आत्मा के श्रेयाश्रेय विचार को अधिक मान देते थे। इसी लिये नये और पुराने दोनों पद्धति को पसंद करने वाले जल्दी अनुकूल हो जाते और पूज्य श्री जिसमें अधिक श्रेय हो उसका अनुकरणकर लोगों को लाभ देते थे।

पूज्यपाद का साहित्य पर शौक।

पूज्य श्री जैन-शास्त्र के समर्थ विद्वान् थे। बहुसूत्री, गीतार्थी, शास्त्रवेत्ता, आगमवेत्ता जो २ उपनाम उन्हें लगाये जाँय वे उनके योग्य हैं। मारवाड़ की ओर मुनिवर्ग में संस्कृत का अभ्यास करने की प्रथा प्रचलित होती तो आचार्य श्री संस्कृत के समर्थ पंडित होते, परंतु उस तरफ इसका रिवाज न होने से उनकी यह इच्छा मन में ही रह गई थी। बाँकानेर में थोड़े दिन के परिचय पश्चात् पूज्य श्री ने निवेदन किया कि, अपना भावी चातुर्मास साथ हो तो तुम्हारे पास बने तो चांदमलजी छोटे साधु को संस्कृत का अभ्यास कराऊं

और मैं भी संस्कृत के न्याय के पुस्तक सुनूं तथा उन पर विचार करूं। पूज्य श्री की इस दरखवास्त से मेरे मन में अत्यंत उत्साह बढ़ा परंतु हमारे सांप्रदायिक कितनी ही रूढियां और श्रावकों की रूढियों का बंधन न होता तो एक चातुर्मास तो क्या परंतु प्रति वर्ष साथ रह कर शास्त्र–विचार और साहित्य–सेवा का लाभ परस्पर लेते देते परंतु वर्तमान समस्या के बाबत तीन कठिनाइयों का विचार करना था। एक तो धोराजी और मोरवी के चातुर्मास में हेरफेर करना कि, जिसके लिये समय बहुत थोड़ा रहा था दूसरा इसमें लींबडी के संघ की ओर पूज्य श्री की सम्मति प्राप्त करना। तीसरा जिस ग्राम में रहना वहां के श्रावकों की भी सम्मति लेना चाहिये। मध्य के कारण के लिये तो पूज्य श्री ने यहां तक कहा था कि, मैं अपने दो साधु लींबडी भेज कर मंजूरी मंगाऊं और मुझे विश्वास है कि, लींबडी संघ के अग्रेसर मुझे मान देने के लिये जरूर मंजूरी देंगे तो वह कठिनाई दूर हो जायगी, परंतु बीच में एक तकलीफ यह थी कि, धोराजी खाली न रहे और सबके चातुर्मास मुकर्रर होगए थे, इसलिये वहां जाने वाला कोई न था, तब पूज्य श्री ने कहा कि, तुम्हारे चार ठाणों में से दो ठाणा धोराजी पधारें और दो ठाणा मोरवी चलें। मोरवी का चातुर्मास फिर सके ऐसा न था, इसलिये एक तीसरी कठिनाई दूर करने की थी, जिसके लिये कोशीश की गई परन्तु अन्तराय के योग से इच्छा पार न

पड़ी। चातुर्मास पूर्ण हुए पश्चात् एकत्रित हो और अमुक समय तक साथ रह अभ्यास करना ऐसा विचार मन में धार प्रथम आषाढ वद १ को पूज्य श्री ने मोरवी चातुर्मास करने के लिये वाँकानेर से विहार किया और हमने धोराजी की ओर विहार किया। मोरवी का चातुर्मास पूर्ण हुए पश्चात् कितने ही कारणों से पूज्य श्री का मारवाड़ की ओर पधारना होगया। अंतराय के योग से फिर संगम न हुआ सो नहीं हुआ। मनकी इच्छा मन में ही रहगई। इस पर से पूज्य श्री का विद्या की ओर कितना शौक था उसका कुछ खयाल हो सकेगा।

मिलनसार वृत्ति।

इस वृत्ति के लिये इस तरफ के कई मनुष्यों के मुंह से मैंने सुना है और स्वयं भी अनुभव किया है कि। चाहे जैसा अनजान मनुष्य आया हो तो भी वह मानो पूर्व का परिचित ही है उसी तरह उसके साथ पूज्य श्री बातचीत करते थे। आचार विचार में चाहे जमीन आकाश जितनी भिन्नता हो तो भी दोनों के बीच में मानो तनिक भी भिन्नता न हो बिल्कुल कपट रहित उसके साथ बातचीत करते कि, वह मनुष्य अपने मन में रही हुई भिन्नता को दूर करना अपना कर्तव्य ही समझने लगता था।

गुण-ग्राहकता ।

इस तरफ मारवाड़ के कितने ही साधु आते हैं परन्तु उनमें अपने आचार की विशेषता बताने के साथ दूसरों की निन्दा करने का दोष विशेषता से देखा जाता है । पूज्य श्री में आचार इत्यादि की विशेषता होते भी अपने मुंह से उसे दर्शाना या उसकी समानता कर दूसरों की हलकाई या शिथिलता बताना या किसीकी निन्दा करने का स्वभाव बिल्कुल भी नहीं पाया गया । उसके प्रतिकूल उनकी गुण-ग्राहक वृत्ति का कई बार परिचय हुआ है व्याख्यान के समय भी अपने परिचित साधु साध्वी श्रावक या अन्य कोई गृहस्थ के गुणों का आपको परिचय हुआ हो तो उस गुण के कारण आप अपने मुक्तकंठ से उसकी प्रशंसा करते थे, चाहे वह अन्य रीति से अपने से हलके हों तो भी वे उसके उस गुण को ले उसकी प्रशंसा करने में तनिक भी न हिचकते थे । यह गुण-ग्राहक वृत्ति सचमुच प्रशंसनीय है । इस वृत्ति को हमारे मुनि और श्रावक मान दें तो समाज के क्लेश कितने ही अंश में दूर हो जाँय इन सब गुणों के कारण हमारा सहवास इतना रसमय होगया कि, विदा होते समय दोनों के हृदय भर गए थे और सहवास रूप आनन्द बाग में आश्रय लेने का फिर कब समय उपस्थित होगा उसकी सोच करते थे । उस समय थोड़े ही दिनों में फिर मिलने की आशा का आश्वासन था परन्तु "दैवी विचित्रा गतिः" मनुष्य

क्या भारता है और क्या होता है उसी तरह हुआ। विदा होने पर स्थूल शरीर रूप से तो इकट्ठे न हुए परन्तु " गिरौ मयूरा गगने पयोदा " इस कहावत के अनुसार जिसका जिस पर प्रम है वह उससे दूर नहीं है अर्थात् आंतरिक गुण स्मरण रूप सानिध्य ही था। फिर कभी संगम होगा यह भी आशा अवशिष्ट थी, परन्तु अंतिम समाचार ने यह आशा भी निराशा में परिणित कर दी। अब सिर्फ उनके गुणों का स्मरण कर उनके लगाए बीजों का सिंचनकर उन्हें फलने फूलने देना है। उनकी यादगार में सब से पहिले तो यह काम करना है कि, सम्प्रदाय में फैला हुआ क्लेश किसी भी तरह भोग दे दूर करना चाहिये। संयुक्त बल बढ़ा उनके लगाये ज्ञान और आनन्दरूपी बाग में से सुवासित पुष्पों की परिमल सुगंध दिगंत पर्यंत प्रसरती रहे उसमें हाथ बटाना है। पूज्य पाद के गुण अनेक हैं मुझ में वे सब वर्णन करने की सामर्थ्य नहीं। अवकाश भी कम है अर्थात् इतने ही से संतोष मान पूज्य पाद की आत्मा को परम शांति मिले, ऐसी इच्छा करता हुआ यहां विराम लेता हूँ, 'सुज्ञेषु किं बहुना' ॐ शांतिः।
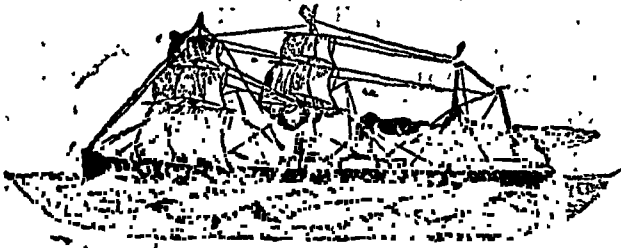
अध्याय ३० वाँ।

काठियावाड़ के लिये दिया हुआ अभिप्राय।

काठियावाड़ में अनुक्रम से विहार करते हुए आचार्य श्री भावनगर पधारे। रास्ते में अनेक ग्रामों में अत्यन्त उपकार हुआ। भावनगर में उस समय लींबडी सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध वक्ता पं० मुनि श्री नागजी स्वामी भी विराजते थे। परस्पर ज्ञानचर्चा और वार्तालाप से आनंद होता था; व्याख्यान एक ही स्थान पर होता था। और पं० श्री नागजी स्वामी वहां पधारते थे। तब उनको योग्य आसनादि का सत्कार तथा परस्पर विनय बहुत रखा जाता था। कई समय पूज्य श्री अपना व्याख्यान बंदकर पं० नागजी स्वामी का व्याख्यान सुनने की आतुरता दिखाते और उन्हें व्याख्यान देने के लिये आग्रह करते थे। पंडितजी नागजी स्वामी लिखते हैं कि, हमने ऐसे गुणग्राहक साधु दूसरे नहीं देखे। व्याख्यान में दृष्टांत देने और सिद्धांत के साथ उन्हें घटित करने को उनमें आश्चर्यजनक शक्ति थी और जिससे लोग अत्यन्त आकर्षित होते थे। तथा उस का गहन प्रभाव गिरता था, सचमुच कहा जाय तो इस सम्बन्ध में

उनका अनुभव और सामर्थ्य अधिक थी। दोपहर के समय ज्ञान-चर्चा होती। उत्तराध्ययन, भगवती, सूयगडांग, इत्यादि सूत्रों सम्ब-न्धी अनेक गहन चर्चाएं होतीं। तब वे कहते कि, हमें यह बात नई मालूम हुई है, इसलिये आपकी आज्ञा हो तो हम धारण करें व हमेशा आग्रह करते कि, आप मालवा मारवाड़ में पधारो, मैं रतलाम तक सामने आऊं और साथ २ घूम कर देश का अनुभव कराऊं, मुझे विद्वानों के लिये अत्यन्त मान है। हम दस दिन साथ रहे, पूज्य श्री अपने विहार का समय किसी को न बताते थे, परन्तु मुझे (नागजी स्वामी) बताया था। मैं पौन कोस तक उन्हें पहुं-चाने गया था। वहां थोड़े समय तक बैठ प्रेम पूर्वक बहुत बातें कीं और जिसतरह अधिक समय से पास रहने वाले विदा होते हैं उस तरह गद्गद होते विदा हुए थे। अंत में बतलाना यह है कि, उनके सहवास से हमें अत्यन्त आनन्द हुआ। उनकी मिलनसार शक्ति और दूसरे मनुष्य को आकर्षित करने की शक्ति कोई अलौ-किक ही थी, इत्यादि २।

काठियावाड़ के प्रवास में आचार्य महाराज को अत्यन्त संतोष मिला। वे व्याख्यान में कई बार फरमाते कि, काठियावाड़ के लोग सरल-स्वभावी हैं। शिक्षा में आगे बढे होने से वे शास्त्र के गहन विषयों को अत्यन्त सरलता से समझ सकते हैं, यह देख मुझे अत्यन्त आनंद होता है और मेरा श्रम सफल होता है, श्राविका-

ओंका अभ्यास देख मुझे अत्यन्त संतोष हुआ है। दूसरे देशों की अपेक्षा काठियावाड़ में जीव–हिंसा बहुत कम होती है और मांसाहार का प्रचार भी कम है, यह संतोषदायक है। काठियावाड़ में विचरने वाले साधु, विद्वान्, मायालु, अवसर के ज्ञाता और विवेकी हैं, वे मारवाड़ की तरफ विचरें तो वे देश को अत्यंत लाभ पहुंचा सकते हैं। पूज्य श्री मारवाड़ मेवाड़ के लोगों से कहते हैं कि, काठियावाड़ इत्यादि वेश्याओं से दूर रहने वाले देश में बसने वाले गृहस्थों के आंगन बालकों के कल्लोल से शोभा बढ़ा रहे हैं। इसलिये वहां दत्तक या गोद लेने के रिवाज या कानून की आवश्यकता नहीं है। भाग्य से ही सैकड़े पांच मनुष्य कम नसीब वाले संतान रहित होंगे अपने देश की तरफ और मारवाड़ की ओर दृष्टि डालो। स्वपुत्र कितने हैं और दत्तक कितने हैं? यह सब अनर्थ वेश्याओं की वृद्धि का आभारी है। लग्न जैसे शुभ प्रसंग में भी तुम्हारे परमाणु उन कुलटाओं के नाच के अपवित्र पुद्‌गलों से अपवित्र होते रहते हैं। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते कोमल बालकों के समीप ही उनका नाच कराने में तुम वरघोड़े और मंडप की शोभा समझते हो। इसलिये तुम विष–वृक्ष रोपकर उसका सिंचन करते हो यह भूल जाते हो।

संगीत का शौक हो तो घर की स्त्रियों को, बालिकाओं को सिखाओ कि, तुम्हें गुलामगीरी में इतना तो आराम मिले और जीतेजी जेल जैसी जन्म कैद में सुख प्राप्त समझो। संगीत का सच्चा

शौक हो तो प्रभु–भक्ति और परोपकारादि जीवन–कर्तव्य के काव्य क्या कम हैं ? कि, तुम भ्रष्ट, नीच और सड़े हुए परमाणु वाली नीच नारियों को मकान तथा मंडप में बुलाकर तुम स्वतः अपने और अपनी स्त्रियों के जीवन तक बिगाड़ते हो ? भाइयो ! चेतजो, मेरे जैसी सच्ची कहने वाले थोड़े मिलेंगे । बहुत पुण्योदय से मनुष्य-जन्म मिला है । उत्तम क्षेत्र उत्तम गोत्र, और नीरोगी काया ये सब व्यर्थ न गमाते–एक क्षणमात्र भी प्रमाद न करते, महंगे मनुष्यभव को सार्थक करना याद राखियो" ।

पूज्य श्री के प्रभाव से काठियावाड़ में बहुत से सज्जन श्रीजी के अनन्य भक्त बन गए थे । जहां २ श्रीजी महाराज ने पदार्पण किया वहां २ के श्री संघ ने अत्यंत हर्षोत्साह से पूज्य श्री की सेवा–भक्ति की जिससे पूज्य श्री के चित्त में अत्यंत प्रसन्नता हुई. परंतु सम्प्रदाय का परिवार मालवा मारवाड़ में होने से उस ओर पधारने की पूज्य श्री को आवश्यकता जची तथा मारवाड़ में विचरने वाली आर्याजी * श्री नानीबाई की तबीयत अत्यंत खराब

---

* वे इस जमाने में एक लब्धिसंम्पन्न आर्याजी थीं । उन्होंने संसारावस्था में संसार की विचित्रता अनुभव की थी इस लिये उनके हाड २ की मींजी वैराग्य रंग से रंगी हुई थी । वे हमेशा तपश्चर्या में ही लीन रहती थीं, एक माह में भाग्य से ही चार पांच

हो जाने से एवम् पूज्य श्री के दर्शन की तथा उनके पास से आ-
लोयणा प्रायश्चित्त लेने की प्रबलतर अभिलाषा है ऐसी खबर मिलने

दिन आहार पानी लेतीं और वह भी नीरस सूत्रों के स्वाध्याय में
ही हमेशा तल्लीन रहती थीं। मुझे इनका स्वाध्याय महामंदिर में
सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था। कितनी ही आर्याजी की बीमारीएं
उन्होंने हाथ फिराकर मिटाई थीं। परंतु यह बात वे प्रकाशित न
करने देती थीं, एक आर्याजी की आंखें अनुभवी डाक्टर भी अच्छी
न कर सके थे वे आखें आर्याजी ने अट्ठाई के पारणे के दिन फक्त
अपनी जिव्हा फेर कर दीपतुल्य कर दी थीं और उसी आंख से
वे आर्याजी व्याख्यान वाचने लग गई थीं। ऐसे २ अनेक चमत्कार
अनुभव किये हैं परन्तु वे तमाम यहां प्रकाशित कर देने से भोला
भव्यजन वर्ग प्रतिकूल अर्थ लगावेगा और शुद्ध संयम तथा तपश्चर्या
के फलस्वरूप ऐसी लब्धियों की इच्छा में रुककर अपना साध्य
चूकेगा। इन आर्याजी की संसारावस्था के पति के पूर्व कर्मानुरूप
'पत' का रोग लग गया था और इसीसे उनकी मृत्यु हुई थी इस
कुष्ठवद्ध मुर्दे के शरीर को श्मशान में ले जाने के लिये उनके सगे
संबंधी भी न आये थे। नानूबाई ने कइयों से प्रार्थना की परन्तु जब
किसी को दया न आई तब मुर्दे में असंख्य जीव उत्पन्न होने के
भय से आपने हिम्मत धारण कर कछोटा लगा अपने प्राणप्रिय

से पूज्य श्री ने मारवाड़ की तरफ विहार किया और भावनगर से बहुत थोड़े दिनों के मार्ग से वे धोलका धंधुका हो अहमदाबाद पधारे।

अहमदाबाद में शहर से १–१॥ माईल दूर सेठ कचरा भाई लेहरा भाई का बंगला है वहां पूज्य श्री ठहरे थे, परन्तु व्याख्यान में लोग अधिक संख्या में उपस्थित होने लगे तब सेठ केवलदास त्रिभुवनदास के विशाल बंगले में पूज्य श्री महाराज व्याख्यान देने लगे। व्याख्यान में मंदिरमार्गी भाई भी अधिक संख्या में हाजिर होते थे और महाराज श्री को अत्यन्त भाव युक्त आहार पानी वहराते थे। अहमदाबाद में आचार्य महाराज के दर्शनार्थ मारवाड़ प्रभृति देशावरों से सैकड़ों स्वधर्मी आये थे। जिनका स्वागत सेठ जैसींग भाई इत्यादि ने प्रेम पूर्वक किया था।

मखियाव के ठाकुर सरदार देवीसिंहजी रायसिंहजी जो वाघेला, गरासिया और ठाकुर हैं वे दर्शनार्थ आते और व्याख्यान सुन अत्यन्त संतुष्ट होते थे तथा कई गरासीयों से वे पूज्य श्री की तारीफ करते थे।

पति को पीठ पर उठाकर स्वतः अग्निदाग दे आई थीं। उत्कृष्ट वैराग्य इस अनिवार्य अनुभव का बड़ा भारी कृतज्ञ था।

अहमदाबाद तथा गुजरात में अपने श्वे० मूर्त्तिपूजक भाईयों की धर्मशालाएं अधिक हैं। स्थानकवासी तथा देरावासी भाइयों के बीच वहां जैसा चाहिये वैसा भ्रातृभाव न होने पर भी आचार्य श्री जब अहमदाबाद, पाटण, सिद्धपुर, मेसाणा इत्यादि शहरों में पधारे तब अपने श्वेताम्बर मूर्तिपूजक भाइयों ने भी उनकी हरएक रीति से सेवा शुश्रूषा की थी और भक्ति पूर्वक आहार पानी आदि बहराने का लाभ उठाया था। इतनाही नहीं परन्तु सैंकड़ों मूर्ति पूजक भाई व्याख्यान श्रवण करते थे कदाचित् कोई श्रावक योग्य बर्ताव न रखते तो उन्हें उनके अन्य स्वधर्मी बन्धु उपालम्भ दे पूज्य श्री के सन्मुख करते थे।

अहमदाबाद में श्रीजी विराजमान थे तब पालनपुर सुश्रावकों का सत्याग्रह होने से पूज्य महाराज पालनपुर पधारे और लगभग २० दिन रहे। इस समय भी मेहताजी साहिब की धर्मशाला में ही पूज्य श्री ठहरे। उस समय पालनपुर के नेक नामदार खुदावंद नवाब साहब बहादुर सर शेरमहम्मद खानजी साहिब बहादुर जी. सी. आई. ई. कि, जिनका सब धर्मों पर अचल प्रेम था वे स्वयम् अपने २ मुसाहिबों के साथ तथा स्टाफ को साथ ले पूज्य श्री के दर्शनार्थ पधारे थे और वे हर एक धर्म का रहस्य जानने वाले थे इस लिये लगभग दो घंटे तक धर्म-चर्चा की थी।

और फिर पूज्य श्रीजी की अत्यन्त तारीफ की थी। थोड़े दिनों बादही दूसरे वक्त दर्शनों के वास्ते पधारकर बहुत सदुपदेश सुना था और दोनों वक्त वहां के ज्ञान खाते में अच्छी रकम दे मदद की थी।

पूज्यश्री महाराज का पवित्र धार्मिक उपदेश और सामाजिक शिक्षा तथा व्यावहारिक ऐतीहासिक उपदेश से पालनपुर की जैन-जाति में पूज्य-भाव की पूर्णता छा गई थी और बाद पूज्य श्री के अवसानतक कायम रही थी इतना ही नहीं परन्तु वर्तमान पूज्यश्री की ओर भी ऐसा ही भाव कायम है और जहां पूज्य साहिब चातुर्मासमें होते हैं वहां २ पालनपुर के श्रावक अधिक दिन ठहरकर उनके उपदेशामृत का पान करते हैं।

पालनपुर से अनुक्रमशः विहारकर मारवाड़ की भूमि को अपने पदरज से पावन करते हुए श्रीजी महाराज पाली पधारे वहां पर श्री चातरसिंहजी की दीक्षा हुई और वहां जोधपुर संघ की विनन्ती पर से पूज्य श्री ने सं० १९७० का चातुर्मास जोधपुर किया। इस चातुर्मास में महान् उपकार जोधपुर में हुए वे अवर्णनीय हैं।

अध्याय २१ वां

मौलवी जीवदया के वकील

जोधपुर (चातुर्मास) पूज्य श्री के व्याख्यान में स्वमती अन्यमती बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे। सरकारी तोपखाने के कार्य कर्त्ता माली नानूरामजी कि जो पूज्य श्री के परम भक्त हैं उन्होंने करीब २०० राजपूत लोगों को उपदेश दे उनमें से कितनों ही से जीवन पर्यंत शिकार छुड़ाया था और कइयों से अमुक वर्षों तक तथा कइयों से अमुक २ दिनों के लिये शिकार बंद कराया था।

जोधपुर के मौलवी सा० सैयद आसदअली M. R. A. S. (लंडन) F. T. C. कि जो राज्य में बड़े ओहदेदार थे वे श्रीयुत नानूरामजी माली के साथ पूज्य श्री के पास आये। व्यख्यान सुन कर बड़ा आनंद हुआ और एक ही व्याख्यान से ऐसा अद्भुत असर हुआ कि, उन्होंने जिंदगी भर के लिये मांस भक्षण करने का त्याग किया तथा परस्त्री का त्याग किया और घर की स्त्री के लिये मर्यादा की। मौलवी साहिब के साथ दूसरे भी पांच मुसलमान भाइयों ने जीवन पर्यंत मांस खाना छोड़ दिया था। मौलवी साहिब के तथा श्री नानूरामजी साहिब के संयुक्त प्रयाससे करीब १५० मनुष्यों ने

पूज्यश्रींना मुसलमीन भक्त.

मौलवी सैयद आसद अली M. R. A. S. (लंडन)

F. T. S. जोधपुर.

परिचय-प्रकरण ३१.

श्री पंचेड

ठाकोर साहेब.

स्व. ठाकोर साहेब श्री रुगनाथसिंहजी.

ठाकोर श्री चेनसिंहजी साहेब.

परिचय

प्रकरण १६.

पूज्य श्री के पास आ कितने ही महीनों के लिये मांस खाना छोड़ा था और दूसरे भी कितने ही लोगों ने मांस भक्षण करना सर्वदा के लिये त्याग दिया था।

मौलवी साहिब ने एक जैन-मुनि के पास से मांस खानेके सौगंध लिये यह हकीकत उनके ज्ञातिवालों ने सुनी तो उन्हें उन्होंने जाति बाहर निकालने की धमकी दी। पूज्य श्री ने भी यह बात सुनी फिर जब वे पूज्य श्री के पास आये तब पूज्य श्री ने कहा कि "भाई! आप आपकी प्रतिज्ञा पर अटल रहेंगे तो न्याय हो जायगा" मौलवी साहिब अपनी प्रतिज्ञा पर मेरू की तरह डटे रहे और जिसका फल यह हुआ कि, जो उनके आदि में विरोधी थे वे ही उनके प्रशंसक बन गए इतना ही नहीं परंतु मौलवी साहिब की सत्प्रेरणा से उन्होंने भी मांस खाना त्याग दिया यों अपनी ज्ञाति के कई मनुष्यों को आपने अपने पक्ष में कर लिया और उन्हें भी मांस खाने का त्याग कराया। मौलवी साहिब हमेशा पूज्य श्री के पास आते थे वे अब भी विद्यमान् हैं और उन्होंने *जीवरक्षा के महान् कार्य किये हैं और कर रहे हैं इन गृहस्थ के किये हुए उपकारों का वर्णन "परिशिष्ट" में पीछे किया है।

---

* मौलवी साहिब एक समय रेवाड़ी गए। वहां बहुत सी गायें कटती थी यह देख उन्हें बहुत दुःख हुआ। यहां रेवाड़ी में उनके एक भानेज डाकटर थे. उन्होंने कहा कि 'हम आपकी क्या

यहां चातुर्मास करने को पूज्य श्री पधारे इसके पहिले पूज्य श्री शेषकाल में भी पधारे थे। उस समय जोधपुर के धर्म-परायण सुश्रावक

खातिर तवज्जो करें ? तब सैयद आसदुअली साहिब ने कहा कि, यहां सैकड़ों गायें कटती हैं उन्हें देख मेरा दिल बहुत घबड़ाता है किसी भी तरह इनका कटना बंद हो जाय तो अच्छा हो। उनके भाणेज ने कहा कि, मैं बंध कराने की कोशिश जरूर करूंगा। इस समय में वहां लेग चला और एक अंग्रेज अमलदार ने लेग की उत्पत्ति का कारण डाक्टर से पूछा जिसके प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा कि, यहां सैकड़ों गायें कटती हैं, इनके परमाणु बहुत अशुद्ध रहते हैं इसलिये उनसे अनेक प्रकार के विषेले जीव जंतुओं की उत्पत्ति होजाना संभव है, उपरोक्त अमलदार ने गोवध बंद करा अब कसाइयों की खड्डी ली सुना है कि, ये महाशय भी फलोदी में भी श्रीजी महाराज के दर्शनार्थ आये थे जोधपुर में गोशाला न होने से माली नानूरामजी ने रु० १९००) की जगह गोशाला के लिये अर्पण कर दी थी "महाराज सुमेर गोशाला" नाम रख फंड प्रारंभ किया गया और पूज्य श्री के दर्शनार्थ आये हुए गाम पर गाम के मिल प्रायः २००० इकट्ठे होगए, जोधपुर कौंसिल के मेम्बर श्रीमान् श्यामबिहारी मिश्र आदि कई सज्जन गोशाला के कार्य में उत्साह पूर्वक भाग लेते थे—इसके सिवाय इस चातुर्मास में करीब दो हजार बकरों को अभय दान दिया गया था,

फिरतमलजी मूथा (चंदनमलजी साहिब के पिता) वे जोधपुर बाहर के शनिश्चरजी के मंदिर में संथारा किये बैठे थे। एक समय पूज्य श्री फिरतमलजी मूथा को दर्शन दे पीछे फिरते थे तब जगत सागर तालाब पर एक मुसलमान हाथ में बंदूक लिये पत्ती को मारनें की तैयारी में था उसे श्रीजी महाराज ने दूर से पत्ती की ओर बंदूक तानते देखा तब पूज्य श्री ने बड़े आवाज़ से बुलाया " ओ अल्ला के प्यारे ! खुदा के प्यारे ! खुदा के प्यारे ! खामोश ! खामोश ! वह आवाज सुन । वह मुसलमान इधर उधर देखने लगा दूरसे साधु को आता देख उसने संतोष पकड़ा, पूज्य श्री बिल्कुल समीप पहुंचे तब उसने नमस्कार कर कहा कि 'महाराज ! मेरी स्त्री बीमार है और उसकी दवा के लिये इस धनंतर पत्ती का मांस हकीमजी ने मंगाया है इसलिये उसे मैं मारता था' । उस समय बहुत थोड़े में परंतु बड़े प्रभावोत्पादक बोध वचन श्री जी महाराज ने उस मुसलमान से कहे इसलिये इससे उसका कुछ हृदय पिघल गया परंतु उसने कहा कि, इस पत्ती को तो मैं अवश्य मारूंगा कारण न मारूं तो शायद मेरी स्त्री के प्राण न बचें । तब पूज्य श्री ने कहा कि " हम फकीर हैं हमारे वचनों पर विश्वास रख तुम इस पत्ती की जान बचावोगे तो अच्छे कार्य का अच्छा बदला तुम्हें मिले बिना न रहेगा। दूसरों को सुख देने से ही आप सुखी हो सकता है. इसपर से वह मुसलमान महाराज श्री की

आज्ञा सिर चढ़ा पक्षी को अभय दान दे अपने घर गया और बिना दवा किये ही उसकी स्त्री की तबियत सुधर गई. जिससे उसे अपार आनंद हुआ। और महाराज श्री के पास आकर कहने लगा कि, आपकी कृपा से मेरी स्त्री को आराम हो गया है—आप सच्चे फकीर हैं फिर वह मुसलमान जीव मारने की सौगंध महाराज से ले, कृतकृत्य हुआ।

इस चातुर्मास में तपश्चर्या भी बहुत हुई. तपस्वीजी श्री छगनलालजी महाराज ने ६५ उपवास पन्नालालजी महाराज ने ४१ उपवास किये थे सती श्री सौभाग कुंवरजी ने ५१ उपवास किये थे तपस्वीजी सतीजी श्री नानकुंवरजी ने चार माह में १० दिन आहार लिया था पूज्य श्री ने तथा अन्य साध्वियों ने एकान्तर आदि विविध प्रकार की तपश्चर्या की थी।

तपस्वीजी महाराज छगनलालजी के ६५ उपवास के पारणा के दिन पूज्य श्री सरूपचन्दजी भंडारी के घर गोचरी गए भंडारीजी का पुत्र गौरीदासजी चार वर्ष से वाने के दर्द से पीडित थे उनसे बिल्कुल चला भी न जाता था। दो मनुष्य उसकी भुजाएं पकड़ पूज्य श्री के पास मेड़ी पर से नीचे लाये, गौरीदासजी को पूज्य श्री के दर्शन करते बड़ा प्रेम उत्पन्न हुआ गद्गद कंठ से वे पूज्य श्री के दर्शन कर कहने लगे महाराज! मैं चार २

वर्ष से दुखी हूं मेरे लिये मेरे पिताने दवाई में हजारों रुपये खर्च कर दिये हैं परन्तु आराम नहीं हुआ। तब पूज्य श्री ने कहा कि, दवाई त्याग दो नवकार मंत्र गिनो और श्रद्धा रक्खो। उसी दिन से उन्होंने दवाई छोड़ दी और नवकार मंत्र गिनना आरंभ किया थोड़े ही समय में उन्हें बिल्कुल आराम होगया और वे पूज्य श्री के व्याख्यान में पांव २ चलकर आने लग गये थे। पहिले वैष्णव-धर्म पालते थे परंतु पूज्य श्री के सदुपदेश से सब कुटुम्ब जैन-धर्म पालने लग गया।

इस तरह जोधपुर के चातुर्मास में अनेक उपकार हुए। जोधपुर के इस चातुर्मास का ध्यान दिलाने के लिये कायस्थ ज्ञाति के एक अजैन डाक्टर रामनाथजी कि, जो अभी गढ़झालोर में हैं अपने स्वतः के शब्दों में लिखते हैं।

पूज्य श्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज का चातुर्मास मारवाड़ के मुख्य नगर जोधपुर में हुआ, उस समय इस दास को भी आपके दर्शन व सत्संग और उपदेश सुनने का गौरव प्राप्त हुआ। आपकी कांति, चित्त-शुद्धि और तपश्चर्या के परमाणु का आभास इतना जबरदस्त पड़ता था कि, श्रोता लोग हर्षरूपी सुधा—समुद्र में लहराते हुए मानों तुरियावस्था का आनंद प्राप्त करते थे।

आपके सदुपदेश का लाभ उठाने की आकांक्षा के लिये नियत समय से पहिले ही राज्य के उत्साही कर्मचारी, पंडित लोग और व्यापारी समूह का मेला प्रातःकाल और सायंकाल खचाखच भर जाता था शरीर में खेद भी उन दिनों था परंतु इसका पंचभूति पुतला व्याख्यान के समय तनिक भी विचार न कर आप समय पर बराबर उपदेश फरमाते आपके उपदेश श्रवणार्थ केवल हिन्दू ही नहीं किन्तु कई मुसलमान भाई भी लाभ उठाते और जीव–हिंसा पर घृणा प्रकटकर "अहिंसा परमोधर्म" के अटल सिद्धान्त पर विनय करते और अंगीकार कर स्वयं लाभ उठाकर ऐसे परोपकारी योगीजनों के गुणाऽनुवाद गाकर धन्यवाद देते थे। आपके जोधपुर विराजने से जो २ लाभ देश को, स्त्री पुरुषों को हुए हैं उनका प्रकट करना तुच्छ लेखनी की शक्ति के बाहर है किन्तु इतना तो स्पष्ट है किः—

(१) कई अधिकारी आत्माओं का संशय दूर होकर जीव-दया पर परिपूर्ण विश्वास हुआ और कई पुरुषोंने बिना छाणा जल, रात्रि भोजन और जमीकंद इत्यादिकों को निशिद्ध समझ उनके त्याग का लाभ उठाया।

(२) कई मांसाहारी क्षत्रियों और अन्यमती लोगों ने मांस अंगीकार करना छोड़ दिया।

(३) इस दास को भी श्री श्री श्री १००८ श्री पूज्य वैकुंठ-वासी महाराज के उपदेश से उस साल ५१ मांस खाने वालों से (जो इलाज में आये) मांस के दोष दिखाकर उसका बुरा असर उनके हृदय व कलेजे पर होता है ऐसा समझा छुड़ाने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ।

(४) मेरे मित्र सैयद असदअली साहिब एम. आर. ए. एस. (जो जोधपुर में मुसलमान होते हुए भी हिन्दुओं में सर्व प्रिय हैं और खुद भी मांस भक्षण नहीं करते) ने भी महाराज के उपदेश से कई मुसलमानों का मांस छुडवाया और उन दिनों घास की कमी में जो लूली, लंगड़ी, दुःखित गौ माताएं बिना रक्षक के थीं, एक स्थान मुकर्रिर कर उनके कष्ट मिटाने का प्रबंध किया
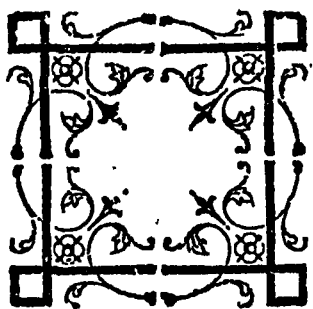
अध्याय ३२ वाँ ।

विजयी विहार ।

जोधपुर से अनुक्रमशः विहार करते पूज्य श्री नयेनगर पधारे वहां मुनि श्री देवीलालजी स्वामी का मिलाप हुआ जब काठियावाड़ में पूज्य श्री विचरते थे तब जावरा वाले संतों के सम्बन्ध में पूछताछ की तो उन्होंने उत्तर दिया कि, मालवा में पधार आप उचित निर्णय करें परन्तु जयपुर के श्रावकों ने श्रीजी महाराज से जयपुर पधारने की प्रार्थना की थी उसके उत्तर में उन्होंने जयपुर पधारने के लिए कुछ आश्वासन दिया था इसलिए उन्होंने जयपुर हो फिर मालवे की ओर पधारने का विचार दर्शाया तब देवीलालजी महाराज ने भी जयपुर पधारने की इच्छा प्रकट की ।

नयेनगर में उस समय पूज्य श्री के पधारने से अपूर्व आनन्दोत्सव छा रहा था पूज्य श्री तथा देवीलालजी महाराज के सिवाय पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के पूज्य श्री नंदलालजी महाराज ठाणा ५ तथा श्री पन्नालालजी के वलचंदजी महाराज ठाणा ७ तथा आचार्य श्री के मुनिवरों में से मुनि श्रीलालचंदजी ...भालालजी आदि कुल ५४ मुनिराज तथा ३३ आर्याजी उस

समय वहां विराजती थीं पूज्य श्री की विद्वत्ता विचक्षणता तथा भिन्न २ सम्प्रदाय के छोटे बड़े सब मुनियों के साथ यथोचित वात्सल्यता और सम्मान पूर्वक सबको संतोष देने की अपूर्व शक्ति के कारण परस्पर जो आनन्द की वृद्धि और धर्म की उन्नति हुई वह अवर्णनीय है ऐसे मौकों पर भिन्न २ मस्तिष्क के संख्याबद्ध साधु होने पर परस्पर वात्सल्यता रहना और एक ही स्थान पर व्याख्यान होना यह सब परम प्रतापी आचार्य महाराज की विचक्षणता और पुण्य वाणी का ही प्रताप है ।

तपस्वीजी श्री मुलतानचंदजी महाराज के तपश्चर्या के पूर पर पूज्यश्री के अपूर्व वैराग्य युक्त सदुपदेश से तपश्चर्या स्कंध, दया, पौषध, त्याग, प्रत्याख्यान, जीव-रक्षा आदि अनेक उपकार हुए। चार श्रावक भाइयों ने जोड़े से ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकृत किया दूसरे भी अनेक नियम व्रत स्कंधादि हुए ।

उस समय एक मुनि ने २१ दो मुनिराजों ने १५ एक के १४ उपवास थे और तीन पचरंगी तपश्चर्या की हुई थी एक मुनिराज लगभग २० महीनों से रात्रि में शयन न कर ध्यान में बैठ रहने वाले और चाहे जैसी भी शीतर्तु हो तो भी एक ही पछेवड़ी ओढ़ने वाले थे ।

इस मौकेपर खवा निवासी भाई घीसूलालजी सचेती ने पूर्ण वैराग्य पूर्वक श्री पूज्यजी महाराज के पास दीक्षा ग्रहण की उस दीक्षा-महोत्सव के समय करीब ४ से ५ हजार मनुष्य उपस्थित थे।

श्रीमान् गच्छाधिपति के दर्शनार्थ पंजाब, राजपूताना, मेवाड़ मारवाड़, मालवा, गुजरात, काठियावाड़ आदि देशों के सैकड़ों मनुष्य आये थे, जिनका तन, मन, धन से नयेनगर वालों ने उत्तम रीति से आतिथ्य सत्कार किया था।

पूज्य श्री के पधारने से ब्यावर उस समय एक तीर्थ स्थान की नाई होरहा था।

पूज्य श्री नयेनगर से अजमेर पधारे और जयपुर पधारने की जल्दी होने से अजमेर नगर के बाहर ही सेठ गुमानमलजी लोढ़ा की कोठी में विराजे। परन्तु उनका पुण्य प्रभाव तथा आकर्षण-शक्ति इतनी अधिक प्रबल थी कि व्याख्यान में साधुमार्गी श्रावकों के सिवाय सेकड़ों हजारों की संख्या में जैन अजैन सज्जन उपस्थित होते थे और सेठ गुमानमलजी साहिब की विशाल कोठी के बीच के विशाल आंगन पर के चोक में भी पीछे से आने वाले को बैठने तक का स्थान न मिलता था। इस समय प्रसंगोपात पूज्य श्री ने प्राणिरक्षा के सम्बन्ध में उपदेश दिया उस पर से श्रीमान् राय सेठ चांदमलजी साहिब की प्रेरणा से रा० ब० सेठ सोभागमलजी ढढा

तथा श्रीमान् दी० ब० उम्मेदमलजी साहिब लोढ़ा इत्यादि ने विचार कर एक पशुशाला स्थापन की जिसमें आज भी कई अनाथ पशुओं का प्रतिपालन होता है।

इसके सिवाय पूज्य श्री ने बाल लग्न नहीं करने का उपदेश दिया जिसके असर से कई लोगों ने १६ वर्ष के पहिले पुत्र के और १२ के वर्ष पहिले पुत्रि के लग्न नहीं करने की प्रतिज्ञा ली।

अजमेर में पांच छः दिन ठहरकर पूज्य श्री जयपुर पधारे वहां बहुत धर्मोन्नति हुई जयपुर के श्री संघने चातुर्मास करने के लिये अत्याग्रह पूर्वक अर्ज की उत्तर में पूज्य श्री ने फरमाया कि जैसा अवसर।

जयपुर से विहार कर श्रीजी महाराज टोंक पधारे वहां सं० १९७० के फाल्गुन शुक्ला २ के रोज उनके सदुपदेश से उनके संसार पक्ष के भाणेजा और भाणेजीपति श्रीयुत मांगीलालजी शुगलिया ने ३० वर्ष की भर युवावस्था में सर्वथा ब्रह्मचर्य व्रत जोड़ी से अंगीकृत किया। पश्चात् उन भाई ने (पूज्य श्री के सं० पं० के भाणेजी ने) रात्रि भोजन हरी तथा कच्चे पानी पीने का भी यावज्जीव के लिये त्याग कर दिया। इसके उपलक्ष में टोंक में उत्सव किया गया। बहुत से मुसलमान लोगों ने पूज्य श्री के सदुपदेश के प्रभाव से जीव-हिंसा करने तथा मांस खाने का त्याग

किया। कितने ही शूद्र लोगों ने मदिरा पान का त्याग किया। टोंक में पूज्य श्री के व्याख्यान में हिन्दू मुसलमान बड़ी संख्या में आते और व्याख्यान का कई समय इतना प्रभाव गिरता था कि, श्रोताओं की आंख से अश्रु भी बहने लग जाते थे।

यहां से अनुक्रमशः विहार करते श्रीजी महाराज रामपुरा पधारे वहां शेषकाल लगभग एक माह तक ठहरे। बहुत उपकार और बहुत त्याग प्रत्याख्यान हुए वहां से विहार कर कंजार्डा (होलकर स्टेट) पधारे वहां संवत् १९७० के चैत्र १–२ के रोज श्रीयुत गब्बूलालजी नाम के एक ओसवाल गृहस्थ ने छोटी वय में ही वैराग्य प्राप्त कर पूज्य श्री के पास दीक्षा ग्रहण की।

यहां से कोटा तथा शाहपुरा तरफ होकर पूज्य श्री मेवाड़ पधारे वहां उदयपुर के श्रावकों ने चातुर्मास के लिये श्रीजी महाराज से बहुत प्रार्थना की जावरा के श्रीसंघ ने भी बहुत आग्रह किया, परन्तु पूज्य श्री की इच्छा रतलाम चातुर्मास करने की थी इसलिये उधर विहार किया।

पूज्य श्री के अपूर्व उपदेशामृत के पान करते मंदसौर निवासी पोरवाल गृहस्थ सूरजमलजी तथा उनकी स्त्री चतुरबाई को वैराग्य उद्भव हुआ और उन्होंने सं० १९७१ के वैसाख मास में सजोड ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया। उस समय सूरजमलजी की उम्र २८

वर्ष की थी। और इनकी स्त्री की उम्र फक्त २५ वर्ष की थी। वे जब भर युवावस्था में ऐसी भीषण प्रतिज्ञा लेने के लिये व्याख्यान व्याख्यान में परिषद् के खड़े हुए तब उपस्थित सज्जनों में से बहुतों की आंखों से अश्रु बहने लगे थे। और कई स्त्री पुरुषों ने इन दम्पती का अद्भुत पराक्रम और वैराग्य जनक दृश्य देख फुटकर स्कंध तथा तपश्चर्या और विविध प्रकार के व्रत्त नियम किये थे। बाद चतुरबाई ने सं० १९७४ में और सूरजमलजी ने सं १९७६ में प्रबल वैराग्य पूर्वक दीक्षा ली थी।
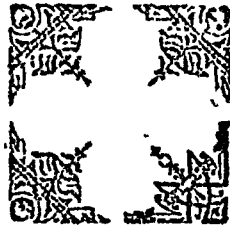
अध्याय ३३ वाँ।

सम्प्रदाय की सुव्यवस्था।

रतलाम (चातुर्मास) सं १९७१ इस समय भी पूज्य श्री के पधारने से रतलाम में आनन्दोत्सव हो रहा था, व्याख्यान में लोगों की मंडलियां की मण्डलियां आने लगी थीं। श्रीमान् पंचेड़ ठाकुर साहिब पंचेड़ा से खास पधार कर व्याख्यान का लाभ उठाते थे उपरांत राजकर्मचारीगण इत्यादि तथा हिन्दू मुसलमान बड़ी संख्या में व्याख्यान श्रवण करते और उसके फल स्वरूप रतलाम में अवर्णनीय उपकार हुए त्याग प्रत्याख्यान स्कंध तपश्चर्या इत्यादि बहुत हुई।

इस मुत्ताबिक चातुर्मास बहुत शांतिपूर्वक व्यतीत हुआ परंतु वेदनीय कर्म की प्रबलता से कार्तिक शुक्ला १० के रोज पूज्य श्री के पांव में एकाएक दर्द जोर बढ़ गया, इसलिये मगसर वद १ के रोज पूज्य श्री विहार न कर सके। जिससे श्रीजी के दिल में ऐसा विचार हुआ कि, मेरा शरीर पग की व्याधि के कारण विहार करने में असमर्थ है इसलिये सम्प्रदाय के संख्याबद्ध संतों की संभाल जैसी चाहिये वैसी नहीं हो सकेगी और एक आचार्य को उनकी संभाल से शुद्ध संयम पलाने की पूरी आवश्यकता है।

इसलिये सम्प्रदाय को चार विभागों में विभक्त कर योग्य संतों को उनकी योग्यतानुसार अधिकार देना चाहिये ऐसा विचार कर पूज्य श्री ने सम्प्रदाय की सुव्यवस्था करने का यथोचित प्रबन्ध करना ठहराया थोड़े दिन तो पूज्य श्री के पांव में इतनी अधिक प्रबल वेदना हुई कि तनिक भी चलने फिरने की शक्ति न रही। उत्तम पुरुषों की आपत्ति चिरकाल तक नहीं रह सकती, इस न्यायानुसार थोड़े ही दिन में आराम होने लगगया। पग में दर्द तो अत्यंत था, परंतु पूज्य श्री की सहनशीलता जबरदस्त होने से वे वेदना को बहुत थोड़ी वेदते थे। ता० १५-११-१९१४ के रोज श्री जी महाराज वेदना को नहीं गिनते हुए धीमे पांव से चलकर व्याख्यान में पधारे। श्रीजी के दर्शन कर श्रावकों के आनंद की सीमा न रही, उस समय श्रीजी महाराज ने व्याख्यान में फरमाया कि मेरा विचार ऐसा है कि सम्प्रदाय के संतों की सार संभाल तथा उन्नति करना उन्हें योग्य उपालंभ या धन्यवाद देना तथा संयम में सहायता देना इत्यादि आवश्यक काम सम्प्रदाय के कितने ही योग्य संतों के सुपुर्द करदूं।

पश्चात् श्रीजी महाराज की आज्ञा से तथा रतलाम श्रीसंघ तथा जावरे से पधारे कितने ही अग्रेसर श्रावकों की सम्मति से श्रीयुत् मिश्रीमलजी बोराना वकील ने आचार्य श्री के हुक्म मुताबिक तैयार किया हुआ ठहराव उच्च स्वर से परिषद् में पढ़ सुनाया जो निम्नाङ्कित हैं:-

ठहराव की अक्षरशः प्रतिलिपि ।

श्री जैनदया धर्मावलम्बी पूज्य श्री स्वामीजी महाराज श्री श्री १००८ श्री हुकमचंदजी महाराजा के पांचवें पाट पर जैनाचार्य पूज्य महाराजाधिराज श्री श्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज वर्त्तमान में विद्यमान हैं, उनके आज्ञानुयायी गच्छ के साधु एकसौ आझेरा के करीब हैं उनकी आज तक शास्त्र व परम्परायुक्त सार सम्भाल आचार गोचरी वगैरह की निगरानी यथाविधि पूज्य श्री करते हैं, परंतु पूज्य महाराज श्री के शरीर में व्याधि वगैरह के कारण से इतने अधिक संतों की सार सम्भाल करने में परिश्रम व विचार पैदा होता है इसलिये पूज्य महाराज श्री ने यह विचार पूर्वक गच्छ के संत मुनिराजों की सार सम्भाल व हिफाजत के वास्ते योग्य संतों को मुकर्रर कर प्रायः करतालुक संतों को इस तरह सुपुर्दगी कर दिये हैं कि वह अग्रेसरी संत अपने गण की सम्भाल सब तरह से रक्खें और कोई गण की किसी तरह की गलती हो तो ओलम्भा वगैरह देकर शुद्ध करने की कार्यवाही का इन्दजाम करें फक्त कोई बड़ा दोष होवे और उसकी खबर पूज्य महाराज श्री को पहुंचे तो पूज्य श्री को उसका निकाल करने का अख्तियार है सिवाय इसके जो जो अग्रेसरी हैं वे थोक आज्ञा चातुर्मासादिक की पुज्य महाराज श्री से अवसर पाकर ले लेवें ।

इसके सिवाय जे कोई संत निचले के गणों से सबब पाकर नाराज़ होकर पूज्य श्री के समीप आवे तो पूज्य महाराज श्री को जैसी योग्य कार्यवाही मालूम होवे वैसी करें अख्तियार पूज्य महाराज श्री को है और पूज्य महाराज श्री का कोई संत चला जावे तो वे अग्रेसर विना पूज्य महाराज श्री के उससे संभोग न करें इसके सिवाय आचार गोचार श्रद्धा परूपणा की गति है वह गच्छ की परम्परा मुवाबिक सर्वगण प्रतिपालन करते रहें।

यह ठहराव शहर रतलाम में पूज्य महाराज श्री के मरजी के अनुकूल हुआ है सो सब संघ को इसका अमलदरामद रखना चाहिये।

गणों के अग्रेसरों की खुलावट नीचे मुताबिक है।

(१) पूज्य महाराज श्री के हस्त दीक्षित अथवा पूज्य महाराज श्री की खास सेवा करने वालों की सार सम्भाल पूज्य महाराजश्री करेंगे।

(२) स्वामीजी महाराज श्री चतुर्भुजजी महाराज के परिवार में हाल वर्त्तमान में श्री कस्तूरचन्दजी महाराज बड़े हैं आदि ठाने जो सन्त हैं उनकी सार सम्भाल की सुपुर्दगी स्वामीजी श्री मुन्नालालजी महाराज की रहे।

(३) स्वामीजी महाराज श्री राजमलजी महाराज के परि-

वार में श्री रत्नचन्दजी महाराज के नेश्राय के सन्तों की सुपुर्दगी श्री देवीलालजी महाराज की रहे।

(४) पूज्य श्री चौथमलजी महाराज साहिब के परिवार के सन्तों की सुपुर्दगी श्री डालचन्दजी महाराज की रहे।

(५) स्वामीजी श्री राजमलजी महाराज के शिष्य श्री घासीरामजी महाराज के परिवार में जवाहिरलालजी सार सम्भाल करें।

ऊपर प्रमाणे गण पांच की सुपुर्दगी अग्रेसरी मुनिराजों को हुई है सो अपने २ संतों की सार सम्भाल व उनका निभाव करते रहें।

यह ठहराव पूज्य महाराज श्री के सामने उनकी राय मुताबिक हुआ है सो सब संघ मंजूर कर के इस मुताबिक बर्ताव करें।

उपरोक्त ठहराव सुन कर श्री संघ में हर्षोत्साह की अधिक वृद्धि हुई थी। उस समय रतलाम में मुनिराज ठाणा २५ तथा आर्याजी ठाणा ६० के क़रीब विराजमान थे।

इस चातुर्मास में श्वे० मूर्तिपूजक जैनों के अग्रेसर सुप्रसिद्ध साहिब सेठ केसरीसिंहजी कोटावाला भी श्रीजी की सेवा में तीन चार वक्त आये थे और वार्तालाप के परिणाम स्वरूप अत्यंत आनंद

प्रदर्शित किया था दूसरे भी कितने ही मंदिरमार्गी भाई आते थे और प्रश्नोत्तर तथा चर्चा वार्ता कर आनंद पाते थे।

पूज्य श्री के पांव में कुछ आराम हुआ। सं० १९७१ के मार्गशिर शुक्ला ५ के रोज दोपहुर को श्रीजी ने रतलाम से विहार किया वहां से जावरे पधारे। उस विहार के समय इस पुस्तक का लेखक उपस्थित था, रतलाम से एक कोस दूरी के ग्राम में पूज्य श्री ठहरे थे और संख्याबद्ध श्रावक वहां दर्शनार्थ पधारे थे और सुबह को उपदेश श्रवण करने के लिए रात भर वहां ठहरे थे। छोटे ग्राम में मकान की तो व्यवस्था थी रात को ठंड होते भी भविजन श्रावकों की लम्बी कतार की कतार श्रद्धा के स्थान में आनंद से निद्रा लेती हुई सो रही थी सौभाग्य से यह दृश्य मुझे देखने का अवसर प्राप्त हुआ और अश्रुओं से नेत्र भीज गए। तुरंत वकील मिश्रीलालजी के साथ गाड़ी में रतलाम पीछे आये और तीन चार बड़ी जाजमें ले गांवड़े गए और जीव जंतु या ठंढ की परवाह न करते खुली शैया, शरियों में सोई हुई कतार को जाजमों से ढांक ठंढ से संरक्षा की थी।
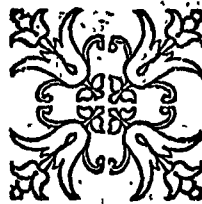
अध्याय ३४ वाँ ।

आत्म-श्रद्धा की विजय ।

जावरा के श्रावकों की चातुर्मास के लिए बार २ अत्याग्रह पूर्वक अर्ज करने पर भी उनकी विज्ञप्ति मंजूर न हो सकी थी इसलिए वहां के श्रावक जनों के अंतःकरण बड़े दुःखित हुए थे, उनको प्रफुल्लित करने के लिये इस समय आचार्य महाराज जावरे में एक मास शेष काल विराजे थे।

जावरे में जिस समय पूज्य श्री महाराज व्याख्यान फरमाते थे तब एक श्रावक ने खबर दी कि नवाब साहिब ने सब कुत्तों को बंदूक से मार डालने का पुलिस को आर्डर दिया है तदनुसार बाजार में एक दो कुत्ते मारे भी गए हैं और अभी तक सिपाही मारने की फिक्र में बंदूक लिए घूम रहे हैं। श्रीजी महाराज ने अपने व्याख्यान में यह विषय उठा लिया और अत्यन्त असरकारक उपदेश दिया तथा श्रावकों से फरमाया कि तुम इस हिंसा के रोकने का प्रयत्न क्यों नहीं करते हो ? अग्रेसर श्रावकों ने कहा कि महाराज ! हमने बहुत प्रयत्न किये परन्तु सब विफल हुए, उस समय पूज्य श्री ने फरमाया कि जो तुम में दृढ़ आत्मबल हो, तुमने

अचल आत्मश्रद्धा, आत्मशक्ति का विश्वास हो और तुम परोपकार के लिए आत्मभोग देने को तैयार हो तो तुम्हारा प्रयत्न क्यों न सफल हो ? अवश्य हो । अभी ही तुम यह दृढ़ प्रतिज्ञा करो कि जबतक यह हिंसा न रुकेगी हम अन्न पानी ग्रहण न करेंगे, सिपाही जब तुम्हारे सामने कुत्तों पर गोली चलावें तब तुम निडर हो कह दो कि प्रथम हमारे शरीर को गोली से बींध दो और फिर हमारे कुत्तों पर गोली झाड़ो, अगाध मनोबल और अखूट आत्मबल वाले इन महान् पुरुष के मुखारविंद से निकले हुए इन शब्दों ने श्रोताओं के हृदय पर अद्भुत प्रभाव जमाया, पूज्य श्री के सदुपदेश से ऐसी सचोट असर हुई कि उसी समय कई श्रावकों ने खड़े हो महाराज श्री के पास यह हिंसा न रुके वहां तक अन्न पानी लेने का त्याग कर दिया व्याख्यान के पश्चात् कई श्रावक इकट्ठे हो नवाब साहिब के पास गए और अर्ज की कि हमें जीवित रखना चाहते हो तो हमारे आश्रित इन कुत्तों को भी जीने दो और हमारे प्राण की आपको परवाह न हो तो हम भी कुत्तों के लिए प्राण देने को तैयार हैं इस हमारी विनय पर गौर फरमा कर जैसा आपको योग्य जचे वैसा करो, नवाब साहिब के पास व्याख्यान की हकीकत प्रथम ही पहुंच चुकी थी, वे अत्यन्त प्रजावत्सल थे, उन्होंने महाजनों की अर्ज शांतिपूर्वक सुन जल्द ही न मारने का आर्डर निकाल दिया ।

कलकत्ते की खास कांग्रेस में लाला लाजपतिराय ने अध्यक्ष की हैसियत से जिन शब्दों की गर्जना की थी उन शब्दों का स्मरण यहां हो आता है "आप अपनी आत्मा में दृढ़ श्रद्धा रक्खें अपने हृदय में कितना ज्वलन होरहा है इसके ऊपर कितने अग्रेसर बलिदान होने को तैयार हैं, आम लोगों में से कायरता कितने अंश में भगी है। शुद्ध भाव से अग्रेसर होने और शुद्ध भाव से दौड़ने वाले अग्रेसरों के पीछे चलने की शक्ति अपने में कितने अंश तक आई है उन सब बातों पर अपनी विजय का आधार है।"

जावरा की यह बात जो कि बिलकुल छोटी थी तो भी छोटी छोटी बातों से आत्मश्रद्धा की सीढ़ियां चढ़ने लगें तो मौका आने पर परमात्मा के संदेश को भी झेल सकेंगे। एक विद्वान् का कथन है कि—आत्मश्रद्धा द्वारा ही मनुष्य प्रत्येक कठिनाई जीत सक्ता है। आत्मश्रद्धा ही रंक मनुष्य का महान् मित्र और उसकी सर्वोत्तम सम्पत्ति है। पाई की भी बिना सम्पत्ति वाले आत्म श्रद्धावान् मनुष्य महान् से महान् कार्य कर सकते हैं। और बिना आत्मश्रद्धा के करोड़ों की पूंजी भी निष्फल गई है।

पूज्य श्री जावरे में विराजते थे उस समय श्री देवीलालजी महाराज भी जावरे पधारे और श्रीजी महाराज से मंदसोर पधारने का आग्रह किया, परन्तु उनके अमुक कौल क़रार को पकड़ कर

मंदसोर पधारना श्रीजी ने नामंजूर किया। उस समय श्रीमान् सेठजी अमरचंदजी साहिब पीतलिया पूज्य श्री की सेवा का अंतिम लाभ लेने जावरे पधारे थे। उन्होंने मौका देख इन साधुओं को शुद्धकर आहार पानी इत्यादि व्यवहार पुनः प्रारंभ करने की विज्ञप्ति की। और मंदसोर पधारने के लिये पूज्य श्री से आग्रह किया। तब पूज्य श्री वहां से विहार कर मंदसोर पधारे और जैनशास्त्र की रीत्यनुसार आलोचना कर प्रायश्चित्त लेने के लिये फरमाया, परन्तु पूज्य श्री के मनको संतोष हो उस अनुसार संतोषकारक रीति से उन साधुओं ने स्वीकृत नहीं किया। इसलिये पूज्य श्री ने वहां से विहार कर दिया। परन्तु धन्य है इन महापुरुष की गंभीरता को कि इतनी अधिक बात होते भी पूज्य श्री ने उक्त सम्बन्ध में किसी तरह प्रकट निंदा स्तुति न की, इसी तरह इन साधुओं को सम्प्रदाय से अलग किये हैं इसलिये इन्हें आव आदर न देने बाबत भी कुछ कहा सुनी न की, न उनका बुरा चाहा। पूज्य महाराज श्री का इतना ही खयाल था कि वे भी किसी प्रकार का ममत्व त्याग शास्त्रानुसार समाधान कर अपना आत्महित साधें।

मंदसोर से क्रमशः विहार करते हुए पूज्य श्री मेवाड़ में पधारे और श्री उदयपुर श्रीसंघ की विनन्ती स्वीकृत कर पूज्य श्री ने सं० १९७२ का चातुर्मास उदयपुर में किया।

अध्याय ३५ वाँ।

उदयपुर का अपूर्व उत्साह !

उदयपुर में पंचायती नोहरे के नाम से प्रसिद्ध एक विशाल मकान है, वहां हर वर्ष मुनिराजों के चातुर्मास होते थे परन्तु पूज्य श्री के चातुर्मास की प्रथम उम्मीद न होने से तथा तेरापंथी के पूज्य श्री कालूरामजी का उदयपुर चातुर्मास पहिले से ही मुकर्र होजाने से तेरापंथियों ने पहिले से ही पंचायती नोहरे की मंजूरी लेली थी इसलिये पूज्य श्री के चातुर्मास के लिये ऐसा ही को दूसरा आलीशान मकान ढूंढने के लिये उदयपुर श्री संघने प्रयत्न किया, कई उमराव लोगों ने हमारे मकान में "पूज्य श्री विराजें" ऐसी इच्छा दर्शाई, परंतु व्याख्यान के लिये चाहिए जैसी सायदार जगह न मिलने से उदयपुर के महाराणा साहिब कुमलगढ़ विराजते थे। वहां उनके चरणारविंद में अर्ज कराई उस पर से कमल पद के महलों के पास जो फराशखाना अर्थात् जूना हास्पिटल है उसके लिये उन्होंने आज्ञा देदी।

इस आलीशान मकान में श्रीमान् पूज्य महाराज श्री चातुर्मास के लिये पधारे वहां पधारते ही व्याख्यान के लिये पूज्यश्रीने फराशखानक

बाहर की जगह पसंद की कि, जिससे फराशखाने के अंदर तथा बाहर हजारों लोगों का समावेश होसके, यहां पूज्य श्री की अमृत वाणी सुनने के लिये सरे आम रास्ते पर लोगों की इतनी अधिक भीड़ इकट्ठी होती थी कि राह में चलना फिरना कठिन होजाता था ।

तपस्वीजी श्री मांगीलालजी महाराज ने ४५ उपवास किये थे और दूसरे छः साधुओं ने मास–भक्षण (महीना २ के उपवास) किये थे, एक साधु के ३४ उपवास थे तथा एक साधु ने २१ उपवास किये थे उस समय श्रीमान् हिंदवा सूरज महाराणा साहिब ने कृपाकर श्रावण वद १ के रोज अगते पलाने का हुक्म फरमाया, जिससे कसाईखाने, कलालों की दुकाने, तेली, भड़भूंजे हलवाई, छींपा (रंगरेज) इत्यादि की दुकानें बंद रही थीं.

महाराज ने ४५ उपवास का पारणा किया तब सैकड़ों अभ्यागत गरीब दीनों को श्री संघ की ओर से भोजन मिठाई इत्यादि खिलाने का प्रबन्ध कर उन्हें संतुष्ट किये थे । तथा कपड़े बांटे थे इसके सिवाय बकरों को अभयदान देने के लिये एक फंड कायम किया था जिससे करीब ४००० (चार हजार) बकरों को अभयदान दिया था, श्रीमान् कोठारीजी बलवंतसिंहजी साहिब ने अपनी तरफ से ८० बकरों को अभयदान दिया था, इस के पश्चात् नाना

प्रकार के व्रत प्रत्याख्यान तथा स्कंध इत्यादि बहुत हुये थे।

पारणा के दिन बेदला के रावजी श्री नाहरसिंहजी साहिब ने श्री अगता पलाया था, पूज्य श्री के सदुपदेश से उदयपुर के श्री संघ ने ज्ञातिके जीमणवार रात को न करते दिन को करने का ठहराव पास किया तथा पक्कान्नादि बनाना भी दिन को ही ठहरा था।

उस चातुर्मास में बाहरके देशोंसे उसी तरहसे मेवाड़ के समीपके ग्रामों से कई लोग नित्य दर्शन को आते थे। आसोज सुदी में क़रीब ६०००-७००० आदमी व्याख्यान में जमा होते थे और आने वाले श्रावकों के लिये, भोजन तथा उतरने वगैरह का कुल प्रबन्ध उदयपुर संघ की ओर से प्रशंसापात्र था। इतने अधिक मनुष्य कभी भी किसी चातुर्मास में एक साथ जमा न हुए थे। उदयपुर में दशहरे की सवारी अधिक धूमधाम से निकलती है और उदयपुर के तमाम सरदार ठाकुर इत्यादि अपने लवाजमे के साथ हाजिर होते हैं एक तो पूज्य श्री के चातुर्मास का योग अर्थात् अमृतमय वचनामृतों का लाभ दोनों समय मनोच्छित मिष्ठान्न के जीमन और उतरने, पानी वगैरह की सोय, इन कारणों से इस चातुर्मास में आने वालों की संख्या बढ़गई थी कि ऐसा मौका अगर दूसरे ग्रामों में आता तो लोग घबड़ा जाते, श्रीमान् कोठारीजी साहिब

की हिम्मत और ऐसे कुशल काटन के नीचे काम करने वालों का अविश्रांत श्रम और पूज्य श्री का प्रभाव इत्यादि कारणों से वे अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा रख सके, एक ही पंगत में इतनी अधिक जनसंख्या को गरमागरम रसोई जिमा स्वागत करने में उदयपुर के श्रावक व्याख्यान का लाभ भी छोड़ देते, राज्य की कचहरियों में काम काज बंद रख श्रीमान् कोठारीजी साहिब को शिफारिश से मिहमानों को उतरने का प्रबंध भी अच्छा हुआ था। लोग कहते थे कि पूज्य श्री का चातुर्मास कराना मानों हाथी बांधना है, खर्च से भी श्रम अधिक, इसलिए छोटे गांव वाले विचारे हिम्मत भी न करते थे।

दर्शन करने के लिये बहु संख्यक जनों का आना और पंचायती भोजनगृह में भोजन कर घूमते रहना इस महंगाई के जमाने में कठिन हो जाता है, कांगड़ी हरद्वार और दूसरे स्थानों में गुरुकुल इत्यादि के उत्सवों पर या महात्मा के दर्शनों की अभिलाषा से लोग बड़ी संख्या में इकट्ठे होते हैं, परंतु आप अपनी रसोई का इंतिज़ाम स्वयं ही कर लेते हैं, स्थानिक स्वधर्मियों को भाररूप नहीं होते हैं। हां! स्वामी वात्सल्य का अमूल्य लाभ लेनेको श्रावक ललचाते हैं, परन्तु सब सीमांतर्गत ही ठीक लगता है। अति योग का परिणाम अनिष्ट होता है। आने वाले के उतरने की व्यवस्था कर देना तथा जिस दिन आवे उस दिन स्वागत कर देना इतना ही

प्रबंध कर बाकी के दिनों की सोच आने वाले ही कर लिया करें तो जहां चातुर्मास हो वहां के श्रावक भी महात्मा के वचनामृतों का लाभ ले सकें।

कितने ही श्रावक तो यहां पूज्य श्री की सेवा में बहुत दिन तक अलग मकान लेकर रहे थे। श्रीमान् बालमुकुंदजी साहिब सतारे-वाले तथा श्रीयुत वर्द्धभानजी साहिब पीतालिया इत्यादि जानकार श्रावक पूज्य श्री के साथ ज्ञानचर्चा कर अलभ्य लाभ उठाते थे, एक समय सेठ बालमुकुंदजी साहिब "बावीश समुदाय गुणविलास" नाम की एक पुस्तक, कि जो बीकानेर में छपी है, लेकर पूज्य श्री के पास आये और उसकी प्रस्तावना पढ़ सुनाई और श्रीजी से प्रश्न किया कि क्या यह सब आपकी सम्मति से लिखा गया है? तब श्रीजी महाराज ने फरमाया कि यह पुस्तक किसने कब लिखी और किसने छपाई, इस सम्बन्ध में मैं कुछ भी नहीं जानता, सदर पुस्तक की प्रस्तावना में पूज्य श्री के नाम का आश्रय ले एक यति ने अपनी कितनी ही मानताएं पुष्ट करने का प्रयत्न किया है जिस से कितने ही श्रावकों के चित्त शंकाशील बन गए थे, परंतु श्रीजी महाराज के इतने संतोषकारक रीतिसे खुलासा करने पर सब लोगों का भ्रम दूर हो गया।

पूज्य श्री ने बाललग्न से कितनी २ हानियां होती हैं और योग्य तक विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करने से कितने महान् लाभ

होते हैं उसका ऐसा असरकारक विवेचन किया था कि, कई श्रावकों ने १८ वर्ष पहले पुत्र के और १३ वर्ष पहिले पुत्री के लग्न न करने की प्रतिज्ञा ली थी।

इस वर्ष तेरहपंथियों के पूज्य श्री कालूरामजी तथा तपगच्छीय आचार्य श्री विजयधर्म सूरिके चातुर्मास भी उदयपुर में थे। और, उनके कितने ही श्रावक हर प्रकार से क्लेशोत्पादक प्रवृत्तियां करते थे, परंतु यह क्षमा का सागर कभी भी न झलका। श्रावक परस्पर अत्यंत ट्रैक्टबाजी करते थे, परन्तु आचार्य श्री ने चित्तशांति संपूर्णता से धार रक्खी थी। अपने श्रावकों को भी शांति में स्थित रहने का शतत उपदेश देते थे। अपनी बहादुरी बताने के खयाल को दूर रख पूज्य श्री संयम का संरक्षण करते थे। किसी भी तौर से उन्होंने क्लेश वृद्धि को उत्तेजन न दिया। उलटे ऐसा करने-वालों को समझा प्रतिज्ञा कराते थे। जिससे वे लोग स्वयं नम्र हो पूज्य श्री से विनय करने लगे थे, इतना ही नहीं परंतु जब उन श्रावकों को पूज्य श्री का परिचय होता तब वे उन पर भक्तिभाव दर्शाते थे।

श्रीमान् महाराणा साहिब भी पूज्य श्री की शांतवृत्ति की प्रशंसा सुन बहुत आनन्दित हुए और कभी २ अपने आफीसर लोगों से प्रश्न करते कि, आज व्याख्यान में क्या फ़रमाया।

सं० १६७२ के मंगसर वद १ के रोज पूज्य श्री ने विहार किया उस समय उनके पांव में असह्य वेदना थी, श्रावक लोगों ने ठहरने के लिए अत्याग्रह पूर्वक बहुत २ अर्ज की, परन्तु पूज्य श्री ने फरमाया कि "मेरी चलेगी वहां तक मैं कल्प नहीं तोडूंगा" उस दिन वे अत्यन्त कठिनाई से चलकर सूरजपोल महंतजी की धर्मशाला में विराजे और वहां लशकर तरफके एक अग्रवाल श्रीयुत् व्रजमोहनलाल ने उत्कृष्ट वैराग्य से पूज्य श्री के पास दीक्षा ग्रहण की, ये महाशय दिगम्बर मतानुयायी थे सं० १६७२ के चातुर्मास में उन्हें पूज्य महाराज का परिचय हुआ था, दीक्षा बहुत धूमधाम से हजारों मनुष्योंकी उपस्थिति में हुई थी, संवत् १६७५ में व्रजमोहन, लालजी का स्वर्गवास होगया है।

तत्पश्चात् महाराज श्री ने उदयपुर से चार कोस दूर गुरुड़ीकी तरफ विहार किया, गुरुड़ी की ओसवाल समाज में दो तड़ें थीं पूज्य श्री के उपदेश से तड़ें मिट एकता होगई।

वहां से पूज्य श्री ऊंटाले पधारे वहां ४० बकरों को ऊंटाला पंचों ने तथा १०० बकरों को ऊंटाले के पटैल दला नागड़ी वाड़ा वाले ने अभय-दान दिया।

सं० १६७२ के उदयपुर के चातुर्मास दरम्यान एक अंग्रेज ...लदार कांटा वाले टेलर साहिब, कि जो समस्त मेवाड़के ओपियम

एजेन्ट थे वे पूज्य श्री के दर्शनार्थ कई समय आये थे और पूज्य श्री का व्याख्यान बहुत प्रेम-पूर्वक सुना करते थे, इतना ही नहीं परन्तु व्याख्यान के पश्चात् दूसरे समय भी वे पूज्य श्री के पास आते और तात्त्विक विषयों पर प्रश्नोत्तर तथा धर्म-चर्चा चलाते थे, इस महानुभाव अंग्रेज ने पक्षी वगैर जानवरों को न मारने की प्रतिज्ञा ली थी।

दूसरे एक अंग्रेज़ पादरी रेवरंड डो जेम्स शेपर्ड एम. डी. डी. डी. कि जो वयोवृद्ध और समर्थ विद्वान् हैं और अभी जो विलायत गए हैं वे भी महाराज श्री के दर्शनार्थ आये थे। महाराज श्री के साथ वार्तालाप करने से उन्हें अपार आनन्द हुआ और वे अपने पास की एक पुस्तक महाराज श्री को भेट करने लगे, परन्तु महाराज श्री ने उसका स्वीकार न किया। साधु के कड़े नियमों से साहिब आश्चर्य चकित होगए।

इस चातुर्मास में एक दिन पूज्य श्री ने धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता दिखाते हुए बहुत असरकारक उपदेश दिया और लघु-वय से ही बालकों के हृदय पर धर्म की छाप गिराने की आवश्यकता दिखाई। उपदेश के असर से उदयपुर के सब बालकों को शिक्षा देने के लिए एक पाठशाला खोली गई। भाई रतनलालजी मेहता के परिश्रम से यह पाठशाला वर्तमान समय में अच्छी तरह

चलती है। इस पाठशाला में धार्मिक के साथ व्यावहारिक शिक्षा भी दी जाती है इसलिए मा बाप अपनी संतानों को ऐसी पाठशाला में भेजने के लिए ललचाते हैं।

शिक्षाखाते में कितना ही व्यर्थ भार इतना बढ़ गया है कि, खास धार्मिक शिक्षा देनेवाली शालाओं में भी विद्यार्थियों का मन आकर्षित नहीं होता और उतना समय भी नहीं मिलता। काठियावाड़ की जैन-शालाएं सम्पूर्ण सफल नहीं होती उसका यही कारण है।

धार्मिक व्यवहारिक और राष्ट्रीय शिक्षा एक ही स्थान पर प्राप्त हो ऐसी पाठशालाएं स्थापित की जाय तब ही अपना आशय सिद्ध होगा, तो भी धर्म के संस्कार बालवय से ही संतानों में सींचने की लापरवाही न रखनी चाहिए।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, देश कालानुसार व्यावहारिक शिक्षा के साथ धार्मिक शिक्षा की योजना होने से उच्च भावना की लहर रग २ में प्रसर जाती है। बारहव्रतादि जैन-नियम जो व्यवहार वैद्यक और नीति शास्त्र के अनुसार ही योजित हुए हैं उनका सत्य रहस्य समझाने एवं इस अमृत के पान के कराने वास्ते जमाने के अनुकूल और आकर्षक शिक्षापद्धति बांधी जाय तो अपने भविष्य-रत्न उसमें चंचुपात करने को अवश्य ललचायंगे। श्रीयुत देशाई सत्य कहते हैं कि मनुष्य उत्क्रांति पाकर पशु आदि प्रवृत्तियों से निवृत्त

मनुष्य-जीवन में दाखिल हुआ है उसे दिव्य जीवन कैसे बिताना और उस दिव्य जीवन को बिता सिर्फ आनन्दमय जीवन सत्‌चिद्-घनानंदमय जीवन अंतमें किस रीतिसे प्राप्त करना, यही सिखाना धर्म है "।

धर्म-ज्ञान प्रचार की प्रभावना में महान पुण्य समाया हुआ है इसलिये एक लेखक योग्य उद्‌गार निकालता है कि " It is the duty of the thought-ful among the Jains to see that a healthy knowledge of the valuable and basic principles of Janism is spread liberally." सर नारायण चन्दावरकर लिखते हैं कि "सिर्फ बुद्धि के खिलने की क़ीमत नहीं, अंतःकरण भी खिलना चाहिये। समाज, देश तथा जगत्‌की शांति के लिये हृदय की शिक्षा हृदय के विकास की आवश्यकता है और जबतक प्रजा के हृदय विकसित न होंगे वहांतक सच्ची महत्ता कभी नहीं आसकी।

यूरोप में जड़-बल का जोर और आध्यात्मिक बल की अनुपस्थिति लड़ाई के समय प्रकट होजाती है·········जड़बल पर आध्यात्मिक बल का प्रभुत्व होना अवश्य जरूरी है, जब तक इस बल की सत्ता न झुकेगी वहां तक कायम की सुलह, शांति दृष्टि-गोचर नहीं हो सकती।

अध्याय ३६ वाँ ।

शिकार बंद ।
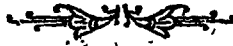
नयेनगर के आसपास का पहाड़ी प्रदेश, कि जो मगरे जिले के नाम से प्रसिद्ध है वहां के सैकड़ों ग्रामों के वाशिंदे मेर लोग, जमींनदार और पशुपालक तथा अन्य जाति के हजारों मनुष्य होली के त्यौहारों में शिकार करते और तीन दिन तक पहाड़ों में घूम निरपराधी पशु पक्षियों को मारते थे। सब दिन भर तमाम पहाड़ियों में इधर उधर दौड़ते और छोटा या बड़ा, भूचर या खेचर, जो प्राणी नजर आता उसे जान से मार डालते थे। वे जंगल में इधर उधर दौड़ते तो झाड़ झाड़ियों से उनका शरीर भी लोही लुहान होजाता था। यह घातकी और जंगली रिवाज बहुत समय से इन लोगों में प्रचलित था और जिसके कारण प्रतिवर्ष लाखों निरपराधी जीवों का संहार हो जाता था।

सं० १९७२ के फाल्गुन मास में पूज्य श्री नयेशहर पधारे, तब मगरे जिले के कितने ही जमीनदार श्री श्रीजी के व्याख्यान में आये। मौका देख पूज्य श्री ने जीवदया के सम्बन्ध में ऐसा असरकारक और हृदय-विदारक उपदेश दिया कि जिसे सुनकर

पत्थर जैसा हृदय भी पिघल जाय, इस उपदेश का उपस्थित जमींदारों के हृदय पर भी बहुत भारी असर हुआ और उन्हें अपने अपकृत्यों के कारण बहुत २ पश्चाताप होने लगा। व्याख्यान समाप्त होने पर महाराज श्री ने तथा महाजनों के अग्रेसरों ने इन लोगों को यह पापी रिवाज बंद करने की कोशिश करने के लिए समझाया, तब कितने ही लोगों ने तो ऐसा करने के लिए प्रसन्नता पूर्वक हां कहा, परन्तु कितने ही जमींदारों ने महाजनों से ऐसी दलील की कि आप महाजन लोग हमारे पर तनिक भी दया नहीं करते, उधार दिये हुए रुपयों के व्याज में एक के दूने तिगुने दाम ले लेते हो और जब कर्जा वसूल करना हो तब भी दया नहीं रखते।

यह सुन उपस्थित महाजन लोगों ने ऐसी प्रतिज्ञा की कि हर मास प्रति सैकड़ा १॥) रुपया से ज्यादा व्याज हम कदापि तुमसे न लेंगे। इसके उत्तर में जमीनदारों ने वचन दिया कि हम भी शिकार नहीं करने का बंदोबस्त करेंगे। दूसरों को उपदेश देने के पहिले अपना आचार शुद्ध होना चाहिए, 'परोपदेशे पांडित्यं' इस जमाने में नहीं चल सकता, पहिले अपने पांवपर घाव सहन करना सीखो।

पश्चात् उन जमीनदारों तथा महाजनों में से कितने ही उत्साही सज्जनों के संयुक्त प्रयत्न से थोड़े दिन बाद कई ग्रामों के मिल करीब ३०० जमीनदार ब्यावर में आये, उन्हें महाजनों की तरफ

से प्रीतिभोज दिया गया, पूज्य श्री के अपूर्व उपदेश के असर से उन लोगों ने जीवहिंसा न करने तथा शिकार न चढ़ने की प्रतिज्ञा ली और तत्सम्बन्धी दस्तावेज भी महाजन की बही में कर दिये और महाजनों ने भी डेढ रुपयें से अधिक व्याज न लेने का दस्तावेज उन्हें लिख दिया।

पश्चात् 'झाक' नामके एक ग्राम को व्यावर से श्रीयुत पन्नालालजी कांकरिया, श्रीयुत केसरीमलजी रांका इत्यादि २० गृहस्थ गए और वहां के जमीनदारों के हृदय में श्रीमान् पूज्य महाराज के उपदेश का असर पहुंचा ऐसा ठहराव किया कि मौजे 'झाक' के पटेल, नम्बरदार, ठाकुर, पन्ना, दल्ला, धीरा, इत्यादि तीन शिकारों में से एक शिकार आद औलाद (पीढी दर पीढी) तक न चढ़ें, मौजे झाक के ताबे में शामगढ़, लुलवा इत्यादि करीब १०० गाम हैं उन सब में इसी अनुसार ठहराव हुआ उसके बदले में एक हताई (चबूतरा) बंधा देने तथा अफीम, तम्बाकू, ठंढाई एक दिन के लिए देने * बाबत महाजनों ने स्वीकार किया और परस्पर दस्तावेज कर सही दी ली गई।

---

* सं० १९७९ में श्रीमान् आचार्य महाराज शेषकाल व्यावर में पधारे थे, तब शिकार की निगरानी के लिये आहेड़े के पांच दिन पहिले महाजनों में से करीब ४०–५० स्वयंसेवक गृहस्थ

उपरोक्त बंदोबस्त होने से हजारों लाखों जीवों को अभयदान मिलने लगा और सैकड़ों लोग पाप की खाति में गिरते कई अंश में बचगए।

इस मुजिब पूज्य महाराज श्री के यहां पधारने से अत्यन्त उपकार हुआ। तथा यहां के ओसवाल भाइयों में कुसम्प थी जिससे तीन तड़ें होगई थीं और साधुमार्गी मंदिरमार्गी भाइयों में भोज सम्बन्ध में मतभेद हो परस्पर मन दुखित होगया था, परन्तु श्रीमान् आचार्यजी महाराज के पधारने से उनके व्याख्यान का लाभ शाह उदयमलजी तथा शाह धूलचंदजी कांकरिया इत्यादि कितने ही मंदिरमार्गी सज्जन लेते थे। महाराज श्री के सदुपदेश के प्रभाव से बिरादरी में एकमत हो तीन तड़ें इकट्ठी होगईं और छोटे बड़े सब झगड़ों का परस्पर समाधान पूर्वक अंत हो बिरादरी में कुसम्प की जगह सुसम्प स्थापित होगया।

मौजे झाक गए और उन्होंने जमीनदारों से कहा कि तुम हताई बनवालो और उसमें जो खर्च लगे वह हम से लेओ, तब लोगों ने कहा कि हमने हममें से चन्दा कर हताई बनाना ठहरा लिया है इसलिये महाजनों से इसका खर्च न लेंगे और जो आहेड़ श्री पूज्यजी महाराज के उपदेश से हम लोगोंने छोड़ी है उसका हम बराबर अमल करते हैं और कराते रहेंगे।

अध्याय ३७ वां।

मारवाड़ में उपकारी विहार।

ब्यावर से पूज्य श्री अजमेर पधारे और सुजानगढ़ की तरफ बीकानेर के श्रावक पोखरमलजी कि जो हजारों रुपयों की छती सम्पत्ति त्याग प्रबल वैराग्यपूर्वक पूज्य श्री के पास दीक्षित होने वाले थे, उन्हें दीक्षा देने के लिये उधर पूज्यश्री जल्द पधारने वाले थे, परन्तु श्रीमान् जैनाचार्य श्री रत्नचंद्रजी महाराजकी सम्प्रदाय के आचार्य श्री विनयचंद्रजी महाराज का स्वर्गवास होगया था, उनकी जगह आचार्य स्थापित करने थे, इसलिये श्रीमान् पंडित-राज श्री चन्दनमलजी महाराज ने यह कार्य श्रीमान् की सहानु-भूति से सफल करनेकी अर्ज की, इसलिये श्रीजी महाराज अजमेर रुके और हजारों मनुष्यों की भीड़ में श्रीमान् शोभाचंदजी महाराज को विधिपूर्वक आचार्य पदारूढ करने की क्रिया में उपस्थित रह चतुर्विध संघमें अपूर्व आनंद मंगल वरताया। दोनों सम्प्रदायों के साधुओं में परस्पर इतना अधिक प्रेमभाव देखा जाता कि उसे देख अपना हृदय आनंद से उभराये विना न रहता। इस अव-सर पर श्रीमान् आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज ने आचार्य श्री की

जवाबदारी, दीर्घदृष्टि और कर्तव्य विषय पर समय के अनुकूल अत्यन्त उत्तम रीति से विवेचन किया और श्रीमान् शोभाचंदजी महाराज ने स्थविर मुनि श्री चंदनमलजी महाराज द्वारा आचार्य की पछेवड़ी ओढ़े बाद समयोचित व्याख्यान दिया था। उसमें पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के अनुपम उदार गुणों की मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी। आचार्य श्री शोभाचंदजी महाराज ने स्वयं पूज्य श्री श्रीलालजी का ऋणी रहूंगा ऐसा कहा था। हम आशा करते हैं कि पूज्य श्री शोभालालजी साहिब तथा उनकी सम्प्रदाय के साधु और श्रावक अपने वचनानुसार पूज्य श्री के परिवार पर ऐसा ही भाव रक्खेंगे।

अजमेर से उग्र विहार कर श्रीजी महाराज बीकानेर होकर सुजानगढ़ पधारें। और वहां सं० १९७२ के फाल्गुन शुक्ला ६ को शुक्रवार के रोज श्रीमान् पनेचंदजी संघवी के बनाये हुए मंदिर में बीकानेर निवासी श्रीयुत पोखरमलजी को दीक्षा दी। आपकी उम्र उस समय सिर्फ २० वर्ष की थी। आपका ज्ञान बढ़ा चढ़ा था तथा वैराग्य भी अत्यंत उत्कृष्ट था। दीक्षा लेने के पहिले उन्होंने बहुत सा द्रव्य दान पुण्य में खर्च किया था। और दीक्षा महोत्सव में भी हजारों रुपये खर्च किये थे। बीकानेर के भी बहुतसे भाई इस अवसर पर पधारे थे और मंदिरमार्गी भाइयों ने भी अनुकरणीय भ्रातृभाव दर्शाया था। इस समय

सुजानगढ़ में साधुओं के २५ ठाणे विराजमान थे और दिल्ली, जोधपुर, जयपुर, अजमेर, बीकानेर आदि शहरों के करीब ४००० मनुष्यों दिक्षा महोत्सव में भाग लिया था। एक अपरिचित क्षेत्र में इस मुजिब दिक्षा महोत्सव की सफलता हुई तथा धर्मोन्नति हुई यह पूज्य श्री के अतिशय का ही प्रभाव था।

सुजानगढ़ से श्रीमान् ने थली की तरफ विहार किया। थली के प्रदेश में साधुमार्गी भाइयों की वस्ती न होने से और तेरहपंथी भाइयों का वहुत जोर होने से पूज्य श्री का उस तरफ का विहार इनके हृदय में शल्य के समान खटकने लगा। तेरहपंथी ※ कितने ही साधुओं तथा श्रावकों ने पूज्य श्री के मार्ग में अनेक विघ्न डाले, उनके लिये अनेक प्रकार की कल्पित तथा मिथ्या गप्पें विघ्न-संतोषियों ने फैलाना प्रारंभ की और किसी भी तेरहपंथी श्रावक ने उन्हें उतरने को स्थान न देना तथा आहार पानी न वहराना ऐसी हीलचाल प्रारंभ की। उपरोक्त रीति से तेरहपंथी भाइयों ने पूज्य श्री को परिषह देने में कमी न की, परन्तु पूज्य श्री परिषह से तनिक भी डरने वाले न थे। उन्होंने अपना विहार आगे प्रारम्भ ही रक्खा और लाडनूं, खादीसर, राजलदेसर, रतनगढ़, सरदार-

---

※ साधुमार्गी स्थानकवासी सम्प्रदाय में से भिन्न हुए साधुओं ने यह पंथ चलाया है। जीवदया इत्यादि बातों में वह तमाम जैन सम्प्रदायों से भिन्न मत वाला है।

शहर आदि अनेक ग्रामों में विचर पवित्र दयाधर्म की विजय-पताका फहराई। बीकानेर के सुप्रसिद्ध सेठ हजारीमलजी मालू इत्यादि थली में पूज्य श्री के दर्शनार्थ गए थे और कितने ही दिन उन की सेवा में रह अनेक ग्रामों में फिरे थे।

थली के विहार में महेश्वरी, अग्रवाल, ब्राह्मण इत्यादि वैष्णव भाइयों ने बहुत ही पूज्यभाव दर्शाया था और आहार पानी इत्यादि बहरा कर अलभ्य लाभ उठाया था, वे पूज्य श्री के सदुपदेश से उन्हें अपने साधु हों ऐसा मानते थे और तेरहपंथी साधुओं की उत्सूत्र प्ररूपणा से जैनधर्म के विषय में उन्हें तथा थली के कई लोगों को ऐसी शंकायें थीं कि जैन लोग जीवोंको मृत्यु के पंजेमें* से छुड़ाना पाप समझते हैं, दान देने में पाप मानते हैं और गौशाला जैसी पारमार्थिक संस्थाओं को कसाईखाने से भी अधिक पापखाता समझते हैं। ऐसी २ शंकाओं के कारण वहां के निवासी जैनधर्म की ओर घृणा की दृष्टि से देखते थे, परन्तु श्रीजी महाराज के सदुपदेश से उनकी भ्रमनाएं दूर होगई। सब शंकाएं भाग

---

* तेरहपंथी साधु ऐसा उपदेश देते हैं कि एक जीव के मारने में सिर्फ एक पाप (प्राणातिपातका) ही लगता है। परन्तु उसे बचाने में अठारा पापस्थानक सेवन करने पड़ते हैं।

गई और जैनी ही प्राणीरक्षा के पूर्ण हिमायती हैं ऐसा दृढ नि-श्चय पूज्य श्री ने उन्हें शास्त्रीय दृष्टांत दे करादिया।

प्रतापमलजी की अपील।

कई तेरहपंथी भाई भी पूज्य श्री के शास्त्रानुसार उपदेश से उनके प्रशंसक और दयाधर्म के अनुयायी बनगए. उनमें से कि-तने ही सहृदय जनों को पूज्य श्री के साथ अपने स्वधर्मी बंधु और साधु जो अघटित वर्ताव करते थे, बड़ा दुःख होता था और उनमें से एक सद्गृहस्थ मुंवासर निवासी श्रीयुत प्रतापमलजी ना-हटा ने एक विज्ञापन पत्र छपाकर अपने स्वधर्मी भाइयों को मुफ्त बांट उन्हें सत्य हाल से परिचित किया था।

सदर विज्ञापन के सिर्फ थोड़े शब्द यहां दिये गए हैं, किसी भी सम्प्रदाय या व्यक्ति की निंदा को इस पवित्र पुस्तक में जगह देने का लेखक का विचार न होने से समस्त विज्ञापन जो कि तेरह-पंथी भाइयों की भूल बताता है तो भी इसमें प्रसिद्ध नहीं किया गया।

प्यारे भाइयों से निवेदन।

प्रिय सज्जनों को ज्ञात हो कि हमारे तेरहपंथी और बाईस सम्प्रदाय के साधु श्रावकों में मतभेद है, आजतक मैंने बाइस सम्प्र-

दाय के किसी साधु को न देखा था परन्तु सुना था। आज अपने (तेरहपंथी के) साधु श्रावकों के सामने उनके सम्बन्ध में इस लेख द्वारा मैं कुछ कहना चाहता हूं, इसपर से कोई यह न समझे कि मैं अन्यधर्मी हूं, अबतक मैं तेरहपंथी ही हूं और इसीलिए निम्नांकित हक़ीकत समक्ष पेश करता हूं।

ता० ७ वीं मई १९१६ के रोज सरदारशहर निवासी बालचंदजी सेठिया प्रथम 'आडसर' आये और हमारे तेरहपंथियों के साधु श्रावकों द्वारा बाईस टोले के साधुओं को उतरने के लिए मकान न देने का प्रबंध किया। फिर वहां से रवाना हो 'मुंभासर' आये और संध्या के छः बजे साध्वीजी के पास आये। वहां मैं भी हाज़र था और अन्य भी २०–२५ गृहस्थ तेरहपंथी बैठे थे। तब बालचन्दजी सेठिया साध्वी को कहने लगे कि "बाईस टोले के साधुओं का आचार ठीक नहीं होता, वे यहां आवेंगे उन्हें उतरने वास्ते मकान न मिले तो ठीक हो"। तब साध्वीजी बोले कि उनके आचार विचारके कुछ हाल सुनाओ, तब बालचंदजी बोले कि वे दोषीला आहार पानी लाते हैं अर्थात् जबरदस्ती से आहार मांग लेते हैं और उन्हें कोई प्रश्न पूछते हैं तो उत्तर भी नहीं देते और उत्तर न देने का कारण पूछते हैं तो कहते हैं कि अभी अवसर नहीं है। तब हम पूछते हैं कि आपको अवसर कब मिलेगा? तो बोलते भी नहीं, फिर बालचंदजी बोले कि 'सरदारशहर में तो कालूरामजी चंडालिया ने चालीस हजार

का मकान उतरने के वास्ते दिया; जो वे मकान नहीं देते तो वे कहां उतरते ? उन साधुओं के बाप दादों ने भी वैसा मकान न देखा होगा ' ऐसी २ अनेक बातें रात के छः बजे से साढ़े आठ बजे तक होती रहीं और साध्वीजी तथा श्रावक सब उसे सुनते रहे। वे सब बातें लिखी जायँ तो एक छोटीसी पुस्तक बनजाय। परन्तु मैंने संक्षेप में लिखी हैं। फिर मैं तो उन सबको बातें करता छोड़ अपने मकान पर जा सोया। तत्पश्चात् ता० १४ के रोज २२ सम्प्रदाय के साधु मुंबासर आये। मालचन्दजी तथा मालचन्दजी ने जो बातें कहीं थीं वे सच्ची हैं या झूठी, उसके परीक्षार्थ मैं गोचरी पानी में उनके साथ रहा और देखा तो गोचरी में कोई किसी प्रकार की जबरदस्ती नहीं करते। दोषीले आहार पानी न लेते। परिचय से ज्ञात हुआ कि मालचन्दजी इत्यादि की सब बातें मिथ्या हैं। इन साधुओं को लोग स्थान २ पर आकर प्रश्न पूछते थे और वे सब को यथार्थ उत्तर भी दे देते थे, परंतु गोचरी के समय कई लोग राह में उन्हें रोकते तो वे कहते कि अभी मौका नहीं है।

अब मेरे दिल में जो विचार उत्पन्न हुए, उन्हें जाहिर करता हूं। सब तेरहपंथी भाइयों से प्रार्थना करता हूं कि इस तरह कदाग्रह करना, साधुओं को मिथ्या कलंक देना, उन्हें उतरने के लिये मकान न देना, लड़ाई झगड़े करना, चातुर्मास न करने देना, ये भले आदमियों के काम नहीं हैं। अपने तेरहपंथी के साधुओं को तो बादाम

इत्यादि के हलुवे वहराना और दूसरे साधुओं पर मिथ्या दोषारोपण करना यही क्या अपना धर्म है ? यह बात सोचना चाहिये, नहीं तो उसका फल यह होता है कि परस्पर द्वेष भाव बढ़ता जाता है और साथ ही अपनी मूर्खता प्रकट होती जाती है। आप लोगों को तो ऐसा चाहिये कि सब से प्रेम रक्खें और अनुचित प्रवृत्ति से साधु श्रावकों को रोकें। तेरहपंथी साधु साध्वी कहते हैं कि तुम्हारे घर से तो दूसरी सम्प्रदाय के साधु आहार पानी लेगए तो तुमने क्यों वहराया ? इसलिये अब हम तुम्हारे यहां गोचरी न आवेंगे, जो अब तुम ऐसी प्रतिज्ञा लो कि तेरहपंथी साधु के सिवाय अन्य किसी को दान न देंगे, तभी हम तुम्हारे यहां आवेंगे। ऐसा कह कइयों को प्रतिज्ञा देते हैं। पाठक ! विचार करें कि जो साधु पंच-महाव्रत लेकर भी राग द्वेष नहीं त्यागते और उलटे उसकी वृद्धि करते हैं तो फिर गृहस्थी का तो कहना ही क्या है ? इसलिये आप लोगों से यह विनती है कि कुछ दिल में विचार करो गृहस्थी का अभंग द्वार है और दया दान से ही गृहस्थाश्रम की शोभा है, कल्याण है। महावीर भगवान का दया दान पर ही परम उपदेश है। उसे बंद करना जिन-वचनों की उत्थापना करने के समान है। इसलिये भविष्य कालका विचार कर सब भाई सम्प करें और विद्याकी उन्नति करें और जो मिथ्या चाल पड़गई है उसे सुधारलें यह काम जैन श्वेताम्बर तेरहपंथी सभा को हाथ में लेना चाहिये।

प्रतापमल नौहटा, मुंयासर
राज्य श्री बीकानेर (मारवाड़)

पूज्य श्री का परिचय करानेवाला चाहे जितना उनके विरुद्ध हो तो भी प्रशंसा करने लग जाता था। थली में अपने स्वधर्मियों की बस्ती न होने से पूज्य श्री को बहुत कष्ट उठाना पड़ता था। उनके वहां विचरने से जैनधर्म का अपार उद्योत हुआ *

सरदारशहर तथा रत्नगढ़ में अग्रवालों के हजारों घर हैं वे पूज्यश्री के उपदेशामृत का अत्यानंद पूर्वक पान करते थे और ऐसा कहते थे कि हमारे अहोभाग्य हैं कि ऐसे महान पुरुषोंने हमारे देश में पदार्पण कर हमें पावन किया है ये केवल ओसवालों के ही नहीं, हमारे भी साधु हैं।

रतनगढ़ में पूज्यश्री के सदुपदेश से जीवदयाके लिये रु० ८०००) का फंड हुआ था।

---

* पूज्य श्री के थली के विहार दरमियान कई जगह तेरापंथी साधु तथा श्रावकों के साथ ज्ञानचर्चा तथा संवाद हुए, उस समय पूज्य श्री ने अकाट्य प्रमाणों द्वारा दयाधर्म की स्थापना की। वे प्रश्नोत्तर मिलाने बाबत हमने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु अंततक वे न मिलसके। वह प्रश्नावली प्राप्त कर बीकानेर के श्रावक प्रसिद्ध करेंगे तो जीवदया सम्बन्धी थलीमें भराया हुआ भूत भग निकलेगा, साधुमार्गी मुनिराजों को भी थली की तरह विहार कर जीव दया के लगाये हुए संस्कारों को संजीवन रखना चाहिये।

थली के विहार दुरम्यान बीकानेर के सैकड़ों श्रावक तथा अजमेर से राय सेठ चांदमलजी साहिब तथा दी० ब० उम्मेदमलजी लोढ़ा इत्यादि दर्शनार्थ आये थे।

बड़े २ करोड़पतियों को इन महापुरुष की पदरज मस्तक चढ़ाते देख उनको अपमानित करने वाले कितने ही तेरहपंथी भाई अत्यन्त लज्जित हुए थे।

महापुरुषों के तो ऐसे कष्ट ही कीर्ति कोट की दिवाल दृढ करने में सीमेंट के समान हैं।
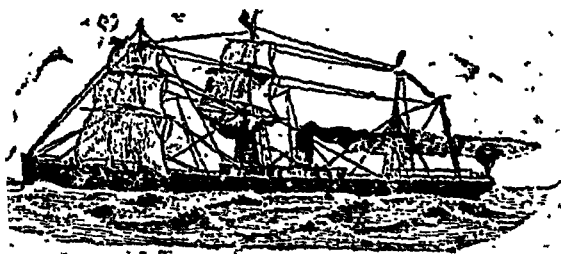
अध्याय ३८ वाँ ।

श्री संघ का कर्तव्य ।

पूज्य श्री जब थली में इस प्रकार जैन-धर्म की विजयध्वजा फहराते हुए विचर रहे थे, तब जावरा वाले साधु जोधपुर में एकत्रित हुए और अपने में से किसी को आचार्य पद देने का विचार किया, परन्तु जोधपुर संघ इस कार्य में सहमत न हुआ। तब उन साधुओं ने सात कलम लिख जोधपुर श्री संघ को दी। वे लेकर जोधपुर के श्रावक सरदारशहर में पूज्य श्री के पास आये। पूज्य श्री ने शुद्ध अंतःकरण से फरमाया कि शास्त्र के न्याय से और सम्प्रदाय की रीत्यनुसार सात तो क्या परन्तु सातसौ कलमें मुझे मंजूर हैं। इस पर से उस समय जोधपुर के संघ ने यह कार्य बंद रखाया। उसी तरह श्री संघ के अन्य अग्रेसर श्रावक महाशयों ने भी सम्प्रदाय में फूट न हो तथा पूज्य श्री हुक्मीचंदजी महाराज के सम्प्रदाय का गौरव पूर्ववत् जाज्वल्यमान रहे इस हेतु से जोधपुर संघको और जोधपुर में इकट्ठे हुए संतों को हित सलाह दे अपना कर्तव्य बजाया था।

एक विद्वान् अनुभवी के वाक्य इस समय याद आते हैं समुद्र शांत रहता है तब जहाज लेजाने में अत्यंत होशियारी अथवा अनु-

भव की आवश्यकता नहीं रहती, परन्तु जब जहाज भर समुद्र में आता है और डूबने की तैयारी में रहता है तथा बैठने वाले भय भीत रहते हैं तब ही कप्तान के कार्य कौशल्य की सच्ची कसौटी होती है सच्चे कटाकटी के मामले में ही मनुष्य की चतुराई, अनुभव और विवेकता की परीक्षा होती है और ऐसे समय ही मनुष्य अपनी महान् शक्ति दिखा सकता है ....जबतक हम कसौटी पर नहीं चढ़े, जबतक गुप्त शक्ति सामान्य संजोगों के समय प्रकट नहीं होती तबतक हमें अपने आंतरिक बल का वास्तविक भान भी नहीं होता। यह शक्ति आपत्तिकाल में ही प्रकट होती है क्योंकि वह शक्ति सम्पादन करने के लिए हमें अंतरगहनमें पैठने की आवश्यकता है हर एक कार्य में परिणाम को प्रमाण में ही कार्यकी अपेक्षा है।

जोधपुर के संघ के माफिक ब्यावर-नयेशहर के श्री संघ ने भी जावरे वाले संतों को समाधान की ही सलाह दी और जब उन्होंने दूसरी पूज्य पदवी प्रकट की तब चतुर्विध संघ की सम्मति न थी ऐसा व्याख्यान में ही प्रगट होगया था और समस्त श्री संघ के संख्या बन्ध मनुष्यों की सही से हमें यह मंजूर नहीं ऐसा लिख भेजा था।

मालवा मेवाड़ से बहुत दूर पंजाब में पूज्य श्री की आज्ञा से विचरते और जम्मू कश्मीर में एक संत बीमार होजाने से वहीं

बहुत दिनों से ठहरे हुए महाराज श्री मन्नालालजी स्वामी जो सत्य हकीकत के पूरे ज्ञाता न थे और सरल स्वभावी होने से दूसरों की युक्ति प्रयुक्ति में भुला जाने जैसे हलुकर्मी हैं, वे दूर के अपरिचित क्षेत्र में आसपास के संजोग बिना जाने और पूज्य श्रीकी आज्ञा में विचरते होने से उन्होंने पूज्य श्री की बिना आज्ञा लिये ही यह पद स्वीकार करने का साहस किया।

इस पर विचार करने से सिर्फ ममत्व ही मालूम होता है। छद्मस्त मनुष्य भूल कर बैठते हैं, इसलिये दीर्घदर्शी शास्त्रकारों ने प्रायश्चित्त की विधि बताई है। प्रबल सबूत होने पर जिन्होंने आलोयणा नहीं की तब शास्त्र की आज्ञानुसार उन्हें अलग किये, परन्तु पूर्व परिचय के कारण कई संत और कई श्रावक उनके पक्ष में पड़गए।

सं० १९७३ का चातुर्मास आचार्यजी महाराज ने बीकानेर में किया। अपार अवर्णनीय, धर्मोद्योत हुआ। शहर के जैन अजैन मनुष्य तथा देशावर के दर्शनार्थ बड़ी संख्या में आने वाले श्रावक, श्राविकाओं की हज़ारों मनुष्य की भीड़ व्याख्यान में इकट्ठी होने लगी था। पूज्य श्री के सदुपदेश द्वारा वीरप्रभु की वाणी का दिव्य प्रकाश जनसमूह के हृदय में व्याप्त अज्ञानान्धकार को दूर करता था। बीकानेर संघ में अपूर्व आनन्द छारहा था। ज्ञान, ध्यान,

तप, जप, दया, परोपकार और अभयदान के मांगलिक कार्यों से बहुत ही धर्मवृद्धि तथा जैन शासन की प्रभावना हुई।

इस वर्ष साधुओं में भी खूब तपश्चर्या हुई। श्री हरकचंदजी महाराज के सुशिष्य मुनि श्री नंदलालजी महाराज ने ७२ उपवास किये थे और श्री रतनचंदजी महाराज की सम्प्रदाय के मुनि श्री केवलचंदजी महाराज के शिष्य मुलतानचंदजी महाराज ने ८२ उपवास किये थे। ये दोनों तपस्वी एक ही दिन पारणा करने वाले थे। सेठ चांदमलजी ढड्ढा सी. आई. ई., कि जो बीकानेर के श्वे० मूर्तिपूजक जैन भाइयों के अग्रेसर हैं उनके सुप्रयास से राज्य की तरफ से उस रोज़ कसाईखाने बंद रक्खे गए थे तथा भटियारा, कंदोई, घांनी, लुहार इत्यादि के हिंसा के कार्य तथा अग्नि के समारंभ बंद रक्खे गए थे। इसके सिवाय केवलचंदजी महाराज के शिष्य धिरेमलजी महाराज ने ३१ उपवास किये थे। चातुर्मास के बाद बिहार कर मारवाड़ तथा जोधपुर स्टेट के ग्रामों में विचरते २ पूज्य श्री जब जोधपुर पधारे तब जयपुर श्रीसंघ ने चातुर्मास जयपुर करने बाबत विनय की, तब उसे मंजूर कर नयेनगर अजमेर होकर पूज्य श्री आषाढ़ शुक्ला २ को जयपुर पधारे। उस समय अजमेर नगर में महामारी-प्लेग का उपद्रव प्रारम्भ था, परन्तु पूज्य श्री के अजमेर में पदार्पण करते ही शांति होगई थी।

अध्याय ३६ वाँ ।

जयपुर का विजयी चातुर्मास ।

सं० १६७४ का चातुर्मास पूज्य श्री ने जयपुर किया। जयपुर में धर्मध्यान तपश्चर्या, त्याग, प्रत्याख्यान तथा धर्मोन्नति अत्यन्त हुई । बाहर ग्राम से संख्याबन्ध श्रावक दर्शनार्थ आते थे । रतलाम, बीकानेर, जावरा और ब्यावरनगर के कितनेक श्रावक पूज्य श्री के सत्संग और वाणी श्रवणादि का लाभ उठाने को खास मकान लेकर रहे थे । श्रीमती नानूबाई देशाई मोरवी वाली तथा मुम्बई, गुजरात और काठियावाड़ के कई श्रावक दर्शनार्थ आये थे और बहुत दिनोंतक व्याख्यान का लाभ उठाया था । व्याख्यान में कभी २ नानूबाई सी उपयोगी महत्व के प्रश्न पूज्य श्री से पूछती थी और उनके संतोषदायक उत्तर पूज्यश्री की ओर से मिलने पर श्रोतागण सानंदाश्चर्य होते थे ।

जयपुर स्टेट की तरफ से बकरियों का बध करना मना था, परन्तु बकरी का बध होता है, ऐसी खबर पूज्यश्री को मिलते ही एक समय व्याख्यान में पूज्य श्री ने प्राणीरक्षा पर असरकारक विवेचन कर श्रावकों को उनका कर्तव्य बताते हुए कहा कि, उदयपुर के श्रावक

तथा नंदलालजी मेहता जैसे उत्साही कार्यकर्ताओं ने महाराजश्री के उदार आश्रय से हिंसा रोकने के लिये प्रशंसनीय प्रयत्न किया है और हिंसा बराबर रुकी रहे और राज्य के हुक्म का बराबर अमल होता रहे उसकी पूर्ण निगाह रखते हैं इसलिये वहां कोई भी मनुष्य राज्य की आज्ञा के विरुद्ध जीवहिंसा करने का साहस नहीं कर सक्ता। जो नंदलालजी मेहता उदयपुरवाले यहां होते तो राजकी आज्ञा उल्लंघन कर बकरियों का बध करने वालों को जरूर रुकाने की कोशिश करते, इस बात की खबर उदयपुर नंदलालजी मेहता को मिलते ही तुरन्त वे और केसूलालजी ताकड़िया जौहरी उदेपुर से रवाना हो जयपुर आये और कई दिन ठहर कर बकरियों का बध रोकने का प्रयत्न किया। नामदार महाराज तक खबर पहुंचा कर सम्पूर्ण सफलता प्राप्त की। इस चातुर्मास से बकरी का बिलकुल बध होना बन्द होगया। श्रीमान् रायबहादुर खवासजी बालावक्सजी साहिब ने कसाईखाने की तपास करने वाले डाक्टर साहेब को सख्त फरमाया था कि जो कोई शख्स बकरियों का बध करे उन के पास से कानून अनुसार ५०) रुपये दण्ड मात्र ही नहीं लो, परन्तु उन्हें सख्त सजा कराओ। इस कारण खवासजी भी धन्यवाद के पात्र हैं।

इस चातुर्मास में दर्शनार्थ आनेवाले स्वधर्मी बंधुओं का स्वागत करने का सन्मान सुप्रसिद्ध जौहरी काशीनाथजी वाले

जौहरी नवरत्नमलजी ने प्राप्त किया था। वे स्वतः तथा उनके भाई जौहरी मुन्नीलालजी इत्यादि व्याख्यान पूर्ण होते ही दरवाजे पर खड़े रहते और महमानों को हाथजोड़ अपना मकान पवित्र करने वास्ते अर्ज करते तथा खड़े रह कर सबको आग्रह से जिमाते थे। रतलाम में युवराज पदवी के उत्सव पर जयपुर से खास जौहरी मुन्नीलालजी रतलाम पधारे थे और अपने प्रांत की ओर से इस पदवी बाबत हार्दिक अनुमोदन दिया था।

मोरवी चातुर्मास के समय स्वागत का कुल खर्च देने वाले सेठ सुखलाल मोनजी अपने स्नेहियों के साथ जयपुर आये थे और प्रीतिभोजन दे स्वधर्मियों से भेट करने का अवसर प्राप्त किया था।

जयपुर चातुर्मास में देश परदेश के कई श्रावक जयपुर में होने से धर्म का बड़ा उद्योत हुआ था। जागीरदार और अमलदार तथा राव-बहादुर डाक्टर दुर्जनसिंहजी इत्यादि ज्ञानचर्चा के लिए पूज्य श्री के पास आते और उनके मनका सरल रीति से समाधान होजाने पर अपने दूसरे मित्रों को भी साथ लाते थे।

जयपुर चातुर्मास पूर्ण होने पर पूज्य श्री टोंक पधारे, उस समय टोंक की ओसवाल जाति में कुसम्प था। ज्ञाति में दो तड़ें होगई थीं, परन्तु पूज्य श्री के सदुपदेश से कुसम्प दूर हो पूर्ण एकता होगई थी।

टोंक से क्रमशः विहार कर पूज्य श्री रामपुरा पधारे और सं० १९७४ के फाल्गुन शुक्ल ३ के रोज संजीत वाले भाई नंदरामजी ने पूज्य श्री के पास रामपुरा मक़ाम पर दीक्षा ली।

अध्याय ४० वाँ।

सदुपदेश का प्रभाव।

रामपुरा से श्रीजी महाराज कुकड़ेश्वर पधारे। व्याख्यान में स्व परमती बड़ी संख्या में आते थे। स्कंध तथा व्रतादि बहुत हुए। जड़ावचन्दजी पोरवाड़ ने ४५ वर्ष की अवस्था में सजोड़ ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया। यहां दो रात ठहर कर पूज्य श्री कंजारड़ा पधारे, वहां नावद वाले भाई कजोड़ीमलजी ने दीक्षा ली, वहां से पूज्य श्री भाटखेड़ी पधारे, वहां श्रीयुत नानालालजी पीतलिया ने सजोड़ ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया था तथा वहां के रावजी साहेब ने शिकार खेलने का त्यान किया। वहां से श्रीजी मनासा पधारे। वहां महेश्वरी (वैष्णव) भाई भावभक्ति सहित व्याख्यान का लाभ लेते थे। यहां के न्यायाधीश, मुन्सिफ साहिब इत्यादि सरकारी कर्मचारीगण भी व्याख्यान का लाभ उठाते थे। मनासासे महागढ़ हो पूज्य श्री पीपलिया पधारे। वहां मंदिरमार्गी भाइयों के घर होने से २२ सम्प्रदाय के साधु वहां नहीं जाते थे तथा उन्हें आहार पानी व उतरने वास्ते मकान भी नहीं देते थे। श्रीजी महाराज के सदुपदेश से उनकी द्वेषाग्नि शांत होगई और वहांके ठाकुर साहिब ने शिकार खेलने का त्याग किया।

पीपलिया से पूज्य श्री धामणे पधारे। वहां साधुमार्गी के सिर्फ ५-७ घर थे। यहां के जमींदार मीणा लोग नवरात्रि में देवी को चार बकरे चढ़ाते थे, पूज्य श्री के अमृत तुल्य उपदेश से उनके हृदय पर जादू के समान प्रभाव पड़ा और उन्होंने हमेशा के लिये देवी के सामने बकरे न चढ़ाने की प्रतिज्ञा ली और नीचे लिखा ठहराव कर उस पर सबने अपनी २ सही की "आगे से बकरों का वध नहीं करते ओसवालों के समस्त पंचों की ओर से चूरमा बाटी की रसोई का नैवेद्य माताजी को रक्खेंगे।"

यहां से श्रीजी महाराज 'बहेड़ी' नामक एक छोटे ग्राम में पधारे। वहां के ठाकुर साहिब ने पूज्य श्री के सदुपदेश से अपनी पत्नि के साथ ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया और शिकार खेलने का त्याग किया। वहां से पूज्य श्री ने जावद की तरफ विहार किया।

बड़े-२ शहरों की अपेक्षा छोटे २ ग्रामों में जहां ऐसे समर्थ धर्मोपदेष्टाओं का आगमन क्वचित ही होता है, वहां के लोग महापुरुषों की अद्भुत वाणी श्रवण करने का अपूर्व प्रसंग प्राप्त कर कितनी अभिलाषा दिखाते हैं, और व्रत प्रत्याख्यान करते हैं इसके ये प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

सं० १९७४ के फाल्गुन वदी ५ के रोज रामपुरे से ही पूज्य

श्री जावद पधारे । जावद में प्लेग का उपद्रव था, परन्तु पूज्य श्री के पदार्पण करते ही उनके पवित्र चरणकमल से पवित्र हुई भूमि में से प्लेग भग गया । और शांतिदेवी ने अपना साम्राज्य जमा दिया । जावद निवासियों पर इसका इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि जैनधर्मी और अन्यधर्मी पूज्य श्री की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगे ।

रामपुरा से जावद पधारते समय पूज्य श्री के सदुपदेश से राह के अनेक ग्रामों में तथा जावद में जो जो उपकार हुए, उनका संक्षिप्त सार निम्नांकित है:—

१ संस्थान बहेड़ी के ठाकुर साहिब प्रतापसिंहजी बहादुर ने कई प्रकार के शिकार के सौगंध लिये तथा उनकी बड़ी ठकुराइन साहिबा ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया ।

२ ग्राम मोरवण में ओसवाल ज्ञाति में तीन तड़ें थीं, वे श्रीमान् के उपदेशामृत के सींचने से कुसम्प मिट सम्पूर्ण एकता होगई और कितने ही कुव्यसनों का त्याग हुआ ।

३ मोडी ग्राम के राजपूत लोगों ने जीवहिंसा तथा मादक द्रव्य पान न करने के त्याग किये ।

४ जावद में पूज्य श्री के दर्शनार्थ सैकड़ों ग्राम पर-ग्राम के मनुष्य नित्य दर्शन को आते थे, सबका उत्तम रीति से स्वागत होता था, श्रीमान् लगभग एक माह तक वहां विराजे, संघ का उत्साह हर-रोज बढ़ता जाता था। १६ वर्ष के पहिले पुत्र तथा १२ वर्ष के पहिले पुत्री का ब्याह न करने बाबत तथा ४५ वर्ष से ज्यादा उमर वाले वर को कन्या न देने बाबत बहुतों ने प्रतिज्ञा ली। तथा स्कंधादि बहुत हुए।

सं० १९७५ के वैशाख वदी ३ को वालेसर निवासी श्रीयुत कस्तूरचंदजी ने प्रबल वैराग्यपूर्वक जावद में दीक्षा ली। दीक्षा उत्सव में करीब ४००० मनुष्य की उपस्थिति थी। यहां से स्वामीजी ने निम्बाहेड़ा की तरफ विहार किया।

अध्याय ४१ वां।

डाकन की शंका का निवारण।

निम्बाहेड़ा में बहुतसी स्त्रियों के ऊपर डाकन होने का मिथ्या कलंक बहुत समय से था। वहेमी लोग उनसे डरते और कोई भी स्त्री उनके साथ खानपानादि का व्यवहार नहीं रखती थी। पूज्य श्रीके निम्बाहेड़ा पधारने पर उक्त बात पूज्य श्री को ज्ञात हुई और 'किसी प्रकार इन पर से यह कलंक छूटे तो ठीक हो' ऐसा उन्हें जचा। ग्राम के लोग कहते कि कदाचित् आकाश में से देवता साक्षात् प्रकट हो भूमि पर आ यह कहदें कि ये बाइयां डाकण नहीं हैं तो भी डाकन का जो कलंक उनके सिरपर है, वह कदापि दूर नहीं हो सकता। परन्तु परम प्रतापी पूज्य श्री की अपूर्व उपदेशामृत की धारा ने यह कंलक धोडाला।

व्याख्यान में साधुमार्गी, मंदिरमार्गी, वैष्णव इत्यादि स्त्री पुरुष बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे, तब श्रीजी महाराजने मौका देखकर ऐसा उत्तम और प्रभावोत्पादक भाषण दिया कि उसका अद्भुत असर तत्काल लोगों पर हुआ और उसी दिन से सब स्त्रियों ने उन बाइयों के साथ खानपानादि का व्यवहार

पूर्ववत् प्रारंभ कर दिया और सब झगड़ा मिटगया, उस समय पूज्य श्री ने निम्नाङ्कित एक दृष्टांत दिया था—

" एक सेठ के यहां कई गायें और भैंसें थीं। सेठानी बहुत भली और दयालु थी, जिससे ग्राम के लोगों को पोले हाथ छाछ देने लगी। एक दिन सब छाछ खुटगई, बाद एक बाई छाछ लेने आई, तब सेठानी ने निरुपाय हो उसे इन्कार किया। फिर दो चार दिन बाद भी यही हाल हुआ। जिससे वह स्त्री सेठानी पर क्रोधित हो बोली कि ग्राम के सब जनों को छाछ देती है फक्त मुझे ही तू बारबार निराश कर पीछा लौटने को कहती है, परन्तु अब याद रखना ऐसा कह कर क्रोधावेश में वह चली गई और फिर कभी छाछ लेने न आई।

इस बातको थोड़े ही दिन बीते होंगे कि एक दिन वह स्त्री पानी का बेवड़ा लिये हुये नदी की ओर से घरको आरही थी जब सेठ की दुकान के समीप आई तब माथे पर का बेवड़ा फेंक दिया और खूब जोर से सिर धुनने और होहा करने लगी। बाजार के हजारों लोग इकट्ठे होगये। मंत्रवादी, भोपे प्रभृति आये और उसे पूछने से वह कहने लगी कि मैं फलां सेठानी हूं, गाय भैंस इत्यादि हैं, वे तो मेरे पति (सेठ की) की लाई हुई हैं, मैं उनकी स्वामिनी हूं किसी को छाछ देना न देना मेरी इच्छा की बात है, यह रांड (स्वयं) मेरे

यहां छाछ लेने आई और मैंने इनकार कर दिया तो मुझे कई गालियां और श्राप दे चलीगई अब मैं इसे जीवित नहीं छोडूंगी "सेठ भी उस भीड़ में थे अपनी स्त्री पर ऐसा कलंक आता देख वे शरमिंदा होगए। विचारी भली सेठानी इस बात से बिलकुल अज्ञात थी वह बिलकुल निर्दोष थी, छाछ लेने आने वाली बाईका ही यह सब प्रपंच था, तो भी सब ग्राम में वह सेठानी डाकन के सदृश गिनी जाने लगी और सबने उसके साथका व्यवहार बंद कर दिया। इस तरह अज्ञान और संशयी मनुष्य विचारे निर्दोष व्यक्ति पर मिथ्या आल चढ़ा उसकी जिंदगी बर्बाद कर देते हैं, परन्तु बदकाम का नतीजा बद ही होता है, आज तुम्हारे पर किसी ने मिथ्या कलंक चढ़ाया है तो तुम्हें कितना दुःख होगा, इसका विचार कर उसके साथ ऐसा व्यवहार रक्खो कि जैसा व्यवहार दूसरों से तुम अपने साथ रखवाना चाहते हो। 'आत्मनः प्रातिकूलानि परेषां न समाचरेत्' * यह मंत्र खूब याद रक्खो। इसका यह मतलब है कि जो २ बातें क्रयाएं चेष्टाएं तुम्हारे प्रतिकूल हैं दूसरों के द्वारा जो व्यवहार होता है वह तुम्हें नापसंद हो, उसे अहितकर दुःखदाई समझते हों तो तुम वैसा व्यवहार दूसरों के साथ भी मत करो। इस उपदेश

---

* Do unto others what you wish to be done unto you. दूसरों का तुम अपने साथ जैसा व्यवहार चाहो वैसा ही व्यवहार करना तुम दूसरों के साथ प्रारंभ करो। (बाईबल)

और सेठानी के दृष्टांत का लोगों पर पूर्ण प्रभाव पड़ा। इसी तरह 'शाट स्वन्धा' में कितनी ही बाइयों के शिरपर डाकन का कलंक था वह पूज्य श्री के वहां पधारने पर उनके उपदेश से प्रयास कर रहा था।
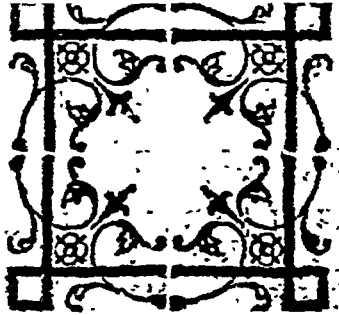
अध्याय ४२ वां।

उदयपुर महाराज-कुँवार का आग्रह।

यहां से विहार करते २ पूज्य श्री भीलवाड़े पधारे। वहां शेष काल कल्पित दिन ठहरे। भीलवाड़े के हाकिम पंडितजी श्री भवानीशंकरजी श्रीमान् का सदुपदेश श्रवण करते थे। यहां ओसवालों में २७ वर्ष से भिन्न २ तीन तड़ें कुसम्प के कारण हो रही थी। श्री जी महाराज के अमूल्य उपदेश से सब क्लेश दूर हो गया और तीनों तड़वाले इकट्ठे होगये। चातुर्मास के लिये बहुत नम्रता के साथ प्रार्थना की परन्तु उदयपुर से श्रीमान् कोठारीजी साहब चातुर्मास की विनन्ती वास्ते स्वयं पधारे और चातुर्मास उदयपुर करने बाबत बहुत आग्रहपूर्वक अर्जकी, इसलिये भील-वाड़े का चातुर्मास स्वीकृत नहीं हुआ।

तत्पश्चात् श्रीजी महाराज चित्तौड़ पधारे। वहां भी ओसवालों में दो तड़ें थीं, वे पूज्य श्री के सदुपदेश से एक होगई। यहां भी श्रीमान् कोठारीजी साहिब दर्शनार्थ पधारे थे और चित्तोड़ के ओ-सवालों में एकता कराने में उनका मुख्य हाथ था। महेश्वरी और ओसवालों के बीच भी कलह था, वह पूज्य श्री के उपदेश से दूर होगया।

इस वर्ष पूज्य श्री के चातुर्मास के लिये नयेशहर के श्री संघ को अत्यन्त अभिलाषा थी, जिससे नयेनगर के श्रावकों ने जावद इत्यादि स्थानों पर श्रीजी की सेवा में उपस्थित हो प्रार्थना की थी और उन्हें कुछ आशा भी होगई थी, परन्तु जब दूसरी ओर उदयपुर संघ का भी सम्पूर्ण आकर्षण था और खुद नामदार महाराजकुमार साहिब की भी पूज्य श्री का चातुर्मास उदयपुर कराने की प्रबल आकांक्षा थी। श्रीमान् महाराजकुमार साहिब बहुत ही धर्मप्रेमी गुणग्राही, तत्वजिज्ञासु और दयालु दिल वाले हैं, उच्च भावनाओं में ऐसा बल रहता है कि उन्हें उत्तम वस्तुओं का योग मिल ही जाता है, कुछ न कुछ निमित्त आ मिलता है। गये चातुर्मास में पूज्य श्री जब जयपुर विराजते थे तब उदयपुरके एक सुयोग्य श्रावक श्रीयुत कन्हैयालालजी चौधरी ना० महाराणा श्री के अंगोछे तथा कमरबंद छपाने वास्ते जयपुर आये थे तब उन्हों ने श्रीजी महाराज के दर्शन तथा वाणी श्रवण का लाभ लिया था और सं० १६७४ के कार्तिक शुक्ला ११ के रोज वे पीछे उदयपुर गए और श्रीमान् महाराजकुमार साहिब को सब-हकीकत निवेदन की, पूज्य श्रीके अमृतमय उपदेश की यथार्थ प्रशंसा की, तब महाराजकुमार साहिब ने फरमाया कि भविष्य का चातुर्मास पूज्य श्री को यहां करना कल्पता है या नहीं, उत्तर में चौधरीजी ने अर्ज की कि, हां हुजूर कल्पता है, यह सुन महाराजकुमार ने

चौधरीजी से कहा कि तुम, आगामी चातुर्मास पूज्य श्री यहां करें, इस बाबत अभी से पूरी २ कोशिश करो ।

चैत्र माह में पूज्य श्री मनासा विराजते थे, तब पन्नालालजी राव को विनन्ती करने के वास्ते भेजे थे। पूज्य श्री जावद पधारे वहां भी उदयपुर के कई श्रावक विनन्ती करने वास्ते आये थे और अर्ज की थी कि महाराजकुमार की भी प्रबल आकांक्षा है कि आगामी चातुर्मास उदयपुर में हो तो बहुत ठीक हो, परन्तु पूज्य श्री की तरफ से स्वीकृति का उत्तर न मिला। चैत्र शुक्ला ११ के राज कोठारी जी साहिब उदयपुर आये और चौधरीजी कन्हैयालालजी को जावद विनन्ती के वास्ते भेजे। उन्होंने उदयपुर पधारने से बहुत उपकार होना संभव है, ऐसा विश्वास दिलाया। तब श्रीजी महाराज की तरफ से कुछ आशाजनक उत्तर मिला। महाराजकुमार जब उदयपुर पधारे और उनके पूछने पर सब हकीकत निवेदन कीगई। पूज्य श्री चित्तौड़ पधारे तब महाराजकुमार साहिब की आज्ञा से श्रीयुत कन्हैयालालजी चौधरी चित्तौड़ विनन्ती के लिये गए और फिर भीलवाड़े भी गए थे।

पूज्य श्री भीलवाड़े पधारे तब उदयपुर से घेरीलालजी खमेसरा, केशूलालजी ताकड़िया, पन्नालालजी धरमावत तथा नंदलालजी मेहता इत्यादि ने वहां जाकर पूज्य श्री से अर्ज की कि चातुर्मास समीप आता है और आप के पांव में व्याधि रहती है, इसलिये

आप उदयपुर की ओर विहार करो तो बड़ी कृपा हो, परन्तु पूज्य श्री ने फरमाया कि नयेशहर के श्रावकों को जावद मुकाम पर उनकी विनन्ती पर से नयेशहर शेषकाल फरसने के लिये मैं उन्हें आशाजनक वचन दे चुका हूं और मेरे पांव में तकलीफ होगई है, ऐसी स्थिति में ब्यावर होकर उदयपुर आना कठिन है। इस पर से उदयपुर से आये हुए चारों भाई ब्यावर गए और वहां के संघ से सब हकीकत निवेदन की, तब ब्यावर के श्री संघ ने कहा कि जो महाराज साहिब का ब्यावर चातुर्मास न होता हो तो इतना चक्कर खाकर ब्यावर पधारने की तकलीफ वे न उठावें यही अच्छा है, कारण कि उनके पांव में बहुत व्याधि रहती है।
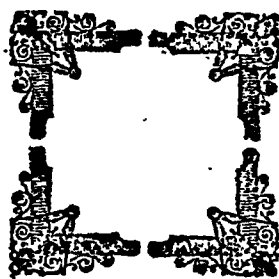
अध्याय ४३ वाँ।

आर्याजी का आकर्षक संथारा।

यहां से विहार कर पूज्य श्री ज्येष्ठ माह में राश्मी पधारे। वहां पूज्य श्री को खबर मिली कि रंगूजी आर्याजी की सम्प्रदाय के सती-जी श्री राजकुँवरजी ने उदयपुर में संथारा किया है और आपके दर्शन की उनके दिल में पूर्ण अभिलाषा है इसलिए पूज्य श्री ने उदयपुर की ओर विहार कर दिया। संवत् १९७५ के आषाढ़ वदी ८ के रोज उदयपुर शहर के बाहर दिल्ली दरवाजे से निकल आगे जाते जो कोठारी साहिब बलवंतसिंहजी की बगीची है वहां ठहरे।

वाड़ी में थोड़े समय विश्राम ले श्रीजी महाराज आर्याजी को दर्शन देने के लिए शहर की ओर जाने लगे। बाड़ी के बाहर निक-लते ही हीरा नामक एक उदयपुर का खटीक १३१ बकरों को लेकर मारने के लिए जा रहा था। पूज्य श्री के साथ उस समय लाला केशरीलालजी तथा मेहता रतनलालजी इत्यादि थे। राह सकड़ी और बकरों की संख्या अधिक होने से पूज्य श्री राह के एक ओर खड़े होगए। उस समय पूज्य श्री के पास से जाते हुए बकरे दीनतामय दृष्टि से पूज्य श्री की ओर देखने लगे, मानो कुछ विनय कर कृपा

प्राप्त करना चाहते हों या अभयदान दिलाने की भिक्षा चाहते हों, ऐसा भास होता था। उन्होंने उस खटीक से प्रश्न किया कि इन बकरों को तूं कहां ले जावेगा। खटीक ने धूजते २ उत्तर दिया कि "महाराज क्या करूं मेरा यह धंधा है इसलिए इन्हें मारने ले जा रहा हूं।" यह सुनकर महाराज का हृदय बहुत करुणार्द्र होगया और एक लम्बी सांस निकल गई, लालाजी केसरीमल जैसे प्रसिद्ध श्रावक उनके पास ही खड़े थे वे पूज्य श्री की मुख मुद्रा पर से उनके मनोगत भाव समझ गए और मेहता रतनलालजी से कहा कि इन सब बकरों को अभयदान मिलना चाहिए और इसमें जो खर्च होगा वह मैं दूंगा। यह सुन श्रीयुत रतनलालजी मेहता ने खटीक को रुपये ५२५) देना ठहरा कर सब बकरों को छुड़ा दिये और दूसरों का आग्रह होते भी आप अकेले ने ही कुल रकम दे महान लाभ उठाया। इस तरह पूज्य श्री के उदयपुर में पदार्पण करते ही १३१ पशुओं के प्राण बचने पाये।

पश्चात् सतीजी श्री राजकुँवरजी कि जिन्होंने जावज्जीव का संथारा कर दिया था उनके पास आये और तबियत के हाल पूछे। पूज्य श्री के दर्शन से उन्हें परम हुल्लास प्राप्त हुआ और उन्होंने कहा, कि आपके पधारने से मैं कृतार्थ हुई, आर्याजी की समता और चढ़ते परिणाम देख श्रीजी महाराज सानंदाश्चर्य हुए।

आर्याजी का संथारा बहुत दिनतक चला। पूज्य श्री भी नित्य उन्हें धर्मामृत का पान कराते थे। उनकी सेवा में १६ आर्याजी थीं। उनको निरंतर शास्त्रों की स्वाध्याय करने का सतीजी श्री राजकुँवरजी ने फरमा रक्खा था और आप स्वयं बहुत ध्यान से स्वाध्याय श्रवण करते थे। उनका उपयोग इतना शुद्ध था कि कोई भी आर्याजी उच्चारण में एक अक्षरकी भी भूल करदेतीं तो तुरंत वे उसे सुधारती थीं।

एक दिन रात को खूब वृष्टि होरही थी। जिस मकान में सती-जी ने संथारा किया था उसकी छत प्रथम से ही खुली पड़ी थी। और जब वर्षा होती थी, तब उस मकानमें पानी भर जाता था, इसलिये श्रावकों को रातभर चिंता हुई कि सतीजी को बहुत परिश्रम पड़ता होगा. परन्तु सुबह तपास करने पर ज्ञात हुआ कि पानीका एक बूंद भी छतमें से न गिरा।

संथारा किये बाद ३४ वें दिन पूज्य श्री सतीजी की साता पूछने हमेशा की नाईं गए और तबियत के समाचार पूछे। तब उत्तर में सतीजी ने यह दोहा कहा—

मरने से जग डरत है, मुझ मन बड़ा आनंद।
कब मरस्यां कब भेटस्यां, पूरण परमानंद॥

अर्थात् जग सब मरने से डरता है, परन्तु मेरे मन में तो बड़ा आनन्द है कि कब मरूंगी और कब पूरण परमानंद से मिलूंगी (प्राप्त करूंगी) ।

देशावर से हजारों लोग पूज्य श्री के तथा सतीजी के दर्शनार्थ आते थे, और सतीजी के अखूट धैर्य को देख आनंद पाते थे । दिनोदिन उनकी कांति और मनके परिणाम बढ़ते ही गए । अंत समय तक शुद्धि रही, किसी समय मुंह से एक शब्द भी ऐसा न निकला कि जिससे उनकी कायरता प्रतीत हो ।

संथारे में श्रीमान् कोठारीजी साहिब को सतीजी ने फरमाया कि श्रीदरबार को एक सिंह को अभयदान देने बाबत अर्ज करना उस मुआफिक श्रीमान् महाराणा साहिब की सेवा में कोठारीजी ने अर्ज की थी और महाराणा साहिब ने बहुत खुसी से वह अर्ज मंजूर की और याद रखकर पूर्ण करदी और संथारे की सब हकीकत कोठारीजी से सुन उन्होंने सतीजी की बहुत प्रशंसा की थी ।

संथारा ३६ दिन चला, श्रावण वद १० के रोज रात को नौ बजे के करीब संथारा सीझा. उस समय एक तारा आकाश में से खिरा, उस पर से पूज्य श्री ने अनुमान किया और पास बैठे हुये श्रावकों से कहा कि सतीजी का संथारा इस समय सीझगया हो ऐसा मालूम होता है, इसके थोड़े मिनट बाद ही सतीजी के स्वर्ग गमन की खबर मिली ।

अध्याय ४४ वां ।

राजवंशियों का सत्संग ।

उदयपुर के इस चातुर्मास में भी पूज्य श्री पंचायती नोहरे में विराजते थे और व्याख्यान में हजारों मनुष्य आते थे । राज्य के अमलदार वैष्णव तथा मुसलमान इत्यादि बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे ।

श्रीमान् महाराणा साहिब के ज्येष्ठ भ्राता बाबाजी सूरतसिंहजी साहिब कई समय पूज्य श्री के दर्शनार्थ पधारे थे और उनके उपदेश से पूर्ण संतुष्ट हो पूज्य श्री के पूरे भक्त बन गए थे । बाबाजी सूरतसिंहजी साहिब एक धर्मात्मा और तेजस्वी पुरुष थे । कई वर्षों तक उन्होंने अन्न का परित्याग किया था, सिर्फ फल, दूध और दूध की बनी हुई चीजें पेड़े, बरफी इत्यादि के ऊपर ही निर्वाह करते थे, बहुत वर्ष तक उन्होंने ब्रह्मचर्य पालन किया था । जीव दया की ओर उनका पूर्ण लक्ष्य था । बहुत वर्षों से उन्होंने मांस, मदिरा का त्याग कर दिया था, इतना ही नहीं, परन्तु श्रीमान् कोठारीजी साहिब के मारफत कई समय बकरों को अभयदान दिलाया था और यों जीवों को अभय दान दे अपने द्रव्य का सदु-

पयोग करते थे। संवत्सरी के दिन बाबाजी सूरतसिंहजी साहिब ने पूज्य श्रीजी से अर्ज की कि आज बड़ा भारी संवत्सरी का दिन है और बाई, भाई बृहत् संख्या में व्याख्यान में इकट्ठे होंगे, जो मनुष्य के लार एक २ बकरा अभयदान पावे तो सैकड़ों को अभयदान मिलेगा। इन पुण्यात्मा पुरुष की हितसलाह उदयपुर के श्रावक श्राविकाओं ने तत्काल स्वीकृत की और प्रायः दो, ढाई हजार बकरों को अभयदान देने का प्रबंध किया। बाबाजी साहिब अब तो स्वर्ग सिधारगए हैं। पास के पृष्ठ पर आपका चित्र दिया गया है। बेदला के रावजी साहिब श्रीमान् नाहरसिंहजी साहिब भी पूज्य श्री के दर्शनार्थ पधारे थे।

उदयपुर के नामदार श्री कुँवरजी बावजी श्री श्री १०५ श्री भूपालसिंहजी साहिब जो पूज्य श्री की अपूर्वता से पूर्ण ज्ञात थे, उन्होंने पूज्य श्री का दर्शन व उपदेश सुनने की इच्छा दर्शाई। सं० १९७५ श्रावण सुदी ८ के रोज सज्जननिवास बाग के नवलखा महल में (जिसकी पूज्य श्री ने चातुर्मास पहले ही रियासत से आज्ञा लेली थी) समागम हुआ। दूर से देखते ही श्रीमान् महाराज कुमार साहिब पग में से बूंट निकाल पूज्य श्री के समीप आगे आ नमस्कार कर महाराज के सन्मुख बैठ गए। उस समय उन के साथ कितनेक राजकीय गृहस्थ भी थे। उस समय पूज्य श्री ने समयोचित उपदेश देते हुए कहा कि:—

आप सूर्यवंशी हैं, दिलीप से गोपालक, हरिश्चन्द्र से सत्यवादी और रामचंद्रजी के समान धर्मधुरंधर महात्माओं ने जिस वंशको पावन किया था उसी वंश में आप उत्पन्न हुए हैं। अभी आप रामचंद्रजी की गादी पर हैं इसलिए आपको धर्मकी पूर्ण रक्षा करनी चाहिए। जीवों की रक्षा करना यह आपका परमधर्म है। जैनधर्म की ओर, जैन साधुओं की ओर आप प्रेम तथा बहुत मान की दृष्टि से देखते हैं यह देख मुझे बड़ा आनंद होता है। आपके पूर्वज भी जैन धर्म की ओर हमेशा सहानुभूति रखते थे और आपके पिता श्री वर्तमान नरेश) दयाधर्म की ओर पूर्ण ध्यान रखते हैं। महाराणा साहिब के दयामय कार्यों की मैंने बहुत २ प्रशंसा सुनी है उन्होंने धर्मकी रक्षा कर शिशोदिया के कुल को दिपाया है, आपभी उनका अनुकरण कर धर्म की रक्षा करेंगे। पूर्व धर्म की रक्षा करने से ही मनुष्यदेह, उत्तम कुल और राज्यवैभव मिला है, आप अभी मनुष्यों के राजा हैं, परन्तु धर्म की विशेष रक्षा करने से देवों के राजा (इंद्र) भी हो सकते हैं।

पूज्य श्री ने यह श्लोक विस्तार से समझाया—

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयम्।
परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

उपदेश सुन महाराजकुमार बहुत प्रसन्न हुए और कृतज्ञता प्रगट कर शंभुनिवास महल में पधारे।

आसोज सुदी ११ के रोज महाराज कुमार साहिब ने फिर पूज्य श्री के दर्शन और वार्तालाप का लाभ सज्जननिवास बाग में लिया। कुमार साहिब बाग में पधारे थे, उन्होंने पूज्य श्री को दूर से जाते देख गिरधारीसिंहजी (कोठारीजी साहिब के पुत्र) को पूज्य श्री के सामने भेजे और बाग में पधारने बाबत अर्ज की। पूज्य श्री पधारे और सदुपदेश का लाभ उठाया।

इस चातुर्मास में तपस्वीजी श्री मांगीलालजी तथा नंदलालजी महाराज ने बड़ी तपश्चर्या की थी। इसके उपलक्ष्य में श्रीजी हुजूर म अर्ज कर एक दिन अगता रखाया था। और उदयपुर श्री संघ ने बड़ी जेल तथा छोटी जेल के क़ैदियों को मिठाई पूड़ी इत्यादि खिलाने वास्ते महाराणा साहिब की मंजूरी ली थी। छोटी जेल के कैदियों को मिठाई खिलाई गई, परन्तु बड़ी जेल के कैदियों में ज्वर का रोग चलता था इसलिए साहिब ने इन्कार कर दिया, इसलिए फिर महाराणा साहिब की परवानगी ले छोटी जेल के कैदियों को दूसरी वक्त मिठाई खिलाई गई।

मेवाड़ के ओपियम एजेंट टेलर साहिब इस चातुर्मास में भी पूर्ववत् आते थे। एक दिन वे अपने साथ एक अंग्रेज मित्र को भी पूज्य श्री के पास लेते आये। वे भी पूज्य श्री के परिचय से अत्यंत प्रसन्न हुए और अपने पास से एक

सेकेरीन की शीशी पूज्य श्री को भेट करने लगे और कहा कि इस में से थोड़ीसी शक्कर पानी में डालने से बहुत पानी मीठा होजाता है, और आप को यह शीशी बहुत दिनों तक चलेगी। फिर महाराज श्री ने साधुओं के कठिन नियम की हकीकत कह सुनाई कि हमें खाने पीने की कोई भी चीज सामने न लाईहुई स्वीकार नहीं करनी पड़ती है, इतना ही नहीं, परन्तु पहिले प्रहर का लाया हुआ आहार पानी चौथे प्रहर में हमसे भोगना भी नहीं हो सकता, यह सब हकीकत सुन दोनों अंग्रेज चकित होगए और शीशी महाराज श्री के कार्य में नहीं आई, इसलिये दिलगीर हुए। उन्होंने कहा कि आप शीशी न ले सको तो खैर, परन्तु इस चीज मे मिठास का कितना अधिक तत्व है, वह तो आप थोड़ा सा पानी मंगाकर इसमें से थोड़ी सी यह चीज डाल कर भी देखो कि जिससे आप की खात्री होजाय। महाराज ने यह भी स्वीकार नहीं किया, तब साहिब ने कहा कि हम आपके उपकार का बदला कैसे दे सकते हैं ?, महाराज ने कहा—आप कर्त्तव्यपरायण बने, दया-पालें और धर्म निबाहें। यही हमारे लिये भारी से भारी लाभ-का कारण है। टेलर साहिब १९७१ के चातुर्मास में भी पूज्य श्री के पास आते थे, सं० १९७५ में पूज्यश्री चित्तोड़ शेष काल पधारे तब भी वे पूज्य श्री के पास आये थे।

गुणग्राही विदेशियों में सात्विक वृत्ति होती है इस कारण वे जैसा देखते हैं वैसा सत्य कहने में डरते नहीं हैं। गुजरात काठियावाड़ के अनुभवी और पूज्यश्री के व्याख्यान में राजकोट में उपस्थित रहनेवाली मिसिस स्टीवनसन् लिखती हैं कि--

" Their standard of literary (405 males and 40 females per 1000) is higher than that any other community save the Parsis and they proudly boast that not in vain in their system are practical ethics wedded to Philosophical speculation for their criminal record is magnificently white. "

राज्यकर्त्ता जाति यों कहती है कि जैनों में नियम और तत्वज्ञान फिलासोफी ऐसी है कि जैन कौम छाती ठोक कह सकती है कि जैनियों में गुन्हेगारों की लिस्ट आश्चर्यपूर्वक बिलकुल कोरी है। गुन्हगारों की लिस्ट में जैनियों का नाम शायद ही दृष्टिगत होगा।

यह प्रमाणपत्र कम आनंददायक नहीं, इस प्रमाणपत्र के निभाने की कुल जवाबदारी जैन मुनिराजों पर है, जो अभी श्रीसंघ स्टीमर के कप्तान गिने जाते हैं।

एक दिन दो बड़े बकरे प्रेमा नाम का खटीक पंचायती नोहरे के पास से ही सिंहों की खुराक के लिये ले जाता था। इतने में पूज्य

श्री बाहर जंगल से आगए, उनकी उन बकरों पर दृष्टि पड़ी, इतने में प्रेमा खटीकने कहा कि ये जानवर न मरें तो ठीक हो, यह कहकर प्रेमा दोनों बकरों को ले नोहरे के आगे खड़ा रहा। । श्रावकों को खबर मिलते ही श्रीयुत नंदलालजी मेहता ने आकर प्रेमा से कहा कि इस राह से बकरे ले जाने की मनाई है, तू क्यों लाया ? सरकार की ओर से बाजार में तथा महाजन और ब्राह्मणों की वस्ती वाली गलियों में से किसी भी मनुष्य को बकरे मारने के लिये ले जाना मना है। इस पर से उन दोनों बकरों को छुड़ा कसाई पास से ले नगरसेठ के वहां भेज दिये। जो बकरे नगरसेठ के वहां चले जाते हैं उनके कान में कड़ी डाली जाती है वे बकरे मारे नहीं जा सकते। उन बकरों को अमरे कर दिये ऐसा उधर मेवाड़ मालवा में बोलते हैं। अमरे किये हुये बकरों की रक्षा का प्रबन्ध राज्य की ओर से होता है। श्रीमान् मेदपाटेश्वर ने इनके लिये जमीन, मकान, मनुष्य और खर्च इत्यादि का पूर्ण प्रबन्ध कर रक्खा है। महाराणा साहिब इतने अधिक दयालु और प्रजावत्सल हैं कि वे अपने या अपने सम्बन्धी जनों के या राज्य के चाहे जितने बड़े ओहदेदार के लिये कायदे का बराबर अमल हो इसकी पूर्ण चिन्ता रखते हैं। मेवाड़ के रेजीडेण्ट साहिब कर्नल वायली के दो भेड़ उदयपुर की धानमंडी में आगये, उनको भी यहां के महाजनों ने कायदे मुआफिक छुड़ा लिये और नगर सेठजी के पास भेज

असरिये करा दिये। ऐसे मुआमले अक्सर कई दफ़ा पेश आते रहते हैं, परन्तु श्रीमान् महाराणा साहिब के धर्म पर पूरी २ निष्ठा होने से इस कायदा का पूरा २ अमल रहता है और कोई खिलाफ़ करता है वह यथोचित दंड पाता है।

अध्याय ४५ वां।

नवरात्रि में पशुबध बंद कराया।

वर्तमान चातुर्मास में एक दिन पूज्य श्री के व्याख्यान में उदयपुर के पास खेरादा नामक एक ग्राम है वहां के कई श्रावकों ने आकर अर्ज की कि हमारे ग्राम के पास बाठरड़ा पट्टा का ग्राम मोहनपुरा है और वहां चार पांच वर्ष से कालबेलिया, वादी और मदारी आदि लोग आ बसे हैं, वे वहां सर्प तथा गोयरे इत्यादि जानवर पकड़ते हैं और वहां उन्होंने माताजी का एक स्थानक किया है वहां आसोज महीने में नवरात्रि के दिन तथा चैत्र महीने की नवरात्रि और भादवा सुद ६ के रोज माताजी के पास १५ से २० पाड़े तथा ४० से ४५ बकरों का प्रतिवर्ष बलिदान अंतिम चार पांच वर्ष से देने लगे हैं वह बंद होना चाहिए। इस पर से पूज्य श्री ने फरमाया कि जीवदया के हिमायती यहां हैं या नहीं ? तुरंत श्रीयुत नंदलालजी मेहता ने खड़े होकर अर्ज की कि मैं हाजिर हूं। पूज्य श्री ने फरमाया कि यह पशुबध बंद होजाय तो बड़ा उपकार हो। पश्चात् श्रीयुत नंदलालजी मेहता ने श्रीमान् महाराणा साहेब की गणेश ड्योढ़ी पर जा दरख्वास्त दी। उसपर से महकमे खास के

द्वारा गिरवा जिले के हाकिम ऊपर हुक्म फरमाया गया कि जो यह बलिदान नये सिरे से होना प्रारंभ हुआ हो तो बंद करदो। यह हुक्म पाकर मावली के थानेदार और गिरवा के गिरदावर ने माता के स्थानक पर जाकर तलाश की और बलिदान नये सिरे से होता है ऐसा सबूत मिलने से श्रीमान् मेवाड़ाधीश्वर के हुक्म अनुसार बध नहीं होने बाबत वहां के लोगों से मुचलका लिखा लिया और जामिन भी ली, तब से माता के पास पाड़ों, बकरों का बलिदान होना बंद होगया। चातुर्मास व्यतीत हुए बाद पूज्य श्री जब खेरादे हो कानोड़ पधारे तब खेरादे वालों ने अर्ज की कि महाराज आपके प्रताप और मेहता नंदलालजी के सुप्रयास से पाड़ों, बकरों का बध होना हमेशा के लिए बंद होगया है।

श्रीयुत मांगीलालजी गुगलिया, उनकी पत्नी तथा कुटुम्ब सहित दर्शनार्थ आये थे। वहां उस बाई के शरीर में अचानक व्याधि उत्पन्न होजाने से बाई की प्रार्थना पर से श्रीजी महाराज ने प्रथम तेविहार और फिर चउविहार संथारा कराया था। बाई ने सम्पूर्ण शुद्धि में आलोयना प्रायश्चित्त किया। दो दिन संथारा रहा और आसोज सुदी १५ के रोज उनका स्वर्गवास होगया। पाठकों को याद होगा कि इस बाई ने बालवय से ही ब्रह्मचर्य व्रत, तथा चारों स्कंध, करीब ४॥ वर्ष से ऊपर होगए, किये थे और उनके पति ने भी ३० वर्ष की उम्र में सजोड़ शीलव्रत धारण किया था। यह बाई पूज्य श्री

की संसार पक्ष की भानजी तथा चाँदकुँवर बाई की पौत्री थी। धार्मिक संस्कारों की छाप उत्तरोतर कैसी प्रबल पैठती है, उसका यह एक उदाहरण है।

चितोड़ ज़िले के ग्राम कणेरा के सुश्रावक छोटमलजी कोठारी पूज्य श्री के दर्शनार्थ उदयपुर आये। पूज्य श्री के सदुपदेश से उनके हृदय में परिग्रह से मूर्च्छित भाव आये। कुछ अंश में कम करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। उन्होंने उसी समय रुपया दश हजार परमार्थ कार्य में व्यय करना निश्चय किया और व्याख्यान में नंदलालजी मेहता द्वारा जाहिर किया कि "रु० ५०००) उदयपुर पाठशाला इत्यादि शुभ कार्य में खर्च करने तथा रु० ५०००) अकाल पीड़ित स्वधार्मियों को सहायता देने के लिए मैं अर्पण करता हूं" इसके सिवाय रु० १२४१) का एक खत भी उदयपुर श्री संघको उन्होंने उसी समय अर्पण कर दिया।

चातुर्मास पूर्ण होने पर उदयपुर में धर्म का पूर्णतः उदय कर पूज्य श्री ने वहां से विहार किया। वे आखेड़ हो गुरुड़ी पधारते जो उदयपुर से ६ माइल दूर है, गुरुड़ी की सीमा में पूज्य श्री पधारे, थे इतने में उदयपुर का माणा मोती नामका एक खटीक ८४ बकरे लेकर मारने के लिये उदयपुर आता था, उस समय पूज्य श्री गुरुढ़ी की सीमा में एक आम्रवृक्ष के नीचे विराजते थे। कुल

बकरे पूज्य श्री से तीन चार हाथ दूर उस आम्रवृक्ष की छाया के नीचे बैठगए, उस समय पूज्य श्री के साथ, उदयपुर के श्रावक नंदलालजी मेहता, श्रीयुत प्यारचंदजी बरड़िया तथा श्रीयुत कन्है-यालालजी बरड़िया तथा गुरुड़ी के भी श्रावक थे। पूज्य श्री ने माणा खटीक को एक हृदयभेदक लावनी सुनाई तथा असरकारक उपदेश दिया, जिससे खटीक ने कहा कि मुझे मुद्दल रकम मिलजाय तौभी मैं ये सब बकरे महाजनों के सुपुर्द करदूं। मेरे पास रसीद है तत्काल बकरे छुड़ादिये गये और गुरुड़ी पींजरापोल कि जो उदयपुर के कोठारीजी श्री बलवंतसिंहजी की सहायता व प्रयास से चलती है, उसमें रखदिये गये।

सं० १९७५ के चातुर्मास पश्चात् पूज्य श्री कानोड़ मँगसर माह में पधारे। करीब १०० स्कंध हुए। बहुत से अन्यदर्शनी भाई सुलभ बोधी हुये और उनमें कितने ही अन्य दर्शनियों ने जैनधर्म अंगीकार किया।

वहां से विहार कर पूज्यश्री बड़ी सादड़ी पधारे, उस समय बड़ी सादड़ी के जैनियों और बोहरों में बहुत कुसम्प बढ़गया था। बोहरे लोगों की ओर से जीवहिंसा की वृद्धि करने वाला मिलता हुआ उत्तेजन ही इस कुसम्प वृक्ष का बीज था। बात यहां तक बढ़गई थी कि सादड़ी के बोहरों के साथ वहां के महाजनों ने लेनदेन व्यापार इत्यादि

सब कार्य बन्द कर दिया था। श्रीमान् आचार्य श्री ने सादड़ी पधारने पर उस कुसम्प को भगाने और परस्पर भ्रातृभाव बढ़ाने के लिये हमेशा उपदेश देना प्रारंभ किया जिसका शुभ परिणाम यह हुआ कि निम्नांकित शर्तें होकर बोहरे लोगों के साथ समाधान होगया।

१ सादड़ी के तालाव में कोई मछली न पकड़े और न मारे।
२ प्रत्येक एकादशी और अमावास्या के रोज जीवहिंसा न हो।
३ श्रावण, भाद्रपद और वैशाख तथा अधिक मासमें किसी भी दिन जीवहिंसा न हो।
४ आमराह में एवं प्रकटमें मांस ले कोई बाहर न निकले।

उपर्युक्त शर्तें बोहरे लोगों ने सब लोगों के सामने कुरान की शपथ ले मन्जूर कीं। दोनों पक्षों में कुसम्प दूर होने से सब तरफ आनंद छागया और सब पूज्य श्री की अनुकरणीय अनुग्रह बुद्धि की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगे। उस समय पूज्यश्री यहां एक मास तक ठहरे थे और इस बीच में अनेक उपकार के कार्य हुये थे।

अध्याय ४६ वाँ।

सुयोग्य युवराज।

वर्तमान साल में इन्फ्लूएञ्जा नामका भयंकर रोग समस्त भारत में फैलगया था। उदयपुर शहर पर भी आश्विन मास में उसका भयंकर आक्रमण प्रारंभ हुआ। इस दुष्ट रोगने पूज्य श्री को भी अपने पंजे में लिया। ऐसे सख़्त ज्वर में भी पूज्य श्री अपना नित्य नियम शुद्धोपयोग पूर्वक करते थे और समभाव से वेदना सहते थे। थोड़े ही दिन में आराम तो होगया, परन्तु व्याधि के दिनों में ही पूज्य श्री ने औदारिक शरीर का क्षणभंगुर स्वभाव समझ पूर्वजों की कीर्ति कायम रखने, सम्प्रदाय की सुव्यवस्था और समुन्नति होने के लिये न्यायविशारद, पंडितरत्न श्री जवाहरलालजी महाराज को सर्वथा सुयोग्य समझ उन्हें सम्प्रदाय का भार सौंपना निश्चय किया और अपना यह निश्चय उदयपुर के संघ के अग्रेसर श्रावकों एवं रतलाम, अनेक शहर, ग्राम के अगवानों को, कि जो पूज्य श्री के दर्शनार्थ उदयपुर आये थे, कह सुनाया। सबने अत्यानन्दपूर्वक पूज्य श्री के इस सुविचार की प्रशंसा की, कारण कि श्रीमान् जवाहरलालजी महाराज ने ज्ञान, चारित्र,

वक्तृत्व शक्ति में और अणगार पद को सुशोभित करें ऐसे उत्तमोत्तम गुणों में ऐसी तो असाधारण उन्नति की है कि आपकी समानता करने वाले वर्तमान समय में कोई विरले ही साधु होंगे। आचार्य पद को दिपावें, ऐसे सर्वगुण उनमें विद्यमान हैं। दक्षिण और महाराष्ट्र में जिन्होंने जैन धर्म की विजयपताका फहराई है, वहां के जैन और जैनेतर लोग उन्हें जैनियों के दयानन्द सरस्वती कहते हैं। स्व० लोकमान्य तिलक ने उनकी असाधारण ज्ञान-सम्पत्ति और अद्वितीय वाक्-चातुर्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है और स्वरचित गीतारहस्य नामक पुस्तक में जैनधर्म के विषय में किये हुए उल्लेख में उनके कथनानुसार सुधार करने की इच्छा प्रकट की थी। ऐसे पुरुष पूज्य श्री के उत्तराधिकारी हों और श्रीमान् हुक्मीचंदजी महाराज की सम्प्रदाय की कीर्ति समुज्वल करते रहें इसमें कौन आश्चर्य है? इसलिये सबकी सलाह अनुसार पूज्य श्री ने सं० १९७५ के कार्तिक शुक्ला २ के रोज व्याख्यान में श्रीमान् जवाहिरलालजी महाराज को युवाचार्य पदपर नियुक्त किये, ऐसा जाहिर किया। जिससे सकल संघ में आनन्दोत्सव छागया। यह खबर उदयपुर श्रीसंघ ने डेपुटेशन द्वारा पंडित-प्रवर श्री जवाहिरलालजी महाराज को पहुंचाई और पछेवड़ी की क्रिया तपस्वी स्थेवर मुनि श्री मोतीलालजी महाराज के हाथ से करने बाबत आचार्य श्री ने फरमाया। जवाहिरलालजी महाराज उस समय दक्षिण में बिराज

थे। उन्हें यह खबर मिलते ही आपने पूज्य श्री से दूर विचरते बहुत समय होजाने से पूज्य श्री के दर्शन का लाभ ले उनके करकमल से पछेवड़ी धारण करने की अभिलाषा दिखाई। चातुर्मास पूर्ण होने पर उन्होंने दक्षिण से मालवे की तरफ विहार किया और आचार्य श्री मेवाड़ से मालवा की ओर पधारे। रतलाम में दोनों महापुरुषों का समागम हुआ और वहां सं० १९७६ के चैत्र वदी ९ के दिन पूज्य श्री ने अपने कर-कमल से पंडित श्री जवाहिरलालजी महाराज को युवाचार्य पद पर चतुर्विध संघ के समक्ष नियुक्त किये और अपने मुबारिक हाथ से पछेवड़ी धारण कराई। इस अलभ्य अवसर का लाभ लेने के लिये बाहर ग्राम के बहुत भाई उत्सुक थे। रतलाम संघ ने भारतवर्ष के प्रत्येक मुख्य २ शहरों में खबर पहुंचाई थी, जिससे संख्याबद्ध श्रावक श्राविका उपस्थित हुए थे।

पंचेड़ से ठाकुर श्री चैनसिंहजी इत्यादि भी पधारे थे। लेखक ने अपनी जिंदगी भर में ऐसा उत्सव न देखा था। तीर्थंकरों के समवसरण का संस्मरण होवे ऐसा भव्य दृश्य था। उस समय का वर्णन बहुत लिखा जा सकता है, परन्तु पुस्तक बढ़ जाने के भय से 'कान्फ्रेन्स प्रकाश' में प्रसिद्ध किया हुआ हाल ही यहां पाठकों के अवलोकनार्थ उद्धृत कर देते हैं।

———

अध्याय ४७ वाँ।

रतलाम में श्रीमान् पंडितरत्न श्री श्री १००८ श्री जवाहिरलालजी महाराज साहिब को युवाचार्य पदकी चादर ओढ़ाने का महोत्सव ।

हिन्द के प्रत्येक प्रांत में से करीब २०० ग्राम के लगभग सात आठ हजार मनुष्यों का अपूर्व सम्मेलन ।

श्रीमान् महाप्रतापी महाराजाधिराज श्री श्री १००८ श्री हुक्मीचंदजी महाराज की सम्प्रदाय के वर्तमान जैनाचार्य श्रीमान् गच्छाधिपति महाराजाधिराज १००८ श्री श्री श्रीलालजी महाराज साहिब ने उदयपुर में गत साल चातुर्मास में अपने शरीर में व्याधि आदि अनेक शारीरिक कारणों से परम्परा की रीत्यनुसार सम्प्रदाय के गौरव के संरक्षणार्थ तथा मुनि महाराजों की साल संभाल करने एवं उन्हें ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि गुणों की वृद्धि में सहायता देने इत्यादि सम्प्रदाय रूपी कल्पवृक्ष को यथावत् स्थित रखने के आशय से महाराष्ट्र देश में विचरते उपरोक्त सम्प्रदाय के जाति-

कुल सम्पन्न विद्वद्रत्न पंडित–शिरोमणि मुनि महाराज श्री श्री १००८ श्री जवाहिरलालजी महाराज को सब तरह योग्य समझ सं० १६७६ के कार्तिक सुदी २ के रोज उदयपुर के सर्व संघ समक्ष सम्प्रदाय के युवाचार्य जाहिर किये थे। उसकी चादर–पछेवड़ी ओढ़ाने वास्ते (श्रीमान् महाराज साहिब के पूर्वजों ने भी ऐसे महत् कार्यों में रतलाम को ही योग्य समझ मान दिया था, तदनुसार) श्रीमान् पूज्य महाराज साहिब ने भी रतलाम पधारने की कृपा की और श्रीमान् युवाचार्यजी महाराज को भी उदयपुर संघ के अग्रेसरों तथा रतलाम संघ के नेता श्रीयुत वर्द्धमाणजी पीतालिया तथा श्रीयुत बहादुरमलजी बांठिया भीनासर वालों ने शहर मीरी (जिला अहमदनगर) में जाकर मालवे की ओर पधारने के लिये प्रार्थना की। तदनुसार श्रीमान् युवाचार्य महाराज ने दक्षिण देश के अनेक ग्रामों के संघ की पछेवड़ी का उत्सव दक्षिण में करने की महती अभिलाषा होने पर भी श्रीमान् आचार्य महाराज साहिब के दर्शनार्थ तथा श्रीमान् आचार्य महाराज साहिब के कर–कमल से यह बख्शीस लेने वास्ते बहुत परिश्रम उठाकर उग्र विहार कर रतलाम पधारने की कृपा की। श्रीमान् आचार्य महाराज साहिब ने फाल्गुन शुक्ला ५ गुरुवार के रोज और श्रीमान् स्थेवर महात्मा तपस्वीजी श्री मोतीलालजी महाराज ने मय युवाचार्य महाराज के फाल्गुन शुक्ला १० मंगलवार को रतलाम शहर पावन किया, जिनके आदर

करने तथा भक्तिभाव प्रकट करने के लिये रतलाम संघ के सब श्रावक श्राविकाएं तथा अन्य धर्म के भी बहुतसे धर्मप्रेमी बन्धु बहुत दूर २ जा भक्तिपूर्वक रतलाम शहर में लाये। इन महापुरुषों के आगमन का दृश्य भी बड़ा ही भव्य और चित्ताकर्षक था। श्रीमान् उभय महापुरुषों के पधारने बाद युवाचार्य पदकी पछेवड़ी प्रदान करने का शुभ प्रसंग मिती चैत्र वदी ६ बुधवार ता० २६-३-१६ का ठहराया गया। यहां यह लिखने की आवश्यकता है कि श्रीमान् आचार्य महाराज के करकमल से श्रीमान् युवाचार्य महाराज को चादर रतलाम में बख्शी जायगी, यह खबर हिन्द के प्रत्येक विभाग में फैलजाने से अनेक देशवासी बन्धुओं ने उभय महापुरुषों के एक साथ ही दर्शन करने तथा इस अपूर्व प्रसंग का लाभ लेने के लिए रतलाम श्रीसंघ से बार २ आग्रह किया था; कि युवाचार्य पद महोत्सव के शुभ प्रसंग का लाभ लेने से हम वंचित न रहजायं; इसलिए हमें अवश्य खबर मिलनी चाहिए। इसपर से रतलाम संघ की तरफ से साधारण रीति से कार्ड तथा चिट्ठी द्वारा हिन्द के प्रत्येक विभागों में आमंत्रण पत्रिकाएं भेजीगई थीं जिसे मानदे हिन्द के प्रत्येक विभाग में से करीब २०० ग्रामों के हजारों श्रावक श्राविका तथा अनेक प्रतिष्ठित अग्रेसरों ने यहां पधार कर रतलाम की अलौकिक शोभा में अभिवृद्धि की थी। उनके उतरने तथा भोजन के लिए रतलाम श्रावकों की तरफ से उचित प्रबन्ध किया था।

कितने ही अति उत्साही बन्धु तो श्रीमान् महामुनियों के पंधारने की खबर मिलते ही इस शुभ प्रसंग का दिन नियत होने की खबर पहुंचने के पहले ही पधार गए थे। मुंबई संघ के खास नेता सेठ मेघजी भाई थोभण तथा हैदराबाद निवासी लाला सुखदेवसहायजी के सुपुत्र लाला ज्वालाप्रसादजी इत्यादि बहुतसे श्रावक पधारे थे। परन्तु सांसारिक अनेक कारणों से रुकने की प्रबल उत्कंठा होते भी अधिक दिन का अवकाश न मिलने से वे इस महत् कार्य में अपनी प्रसन्नता प्रकट कर पीछे चले गये थे। चैत्र वदी ५ के रोज से बहुतसे श्रावक, श्राविकाएं आने लगीं और चैत्र वदी ८ तक तो हजारों श्रावक श्राविकाएं उपस्थित होगईं। यह महत् कार्य भारत-वर्ष के सर्व संघकी सम्मति से रीत्यनुसार होना आवश्यक समझ कर चैत्र वदी ८ मंगलवार ता० २५-३-१६ के रोज रातको आठ बजे हनुमान रुंडी के भव्य मैदान में प्रत्येक ग्राम से पधारे हुए श्रावकों के मुख्य २ प्रतिनिधियों तथा रतलाम संघ के प्रतिनिधियों की एक समस्त संघ सभा एकत्रित कीगई। और नवमी के प्रातः-काल को जो महत्कार्य होने वाला था, उसका प्रोग्राम नक्की किया गया तथा आवश्यक अनेक कार्यों का निकाल कर अत्युपयोगी ठहराव किये गये।

ता० २६ मार्च १६१६ मिती चैत्र वदी ६ बुधवार को प्रातः-ल के छः बजे से श्रीमान् आचार्य महाराज विराजते थे, उस

स्थानक में हजारों श्रावक श्राविकाओं की मेदिनी पचरंगी, नाना-विधि पोषाकों से सजी हुई बहुत तेजी से चमकने लगी। उस छटा का दृश्य अपूर्व था। श्रीमान् पूज्य महाराज के पधारने के दिन से ही श्रावक, श्राविकाओं का उस भव्य मकान के कम्पाउन्ड में समावेश न हो सकने से सड़क के आम रास्ते पर शामियाना खड़ा किया गया था। तथा नीचे तख्त बिछाये गये थे, परन्तु इतने में भी हजारों मनुष्य कैसे बैठ सकें? इसलिये तम्बू फिर बढ़ाया गया तथा आसपास के और सामने के पांच २ सात २ मकानों के चबूतरों पर तथा सड़क पर लोगों की अत्यंत भीड़ होगई।

उस समय श्रीमान् पंचेड़ ठाकुर साहिब (जिला रतलाम) श्री चैनसिंहजी साहिब कि जो रतलाम नरेश के मुख्य सर्दार हैं वे इस जलसे को सुशोभित करने के लिये ही पंचेड़ से यहां पधारे थे। तथा शहर के अन्य अग्रेसर भी पधारे थे। करीब ८ बजे श्रीमान् आचार्य महाराज तख्त पर विराजमान हुए। उपस्थित साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका चतुर्विध संघ तथा अन्य सभाजनों ने उपस्थित हो भक्तिपूर्वक सत्कार किया, तथा वंदना कर जयजिनेंद्र की ध्वनि आलापते हुये यथायोग्य स्थान पर बैठगये। पश्चात् श्रीमान् आचार्य महाराज ने प्रभु-प्रार्थना आदि मंगलाचरण फरमा कर श्रीनन्दीजी सूत्र की सज्झाय फरमाई। पश्चात् श्री युवाचार्यजी महाराज को कितनी ही अत्युपयोगी सूचनाएं कर अपने शरीर

पर धारण की हुई निज पछेवड़ी (चादर) को प्रसन्नतापूर्वक उपस्थित सब मुनि महराजाओं ने हाथ लगाकर चतुर्विध संघ के समक्ष "जयजिनेंद्र" "आचार्य महाराज की जय" "युवाचार्य महाराज की जय" "जैन शासन की जय" इत्यादि अनेक हर्षनाद गर्जना में धारण कराई। निस्संदेह वह दृश्य अलौकिक था। उसे किसी भी रीति से कहने के लिये हमारे पास शब्द नहीं हैं, वह चादर धारण कर श्रीमान् युवाचार्यजी महाराज ने श्रीमान् आचार्य महाराज को तथा श्रीमान् स्थवरमुनि श्री मोतीलालजी महाराजको यथाविधि उठ बैठ कर वंदना की। पश्चात् सर्व मुनियों ने युवाचार्य महाराज को यथाविधि खड़े हो वंदना की। पश्चात् उपस्थित करीब ७५—८० महासतियों नें यथा विधि उठ बैठ वंदना की। बाद श्रावक श्राविकाओं ने वंदना की। उक्त वंदनादि क्रिया समाप्त हुये बाद श्रीमान् युवाचार्य महाराज नीचे के पाटपर से उठ श्रीमान् आचार्यजी महाराज के समीप आसनारूढ हुए, समान मुनि हरकचंदजी महाराज ने उठ कर सब मुनि महाराजों की ओर से उक्त कार्य के लिये अपना संतोष प्रकट किया और श्रीमान् आचार्य महाराज की तरह युवाचार्य महाराज की आज्ञा पालन करना स्वीकार किया। उसे श्रीमान् हीरालालजी महाराज ने अनुमोदन दिया, तत्पश्चात् भारतवर्षीय समस्त संघ की ओर से निम्नलिखित महाशयों ने अपना संतोष प्रदर्शित कर अनुमोदन दिया—

(१) श्रीयुत उदयपुर नगर के सेठ नंदलालजी की तरफ से
लालाजी साहिब केसरीलालजी (उदयपुर)
(२) ,, सेठ चंदनमली पीतलिया अहमदनगर
(३) ,, जौहरी सेठ मुन्नीलालजी सकलेचा जयपुर
(४) ,, वर्धभाणजी पीतलिया रतलाम
(५) ,, सेठ पन्नालालजी कांकरिया नयानगर
(६) ,, मास्टर पोपटलाल केवलचंद राजकोट
(७) ,, प्रतापमलजी बांठिया बीकानेर
(८) ,, फूलचंदजी कोठारी भोपाल
(९) ,, नन्दलालजी मेहता उदयपुर
(१०) ,, कुंवर गाढ़मलजी साहिब लोढ़ा अजमेर

पश्चात् भंडारी केसरीचंदजी साहिब (देवास) ने बाहर देशावरों के कितने ही अग्रेसरों के, जो अनिवार्य कारणों से न पधार सके थे, उनके तार तथा पत्र पढ़ सुनाये, उन्हें यहां सविस्तर न लिखते सिर्फ नाममात्र प्रकट किये जाते हैं—

(१) श्रीयुत जनरल सेक्रटरी सेठ बालमुकुन्दजी साहिब
मूथा, सतारा
(२) ,, वाडीलालजी मोतीलाल शाह मुंबई
(३) ,, कामदार सुजानमलजी साहिब बांठिया प्रतापगढ़

(४) राजश्री कोठारीजी साहिब श्री बलवंतसिंहजी साहिब प्रधान रियासत उदयपुर (मेवाड़)

(५) ,, जमशेदजी रुस्तमजी साहिब चीफ सेक्रेटरी रियासत जावरा (मालवा)

(६) श्रीयुत कुंदनमलजी फिरोदिया बी. ए. एलएल. बी. अहमदनगर

(७) ,, बच्छराजजी रूपचंदजी पांचोरा (खानदेश)

(८) ,, सेठ रतनलालजी दौलतरामजी वागली (खानदेश)

(६) ,, परमानन्दजी वकील बी. ए. कसूर (पंजाब)

इनके सिवाय अनेक दूसरे सद्गृहस्थों से भी अनुमोदन पत्र आये थे। इन सब पत्रों में मुख्य आशय इस कार्य में अत्यन्त हर्ष पूर्वक अनुमोदन तथा मुबारिकबादी देने उपरांत स्वयं उपस्थित न हो सके इसलिये लाचारी दिखाई थी।

पश्चात् युवाचार्यजी महाराजने उक्त पद का भार स्वीकृत करते हुए अपने तथा चतुर्विध संघ के कर्तव्यों का अत्यन्त असरकारक शब्दों में दिग्दर्शन कराया था। फिर पंडित दुःखमोचन झा मिथिला निवासी ने समयोचित गायन तथा विवेचन बहुत ही उत्तम रीति से किया था। उसमें श्री आचार्य महाराज के साथ श्री संघ का क्या कर्तव्य है, उसका प्रतिपादन उत्तम रीति से किया था।

श्रीयुत सेठ वर्द्धभाणजी ने विवेचन करते श्रीमान् आचार्य महाराज साहिब तथा श्रीमान् युवाचार्य महाराज साहिब ने इतने परिश्रमपूर्वक यहां पधार कर रतलाम पावन किया तथा ऐसे महत्कार्य का लाभ भी रतलाम को ही दिया इसके लिये श्री संघ की ओर से उपकार जाहिर किया तथा श्रीमान् रतलाम नरेश तथा ऑफीसर वर्ग, जिन्होंने इस कार्य में पूर्ण सहानुभूति दिखाई है उनका उपकार प्रदर्शित किया तथा श्रीमान् पंचेड़ ठाकुर साहिब तथा पधारे हुए श्राविक, श्राविका तथा अन्य महाशयों का संघ तरफ से उपकार प्रदर्शित किया। इस महान् कार्य में यहां के स्वधर्मी सज्जनों ने तन, मन, धन से लाभ उठाने के वास्ते आये हुए साहिबों का आदर सत्कार, उतरने तथा भोजन कमेटी बनाकर वालण्टियरों के समान जो अपूर्व सेवा बजाई है तथा रतलाम संघ को महान् यश प्राप्त कराया है उन्हें भी धन्यवाद दिया, पश्चात् जयजिनेन्द्र की दिव्य ध्वनि के साथ व्याख्यानसभा विसर्जित हुई। उस समय यहां के संघ तरफ से प्रभावना बांटी गई थी।

दोपहर के दो बजे श्रीयुत जालिमसिंहजी कोठारी इन्दौर राज्य के आबकारी कमिश्नर साहिब का व्याख्यान हुआ, जिसके असर से जैन महाविद्यालय खोलने बाबत कई उदार गृहस्थों की ओर से बड़ी २ रकमों के वचन मिले, परन्तु वे स्कीम मंजूर होने बाद प्रकट किये जायँगे। उस दिन नयेनगर निवासी सज्जनों ने आत्मभोग

दे रु० १५००) के पंचेन्द्रिय जीव छुड़ाये । समस्त शहर में कसाइयों की दूकानें, भट्टियें, घाणियें इत्यादि आरम्भ तथा हिंसा के कार्य बन्द रक्खे गए थे । उस दिन रात को भी एक जनरल मीटिंग की गई थी जिसमें विद्यालय, पाठशाला इत्यादि ज्ञानवृद्धि के सम्बन्ध में अनेक भाषण हुए थे । जीवदया के लिये एक फंड हुआ जिसमें रुपये २५००) इकट्ठे हुए ।

ता० २७-३-१६ के रोज व्याख्यानों में सभा का ठाठ पूर्ववत् ही था, जिसमें फिर नथमलजी चोरड़िया का विद्यालय के सम्बन्ध में व्याख्यान हुआ और उस समय भी कितने ही वचन मिले । पश्चात् मीरी जिला अहमदनगर निवासी के अग्रेसरों ने वहां की गोशाला में दुष्काल से दुःख पाती गायों के लिये फंड इकट्ठा कर उनकी रक्षा करने की प्रार्थना की जिसमें क़रीब २०००) की मदद मिली ।

श्रीमान् जैनाचार्य महाराजाधिराज १००८ श्री श्रीलालजी महाराज साहिब के व्याख्यान में 'जैनों की उन्नति कैसे होसकती है ?' इस विषय पर बहुत ही मनन करने योग्य विवेचन हुआ । आचार्य श्री ने फरमाया कि जबतक समाजमें स्वार्थत्यागी स्वयंसेवक उपस्थित हो, गरीब और निराधार जैनियों की संभाल नहीं ले और वे सिर्फ थोड़े दिन सम्मेलन में उपस्थित हो समाज के अग्रेसर बन

फिर घर चलें जायँ वहांतक उन्नति होना कठिन है। अधिक नहीं तो सिर्फ पचास ही स्वयंसेवक हमेशा जैनसमाज की सार संभाल करते रहें तो समाज की अवनति होना रुक जाय और थोड़े ही समय में समाजकी दशा निःसंदेह उदय होजाय, परन्तु वे स्वयंसेवक सद्गुणी सदाचारी न्यायी और पक्षपातादि दोषरहित होने चाहियें।

ऐसे महाशय अवश्य समाज पर असर उत्पन्न कर सकते हैं। फिर कई सज्जनों ने उपरोक्त बातें समझ उपरोक्त नियमानुसार चलना पसंद किया और मेम्बरों में नाम लिखाया।

यों यहां के आनंद का सविस्तृत वर्णन लिखा जाय तो एक वृहद् पुस्तक तैयार होजाय, परन्तु पेपर में सिर्फ सारांश ही प्रकट किया गया है कि जिससे कार्य कर्ताओं को कंटाला न आवे और वे उसमें से कुछ काट छांट न कर सकें। इति शुभम्

रतलाम श्री संघ

(कान्फ्रेन्स प्रकाश ता० २२ एप्रिल १६१६)

रतलाम में शेषकाल का समय पूरण हुआ था ही कि उस समय एक पत्र जावरा स्टेट के चीफ सेक्रेटरी साहिब का श्रीमान् सेठ वर्द्धभाणजी पर आया, उसमें उन्होंने लिखा था कि मेरी

ओर से महाराज साहिब को निवेदन करें कि आपका चातुर्मास जावरे में होगा तो बहुत ही उपकार होगा, रतलाम से विहार कर खाचरोद–उज्जैन की ओर पधारे, वहां जावरा के श्रावकों ने चातुर्मास के लिये आग्रह किया, इसलिये सं० १९७६ का चातुर्मास जावरा किया। किसे खबर थी कि यह पूज्य श्री का अन्तिम चातुर्मास है।

बहुत वर्ष से जावरा निवासी श्रावकों की अभिलाषा और प्रार्थना थी वह इस वर्ष सफल हुई। आषाढ शुक्ला ३ सोमवार को १२ ठाणे से आचार्य श्री जावरे पधारे। वहां आषाढ शुक्ला १० के रोज जयपुर निवासी भाई चौथमलजी ने करीब १७ वर्ष की उमर में दीक्षा ली। दीक्षोत्सव जावरा के संघ ने बहुत धूमधाम से अति उत्साहपूर्वक किया, करीब २००० मनुष्य बाहर गांव से पधारे थे। किसी धर्मद्वेषी ने सरकार में इस मतलब की अर्ज की कि चौथमलजी को बलात्कार दीक्षा दी जाती है इसपर से दीक्षा के एक दिन प्रथम जावरा स्टेट के चीफ सेक्रेटरी जमशेदजी शेठने चौथमलजी को अपने पास बुलाया, कई श्रावक भी उनके साथ थे, जमशेदजी शेठ ने कई विचित्र प्रश्नों से उनके वैराग्य की कसौटी की, प्रत्येक प्रश्नका उत्तर बहुत ही संतोषकारक मिला, जिसे सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुये, उनका समाधान हुआ, और दीक्षा की आज्ञा देदी।

जावरा के चातुर्मास में सागर वाले सेठ चांदमलजी नाहर सकुटुम्ब पूज्य श्री के दर्शनार्थ पधारे थे। उनकी पत्नी ने वहां अठाई की थी, इसके उपलक्ष्य में भादवासुदी ३ को उत्सव मनाया गया था, जिसमें ३० ग्राम के करीब २००० मनुष्य बाहर से आये थे।

पंचेड़ के श्रीमान् ठाकुर साहिब चैतसिंहजी व्याख्यान का खास लाभ लेने के वास्ते पांच वक्त यहां पधारे थे।

इस चातुर्मास में पूज्य श्री को अनेक उपसर्ग सहन करने पड़े, परन्तु आप स्वयं कभी नाहिम्मत या निराश न हुए, न कभी घबराये, परन्तु सत्यपथ पर कायम रहे। और घबरानेवाले श्रावकों को हिम्मत देते कि असत्य की झलक बहुत समय तक नहीं टिक सकती, सत्य ही की अंत में जय होती है। इसलिये सत्य को ग्रहण करो, सत्य को अनुमोदन दो, फिर स्वयं सत्य प्रकाशित हो जायगा।

इस समय कान्फ्रेन्स आफिस दिल्ली थी। समग्र श्री संघ की आफिस और प्रकाश पत्र का खास कर्तव्य तो पड़ी हुई छोटी दराड़ जल्द ही मिटाना था। जो उन दिनों का प्रकाश पक्षपात में न पैठता, समाधान करने बाबत अपना सुप्रयास प्रचलित रखता और जलते में घी न होमता तो यह बात इतने से ही बंद हो

जाती । छोटी २ दराड़ से बड़े खोखले न पड़ते और आगरा कमेटी में सब लेख पीछे खींच लेने न पड़ते । सुभाग्य से पीछे प्रकाश में यह विषय न लेने बावत ठहराव हुआ था ।

लाला लाजपतराय के कलकत्ते की खास कांग्रेस में कहे हुए निम्नांकित शब्दों का यहां स्मरण हो आता है । " जब लोगों की इच्छा का ज्वालामुखी फटता है तब उसका पाप आंदोलन करने वालों के सिर पड़ता है ।
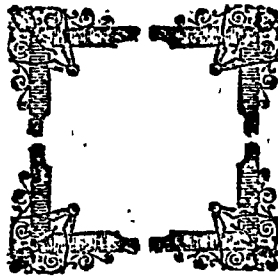
अध्याय ४८ वाँ।

सवालाख रुपयों का दान।

जावरा से मालवा मेवाड़ की ओर के विहार में छोटीसादड़ी में सेठ नाथूलालजी गोदावत ने सवालाख रु५यों का दान प्रकट किया था। जिस रकम के व्याज में अभी श्रीगोदावत जैन आश्रम छोटीसादड़ी में चलता है। एक तो रास्ते से दूर एक कोने में छोटासा ग्राम, दूसरे आत्मभोगी कार्यकर्ताओं की त्रुटि, इन दोनों कारणों से इस आश्रम का लाभ चाहे जैसा हम नहीं उठा सकते। जबतक स्वार्थत्यागी आत्मभोगी काम करनेवाले नहीं निकलगे वहां तक दान वगैरह का सदुपयोग नहीं होगा।

इस विहार में युवराज भी शामिल थे। सब मुनिराज नये शहर पधारे और वहां कल्पते दिन ठहरे। दोनों मुनिराज सूर्य और चन्द्र की तरह जैनधर्म की ज्योति का अपूर्व प्रकाश फैला रहे थे।

पंजाब में से पीछे आये हुए जावरे वाले संतों की प्रेरणा से आगरा, जयपुर और अजमेर के श्रावकों ने नयेशहर जाकर पूज्य श्री

से अजमेर पधारने की प्रार्थना की, जहां जावरे के संतों से मिल कर चारित्र के सम्बन्ध में मतभेद का समाधान होने की आशा दिखाई ।

इस अत्याग्रह को मान दे पाली हो डुंगराल प्रदेश और गर्मी का परिसह सहन कर भी पूज्य श्री अजमेर पधारे । वहां साधु समाचरी के अनुकूल योजनाएं निश्चित कीगई । उदयपुर महाराणा साहिब ने श्रीमान् कोठारीजी बलवंतसिंहजी जैसे अनुभवी और कार्यदक्ष पुरुष को सुलह के मिशन में जाने बाबत परवानगी दी थी । पूर्ण कोशिश हुई । पूज्य श्री ने समाधानी के वास्ते कोशिश करने में कमी न की, परन्तु समाधानी की आशा उड़ जाने से पूज्य श्री ने वहां से विहार कर दिया ।

उस समय लेखक अजमेर हाजिर था । और जैनपथप्रदर्शक वाले भाई पद्मसिंहजी तथा जैनजगत वाले भाई धारशीजी डाक्टर तथा भिन्न २ शहरों के श्रावकों के समक्ष जो २ प्रयास और बातें चीतें हुई वे अक्षरसः यहां लिखी जायं तो सत्यासत्य समझना सहल होजाय, परन्तु मैंने जिनके पवित्र जीवन लिखने के लिए यह कलम उठाई है उन महात्मा के मनोभाव की याद आते ही उनके जीवन-चरित्र में क्लेष वर्णन का एक बिंदु भी न लिखना ऐसी प्रेरणा हो जाती है ।

विहार के समय एक मुनि ने मध्य बाजार में पूज्य श्री को सबके सामने अविवेकपूर्ण वचन कहे थे, परन्तु मानों आपने सुने ही न हों दिलमें जरा भी क्रोध न लाते आगे बढ़ते ही गए। तबीजी मुकाम पर उस अविवेकी मुनि ने पूज्य श्री से माफी चाही तब पूज्य श्री ने बिलकुल निर्मल भाव से जवाब दिया कि तुम्हारे शब्द मैंने एक कान से सुन दूसरे कान की ओर से निकाल दिये हैं इसलिए मुझे माफी की जरूरत नहीं है, परन्तु जब साथ के मुनिराजों ने बहुत अनुनय विनय की, तब मुंह से ही नहीं, परन्तु इतना अपमान करने वाले साधु के सिरपर हाथ रख माफी के साथ स्वधर्म में सुदृढ़ रहने की आशिष दी, तब देखने वालों की आंखों में अश्रु भराये बिना न रहे।

अजमेर में इकट्ठे हुए श्रावकों ने अजमेर छोड़ते समय सुलह की आशा भी छोड़दी। ममत्व के पास निष्पक्षपात और शास्त्रानुसार न्याय करने वालों को भी निराश होना ही पड़ता है। यह अजमेर का दृश्य एक पत्र-सम्पादक के शब्दों में ही यहां प्रसिद्ध करते हैं। बहुत से बादल इकट्ठे हुए, गंभीर गर्जनायें भी हुईं, बिजली भी चमकी, वर्षात के सब चिन्ह हुये, परन्तु अंत में यह सब आडम्बर व्यर्थ गया, बादल बिखर गये, तृषातुर चातक निराश हो गये, कंजापियों ने अपनी कला खिकोडली, ममत्व की चढ़कर आई हुई आंधी के रजकणों से बहुतों की आंखें लाल होगईं। निराशा और

निरुत्साह की श्याम रेखा कइयों के वदन पर फिर गई, उत्साह से आये हुए निश्वास छोड़ पीछे फिरे, परन्तु आकाश में ऊंचे चढ़े हुए सूर्य देवता ने आश्वासन दिया कि धैर्य रक्खो, सत्यकी ही जय है और मैं वर्षांत को पलटा कर गर्मी से गभराये हुओं को शांति कराऊंगा।

डरपोक श्रावकों की सहनशीलता को भी धन्य है ! समाज-सेना के सेनापति हो करके समाजसेना का सत्यानाश करें, समाज स्टीमर के कप्तान हो करके जहाज को खरावी में ला छिन्न भिन्न करें, धर्म के नाम से ही अधर्म का जाल विछा निरपराधियों को फांसा जाय, ये तो भ्रष्टाचार की अनुमोदना ही है और उसमें सहाय करने वाले श्रावक समाज के शत्रु गिने जायँ।

एक सज्जन को क्लेश की शान्ति के बारे में लिखा हुआ उसका उत्तर पाठकों के मनन करने योग्य होने से उन्हीं के शब्दों में यहां लिखा जाता है, आपने लिखा कि "मुनि क्लेश की शान्ति करो, तो मुनि क्लेश दोनों को सहयोगी स्थान कैसे ? मुनिपन में क्लेश नहीं रह सकता और क्लेश में मुनिपन नहीं रह सकता"।

एक गुणानुरागी मुनिराज ने मुझे लिखे हुए पत्र के नीचे के २ पक्षपातियों को अर्पण करता हूं।

'शिथिलाचार की पछेवड़ी में ढँकाते हुए साधु शरीर को तो मैं सिंह की चमड़ी में सज्ज हुआ सियाल ही समझता हूँ, बिचारे दूसरे जानवरों की तो क्या ताकत परन्तु कुए म प्रतिबिम्ब दिखाकर सिंह को ही वह फंसा देता है। ऐसे सियालों को ढूंढ निकालने में श्री संघ जितनी बेपरवाही, आलस्य और टालमटूल करेगा उतना ही समाज का किला पोला होता चला जायगा। किले का एक आध गुम्मज ढीला होजाय और जल्द ही उसे दुरुस्त कर दिया जाय तब तो ठीक नहीं तो वह गुम्मज ही दुश्मनों को राह दे देता है। ऐसे रोगों को निर्मूल करने की संजीवनी मात्रा एक ही है वह यह कि ऐसे सियालों से समाज को होशियार रखना और इस रोग के चेप का प्रसार फैलाते हुए रोकना'।

प्राचीन संस्कृत विभूति और गौरव के अमूल्य तत्वों से प्रकाशित श्री संघ का यह अंग अपनी अस्वस्थता समझ गया है। स्वस्थ बनना चाहता है उठकर खड़े रहना मांगता है, परन्तु पक्षपात के घोंघाट प्रयत्नों की सफलता में बिलम्ब करते हैं। अब आलस्य त्याग खड़े हो जागृत होने का जमाना है। सागर पर से बह कर आती हुई लहरें झेलने को तैयार होने का समय है। चारों ओर पर्यटन कर, बिहार को राह दे, पक्षपात को निर्मूल कर, आलस्य, अश्रद्धा और कुसम्प का निवारण करने के वास्ते कटिबद्ध

होना चाहिये । यह उपयोगी और कठिन कार्य है कुछ बच्चों का खेल नहीं है ।

जो चिन्ता हो, इच्छा हो, कर्त्तव्य का भान हो तो शुद्धचारित्री निर्दयी स्वभाव, शान्त जीवन, संयम सार्थक और सतत परिश्रम-शीलता का सेवन करो ' सोये तानी छोड़ ' का कलंक धो डालो, समाजोन्नति करने का कलश तुम पर ढोलने दो ।

अपने में रहा हुआ मनुष्यत्व अपने को पुकार पुकार कर कहता है कि—

" पढ छोड़ पारखी निहाल देख नीकी कर ", व्याख्यान में पहिले यह वाक्य हररोज सुनते भी कान बहरे हो जायँ तो उनकी सार्थकता क्या ? अपने प्रातःस्मरणीय पूर्वजों का स्मरण करो, उनकी ओर तुम्हारा पूज्यभाव हो तो उनकी आज्ञा शिर पर चढ़ाओ । उनके सौंपे हुए समाज रक्षा के सुकार्य को हाथ में लो, वे शरीर या श्रावकों के गुलाम न बने थे ।

शुद्ध सात्विक जीवन व्यतीत करना, आत्मबल खिलाना, अध्यात्मिक उन्नति करना, यह आर्य के प्राचीन संस्कारों का सत्व है । भौतिक सिद्धान्त आध्यात्मिक प्रगति के बीच में कभी नहीं आ सकते । संयम सागर की जीवन नौका में सोते समय, तुम्हारी

जिन्दगी की दिशा बदलते समय, पवित्रता का वेष पहिनते समय, की हुई प्रतिज्ञाओं को याद करो, उस मंगलमुहूर्त में मिले हुए मंत्रों का स्मरण करो जिसके लिये प्राण लगा दिये हैं उसे प्राण की तरह ही समझो, अन्तरात्मा के नाद को बेपरवाह कभी मत करो।

महात्माओं और अनुभवियों के उपरोक्त शब्द याद कराने की हिम्मत इसलिये हुई है कि समाज अभी गरम होकर प्रवाही बन गया है, उनके सामने ढाल प्रतिबिम्ब हाजिर हो तो घाट भी बन सकता है। निडर लेखक श्रीयुत् वाड़ीलाल मो० शाह सत्य लिखते हैं कि " समस्त दुनियां एक साथ एक सी समझदार कभी न हुई और न कभी होगी, जो थोड़े स्वभाव से शक्तिवान है, परन्तु उनकी शक्तियां विकृत शिक्षा से घट गई हैं उन 'थोड़ों को' अपनी जागृति करने की आवश्यकता है इन थोड़ों के बाद लोकगण को अपनी इच्छा शक्ति से पीछे कर लेंगे.........नीचे खड़े रह ऊंचा देखने की अपेक्षा, ऊँचे खड़े हो नीचे देखना सीखना चाहिये बारकी से प्रथक्करण करते इस आंदोलन में अनावश्यक, अमानुषता का मिश्रण अधिक प्रमाण में हुआ है, निर्मल कीर्ति की परवाह करनेवालों की न्यूनता से और हिम्मत से कार्य करनेवालों के कर्तव्य की बेपरवाही ने इस आंदोलन में जोर से पवन फूंक दिया है। इस समय साधु और श्रावकों को भूल का भान कराने वाले और एक ही शब्द मात्र से दूसरों की बोली बंद कर देने वाले सेठ

अमरचन्दजी पीतलिया का स्मरण हुए बिना नहीं रह सकता। प्रभाव और बनिये की रीति से समझाने और ठिकाने लाने वाले राय सेठ चांदमलजी साहिब और समाधान करने में पूर्ण उस्ताद अनुभवी राजश्री गोकुलदास राजपाल, जो इस समय कोठारीजी के साथ अजमेर होते तो आज भी संयम संरक्षा का विजयध्वज फहराता। शांत मुद्रा और शास्त्रों की आज्ञा से दूसरों को मात करने वाले सेठजी बालमुकुंदजी मूंथा और भद्रिक स्वभावी राजा बहादुर सुखदेवसहायजी जौहरी हाजिर होते तो प्राचीन प्रतिष्ठा निभाने के लिये मथने वालों को लताप्रहार सहन करना न पड़ता। श्रीयुत वाड़ीलाल बीच में न पड़े होते तो स्वमान संभालने की शान ठिकाने लगा देते।

अभी भी समाज में अग्रेसर पद के योग्य अनेक श्रावक विराजमान हैं वे निष्पक्षपात हृदय से आगे आकर वर्तमान नायक श्रीमान् कोठारीजी की तरह खड़े रहे तो चारित्र संयम की संरक्षा सरलता से हो सके। बहुरत्ना वसुंधरा।

अध्याय ४६ वां।

उदयपुर महाराणा के भतीजे ने लग्न के समय पशुबध बंद किया।
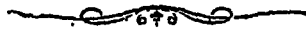
श्रीमान् आचार्यजी महाराज अजमेर से विहार कर नयेनगर पधारे और श्रीमान् युवाचार्य जी महाराज ने बीकानेर की तरफ़ विहार किया। नये शहर पूज्य श्री कितने ही दिन विराजे। चातुर्मास भी नयेनगर होने की संभावना थी इसके लिये कालक्षेप करने वास्ते आसपास मारवाड़ में पूज्य श्री विचरने लगे। अनुक्रम से विचरते पूज्य श्री वावेर पधारे। वावेर के श्रावकों ने पूज्य श्री के सदुपदेश से १००–१५० बकरों को अभयदान दिया। पूज्य श्री जब वावरे विराजते थे तब उस समय महाराणा उदयपुर के भतीजे शिवरती महाराज हिम्मतसिंहजी के कुंवर साहेब की बरात वावरे के समीप राश ग्राम है वहां के ठाकुर साहेब के वहां आई थी। पूज्यश्री वावरे विराजते हैं ऐसी खबर मिलते ही हिम्मतसिंहजी इत्यादि सरदार वावरे पधारे और पूर्व परिचय के कारण अर्ज की मह चार पांच दिन वहां ठहरेंगे इसलिये आप राश पधार ने कि

की कृपा करें तो हमें अत्यंत लाभ हो। श्रीमान् ने फरमाया कि अभी राश आने का अवसर नहीं है सबब कि वहां आप की मिहमानी में पशु पक्षियों के वध होने की संभावना है, तब उन्होंने अर्ज की कि महाराज! हम हिंसा बिलकुल न होने देंगे।

आप राश पधारने की कृपा करें। तत्पश्चात् ठाकुर श्रीने राश जाकर आज्ञा की कि 'हमारे लिए बिलकुल जीवहिंसा न करें'। इससे १५० से १७५ बकरों को सहज ही अभयदान मिल गया। पूज्य श्री राश पधारे। वहां व्याख्यान में शीवरती महाराज श्रीमान् हिम्मतसिंहजी साहिब तथा अन्य सरदार, स्वमती और अन्यमती लोग बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे। राशके कामदार ने १०१ बकरों को अभयदान दिया, श्रावकों ने भी बहुत से बकरों को अभयदान दिया। श्रीयुत झाव वाले के नीचे के विचार मांसाहारी लोगों को मनन करने योग्य है, सादी जिंदगी और स्वच्छ खुराक यह अपना मुद्रालेख होना चाहिए। जैसा खाते हैं वैसा ही अपना स्वभाव बनता है अपनी खुराक में तामस की चीजें बहुत पड़ी हुई है अपनी खुराक के लिए अपन मनुष्य तक का जीव ले लेते हैं अपन मांस वगैरा खाने के लिये खून पर चढ़ जाते हैं, जहांतक ऐसे निर्दोषों के खून न रुकें वहां तक अपन में से चोरी, लूटपाट, दगा, झगड़ा, और बदमाशी का अंत सरलता से नहीं हो सकता।

दया का धर्म जब अशोक राजा ने स्थापित किया तब हिन्दूस्थान की बनावट हो सकी। दयाधर्म जब राजकुमार पाल ने स्थापित किया तब गुजरात की आबादी हुई। दयाधर्म जब राणी विक्टोरिया के जमाने में प्रारंभ हुआ तब लोग संतोषी बनने लगे, परन्तु अपना धर्म आज स्वार्थी, क्रूर और अधम बनता जाता है। पहिले अपने को इसका त्याग करना चाहिये, दया से शांति होती है किसी का कुछ गुन्हा हो तो उस पर दया करनी चाहिए, इनकी रक्षा करेंगे जभी भ्रातृभावना का राज्य अपने में जल्द हो सकेगा।

गूंगे, दीन, निर्दोष और मूक प्राणियों पर जुल्म करना या उन पर तेज छुरी चलाना निर्दयता है जिसका त्रास अपने को भी सहना पड़ता है इसलिए अपने को सब जगह दया का प्रचार करना चाहिए।

राश से पूज्य श्री कोकिन पधारे, वहां वे एक सप्ताह तक ठहरे थे। वहां श्रीजी के दर्शनार्थ निकटवर्ती ग्रामों के सैंकड़ों श्रावक आते थे। करीब ४०० बकरों को जसनगर में अभयदान मिला। वहां से विहार कर आषाढ़ वदी १ के रोज पूज्य श्री लांबीया पधारे, वहां के ठाकुर साहिब पूज्य श्री के व्याख्यान में आये। उनके हृदय पर पूज्य श्री के व्याख्यान का अत्यंत ही असर हुआ। ठाकुर साहिब ने कितने ही नियम तथा प्रत्याख्यान किये और चार बकरों को अभयदान दिया। दूसरे भी बहुत से लोगों ने नानाप्रकार की प्रतिज्ञाएं लीं।

आषाढ़ वदी २ के रोज पूज्य श्री कालू पधारे। वहां पूंछाला-लजी कोठारी ने सजोड़ चौथेव्रत का स्कंध लिया। उपवास, दया, पौपध तथा अन्य स्कंधादि बहुत हुए। कालू के कृषिकारों ने हरे वृक्ष तथा हरे चने इत्यादि जलाने के सौगंध लिये।

कालू में महाराज दौलतऋषिजी (जिन्होंने भी काठियावाड़ में विचर कर अत्यंत उपकार किया है वे) ठाणा ८ सहित पधारे। परस्पर बहुत आनंदपूर्वक ज्ञानचर्चा और वार्तालाप हुआ। व्याख्यान एक ठिकाने होता था। प्रातःकाल में व्याख्यान दिगम्बरी स्कूल में होता था। पहिले एक आध घंटे तक दौलतऋषिजी महाराज को व्याख्यान फरमाने के लिए पूज्य श्री कहते थे और बाद में पूज्य श्री व्याख्यान फरमाते थे। दोपहर को बड़े बाजार में श्री लक्ष्मी-नारायणजी के मंदिर की तिबारी में दोनों महात्मा व्याख्यान फर-माते थे। परिषद् का जमाव दर्शनीय था। और दोनों संतों के श्रवणीय और अद्वितीय उपदेश के प्रभाव से महान् उपकार हुए। व्याख्यान में स्वमती और अन्यमती करीब ५०० मनुष्य आते थे। कालू से विहारकर आषाढ़ वदी १३ के रोज पूज्य श्री बालूंदे पधारे। वहां के धनाढ्य गंगारामजी मूथा ने, जिनकी दुकानें बंगलौर तथा

मद्रास में हैं, पूज्य श्री की पूर्ण भक्तिभाव से सेवा की। बलूंदे में पूज्य श्री पधारे, उसी दिन संध्या समय पूज्य श्री बाहर जंगल से आरहे थे तब एक खटीक की लड़की दो बकरों को ले जारही थी। सेठ गंगारामजी को यह खबर मिलते ही उन्होंने दोनों बकरों को अभयदान दिला दिया।
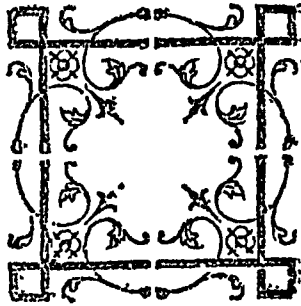
अध्याय ५० वां ।

अवसान ।

आषाढ़ वदी १४ के रोज वलूंदे से विहार कर पूज्य श्री जैतारण पधारे । वहां आहार पानी किये, बाद स्वाध्यायादि नित्य-नियम से निवृत्त हो पूज्य श्री ने दोप्रहर का व्याख्यान फरमाया। दूसरे दिन आषाढ़ वदी ३० के रोज नित्यनियम से निवृत हो पूज्य श्री ने प्रतिलेहन किया और पूजन प्रमार्जन कर अपने हाथ से ही कांजा निकाला तथा पाटिया लगा व्याख्यान फ़रमाने लगे । श्री भगवतीजी सूत्र में से गांगिये अणगार के भांगे फरमारहे थे । आधा घंटा वांचने के बाद महाराज श्री को अचानक चक्कर आने लगे और आखों में तकलीफ होगई । महाराज श्री ने अपने हाथ में से सूत्र के पन्ने सहित पाटी नीचे रख अपने दोनों हाथों से आखें थोड़े समय तक ढक रक्खीं । फिर ऐनक लगाकर सूत्र पढ़ने का प्रयत्न किया, परन्तु नहीं देख सके। तत्काल दूसरी वक्त चक्कर आया तथा शिर में असह्य दर्द होने लगा, तब महाराज श्री ने फरमाया कि अब मेरी आंखें पढ़ने का कार्य नहीं कर सकतीं। इसलिये मुंह से ही व्याख्यान देता हूं । पूज्य श्री ने उसी समय मुंह से सूत्र की गाथा

फरमाकर उसका रहस्य समझाना प्रारंभ किया । इतने में फिर चक्कर आये और दर्द का जोर बढ़गया । तब दूसरे साधु गब्बूलालजी को व्याख्यान देने की आज्ञा देकर आप अंदर पधारे और मुनि श्री मनोहरलालजी इत्यादि के समक्ष कहा कि " मैंने अनेक ज्ञानी वृद्ध पुरुषों के मुंह से ऐसा सुना है कि बैठे २ आंख की दृष्टि एकाएक बंद हो जाय तो मृत्यु समीप आगई है ऐसा समझना चाहिये । इसलिये मुझे अब संथारा करादो और मुनि श्री हरकचंदजी आजायँ तो मैं आलोयना करलूं " ऐसा कह पूज्य श्री ने चतुरसिंहजी नामक एक साधु को आज्ञादी की तुम अभी नयेनगर की ओर विहार करो । श्रावकों को यह खबर मिलते ही उन्होंने एक शख्स को रेल में नयेनगर की तरफ रवाना कर दिया। वह साधुजी के पहिले शीघ्र पहुंचगया और मुनि श्री हरकचंदजी महाराज की सेवा में सब हकीकत निवेदन की । श्रीमान् हरकचंदजी महाराज यह सुन आषाढ़ सुदी १ के रोज बारह कोस का विहार कर नीमाज पधारे और वहां चिंताग्रस्त स्थिति में रात्रि निर्गमन की । दिन उदय होते ही नीमाज से विहार कर आठ बजने के समय जेतारण पहुंचगए । उनसे महाराज श्री ने कहा कि " मेरी आखें तुम्हारी मुंहपत्ति नहीं देख सकतीं । अब मुझे शीघ्र संथारा कराओ। जीव और काया भिन्न होने में अब विशेष विलम्ब नहीं है । " मूलचंदजी महाराज ने कहा कि महाराज ! संथारा

कराने जैसी बीमारी आपके शरीर में नहीं मालूम होती है तब हम संथारा कैसे करावें ! शिष्यों के हृदय में बड़ा भारी धक्का लगा, वे ढीले होगए । पूज्य श्री उन्हें हिम्मत दे जागृत करते कि 'जो नियम तीर्थंकर तक को लागू हुआ वह नियम सब के लिए एकसा है । इस समय तुम से बन सके उतना धर्म ध्यान सुनाओ, यही तुम्हारा कर्तव्य है ।'

पूज्य श्री के मस्तिष्क में तीव्रवेदना हो रही थी । दर्द का जोर बिजली की तरह बढ़रहा था । परन्तु उपस्थित साधु दर्द का उग्र स्वरूप पूज्य श्री की अद्वितीय सहनशीलता से न समझ सके और पूज्य श्री के बार २ कहने पर भी उन्होंने संथारा नहीं कराया, परन्तु ज्यों २ व्याधि बढ़ती गई, वैसे २ पूज्य श्री के भाव समाधि में स्थित होते गए, ऐसी उज्ज्वल वेदना में भी उनकी शांति और धैर्य अनुपम था, कायरता प्रतीत हो ऐसा एक शब्द भी इस सिंह समान शूरवीर, धीरपुरुष के मुंह से कभी न निकला ।

पूज्य श्री की बिमारी के समाचार जेतारण के श्रावकों ने देशावरों में तारद्वारा अनेक शहरों के मुख्य २ श्रावकों को पहुंचा दिये थे । उस पर से कई श्रावक वहां आपहुंचे थे । आषाढ शुक्ला १ के रोज ब्यावर के कई भाई आये और उसी दिन शामको उज्जैन

से भाई चुन्नीलालजी * कल्याणजी भी आये । मैं मोरवी था, वहां तार आया, परंतु बिना पंख के इतनी दूर कैसे पहुंच सकता था । चुन्नीलालजी ने महाराज श्री से वंदना कर सुखसाता पूछी, तब वे बोले कि "भाई ! मेरा अंतिम समय–संथारे का समय आ गया है पुद्गल दुःख दे रहे हैं ।" इस समय दूसरे भी कई श्रावक और साधु पूज्य श्री के पास बैठे थे । उस समय श्रीजी महाराज ने 'घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं' इस उत्तराध्ययन जी सूत्र का वाक्य कहकर सबको इसका मतलब समझाया ।

भिन्न २ श्रावक भिन्न २ औषधियां सुचाते थे, परंतु पूज्य श्री ने फरमाया कि 'बाह्योपचार करने की अपेक्षा अब आंतरोपचार करने दो और आरंभ समारंभ मिश्रित औषधियां न सुचाओ' ।

उस समय युवराजजी हाजिर होते तो पूज्य श्री को विशेष समाधानी रहती, परन्तु हिम्मत बहादुर, महाभटवीर अचानक आई हुई मृत्यु से तनिक भी न डरे । शिष्य–समुदाय को शैय्या के पास

---

* इन दोनों बाप बेटों ने अभी संयम अंगीकार कर आत्म-साधन जीवन सार्थक करना प्रारंभ किया है, उसकी माताजी और बहिन ने भी संयम लिया है, धन्य है ऐसे वैराग्य और त्याग को ।

बुलाकर सब के मस्तिष्क पर हाथ फिरा मानों अंतिम विदा लेते हो यों कहने लगे:— मुनिराजो ! संयम को दिपाना, संप के साथ रहना, पंडित श्री जवाहिरलालजी की आज्ञा में विचरना, वे दृढ़-धर्मी, चुस्तसंयमी और मुझ से भी तुम्हारी अधिक सालसंभाल रख सके हैं। मैं और वे एक ही स्वरूप के हैं ऐसा समझना, उनकी सेवा करना, श्री हुक्म महाराज की सम्प्रदाय को जाज्वल्य-मान रखना, शासन की शोभा बढ़ाना, 'क्षमाता हूं' क्ष-मा-क-र-ना पूज्य श्री बोलते रुक गए। पास बैठे हुए मुनिमंडल के चक्षु अश्रु-पूर्ण हो गए, एक मुनिराज ने उत्तर दिया " पूज्य साहेब ! आप की आज्ञा हमें शिरोधार्य है, आप निश्चिंत रहे। हम बालकों को आप क्या क्षमाते हैं ! सच्चा क्षमाना तो हमें चाहिये कि आपके उपकार के प्रमाण में हम आपकी किंचित् सेवा का भी लाभ न ले सके" इससे अधिक बोलना न हो सका।

समयसूचक पूज्य श्री ने इस शोक के समय जल्द ही श्रीसूत्र की गाथा बोलना प्रारंभ की। शोक को शांति के रूप में बदल दिया और शिष्य भी मंदस्वर से उसमें शामिल होगये।

दूसरे दिन आषाढ़ शुक्ला २ को सवेरे अजमेर से श्रीमान् गाढ़मलजी लोढा तथा ब्यावर के कई गृहस्थ आ पहुंचे। उस दिन पूज्यश्री के शरीर में व्याधि बहुत बढ़गई थी और नित्यनियम

भी न हो सका था। पूज्यश्री बार २ फरमाते थे कि 'मुझ से नित्य-नियम न हो उस दिन समझना कि मेरा अंतकाल समीप है इस पर से इनके शिष्यों को बहुत चिंता हुई और द्वितीया के दिन उन्हें सागारी संथारा करा दिया तथा रात को महाराज श्री को जावजीवका संथारा करादिया गया, उसी रात के पिछले प्रहर म करीब ५ बजे इस मिट्टी के कच्चे घड़े की नांई औदारिक देह को त्यागं पूज्यश्री का अमर आत्मा स्वर्ग सिधाया। जैन शासन रूप आकाश में से एक जाज्वल्यमान सूर्य अस्त होगया। चतुर्विध संघ का महान् आधार स्तंभ टूटगया, उस समय साधुजी के १२ थाने श्रीजीकी सेवा में उपस्थित थे।

पूज्यश्री के शरीर में रहा हुआ प्राण उनका ही नहीं परन्तु सकल संघ का था। राजा महाराजाओं की भी न होसके ऐसी उनकी चिकित्सा की गई। कई स्थान पर तपश्चर्या प्रारंभ हुई, दान दिया गया, प्रतिज्ञायें लीं गईं और पूज्य श्री की आराम होने की प्रार्थनाएँ कीं गईं, परन्तु उस आत्मा को परमात्मा के आमंत्रण की वेपरवाही न करना होने से असंख्य श्रावकों को शोकसागर में मूर्च्छा में डाल समाज का सितारा अदृश्य होगया। संथारा इतना थोड़ा न होता तो इस मृत्युमहोत्सव को दिपाने के लिये लोग उभराते और लाखों रुपये खर्च कर देते।

विश्व की घटा बड़ी अलौकिक है । प्रारब्ध का वैचित्र्य अगम्य है मृत्यु की बूँटी नहीं, जैनसमाज को देदिप्यमान करनेवाली यह पवित्र आत्मा अनेक कष्ट झेल, दुःखित दिल वालों का ज्वलन्त संदेश श्री शासन देव के दरबार में अर्ज करने स्वर्गलोक में पधार गई ।

काठियावाड़ में कोहनूर के समान प्रकाश करने वाले राजपूताने का यह रत्न, मालवा—मेवाड़ का यह मणि जो आत्मा अभी तक इन महात्मा के शरीर में थी वह समस्त श्रीसंघ में व्याप्त होगई ।

कौनसा वज्रहृदय इस वियोग का—अवसान समय का वर्णन कर सकता है ? कौन कवि इस विरह को वर्णन करने की हिम्मत धारण कर सकता है ? एक भक्त के शब्द में ही कहें तो——उनका शरीर गया, मूर्ति अदृश्य होगई, उनका दर्शन दूर होगया, स्थूल दुनियां में स्थूल व्यवहार मस्त दुनियां में उनका स्थूल स्वरूप नाश होगया, परन्तु यशःशरीर अभी तक मौजूद है ।

कौन ऐसा हृदयशून्य होगा कि इस समय लोगों को रोने नहीं देगा । मस्तिष्क की गर्मी कम नहीं करने देगा, परन्तु बस बस हुआ ।

" रोई रोई आंसूड़ानी नदिओं वहे तोये ।
गयुं ते गयुं, शुं आवी आंसु लुछवानुं शाणा ॥"

जब वे विराजते थे तब तो वे उनका लाभ न ले सके, और पीछे से रोना यह बिलकुल पाखंड ही है।

खुले नेत्रों से तो उनके स्मितपूर्ण मुखचंद्र के दर्शन नहीं कर सकेंगे, विशालभालरचित मुखकमल में से झरते हुए मधुर प्रोत्साहक अमृत के पान से पवित्र न हो सकेंगे, परन्तु हां, उनका मिशन यही उनकी आत्मा थी। अपन उन श्री के सद्विचारों को ग्रहण करेंगे तो वे हरएक के हृदय-सिंहासन पर आरूढ़ हुए दृष्टिगत होंगे।

पूज्यश्री के देह का नाश हुआ, परन्तु उन श्री के प्राणरूप उन श्री के आत्मारूप चारित्रधर्म का ध्येय तो विशेष विस्तृत ही होगा। यह ध्येय खूब फैले, पूज्यश्री की अमर आत्मा समाज के कोने २ में प्रवेश करे और पूज्यश्री सा जीवनबल सब संतों में स्फुरित हो।

तीसरे दिन बीकानेर, उदयपुर इत्यादि कई ग्रामों के श्रावक एकत्रित होगए और आचार्य श्री का निर्वाणोत्सव बहुत ही धूमधाम से किया गया।

चंदनादि लकड़ियों से चिता तैयार कीगई। चिता में आग रखने का बहुतों की हिम्मत न हुई। अंत में पूज्य श्री का मानुषीदेह भस्मीभूत होगया। श्रावकों ने मुनिराजों के पास आ आश्वासन दिया और

मंगलिक सुनकर अपने २ स्थान पर गए। भस्मी, हड्डी व दाढ़ें बहुत से श्रावक लेगये।

भारत की शोचनीय दशा यह है कि अपने नेताओं की वय कम होती है और तन्दुरुस्ती जल्द बिगड़ने लगती है। मृत्यु के समय स्वामी विवेकानंद की आयु ३९ वर्ष, श्रीयुत केशवचंद्र सेन की आयु ४५ वर्ष, जष्टिस तैलंग की ४८ वर्ष और श्रीयुत गोपाल कृष्ण गोखले की ४९ वर्ष की थी। पूज्यश्री का आयुष्य अवसान के समय ५१ वर्ष का ही था। इस उम्र में भी नई २ बातें सीखने का उत्साह बढ़ता ही जाता था। उस समय ग्लेडस्टन और एडीसन याद आये बिना नहीं रहते थे।

अंतिम कसौटी तक तपकर शुद्ध कुंदन होने में पूज्यश्री को असह्य परिसह सहन करने पड़े, पूज्य श्री के प्रकाशित कीर्तिदीप को बुझाने के लिए नीच प्रयास हुए, परन्तु सूर्य के सामने धूल डालने वाले की क्या दशा होती है? पूज्यश्री के शुद्ध संयम के तेज से इर्षाग्नि पिघल जाती, ईर्षा के वेग में चारित्रधर्म का खून कर बैठने वालों को वे दया की दृष्टि से देखते और डर बताते थे कि कहीं जैन-शासन के मुख्य स्तंभरूप साधु धर्म के क्रियाकांड की यह हत्या न कर बैठे।

श्रीयुत डाह्याभाई के शब्दों में यह प्रसंग पूर्ण करते हैं, जिन्होंने हमारे लिये इतना कष्ट उठाया और हम उन्हें जीतेजी विशेष आराम न दे सके। उनके दुःख में उनके जीतेजी हमने कुछ भाग न लिया, जिनकी तृप्त आत्मा को कुछ भी शान्ति न दे सके। उनके गुणगान करने की शक्ति भी हम बाहिर न दिखा सके·········किसी कृतघ्नी ने तो उनकी व्यर्थ ही टीका की। इन महात्मा, इन संत, इन नरम हृदय के दयालु पुरुष का अपना श्रेय करने वाले सुकृत्यों का त्याग कर दिल दुखाया यह सब याद आते हृदय फट जाता है······परन्तु अहोभाग्य है कि आप महारथी की जगह एक दूसरे संत महात्मा ने स्वीकृत की है। और सम्प्रदाय के सेनापति का जोखिम भरा हुआ पद स्वीकार किया है, उन्हें यश मिले।

लगभग बत्तीस वर्ष तक चारित्र प्रवर्ज्या पाल और उसी बीच बीस वर्ष तक आचार्यपद को सुशोभित कर अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध दे पूज्यश्री ने जीवन सार्थक किया; आपका जन्म, आपका शरीर, आपकी प्रवर्ज्या, आपका आचार्यपद यह सब अस्तित्व जनसमूह के कल्याण के लिये ही था, आपने अपनी नेश्राय में एक भी शिष्य न करने की प्रतिज्ञा करली थी, परन्तु बहुसंख्यक मनुष्यों को दीक्षा दे उनका उद्धार किया और कई मुनिवरों पर अवर्णनीय उपकार किया। आपका चारित्र अत्यंत ही

अलौकिक और आपके गुण अपार अकथनीय हैं। विद्वान् लेखक और शीघ्रकवि वर्षों तक वर्णन करते रहें तो भी आपके चारित्र का यथातथ्य निरूपण होना या आपके गुणसमूह का पार पाना अशक्य है। आपके ज्ञान, दर्शन, चारित्र की शुद्धि, आपके अतीत काल में उत्पन्न हुए शुभकर्मों के उदय का अपूर्व प्रभाव, वर्तमान की शुभ प्रवृत्ति, आगामी समय के लिये दीर्घदर्शीपन इत्यादि इतने प्रबल थे कि जिनकी उपमा देना ही अशक्य है। इस पंचम काल के जीवों में से आपकी समानता कोई कर सकता है। ऐसा व्यक्ति दृष्टि-गत नहीं होता। तथापि आश्वासन पाने योग्य बात यह है कि आपके समान ही अनुपम आत्मिक गुण, अद्वितीय आकर्षण शक्ति, दिव्य तेज, अपार साहसिकता, आत्मबल, आपकी गादी पर विराज-मान वर्तमान आचार्य श्री १००८ श्री पं० रत्न श्री जवाहिरलालजी महाराज साहिब में अधिक अंश से विद्यमान है। हमारी यह हार्दिक अभिलाषा है कि आपके ज्ञान, दर्शन, चारित्र के पर्यायों में समय २ पर अधिक २ अभिवृद्धि होती रहे और वे निरामयी तथा दीर्घ आयुष्य भोग जैनधर्म की उदार और पवित्र भावनाओं का प्रचार करने में अपने कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त करें।

अध्याय ५४ वां ।

विहंगावलोकन ।

सद्गत आचार्य महोदय की असाधारण गुण सम्पत्ति उपर्युक्त लेखों से पाठकों को अप्रकट नहीं रही होगी, तोभी इस स्थान पर उपसंहार रूप उनके मुख्य सद्गुण विभव का समुच्चय किया जाता है । ऐसे युग प्रधान पुरुषों के सद्गुण वर्णन करना यद्यपि सागर का पानी गागर में भरने के समान उपहास जनक और अशक्य है तोभी उन के चरित्र की कितनी ही घटनाओं पर दृष्टि निक्षेप कर उन में से कुछ सार बोध ग्रहण करने कराने के हेतु से यथामति, यथाशक्ति, यत्किंचित्, प्रवृत्ति कर लिखता हूं ।

ज्ञानबल ।

ब्रह्मचर्य का प्रभाव, तीव्र जिज्ञासापूर्वक परम पुरुषार्थ, सुयोग्य सद्गुरु का सुयोग और विनयादि आवश्यक गुण इत्यादि ज्ञान प्राप्ति के परमावश्यक साधनों की पूर्व पुण्य प्रसाद से पूज्य श्री में सम्पूर्ण विद्यमानता थी । जिससे उन्हें अल्प समय में अद्भुत तत्त्वावबोध होगया था, सूत्र श्री आचारांग, सूत्र कृतांग, सुखवि-

भाई, भाई एकत्रित हुए थे और पूज्य आचार्यश्री के स्वर्गवास से जैन कौम और धर्म में ऐसी बड़ी भारी कमी हुई है कि, जिसकी पूर्ति नहीं होसकती, इस विषय पर कई सज्जनों के व्याख्यान हुए और अत्यन्त शोक प्रदर्शित किया गया ।

अन्त में मुंबई के जैनसंघ की ओर से बीकानेर में विराजमान युवराज महाराज श्री जवाहिरलालजी महाराज तथा वहां के श्रीसंघ एवं रतलाम के जैनसंघ को शोकप्रदर्शक तार देना निश्चित हुआ ।

पूज्य आचार्यश्री के निर्वाण—महोत्सव के समय जीवों को अभयदान देने के लिए एक फंड किया गया, जिसमें उपस्थित सज्जनों ने पांच हजार रुपया दिया और बांद्रा इत्यादि स्थानों के कसाई-खाने बंद रक्खे गए, फंड अभी शुरू है ।

आज रोज मुम्बई में जौहरी बाजार, सोना, चांदी बाजार, शेर बाजार, मूलजी जेठा मारकीट, मंगलदास कपड़े का मारकीट, कोलाबे का रुई बाजार, दाणा बाजार, किरयाना बाजार इत्यादि व्योपारी बाजार बंद रहे थे ।

रतलाम ।

ता० २५-६-२० को बड़े स्थानक में समस्त संघ की एक सभा एकत्रित हुई । जिसमें मुंबई संघ का शोकप्रदर्शक तार पढ़ा गया ।

तीन चार व्याख्याताओं ने सद्गत् पूज्यश्री का जीवनचरित्र कह सुनाया। पूज्य महाराज श्री के अकस्मात् वियोग से समस्त संघ को अत्यंत खेद हुआ और निम्न ठहराव पास किये गए थे।

प्रस्ताव पहला।

श्रीमान् परमगुणालंकृत, क्षमावान्, धैर्यवान्, तेजस्वी, जगद्वल्लभ, महाप्रतापी, आचार्यपदधारक परम पूज्य महाराजाधिराज श्री श्री १००८ श्रीलालजी महाराज का आषाढ़ शुक्ला ३ शनिवार को मु० जेतारण में अकस्मात् स्वर्गवास होगया, यह अत्यन्त खेदजनक और हृदयभेदक खबर सुनकर इस रतलाम संघ को पूर्ण रंज व दुःख प्राप्त हुवा है। इन महात्मा के वियोग से सारे हिन्दुस्थान में अपनी समाज के लोगों के अतिरिक्त हज़ारों अन्य मतावलम्बियों को भी अत्यंत रंज हुवा है। सारी जैन-समाज ने एक अमूल्य रत्न खोया है और ऐसा फिर प्राप्त होना दुर्लभ है। इसलिये यह संघ सभा पूरी रंजी के साथ खेद जाहिर करती है। इसी मजमून का तार मुम्बई संघ का भी यहां पर आया हुआ सभा में सुनाया गया। यह सभा मुंबई संघ का उपकार मानती है। और श्रीमान् वर्तमान पूज्य महाराज श्री श्री १००८ श्री जवाहिरलालजी महाराज साहिब को और संघ को मुंबई और रतलाम संघ की तरफ से आश्वासन देने के लिये बीकानेर तार दिया जाने का ठहराव करती है व वर्तमान पूज्य महाराज श्री

श्री १००८ श्री जवाहिरलालजी की तेज क्रांति दिन २ बढ़े ऐसा हृदय से इच्छती है ।

प्रस्ताव दूसरा ।

श्रीमान् पूज्य महाराज के स्वर्गवास की खबर सुनते ही तमाम संघ ने उसी वक्त अपनी २ दुकान बंद करके शोक माना था, तो भी संघ की तरफ से फिर ठहराने में आता है, कि स्वर्गस्थ पूज्य महाराज के शोक-निमित्त फिर भी आषाढ़ सुदी १३ मंगलवार को सब व्यापार बंद रक्खा जावे और हलवाई, भड़भूजा आदि की भी दुकानें बंद कराई जावे व गरीबों को अन्न वस्त्र का दान दिया जावे। यह कार्य ४ आदमियों के सुपुर्द किया जावे। इस खर्च में जो कोई अपनी खुशी से जो रकम देवे सो स्वीकार की जावे।

उपरोक्त ठहरावानुसार मिती आषाढ़ सुदी १३ को रतलाम में कई दुकानें बंद रहीं। अन्न वस्त्रादि दान दिये गए और पूज्य महाराज की स्मृति में सब लोगों ने वह दिन पर्व के समान समझा।

राजकोट।

ता० २६-६-२० को यहां के तालुका स्कूल के मिडिल हाल में राजकोट स्टेट के मे. मुख्य दीवान रावबहादुर हरजीवन भवान भाई कोटक बी. ए. एलएल. बी. के सभापतित्व में राजकोट के

वासियों की एक जाहिर सभा हुई थी। उस समय सभापति महोदय तथा अन्य वक्ताओं ने पूज्यश्री के राजकोट के चातुर्मास में किये हुए अवर्णनीय उपकारों का अत्यन्त ही असरकारक भाषा में विवेचन किया था और पूज्यश्री के स्वर्गवास से शोक प्रकट करते नीचे मुजिब ठहराव सर्वानुमत से पास किये गए थे:—

ठहराव १ ला.

राजकोट के निवासियों की यह सभा श्री स्था० जैनाचार्य पूज्य महाराज श्री १००८ श्री श्रीलालजी महाराज के अपक्व वय में स्वर्गवास हो जाने से अंतःकरणपूर्वक अत्यन्त खेद प्रकट करती है।

सं. १९६७ का चातुर्मास निष्फल जाने से संवत् १९६८ के चातुर्मास में खासकर जानवरों के लिये बड़ा भारी दुष्काल पड़ा, उस समय चातुर्मास में पूज्यश्री के यहां के निवास में पूज्यश्री ने यहां के तथा बाहर ग्राम के लोगों को दया और सेवा धर्म का सच्चा अर्थ समझा कर लोगों में दया का बड़ा भारी जोश पैदा किया था और पूज्यश्री के सद्बोध से राजकोट ने उस दुष्काल में वहां से तथा बाहर देशावरों से बड़ा भारी फंड एकत्रित कर मनुष्यजाति एवं जानवरों के प्रति बड़ा भारी उमदा काम कर दिखाया था, ऐसे एक सच्चे महान् विद्वान् पवित्र

और चरित्रवान् महामुनि के स्वर्गवास से सिर्फ जैन-जाति को ही नहीं परन्तु अन्य सबों को भी एक बड़ी भारी कमी हुई है, ऐसी यह सभा जाहिर करती है ।

ऊपर का यह ठहराव पत्र द्वारा तथा इसका थोड़ासा सार तार द्वारा बीकानेर तथा रतलाम संघ को सभापति महोदय के हस्ताक्षर से भेजने का प्रस्ताव करती है ।

तारकी नकल.

Citizens of Rajkot assembled in public meeting express their deep sorrow for the premature demise of Achārya Mahārāj Shri Shrilālji and beg to say that in him not only the Jain Commuuity but a people in general have lost a most learned pious and ideal saint. Please convey this message to Achārya Mahārāj Shri Jawāharlālji with our humble requests.

ठहराव दूसरा.

आचार्य महाराज श्री श्रीलालजी महाराज जैसे नमूनेदार गुणवान् मुनि ने अपने पर किये हुए उपकारों के कारण उनकी ओर जितना भी मान और भक्ति प्रगट कीजाय उतनी ही थोड़ी है, ऐसा इस सभाका विश्वास है । इसलिए यह सभा ऐसी उम्मेद करती है कि कल का

दिन जो जैन तथा कितने ही अन्य शास्त्रों के अनुसार चातुर्मास की परवी का है तथा व्रत—नियम धारण करने का एक पवित्र दिन है, उस दिन महाराजश्री के तरफ भक्तिभाव रखने वाले लोग अपना २ कार्य—धंधा बंद रख हो सके तो उपवासादि कर धर्मध्यान में बिताएंगे और इसतरह स्वर्गस्थ महाराज श्री की तरफ अपना भक्ति-भाव प्रदर्शित करेंगे। यह ठहराव भी महरबान सभापति साहिब की सही से पत्रद्वारा बीकानेर तथा रतलाम संघ की तरफ भेजना स्थिर हुआ।

जोधपुर।

ता० ३-७-२०

पूज्य महाराज श्री के स्वर्गवास से संघ में बड़ा भारी शोक रहा। पंडित श्री पन्नालालजी महाराज ने उस दिन व्याख्यान बंद रक्खे और भारी उदासी प्रकट की।

कलकत्ता।

तार द्वारा समाचार मिलते ही समस्त श्रावक भाइयों ने मार-वाड़ी चेम्बर्स की सम्मति के अनुसार बाजार का सब कामकाज बंद रक्खा। हटखोला पाट का बाजार भी बंद रहा। संवर पौषध, तथा दान पुण्य बहुत हुआ।

भीलवाड़ा ।

आषाढ़ शुक्ला ४ को प्रातःकाल खबर मिलते ही स्वमती अन्यमती इत्यादि में सम्पूर्ण शोक होगया। धर्मध्यान पुण्य दान इत्यादि यथाशक्ति हुआ। जावरे वाले संत श्री देवीलालजी महाराज यहां विराजते थे उन्हें एकाएक यह खबर मिलने से बड़ा भारी रंज हुआ। व्याख्यान भी बंद रक्खा, गौचरी करने भी न गए। फिर भी वे सद्गति आचार्यश्री के गुणानुवाद अपने व्याख्यान में समय २ पर गाते रहते थे।

सादड़ी ।

अवसान की खबर मिलते ही जीवदया के लिये रु० ४००) का फंड हुआ, उनसे जीव छुड़ाये गए। द्वितीय श्रावण वदी ११ के रोज एक दवाखाना खोलागया।

रामपुरा ।

श्री ज्ञानचंद्रजी महाराज के सम्प्रदाय के मुनि श्री इन्द्रमलजी ठाना २ यहां विराजते हैं। पूज्यश्री के स्वर्गवास की खबर सुनते ही उन्हें अत्यन्त खेद हुआ। उस दिन आहार पानी भी न किया, संघ में भी बड़ाभारी शोक रहा।

बड़ी सादड़ी।

सकल संघ में बड़ा भारी शोक छागया। व्याख्यान बंद रहा, धर्म ध्यान, दान, पुण्य, व्रत, प्रत्याख्यान बहुत हुआ। आसपास के ग्रामों में भी यही बात हुई।

रावलपिंडी।

जैन सुमति मित्रमंडल के आधीन जितनी संस्थाएं हैं, वे सब बंद रक्खी गईं।

रायचुर।

यहां पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज की स्मृति में एक 'श्रीलाल जैन पुस्तकालय' खोला गया।

धोराजी।

व्याख्यान की परिषद् में शतावधानी पं० रत्नचंद्रजी महाराज ने पूज्यश्री के स्वर्गवास के शोक प्रदर्शित करते हुए अपने परिचय के वर्णन के साथ पूज्यश्री के उत्तम गुणों की तारीफ करते ऐसा करुणारसपूरित वर्णन किया कि श्रोताओं का हृदय शोकनिमग्न हो गया और कितने ही की आखों में से अश्रुप्रवाह बहने लग गया। बहुत व्रत, प्रत्याख्यान हुए। परस्पर बातचीत कर रु० १२५) के कपासिये ले अपंग ढोरों को खिलाये गए।

भूसावल ।

पत्र द्वारा समाचार मिलते ही आषाढ़ शुक्ला ११ को तमाम व्यापार आदि बंद रक्खा गया और श्रावकों ने दया, पौषध कर समस्त दिन धर्मध्यान में विताया ।

अमृतसर ।

युवराज श्री काशीरामजी महाराज ने एक दिन व्याख्यान बंद रख बड़ा भारी शोक प्रदर्शित किया । समस्त संघ में बड़ा भारी शोक रहा ।

हींघनघाट ।

साधुमार्गी तथा मंदिरमार्गी भाइयों ने मिलकर आषाढ़ शुक्ला ११ के रोज बाजार बंद रक्खा ।

कपासन ।

तपस्वीजी हजारीमलजी ठाणा ३ वहां विराजते हैं, स्वर्गवास की खबर मिलते ही साधु, श्रावकों में भारी शोक छागया । दूसरे दिन व्याख्यान बंद रहा । महाराज ने उपवास किया । पांजरापोल खोलने का प्रबंध हुआ ।

जावद ।

समस्त श्रावकों ने दुकानें बंद रक्खीं और उपाश्रय में एकत्रित हुए, कसाइयों की दुकानें बंद रक्खी गईं ग़रीबों को वस्त्र तथा भोजन, पशुओं को खल तथा घास, कबूतरों को जुवार तथा कुत्तों को पूड़ियें डाली गईं, जिसमें रु० २००) खर्च हुए। कई तैलियों ने अपनी ओर से ही कई पशुओं को खल खिलाई।

उपरोक्त स्थानों के अतिरिक्त उदयपुर, बीकानेर, दिल्ली, आकोला, शिवपुरी, सिन्दुरणी, जावरा, मोरवी, जयपुर इत्यादि अनेक शहरों और ग्रामों में सभाएं इत्यादि दान-पुण्य, संवर, पौषध हुए, परन्तु स्थल-संकोच से तथा कितने ही स्थानों का सविस्तृत हाल न मिलने से यहां दाखिल न किया गया।
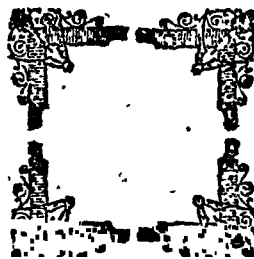
अध्याय ५२ वाँ ।

सम्पादकों, लेखकों इत्यादि के शोकोद्गार.

हमारी निराशा. ।

साखी ॥

अंतरनी आशाओं सघली अतरमांज समाणी.
रह्या मनोरथो मनना मनमां कहेवी कोने कहाणी
न्होती जाणी ·······के आम थशे हाणी. ॥१॥

पूज्य महाराज श्री श्रीलालजी महाराज के शोकदायक अवसान के समाचार थोड़े ही समय के पहिले मैंने सुने तब मेरे हृदय को बड़ा भारी धक्का लगा, स्वर्गस्थ महात्मा श्री के उम्दा गुणों का गुणानुवाद पहिले मैंने कई जनों के मुंह से सुना था और तब से उनसे मिलने की मेरी प्रबल उत्कण्ठा रही, परन्तु दुर्दैव ने यह अभिलाषा निर्मूल करदी। जब पूज्यश्री का यहां पधारना हुआ तब मेरा विहार कच्छ के प्रदेशों में था और मैं जब लींबड़ी आया तब मैंने पूज्यश्री से फिर से इस तरफ पधारने के लिए वीनती कराई, परन्तु वे नहीं पधार सके, और मैं अपने गुरु की सेवा में लगा रहने

से उन दिनों लींबड़ी न छोड़ सका, इसलिये मेरी यह अभिलषा अपूर्ण ही रही।

मेरा उनके साथ प्रत्यक्ष परिचय नहीं होने से मेरे मन पर जिन गुणों की छाप पड़ी है वह मात्र परोक्ष है।

लींबड़ी में पूज्य महाराज का आगमन संवत् १९६७ के वैशाख शुक्ला ६ गुरुवार को २१ ठाणों से हुआ। तब वे वहां के हाईस्कूल में ठहरे थे। उनके व्याख्यान में वहां के ठाकुर साहिब प्रतिदिन उपस्थित होते थे। ऑफिस के लोग सब व्याख्यान का लाभ ले सके, इसलिये कोर्ट का मोर्निङ्ग टाइम बदल दिया था; जिससे ऑफिस के या ग्राम के अन्य इच्छुक समुदाय का जमाव खूब होता था। पूज्यश्री के व्याख्यान की शैली अत्यंत आकर्षक शास्त्रानुसार और देश, काल की वर्तमान भावनाओं की पोषक थी। उनकी प्रकृति अत्यंत सरल और निर्मल थी। प्रत्येक जाति के मनुष्य श्रवण—सत्संग का लाभ लेते थे और उन्हें उनके अतिशय के कारण सब अपने ही धर्मगुरु के समान मानते थे। व्याख्यान में अनेक प्राचीन कवियों के काव्य, सुमधुर कंठ से शिष्यवर्ग के साथ इस तरह घोषित करते थे कि जिससे श्रोताओं पर अजब असर पड़ता था। मारवाड़ की वीरभूमि के इतिहास के दृष्टांत और उन पर सिद्धांतों की ऐसी मजेदार घटना घटित करते थे कि श्रोतालोग रस

में बिलकुल निमग्न बन जाते थे। व्याख्यान से उठने की इच्छा तो होती ही नहीं थी, कारण मधुरी शैली से बुलंद आवाज द्वारा श्रोताजनों को सम्हालते रहते थे। उस समय यहां पंडितराज बहु-सूत्री स्वर्गस्थ महाराज श्री उत्तमचंदजी स्वामी अपने समुदाय सहित बिराजते थे और वे भी व्याख्यान में हमेशा पधारते थे। उनके मुंह से तथा अन्य श्रावकों के मुंह से यह सब तारीफ मैंने सुनी है तथा उनकी वाणी की महिमा तो मैंने कइयों के मुंह से सुनी है।

बहुत से मनुष्यों ने उनको व्याख्यान सुने हैं उनसे मैंने सुना है कि उनका प्रभाव अब भी श्रोताओं पर वैसा ही कायम है, ऐसी प्रभावोत्पादक शैली और श्रोताओं के मन पर छाप पाड़ने की शक्ति इस बात को सूचित करती है कि पूज्यश्री जो कथन श्रोताओं के समक्ष प्रकाशित करते थे उसे वे अपने हृदय में सत्य के सदृश स्वीकार करते थे और उस सत्य पर उनकी अचल श्रद्धा और दृढ़ प्रीति के कारण ही वे श्रोताओं पर ऐसा उत्तम प्रभाव गिरा सकते थे।

शास्त्रों में फरमाई हुई आज्ञाओं का वे असाधारण धैर्य और दृढ़ श्रद्धापूर्वक पालन करते थे। पूज्यश्री जिन भावनाओं को अपना धर्म और कर्तव्य समझ स्वीकार करते थे उन्हें वे अपनी आत्मा में ऐकात्मभाव में परिणमा सकते थे, इसके सिवाय वर्तमान साधु-सम्प्रदाय में दुर्लभ और अनेक उच्च तथा साधु के शृंगार स्वरूपगुणों के धारक थे।

ऐसे एक परम दुर्लभ गुणधारी साधु के देहांतरगमन से हम सब को सचमुच बड़ा भारी खेद है। सद्गति के अनुयायी समाज का यह कर्तव्य है कि वे पूज्य महाराज श्री के गुणों को अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करे और उन गुणों द्वारा उनकी स्मृतिकी संरक्षा करें।

ली० संवशिष्य,

भिक्षु नानचन्द्र.

जैन-हितेच्छु।

क्लेश से गोला का जल भी सूख जाता है यह कहावत तद्दन मिथ्या नहीं है, जैन समाज का एक कोहिनूर अदृश्य होगया है, इनके और इनके प्रतिपक्षी के दृष्टिबिंदु में कहां फरक था तथा कौन कितने दरजे पर्यंत दोषी था, यह चर्चा मैं बिलकुल पसंद नहीं करता..........आज जब पूज्य महाराज हयात नहीं हैं तब इतना ही अवश्य कहूंगा कि दूसरे श्रीलालजी पचास वर्ष में भी न होंगे इनमें और दूसरे साधुओं की पार्टी जमाने में मुख्यतः अग्रेसर ही दोषी थे।

अब तो पूज्यश्री विदा होगए हैं और सम्प या द्वेष देख नहीं सकते हैं। अब चारित्र, गौरव और महत्ता थोड़े ही काल में अदृश्य होजायगी और इसका पाप सुलह के फरिश्तों के शिर ही पड़ेगा। श्रीलालजी महाराज के स्मारक बतौर एक बड़ा फंड कायम

कर 'जैन गुरुकुल' या ऐसी एक कोई संस्था खोलना जिसका सं-म्मलन बीकानेर में इस अंक के निकलने के पहिले ही होगया होगा, मैं चाहता हूं कि इन पवित्र पुरुष का नाम किसी भी संस्थ या फंड के साथ न जोड़ा जाय। समाज की वर्तमान स्थिति देखते कोई संस्था कैसे चलेगी यह अन्दाज लगाना कठिन नहीं और जहां हजार तकरारें होती ही रहेंगी, ऐसी संस्था के साथ इन शांत पवित्र पुरुष का नाम जोड़ने में भक्ति की अपेक्षा अविनय होना ही अधिक संभव है। चारित्र के नमूनेदार दो महात्मा काठियावाड़ में जन्मे हुए श्री गुलाबचन्द्रजी और राजपूताने में जन्मे हुए श्रीलालजी दोनों अदृश्य होगए हैं यों तो दूसरे भी बहुत से मुनि शुद्ध चारित्री हैं, व्याकरण न्याय के ज्ञाता भी हैं, परन्तु गुलाब और श्रीलाल ये दो पुष्प अनोखे ही थे' एक में सत्य के लिये क्रोध (Noble indignation) और दूसरे में आत्मगौरव में से स्वाभाविक उत्पन्न हुआ गूंगा मान दृष्टिगत होता था। परंतु ये तो उनका मूल्य बढ़ानेवाले तत्व थे। अप्रशस्त क्रोध और अप्रशस्त मान से ये बिलकुल भिन्न वस्तुएं थीं। क्षत्रिय में और संघ के नायक में प्रशस्त क्रोध और प्रशस्त मान आवश्यक हैं और यह तो उनकी उज्वलता का सबूत है।

इस अवसर पर एक आध्यात्मिक सत्य Mysticism का कारण स्फुरित हो जाता है। चारित्र और बुद्धि के संघर्षण का यह

समय है, व्याकरण, न्याय, तर्क के अभ्यास का शौक़ राजपूताने की ओर के श्रावकों एवं साधुओं की प्रकृति में न था। वहां सिर्फ निर्दोष चारित्र का शौक़ था। बुद्धि की लीलाएं चारों ओर पुजाने लगीं और इनमें से कितने ही साधु भी धीरे २ बुद्धि-वैभव की ओर झुकने लगे। पहले तो सब को यह अच्छा लगा। फिर चारित्र और बुद्धि में परस्पर युद्ध प्रारम्भ हुआ। यह युद्ध लम्बे समय तक टिकना चाहिये। दोनों एक दूसरे की थपल खा २ कर अन्त में चारित्र बुद्धि में और बुद्धि चारित्र में समा जायगी। अर्थात् बुद्धि और चारित्र से परे ऐसे "आध्यात्मिक भान" में दाखिल हो जायंगे। हृदय और बुद्धि दोनों एक व्यक्ति के मालिक के समान तो भयंकर हैं परंतु व्यक्ति के साधन—दास के समान उपयोगी हैं। दयालु और विद्वान दुःखी हैं। परन्तु योगी कि जो हृदय और बुद्धि के राज्य में होकर उस सीमा को पार कर गया है वह एक सुखी महाराजा है कि जिसके दोनों तरफ हृदय और बुद्धि हाथ जोड़ हुक्म की आज्ञा मांगती रहती हैं। इस स्थिति तक पहुंचने के लिये हृदय की बलवान् तरंगें और बुद्धि की उद्धताई सहन करनी ही पड़ेगी।

वा॰ मो॰ शाह.

जैनपथ-प्रदर्शक, आगरा।

भीषण वज्रपात

जिस पै सब को दिमाग था हा ! न रहा।
समाज का एक चिराग था हा ! न रहा ॥

आज चारों ओर से इस जैन-धर्म पर आपत्ति की घनघोर घटायें घिरी देखकर किस जैन-धर्म के प्रेमी को दुःख न होता होगा। जिस जैन-धर्म के मुख्योद्देश "अहिंसा परमो धर्मः" के कारण एक दिन सारे नभोमंडल में उसकी तूती बोलती थी, सर्वत्र उसी का प्रचार था, आज वही धर्म—हा शोक है कि उसी के अनुयायी उसका अनुकरण न करके उसको अधोगति में पहुंचाने की कोशिश कर रहे हैं।

धर्म को हीनदशा से बचाने अर्थात् बिना बोझ की खुश्की में डूबने वाली नौका को ऊपर उठाने के लिये, उसे पार करने के लिए ही साधु महात्माओं ने अहर्निश प्रयत्न किया, किंतु खेद है कि "अहिंसा परमोधर्मः" का प्रचारक जैन धर्म आज अपने साधुओं से भी वंचित होता जाता है। हा ! जब इस जैन-धर्म के स्थम्भ,

आचार्य्य प्रवर, विद्वान्मण्डली के रत्न, क्षमा के भूषण, दया के सागर, शांति के उपासक, धर्मप्रेमी, निर्भीक, स्पष्टवादी, रात्रिन्दिवा जैन-धर्म का प्रचार करने वाले परमपद प्राप्त पूज्य श्रीलालजी महाराज के आषाढ शुक्ला ३ शनिवार संवत् १९७७ जयतारण शहर राजपूताना में स्वर्गारोहण का समाचार सुनते हैं तब कलेजे के टुकड़े २ हो जाते हैं ।

आषाढ सुदी ३ शनिवार जैन-धर्म के इतिहास में काले अक्षरों में लिखा जायगा । जिस बात की कुछ भी सम्भावना न थी, वही आँखों के आगे घटित होगई । जिस घोर आपत्ति की आशंका मात्र से मन अधीर हो उठता है वह अंत में इस दुखिया जैन-समाज की आखों के सामने आ ही गई । अनेक आशाओं पर पानी फेर कर तमाम स्थानकवासी ही नहीं लेकिन अनेकों जीवों को अथाह शोकसागर में निमग्नकर उस दिन निष्ठुर काल ने स्थानकवासी जैन-वाटिका में वज्रपात करके जिस प्रस्फुटित और दिगन्त तक सौरभ विकीर्ण करने वाले सुमन को उसकी गौरव-शालिनी लता की गोद में से उठा लिया । देखते २ बिना किसीके दिल में पहिले से इस बात का खयाल भी आये हुए और बिना किसी महान् कष्ट के ५१ वर्ष तक औदारिक शरीर की झोंपड़ी में रहकर अपने सुकृत मय जीवन में महाशुभकर्म वर्गणाओं का

बंधकर तेजस और कार्मण शरीर को लिये हुए किसी वैक्रिय शुभ शरीर में दीर्घ काल के लिये स्थायी हो गए।

एक तो योंही जैन-धर्म पर आपत्ति की घनघोर घटाएं छा रही हैं। लगभग एक माह ही हुआ होगा कि, अभी पंजाब प्रांत के लाहौर नगर में श्रीमान् अनेक गुणों के धारक जैन-मुनि श्री शादीरामजी और दूसरे जैन-नवयुवक पंडित मुनि श्री कालूरामजी महाराज का जो सियालकोट में स्वर्गवास हुआ उसको तो हम भूल भी न पाये थे कि, इतने ही में हम जैन-धर्म के प्रचारक कार्यकर्त्ता और उसके माननीय स्तम्भ का दुःखदायी एकाएक समाचार सुनते हैं तब हमें

"फ़लक तूने इतना हँसाया न था।
कि जिसके बदले यों रुलाने लगा।"

वाली लोकोक्ति याद आती है। हा! जब हम मुनिवर श्री श्रीलालजी महाराज के मिष्टभाषण की ओर ध्यान देते हैं और विचार करते हैं कि, जिनका मिष्टभाषण जैन-धर्म के केवल स्थानकवासी ही सुनकर प्रसन्न नहीं होते थे, परन्तु जिस मिष्टभाषण को सुनकर सब ही मधुरभाषण करने की प्रतिज्ञा करते थे, हा! आज वे ही पूज्यवर श्रीलालजी जिनका नाम सोने में सुगन्ध की कहावत चरितार्थ करता था नहीं है! यदि शेष है तो वह ही है

कि, जो उन्होंनें जैन-धर्म की रक्षा, सेवा और अभिवृद्धि के लिये अपने प्यारे जीवन को तुच्छ वस्तु की तरह उत्सर्ग करने में समर्थ किया। स्वदेश, जाति और समाज की उन्नति एवं योगक्षेम के लिये जो भारी से भारी विपत्ति झेलने और जीवन में सम्पूर्ण सुखों को अनायास ही बलिदान करने को तैयार हुए। मृत्युशय्या पर बेवसी में पड़े हुए भी अपने प्राणप्रिय धर्म की हित कामना के उच्च विचार जिनके मस्तिष्क में घूमते रहे जो दीन दुखियों के अकारण बंधु थे, जिनके पतन पर एक ओर शोक की कालनिशा, दुःख की तरंगें तथा हृदय-विदारक हाहाकार ध्वनि और दूसरी तरफ समस्त नरनारी, बूढ़े बड़े और सर्व साधारण के मुंह से यशः-सौरभ का पटहनाद चारों ओर गूंज रहा है उनका देह और प्राण समयरूपी गड्ढर में चिरकाल के लिए छुप-जाने पर भी वे चिरजीवी हैं उनकी मृत्यु किसी प्रकार भी हो नहीं सकती। यमराज का शासन दण्ड उनकी विमल-कीर्ति की अभेद्य चट्टान से टकराकर कुंठित हो जाता है—टुकड़े २ होकर गिर जाता है। मनुष्य चक्षु से अगोचर रहने पर भी उनकी पूजनीय आत्मा विचरण बराबर करती रहती है। मरने के बाद भी उनका पवित्र और आदर्श जीवन उसपर मनन करने वालों के जीवन को पवित्र और उच्च करनें का महान् उपकार करता रहता है।

आज शोकाकुल और निराधार समूह के मुंह से ऐसे वाक्य

जैसे—अब क्या करें, कुछ सूझता नहीं, ऐसे ही वाक्य निकल रहे हैं लेकिन यह कबतक के हैं ? पाठकगण ! ये तभीतक के हैं जब तक हम और आप अपने विषयरूपी कषायों को छोड़ हुए हैं क्योंकि, यह अनादि काल से नियम चला आया है कि, प्रायः ज्यों २ दिन बीतते जाते हैं त्यों २ जीव अपने विषयरूपी कषायों में फंसकर शोक से शांति पाते जाते हैं। इसी प्रकार थोड़े समय के बाद आप भी उन पूज्य श्री की याद तक भी भूल जाओगे। थोड़ी देर के लिए यह हम मान भी लें कि, जिन्होंने पूज्य श्री को देखा है जिनको परिचय है वे कदाचित् न भी भूलें तो भी उनकी भावी संतान को तो नाम भी सुनना एक तरह से कठिन हो जायगा ऐसी अवस्था में हमारा और आपका कर्तव्य है कि, हम स्वर्गीय श्री श्री १००८ पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज का

सच्चा स्मारक

बनाने को हर प्रांत, देश, शहर और गांव में "श्रीलालजी फण्ड" की स्थापना करके स्मारक के लिये चंदा करें।

जैन-धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो कृतघ्नता के दोष से बचा हुआ है इसलिये आईये, भ्रातृगण ! हम अपने माननीय, पूजनीय जैन-धर्म के अनन्य भक्त, निःस्वार्थ-प्रेमी पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के स्मारक रूप में कोई संस्था बनाकर अपने कर्तव्य का पालन करें। यों तो जैन-समाज में आजकल छोटी मोटी कितनी

ही संस्थायें हैं लेकिन हमारी राय में इस पवित्र आत्मा की एक ऐसी आदर्श संस्था होनी चाहिये जैसे वे आदर्श पूज्य, मुनि, आचार्य, प्रभावशाली और जैन-धर्म के स्तम्भ थे।

आपका जन्म संवत् १६२६ में ग्राम टोंक (राजपूताना) में हुआ था। आपके पिता श्री का नाम चुन्नीलालजी ओसवाल था। वे बड़े ही धर्मात्मा थे। आपने संवत् १६४४ माघसुदी ५ को दीक्षा ली थी। पश्चात् संवत् १६४७ में आपको पूज्यपदवी की प्राप्ती हुई। तब से आप अर्हनिश धर्म-चर्चा में ही अपना समय बिताने लगे व सदा अपने जीवनको धार्मिक-जीवन बनाने में ही लगे रहते थे। ऐसे महात्मा के असमय में उठजाने से जैन-धर्म को बड़ी हानि पहुंची है तथा शीघ्र ही इसकी पूर्ति होना भी असंभव है। इस समय में उनके शोक-प्रकाश में सभी जगह सभायें होरही हैं। इसी वैशाख महीने में हम ने आपकी अजमेर में खूब सेवा की तब आपकी बातों से मालूम हुआ कि, जैन-पथ-प्रदर्शक पर आपकी विशेष कृपा थी आप इस पत्र को जैन-जाति को उठाने वाला समझते थे इनके शोक में प्रदर्शक का कार्यालय बराबर तीन दिन तक बंद रहा कार्यालय ने इस शोक संवाद को हरएक के कानों तक पहुंचाया हमने अपने भाईयों से आशा की थी कि, ज्योंही वे इस शोक समाचार को सुनेंगे अपने २ वहां शोक सभाएं करेंगे तथा एक बड़ी भारी सभा संगठित करके 'वे श्रीलाल जैन फण्ड' की स्थापना करेंगे।

मुम्बई समाचार में से।

(लेखक—श्रीयुत चुन्नीलाल नागजी बोरा, राजकोट) साम्प्रत समय में अशांति, अज्ञान और जीवन कलह का तीक्ष्ण साम्राज्य जगत में सब तरफ फैला हुआ है। ऐसे समय में पूज्य महाराजश्री "रण-मां एक बेट समान" थे और संसार के त्रिविध तापों से तप्त जीवों को सिर्फ यह एक ही दिलकी शांति और विश्वास मिलने का पवित्र स्थान था वह भी जैन कौम के हीन भाग्य से नष्ट होगया और जैन-धर्म तथा कौम को बड़ा भारी धक्का लगा तथा उनकी यह कमी बहुत समय तक पूर्ण होना कठिन है।

हिन्द के भिन्न २ भाग-पंजाब, राजपूताना, मारवाड़, मेवाड़, मालवा, कच्छ काठियावाड़, गुजरात, दक्षिण, आदि देशों के निवासी हजारों और लाखों जैनी पूज्य महाराज श्री पर अत्यंत पूज्यभाव रखते थे और तरणतारण रूप जहाज के समान वीतरागी साधु के नमूने के तुल्य समझते थे। चौथे आरे की प्रसादी के समान श्री महावीर स्वामी विचरते थे। उस सुखदाई समय के प्रसाद स्वरूप में पूज्य आचार्य श्री की गिनती होने से उनके शांतिमय मुखमंडल के दर्शनार्थ एवं महाप्रभावशाली दिव्यवाणी और जगत् में सर्वत्र-सुख और शांति फैलाने वाले पवित्र सद्बोधामृत के पान करने के लिये प्रतिवर्ष चातुर्मास में हिन्द के तमाम भागों में से हजारों

जैन भाई एकत्रित हो इस दुःखद काल में दिव्य सुख की झांकी का लाभ प्राप्त कर अपने को कृतार्थ समझते थे। और दुःख तथा दिल के भार को कम कर सकते थे। यों पूज्य श्री के चातुर्मास वाला स्थल शांति और आनन्द ही आनन्द की जयध्वनि से गूंज उठता था।

पूज्य श्री की वाणी का इतना अधिक प्रबल और हृदयंगम प्रभाव था कि, स्वधर्मी, अन्यधर्मी हजारों लोग सब जगह उनके व्याख्यान का लाभ लेने को एकत्रित होते थे और उनका व्याख्यान जबतक होता रहता था तब तक इस दुःखमय संसार का भान ही भूल जाते और कोई दिव्यभूमि में बैठे हों ऐसी सबके मनपर परम सुख और शांति की प्रतिच्छाया छाई रहती थी और एकचित्त से उनका अलौकिक उपदेश श्रवण करने में समय का भान भी भूल जाते थे।

पूज्य श्री के दो मुख्य गुण, कि जिन गुणों द्वारा जैन-साधु या किसी भी पंथ या धर्म का त्यागी साधु अग्रेसर गिनाजाता है ये थे, चैतन्य की स्वतंत्रता का सम्पूर्ण ज्ञान, और इस स्वतंत्रता के प्राप्त होने एवं विकसित होने के तदात्मक उपाय ये दोनों अलभ्य महान् गुण आचार्य श्री के समागम वाले श्री वीर मार्ग के ज्ञाता जो २ व्यक्ति हैं सबको मालूम हैं। जैन-साधु आत्मा में स्वगुण पैदा होने के लिए संयम ग्रहण करते हैं और वे इस

महान् विकट कार्य को परिपूर्ण करने के लिए सतत परिश्रम करते हैं। कारण कि, आर्यमान्यता के अनुसार भी प्रत्येक जीवात्मा षड् रिपुओं द्वारा अनादि काल से बंधा है और उनके साथ उसका घनिष्ट सम्बंध है तात्पर्य यह कि, स्वसत्ता को भूला हुआ जीवात्मा पुनः वही सत्ता प्राप्त करने के लिए मार्ग बदलता है और नये मार्ग पर चलने से पूर्वकाल के दूसरे अभ्यास के कारण अनेक व्याघात प्रतिघात उत्पन्न होते हैं। उन्हें हटाने के लिए सतत उद्योग की आवश्यकता प्रधानता से रहती है यह उद्योग और यह विचार पूज्य आचार्य श्री में मुख्यतया और अनोखी रीति से भरा हुआ दृष्टिगत होता था। आधुनिक जैन और कई एक जैन-साधु लौकिक और लोकोत्तर धर्म की भिन्नता बिना समझे साधु और श्रावकों के आचार, व्यवहार और शिक्षा आदि कर्मों में आधुनिक समयानुसार हेरफेर करने की हिमायत करते हैं। उन्हें पूज्य श्री ने एक दृष्टांत रूप होकर विश्वास दिलाया कि आत्मा को निज गुण की प्राप्ति में पर्व समय जिन वस्तुओं की आवश्यकता थी, आजभी उन्हीं की आवश्यकता है और भविष्य में भी उन्हीं की रहेगी जिन्हें अपनी आत्मा का भान करने की तीव्र जिज्ञासा है और जिन्होंने इसीलिये संयम ग्रहण किया है ऐसे महानु-भाव और ज्ञानी पुरुष आज भी श्री वीरप्रभु की आज्ञानुसार राग द्वेष से विरक्त हो एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवमात्रकी सत्ता

एकसी समझ समस्त जीवोंपर समभाव रख स्वकार्य में तत्पर रहते हैं और धर्मान्ध न बन जैन और जैनेतर प्रत्येक जीव कर्मों से हलके हों ऐसा सोचकर उपदेश देते और अपने चारित्र को समुज्वल रख लोगों और जगत् पर महान उपकार करने के सिवाय स्वआत्मा के कल्याण करने में भी सम्पूर्ण आराधक होते हैं ऐसे ही उपकारी गुण पूज्यश्री में प्रधानता से थे। यही कारण है कि, पूज्यश्री जैन और जैनेतर वर्ग में अति माननीय और पूजनीय होगये थे।

'मा हणो, किसी जीव को मन, वचन और कर्म से दुःख मत दो, यह पूज्यश्री का अतिप्रिय और मुख्य उपदेश था। किसी जीव को तानिक भी दुःख होता देख या सुन वे मन में बड़े दुःखी होते थे और कभी २ उन्हें उनका वह दुःख सहन भी न हो सकता था।

संवत् १९६७ के साल में पूज्यश्री काठियावाड़ में विचरते थे। उस समय वर्षा न होने से संवत् १९६७ में भयंकर दुष्काल पड़ा; दया और क्षमा की मूर्ति के समान आचार्य श्रीने जब देखा कि, हजारों विचारे प्राणी सिर्फ घास के बिना मरण की शरण में जा रहे हैं तब उन्हें अत्यन्त दुःख पैदा हुआ। परिणाम यह हुआ कि, दुष्काल पीड़ित दुखी जानवरों की रक्षा से संचित लाभ और पुण्यपर ऐसा सचोट उपदेश शास्त्राधार से दिया कि, इसके प्रभाव

से श्रोतृवर्ग में दया की उत्कृष्ट भावना उत्पन्न हुई और राजकोट जैसे छोटे शहर में एक ही दिन तीस हजार रुपयों का फंड इकट्ठा हो गया कि, जिससे हजारों जानवरों को अभयदान मिला।

इस समय यह बात खास जानने योग्य है कि, संवत् १९६८ में काठियावाड़ के बहुत से हिस्सों में पूज्य महाराजश्री के उपदेश के प्रभाव से जानवरों के रक्षार्थ केटल केम्प खुले थे और इस तरफ लोगों का अधिक ख्याल रहा, पूज्य आचार्य श्री ने इस तरह जीवरक्षा का जो बीज बोया उसका विशेष फल संवत् १९६८ के साल के पश्चात् के पड़े हुए दुष्कालों में काठियावाड़ के छोटे २ ग्रामों में भी जानवरों की रक्षा के लिये किये हुए प्रयत्न सबके दृष्टिगत हुए ही हैं।

यों काठियावाड़ की भूमि को पूज्य श्री के मंगलमय पद से पवित्र होने का ऐसा अलौकिक स्मरण चिन्ह प्राप्त हुआ है। एक प्रभावशाली व्यक्ति के उपदेश का यह कुछ कम प्रभाव नहीं कहा जा सकता।

राजपुताना-मालवा इत्यादि में भी अनेक स्थानों पर गोरक्षा के लिये संस्थाएं और ज्ञानशालाएं मुख्यतः पूज्यश्री के सद्बोध से ही प्रारंभ हुई हैं इसी तरह छोटी सादड़ी वाले सद्गत श्रीमान् सेठ नाथूलालजी गोदावत ने रुपया सवालाख की सखावत प्रकट कर एक जैनाश्रम खुलाया है वह भी पूज्य श्री के प्रभाव का ही फल है।

पूज्य श्री चारित्र के एक उमदा से उमदा नमूने थे। उनकी शांतिमय मुखमुद्रा, दयामय हृदय, ज्ञानमय अलौकिक वाणी और सत्यकथन के प्रभाव से अन्यधर्मी साक्षर लोग भी उन्हें पूजनीय समझते थे। राजकोट के चातुर्मास में श्रीयुत न्हानालाल दलपतराम कवीश्वर और सद्गत अमृतलाल पढ़ियार पूज्य श्री से पक्के परिचित थे और जब २ इन दोनों साक्षरों को प्रकट आम सभा में बोलने का समय मिलता तब २ आचार्य श्री के उत्तम चारित्र, ज्ञान और उपदेश की मुक्तकंठ से तारीफ किये बिना नहीं रह सकते थे। उनके कथन मुताबिक "श्रीलालजी महाराज चारित्र के एक उमदा से उमदा नमूने हैं और इस कलिकाल में उनकी समानता करने वाला मिलना दुर्लभ है।"

आचार्य श्री इतने अधिक प्रभावशाली, चरित्रवान् और ज्ञानी थे कि, प्रायः तमाम जैन मुनिराज उन्हें आचार्य के समान मान देते थे। अभी वर्तमान में उनकी संप्रदाय में ७२ साधु मुनिराज विचरते हैं। पूज्य श्री के निर्वाण के कारण युवराज मुनि श्री जवाहिर लालजी महाराज अब आचार्य पद पाये हैं वे भी सर्वथा सुयोग्य हैं।

स्थानकवासी जैन-समाज के ऐसे एक महान् पूज्य आचार्य श्री के निर्वाण से जैन कौम का एक अनमोल रत्न खो गया है।

शोक ! शोक !! महाशोक !!!

लेखक—श्रीमज्जैन-धर्मोपदेष्टा माधवमुनिजी महाराज.

श्रीयुक्त श्रीलालजी को स्वर्गवास सुनते ही,
जैन प्रजा एक साथ शोकाकुल ह्वै गई।
ह्वै गई हमारी मति आर्त्तध्यान मांही मग्न,
लिख्यो नहीं जाय लेखनी हू दग्ा दैगई ॥
शांति छवि जाकी देखि संयमें सु शांति होसी,
अहो ! मनमोहनी वो सूरति किते गई।
रे ! रे ! क्रूर कुटिल करालकाल ! तेरी चाल,
हाय ! हाय ! हाय रे ! कलेजा काट लैगई ॥ १ ॥

प्रबल प्रतापी पूज्य अतिशय अमितधारी,
घोर ब्रह्मचारी उपकारी शिर सेहरो।
हुकममुनीश वंशभूषण " विभूति लाल ",
सत्तपशम संयमादि सर्व गुण गेहरो ॥
विक्रमीय संवत् उन्नीसौ सित्तर,
आषाढ़ शुक्ल तृतीया को पिछान आयु छेहरो।
औदारिक देह गढ़ गेह, हेय जान हाय,
जाय-जय तारण जाने धार्यो दिव्य देहरो ॥ २ ॥

जान जगत जाल इन्द्रजाल को सो ख्याल,
जाने बालापन ही से मद मोह को हटायो है।
सूरीश्वर हुकम वंश मांहिं अवतंश समो,
जाको जश-वाद मत छहुंन में छायो है॥
दे दे उपदेश देश देशन में विशेष भांति,
भव्यों के हृदय में सुबोध बीज बायो है।
स्वर्गीय जीवों को सुबोध देन काज राज जाय,
जय-तारण जगतारण स्वर्ग सिधायो है॥ ३॥

(स्वर्गीय श्री श्री १००८ श्री पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज का गुणगान)

लेखक—पंडित लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी रामपुरावाला.

श्रीलालजी महाराज पूज्य अवतारी।
हुए जैन जाति में सूर्य असिव्रत-धारी॥ टेक॥
ये चुन्नीलालजी सेठ पिता के घर में।
थे हुए वहां उत्पन्न सु-टोंक नगर में॥
ज्ञान लगा हुए साधु थोड़ी उमर में।
पाठको! हुए एक ही, जो भारत भर में॥
जब २ होती है हानि, धर्म की भारी।
तब २ लेते हैं जन्म, धर्मध्वज-धारी॥
श्रीलालजी॥१॥

जहां २ किया विहार ग्राम शहरों में।
इन दिया बहुत ही ज्ञान सु-नारी नरों में ॥
था वर्षों का जो काम किया पहरों में।
शुभ दया धर्म का घोष किया घ घरों में ॥
बहु आश्रम शाला खुला किया हित भारी।
नित मिलता विद्या-दान जहां शुभकारी ॥
श्रीलालजी ॥ २ ॥

जो सज्जन देते परहित तन मन धन हैं।
जीवन है साफल्य उन्हीं को धन है ॥
वे करें सदा उपकार और ईश भजन हैं।
सब छोड़ प्रभूपद-पद्म लगावें लगन हैं ॥
रहते हैं निश्चय जग में वही सुखारी।
नभ फैले कीर्ति, रहे नाम जग—जारी ॥
श्रीलालजी ॥ ३ ॥

हा ! अधम कालने उठा उन्हीं को लीना।
सब जैन जैनेतर जनको शोकित कीना ॥
हैं पशु, पक्षी, प्राणी भी सभी मलीना।
हा ! हा ! नृशंस हे काल ! दारुण दुःख दीना।
" चौबे लक्ष्मीनारायण " हुआ दुखारी ॥
है करे विनय प्रभु, शांति मिले शुभकारी।
श्रीलालजी ॥ ४ ॥

प्रेषित पत्र

(लेखक—श्री पोपटलाल केवलचंद शाह)

परम पूज्य गच्छाधिपति महामुनि श्री १००८ श्री श्री श्रीलालजी महाराज साहिब के स्वर्गवास के समाचार शोकजनक हृदय से सुने। जैन-संसार व्यवहार की अपेक्षा से जैन-समाज में इनके स्वर्गवास से भारी-जिसकी पूर्ति न हो सके-ऐसी त्रुटि पैदा हो गई यह बहुत बुरा हुआ। जैन साधु-समाज की अपेक्षा से भी उनकी बड़ी भारी कमी हुई जिसकी अभी जल्दी पूर्ति नहीं हो सकती।

साधु समाज के तो ये नेता, शास्त्रसिद्धांत के पारगामी, वीत-राग की आज्ञा का सब साधुओं से पालन कराने वाले, पूर्ण प्रेमी, शासन की रक्षा करने में अडिग, साधु-मंडल में तनिक भी अप-वित्रता दाखल न हो जाय ऐसा प्रत्येक पल २ पर देखने वाले, पवित्रता के पालक और समस्त दिन स्वाध्याय में लीन रहने वाले एक महात्मा थे। इनकी खामी तो साधु-समाज को पग २ पर प्रकट होगी।

जैन-समाज में समय को देख उनके जैसा असरकारक, सचोट, शास्त्र, सिद्धान्त तथा नियमबद्ध ज्वलन्त उपदेश देने वाले महापुरुष महात्मा विरले ही होंगे और इसलिये जैन-समाज के संसार व्यव-

द्धार को धर्म की दृष्टि से सुधारने को तत्पर उन जैसे संत महंत की जैन-समाज को बड़ी भारी खामी हुई है। मैंने कई साधु साध्वीओं के दर्शन एवम् सत्संग का लाभ लिया है परंतु ऐसे एक ही संत महंत मैंने अपनी तमाम उम्र में भी न देखे कि जिनका प्रताप, जिनकी वाणी, जिनकी शासन रक्षा, जिनका उपदेश, जिनका तप, तेज, जिनका आतंक, जिनका उद्योत, जिनका उत्साह ये सब एक साथ दूसरों में भाग्य से ही होंगे। बेशक, कई साधु साध्वी जो उत्तम पूज्य हैं, वंदनीय हैं, परोपकारी हैं परन्तु मुझे पक्षपाती कहो या अनन्य भक्त कहो, जो कहना हो सो कहो, परन्तु मेरा और मैं जिन जैनों को या जैनतरों को प्रामाणिक और परीक्षक समझता हूं उनका हृदय तो उन्हें सब साधुओं में श्रेष्ठ समझता था।

राजकोट में उन पर जैन और जैनेतर सबका ऐसा उत्तम भाव रहा कि, उनके स्वर्गवास से उन पर प्रेम प्रकट करने के लिये सिर्फ जैनों ही की नहीं, परन्तु एक आम सभा बुलाकर खेद प्रकट किया और हिंदू मुसलमान व्यौपारियों ने इनके मान में व्यौपार बंद रख पर्व पाल एक दिन अपने २ धर्मध्यान में बिताया।

परमपूज्य सद्गत आचार्य महाराज श्रीलालजी महाराज साहिब समभावशील और गुणानुरागी थे, तथा सब मतों में जो सचा हो उस सत्य के पक्षपाती थे। जैन-धर्म में कथित जीवदया

को पुष्ट करने वाली कई बातें, कविताएं और कहावतें चाहे जिस धर्म की हों उसे याद रख व्याख्यान में कहते और सब श्रोतृ-समुदाय को आनंदित करते थे।

एक कवि की भाषा में कहूं तो अहिंसा इनके जीवन का मुख्य मंत्र था और यह उनके जीवन में ताने, बाने, की तरह फैल गया था, सत्य उनका मुद्रालेख था, तप उनका कवच था, ब्रह्मचर्य उनका सर्वस्व था, सहिष्णुता उनकी त्वचा थी, उत्साह जिनका ध्वज था, अखूट क्षमा-बल जिनके हृदय पात्र या कमंडल में भरा था, सनातन योगी कुल का यह योग मालिक था, राग द्वेष के झंझानल से यह अलग था, मेरे तेरे के ममत्व-भाव से परे था, सब जीव के कल्याण का यह इच्छुक था, इतना ही नहीं, परन्तु सबके कल्याण के उपदेश में वह सदा मशगूल था ऐसा जैन भारत का एक वर्तमान महान् धर्म गुरु धर्माचार्य शासन का शृंगार, परोपकारी समर्थ वक्ता, समर्थ क्रियापात्र, कर्त्तव्यनिष्ठ गच्छाधिपति ५१ वर्ष की अपरिपक्व वय में कालधर्म वश हमने एक अनुपम अमूल्य आचार्य खोया है।

राजकोट और काठियावाड़ में उन्होंने जगह २ जीव-दया की जय घोषणा उच्च स्वर से चमत्कारक रीति से की थी। अडसठिये दुष्काल की अपेक्षा छप्पनिया दुष्काल अधिक विषम था, तोभी छप्पनिया में जीव-रक्षा या गो-रक्षा के लिए जो हुआ था उससे

अनेक गुना कार्य अडसठिया में हुआ अडसठिया दुष्काल में किये गये दया के कार्य पशु-रक्षा, गो-रक्षा, मनुष्य-रक्षा, इत्यादि कैसी सुन्दरता से हुए थे, एवम् धर्म-श्रद्धालु परोपकारी पुरुषों ने इस कार्य को पार लगाने में कैसा सरस उत्साह दिखाया था तथा राजकोट ने इस विषय पर समस्त काठियावाड़ को जो नमूना दिखाया था वह सब सोचते २ इन स्वर्गवासी—इन देवगतिपाये हुए महात्मा का उपकार तनिक भी नहीं भूल सकते और इस काठियावाड़ में जहां २ पूज्य श्री के स्वर्गवास के समाचार मिलेंगे वहां २ उनके परिचितों को पारावार शोक होगा।

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, अनुभव, तप, आश्रम धर्म का अखंड पालन, हृदय की विशालता इन सबका जब हृदय हिसाब करता है तब उनकी जैन-समाज में कितनी बड़ी भारी कमी हुई है समझा जा सकता है। हृदय में आंसू निकल पड़ते हैं और साश्रुलोचन से कलम अधिक कम्पित होती है, गद्गद्-कंठ से आज इतना ही लिखता हूं।
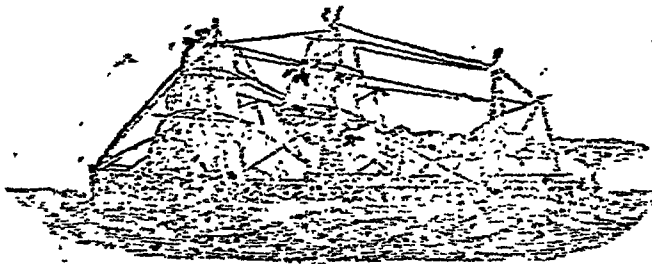
शोकोद्गार ।

(राग सोरठा)

अमृत भीनी वाण, सांभलता सुधर्यां घणा,
घणा मूलुं व्याख्यान, सुणशुं क्यां श्रीलालजी ॥ १ ॥
प्राणी-रक्षण काज, अमर पडो वजड़ावता,
करी शके नवराज, करनारा श्रीलालजी ॥ २ ॥
अडसठ साल कराल, छतां जणाओ नहि जरा,
थयो न वांको वाल, प्रताप ए श्रीलालजी ॥ ३ ॥
आप गुणोनी खाण, अल्प प्राण शुं कही शके,
अमने मोटी हाण, जगमां विण श्रीलालजी ॥ ४ ॥
संयमना परिणाम, आप स्वर्गमां शोभता,
मरजीवा तम नाम, विसरो कयम श्रीलालजी ॥ ५ ॥
सदैव ल्यो संभाल, अवध ज्ञान उपयोगथी,
गणी भूलणां वाल, अरज एज श्रीलालजी ॥ ६ ॥
कइक कसाई खास, लाखो जीव विदारता,
कर्या दयाना दास सांभरशो श्रीलालजी ॥ ७ ॥
राजकोट पर प्यार, पूरो राख्यो प्रथम थी,
गुण रसना भंडार, सत्यगुरु श्रीलालजी ॥ ८ ॥

श्री प्राणजीवन मोरारजी शाह-राजकोट.

अध्याय ५३ वाँ।

सच्चा—स्मारक।

महियर नरेश को धन्यवाद !

संख्याबंध प्राणियों को अभयदान।

श्रेष्ठ समुदाय और शुद्धाचारित्र यही पूज्यश्री का सच्चा स्मारक है। इस शुद्ध—चारित्र को निभाने की शक्ति उत्पन्न करना यह मुनिराजों की और चारित्र पालने की सरलता का रक्षण करना श्रावकों की कृतज्ञता है। उनके उपदेश को याद रख इसी मुआफिक वर्ताव करना यह उनका उत्तमोत्तम स्मारक है।

जीव—दया की वकीली में उन्होंनें अपनी ज़िन्दगी का बृहद् भाग अर्पण किया है। उनके स्मरणार्थ उनके स्वर्गवास के पश्चात् जल्दी ही जीव—दया का एक महान् कार्य हुआ और कायम की हिंसा बन्द। उस सम्बन्ध में 'जीव—दया' मासिक का निम्नांकित लेख यहां देते हैं।

वैरिणोऽपि हि मुच्यंते, प्राणान्ते तृणभक्षणात्।
तृणाहाराः सदैवते, हन्यन्ते पशवः कथम्॥ १॥

हमारे देशके रक्षक सचमुच ये पशु हैं,
हमारे देशकी दौलत सचमुच ये पशु हैं,
हमारा बल और बुद्धि सब कुछ ये पशु हैं,
हमारी उन्नति का सुदृढ़ पाया ये पशु हैं.

"All are murderers-the man who advise the killing of a creature, the man who kills, the man who plays, the man who purchases, the man who sells, the man who cooks (the flesh) the man who distributes and the man who eats." —Manu

पशु भारत का धन है, प्रभु की विभूति है और अपने लघु बांधव हैं। धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, और आरोग्यशास्त्र, की दृष्टि से पशुवध करना यह अत्यंत हानिकर और महा अनर्थकारी है। प्रत्येक धर्मप्रवर्तक ने पशुवध का–प्राणीमात्र की हिंसा का निषेध किया है। अहिंसा, दया यह मनुष्य का प्राकृतिक धर्म है हिन्दुओं के पांच यम, बोद्धों के पांच महाशील, जैनों के पांच महाव्रत इन सब में अहिंसा धर्म ही प्रधान पद पर आरुढ़ है।

पञ्चैतानि पवित्राणि सर्वेषां धर्म चारिणाम्।
अहिंसा सत्यमस्तेयं त्यागो मैथुन वर्जनम्॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, त्याग और मैथुन वर्जन इन पांचों को प्रत्येक धर्म वालों ने पवित्र माने हैं इसके सिवाय

"अहिंसा परमोधर्मः" "माहिंस्यात् सर्वाभूतानि"
"आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति"

इत्यादि अनेक मनन योग्य वाक्य हिन्दू धर्मशास्त्रों में स्थल स्थल दृष्टिगत होते हैं तौ भी अफसोस की बात है, कि आर्यावर्त में ऐसा एक वर्ग प्रस्तुत है जो हिंसा के कृत्यों में ही धर्म मानता है—धर्म के लिये हिंसा करता है जो अत्यंत निंदनीय एवं भयंकर है। काली, महाकाली दुर्गा, जगदम्बा, बहुचरा, शारदा, आदि देवियों के उपासक अपनी अधिष्ठात्री देवी को पशुओं के रुधिर की प्यासी महाविकाल और क्रूर हृदय की कल्पते हैं और उसकी कृपा सम्पादन करने के लिये उसे पाड़े, बकरे, इत्यादि निर्दोष पशुओं का बलिदान कर भेंट चढ़ाते हैं। यह प्रवृत्ति सिर्फ अज्ञानजन्य है। मांसलोलुप, स्वार्थान्ध, लोभग्गू आचार्य कि जिनके हृदय में दया का लेश भी न था, धर्म ग्रन्थों में कितनी ही कल्पित बातें घुसादी और लोगों के नेत्रों पर पट्टा बांध उन्हें केवल उलटे मार्ग पर लगा दिया। इसतरह अपनी दुष्ट वासनाओं को तृप्त करने वास्ते तथा अपने पर पूज्यभाव कायम रखने वास्ते उन्होंने धर्मशास्त्रों से और साधारण ज्ञान से भी प्रतिकूल इस एकांत पापमय प्रवृत्ति को भी धर्म का कार्य ठहराया है। उनकी प्रपंच जाल में फंसे हुए भोले अज्ञानी लोग तनिक भी विचार नहीं

करते कि इन कार्यों से देव देवी तुष्ट होंगे या रुष्ट होंगे ? उनकी ही मान्यतानुसार देवी जगज्जननी है समस्त जगत् की अर्थात् प्राणीमात्र की वह माता है इस हिसाब से मनुष्य मात्र उसके ज्येष्ठ पुत्र हैं और पशु उसके कनिष्ठ पुत्र हैं। माताओं का प्रेम हमेशा छोटे बच्चों पर अधिक रहता है यह स्वाभाविक है। माताको रिझाने के वास्ते उस के ही छोटे २ बच्चों के गले उसके समक्ष छेद डालना यह कितना बेहूदा और मूर्खता पूर्ण क्रूर कर्म है ? इससे जो माताएं प्रसन्न होती हों तो वे माताएं ही नहीं हैं। देव देवियों को राजी करने के लिये बलिदान देना ही हो तो अपनी प्यारी से प्यारी वस्तु का देना चाहिये। स्वार्थी उपासक इष्ट वस्तुओं का वियोग सहन नहीं कर सकते, इसलिए निरपराधी पशुओं पर दृष्टि डालते हैं। देव-देवी तो सिर्फ वासना के भूखे हैं। तुम्हारी उनपर कैसी भावनाएं हैं यह योजना तुम्हारी कसोटी की है जो तुम रखते हो वे तो उसे लेते ही नहीं, उनकी अमीदृष्टि से यह पावन होगया ऐसा समझ उसे तुम वापिस लेजाते हो, जठर उपासक, स्वार्थी पुजारियों ने मुफ्त के माल में मांसाहार प्राप्त करने की यह युक्ति ढूंढ निकाली और धर्म के नामपर भोले भारत को ठगना प्रारंभ किया।

जबतक सत्य न समझा जाय तबतक ही लोग ठगे जाते हैं, सत्य रहस्य समझने के साथ ही लोग अपनी भूल से होते हुए अनर्थ

समझने लगे। देवी का साम्राज्य समस्त दुनियां में है, दुनियां के समस्त देशों की अपेक्षा भारत अधिक अधम दशा को प्राप्त होगया है। इसका कारण भी सोचने योग्य है पशुओं के बलिदान से देव प्रसन्न होते तो भारत की ऐसी दुर्दशा कभी न होती। प्लेग का प्रकोप, नानातरह के रोगों का उपद्रव, बड़े से बड़ा मृत्यु प्रमाण, दुष्काल पर दुष्काल पराधीनता, दरिद्रता आदि दुःखों का वरसाद, उपर्युक्त पापमय प्रवृत्ति से कुपित हुए देव देवी ही क्यों न वरसाते हों "जैसे बोवे जैसे लुने और करे वैसा भोगे अन्य को सुख देने से सुख और दुख देने से दुःख प्राप्त हो यह त्रिकाल से बंधा हुआ सनातन सत्य है अन्य के अनिष्ट द्वारा अपना इष्ट साधने की आशा रखना यह प्राकृतिक कानून से विरुद्ध है।

"मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि" किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो यह महावाक्य याद रखकर ही उसके सत्वगुण सम्पन्न पुरुषों ने देवी पूजा इत्यादि कार्य करने चाहिए, परन्तु यह पूजा ऐसी न होनी चाहिए कि जिसमें दूसरे निर्दोष प्राणियों का संहार किया जाय। कदाचित कोई ऐसा कहे कि दुर्गा सप्तशती में पशु 'पुष्पैश्च गंधैश्च' पशु पुष्प और सुगंधित पदार्थों से देवी की पूजा करना कहा है तो उसका अर्थ क्या है? जिसका उत्तर यही है कि जिसतरह पुष्प की पूजा, पुष्पों को पूरे २ चढ़ाकर की जाती है उसीतरह पशुओं से पूजा करनी हो तो पशुओं को माता के सामने लाकर

ऐसी प्रार्थना कर छोड़ देना चाहिए कि हे जगदम्बे ! आपके दर्शन से पवित्र हुआ यह बकरा भी निर्भय होकर विचरे अर्थात् कोई भी मांसाहारी उसका बध न करे, ऐसा संकल्प कर उस बकरे को छोड़ देना चाहिए' जिससे पुण्य हो, सचमुच में पूजा की यही विधि है यह पद्धति कई स्थानों पर प्रचलित है और बकरे के कान में कड़ी पहना कर उसे निर्भय 'अमरा' किया जाता है उपदेशकों ने धर्मोपदेश द्वारा और राजाओं ने राज्य सत्ता द्वारा इस सत्व विधि का प्रचार करना चाहिए।

जमाना ज्यों २ आगे बढ़ता जाता है त्यों २ ऐसे घातकी सन्देह भी कम होते जाते हैं। कितने ही दयालु और धर्मनिष्ठ राजाओं ने अपने राज्य में इसतरह होते हुए पशुबध को देशकी अवनति का और कालेरा प्लेग इत्यादि रोगों की उत्पत्ति का कारण समझ राज्य-सत्ता से उसे बंध कर दिया है यह अत्यंत संतोष की बात है।

अभी ही महियर राज्य के नामदार नरेश ने जिस पुण्यमय प्रवृति द्वारा प्रतिवर्ष हजारों जीवों का वध होता हुआ बंद कराने का प्रशसंनीय कार्य किया है उसे सुन दयालु मनुष्यों के हृदय आनंद से लहराये बिना नहीं रह सकते।

महियर यह बुंदेलखंड का एक देशी राज्य है। वहां अति प्राचीन समय से एक उच्च टेकरी पर शारदा देवी का स्थान है। इस ओर की

रियाया में से अधिकांश रियाया इस देवी की उपासक है। और देवी को प्रसन्न करने के लिये पुत्रादिक की प्राप्ति अथवा अन्य इच्छा की सिद्धि के लिये देवी को भेड़ों बकरों का बलिदान देने की कुप्रथा बहुत समय से वहां प्रचलित थी। इसलिये वहां प्रतिवर्ष हजारों भेड़ों बकरों का बलिदान दिया जाता था। चैत्र माह में वहां बड़ा भारी मेला लगता है और वहमी, अज्ञानी, मूर्ख लोग नारियल की तरह पशुओं को माताजी पर चढ़ाते हैं। यह निंद्य प्रथा क्यों और किसतरह बंद की गई जिसका संक्षिप्त वृत्तांत वाचकों को आनंदित करेगा।

जैनाचार्य श्रीलालजी महाराज कि जिनके सदुपदेश से लाखों जीवों को अभयदान मिला था और कई राजा महाराजाओंने अपने राज्य में धर्म निमित्त होती हुई पशुहिंसा और शिकार इत्यादि बंद कराया था, उनका स्वर्गवास गत अषाढ़ शुक्ला ३ को जेतारण मुकाम पर हो जाने के दुःखद समाचार इस लेखक को मोरवी मुकाम पर मिलने से उनके उपर पूज्यभाव और प्रशस्तराग के कारण से हृदय को बड़ा भारी आघात पहुंचा, परंतु धर्म क्रिया में प्रवृत्त हो संसार की असारता और देह की क्षणभंगुरता का विचार आते ही अंतरात्मा की ओर से ऐसी प्रेरणा हुई कि गुरू श्री के स्मारक के उपलक्ष में कुछ शुभ प्रवृत्ति करना उचित है। परन्तु क्या करना इसका निर्णय न हो सका। मन अनेक तर्क वितर्क करता

रहा। विचार ही विचार में समस्त रात बीतगई दूसरे दिन वढ़-वाण में मेरे एक मित्र श्रीयुत भगवानदास नाराणजी वोरा तरफ से एक पत्र मिला जिसका सारांश यह था कि:—

"महियर स्टेट में प्रतिवर्ष देवी को भोग देने के लिये हजारों बकरों का वध होता है। उसे बन्द कराने वास्ते प्रयत्न करना आवश्यक है और रु० १५००० यहां हॉस्पिटल का मकान बंधाने वास्ते देवी को अर्पण किया जाय तो वध जल्द ही बंध हो जाय।"

इस पत्र ने मुझे कर्तव्य पथ सुझाया। सद्गत गुरुवर्य की अदृश्य प्रेरणा का ही यह फल हो ऐसा मुझे दृढ विश्वास हो गया और इस कार्य को पार लगाने वास्ते मैंने दृढ़ संकल्प किया।

महियर स्टेट के दिवान साहिब श्रीयुत हीरालाल उर्फ बाला-भाइ गणेशजी अंजारिया बी० ए० राजकोट के खानदान कुटुम्ब के एक वढ़नगरा नागर गृहस्थ है। उनके साथ पत्र व्यवहार प्रारम्भ किया। और रु० १५०००) के लिये मुम्बई स्थानकवासी जैन संघ के अग्रसर कच्छ माँड़वी के रहिवासी शेठ मेघजी भाई थोभणभाई तथा उनके भाणेज शांतिदास आसकरण जे० पी० से वचन लिया। पश्चात् हम बम्बई से (मैं और मेरे मित्र श्रीयुत वोरा) महियर गये। वहां दिवान साहब की मुलाकात से हमें अत्यन्त आनन्द हुआ और हमारा मनोरथ सफल होगा,

ऐसा विश्वास हो गया । शारदा देवी के दर्शन करने की हमने इच्छा दर्शाई । दिवान साहेब भी हमारे साथ आये, संख्याबन्ध सीधे पंक्तियें चढ़ कर हम देवी के स्थान पहुंचे प्रथम दिन ही करीब तीस पैंतीस बकरे काटे गये थे जिस से वहां लोही का कुंड भरा हुआ था. वह दृश्य हृदय को कम्पा देने वाला था। दीवान साहेब के दयार्द्र अंतःकरणको भी इस क्रूर प्रथा से असह्य दुःख होता था फिर हम नामदार महाराजासाहिब से मिले. उनका मिलन सार स्वभाव विद्वत्ता, और धर्म पर श्रद्धा इन सब से हमे अत्यन्त आनंद हुआ । हमने अत्यन्त नम्रता से देव देवी को वली देने वास्ते राज्य के प्रतिवर्ष हजारों निरपराध पशुओं के प्राण लूटे जाते हैं उन्हे वंद करदेने की प्रार्थना की और इस के वदले यतकिंचित स्मारक के वतौर महियर के हास्पिटिल के लिये एक मकान वंधा देने वास्ते रुपया १५०००) अर्पण करने की विज्ञप्ति की हमारी प्रार्थनाको दयालु महाराज साहिब ने कितनीहि दलीलों के वाद स्वीकृति की और हास्पिटिल के मकान पर शेठ मेघजीभाई तथा शांतिदास के नामका शिलालेख रखने की परवानगी दी और आज्ञा पत्र निकाल कर समस्त राज के तमाम मंदिरों में हमेशा के लिये देवियों को वलिदान देने वावद पशुवध करने की विलकुल मनाई करदी। इस आज्ञापत्र की नकलें हिंदके तमाम राज्यों में भेजी गई और प्रसिद्ध पेपरों में भी प्रकट की गई ।

नामदार महाराजा साहब ने इस महान पुण्यकार्य से अपनी कीर्ति अमर करदी और कई भोले लोगों को घोर पाप के कार्यकी खालि में गिरने से बचाये तथा संख्याबन्ध मनुष्यों को नर्क के अधिकारी होने से रोक अपने लिये स्वर्ग के द्वार खोलदिये हैं विद्या और सत्ता का सदुपयोग कर अपना जीवन सार्थक कियाहै भारतवर्ष के अहिंसा धर्म के उपासकों के मन उन्हों ने इस शुभ प्रवृत्ति से जीत लिये हैं. हिन्द के प्रत्येक भागों में से हजारों मुबारक वादी के तार उन के पास जा गिरे हैं वहां के दिवान साहेब ने भी इस प्रवृत्ति के प्रेरक बन महान पुण्य प्राप्त किया है।

सेठ मेघजी भाई तथा शेठ शांतिदास ने अपनी लक्ष्मी का सद्व्यय कर अलभ्य लाभ उठाया है. उनकी उदारता परम श्रेयका कारण भूत हूई पंद्रह कोटि रुपये खर्चने से भी जो लाभ प्राप्त न हो सके वह लाभ उन्हे रु० १५०००) से प्राप्त होगया. सात हजार बकरों को सिर्फ एक ही समय अभय दान देनेमें रु० ३५००० खर्च होते हैं उस के बदले रु० १५०००)) में हमेशा के लिये प्रतिवर्ष होते हजारों पशुओं का बध बंद होगया यह लाभ कुछ कम नहीं है फिर इन १५००० रुपयों से दवाखाने का मकान बांधाजायगा जिस से हजारों दुःखी दर्दी की आशिष भी-इनपर बरसती रहेगी द्रव्य का शुभ से शुभ उपयोग इसी को कहते हैं।

हॉस्पिटल की नींव का मुहुर्त ता० १३ १० २० के रोज बुंदेलखंड के पोलिटिकल एजन्ट के हाथ से होगया और मकान बनना भी प्रारंभ है स्टेट तरफ से अधिक रकम देकर मकान बड़ा बनाना निश्चित हुआ है हास्पिटल का खर्च भी राज्य से होगा।

अंत में हम चाहते हैं कि इस सत्य प्रवृति का सर्वत्र अनुकरण हो और पवित्र आर्यावर्त में से पशुवध बंद होजाय तथा पुण्य भारत भूमि अपना पूर्वसा गौरव पुनः प्राप्त करें।

इस अवसर की खुशी में श्री मोरवी हाइ स्कूल के शास्त्रीजी श्रीयुत पुरुषोत्तम कुबेरजी शुक्ल की ओर से निम्नांकित काव्य प्राप्त हुआ है।

शार्दूल विक्रीड़ितं वृत्तम्।

यत्साध्यं न भवेत् कदापि बहुलै निष्कव्ययैः कोटिभिः
वर्षाणामयुतेन नापि सुलभं यत्तत्र बद्धश्रमैः॥
यस्मिन्वै विजयं न याति सततं संख्यातिगावाहिनी।
तत्कार्यं सुमहात्मनां करुणया स्वल्पश्रमात् सिध्यति॥१॥

राज्ये यन्महियारके बलिवधौ श्रीशारदाम्बाकृते।
प्राचीनः पशुतावधः कुविधिना यः क्रियमाणोऽभवत्॥
श्रीश्रीलालजि सद्गुरोर्गुणनिधेः स्मृत्यर्थमेवाधुना।
द्रोदुर्लभ श्रेष्ठिनेश कृपया धर्म प्रभावो महान्॥ २॥

गुजराती अनुवाद ।

शार्दूल विक्रीडित ।

कोटी म्होर सुवर्ण खर्च करतां, जे कार्य थातुं नथी ।
जेनी वर्ष अयुत कष्ट श्रम थी, किंचित् सिद्धि नथी ॥
सेनाओ अगणि युद्ध कर शे, तोये न आशा फल ।
तेवुं महान् सुकर्म साध्य सुलभ, साधु कृपा किंचित् ॥१॥
जुवो महियर राज्य मां वलिविधि, श्री शारदा मातने ।
थातो तो वध रे बहु पशुतणो, ते रोकव्यो सज्जने ॥
त्रिभुवन सुत दुर्लभे श्रमकरी, ते पाप रोकावियुं ।
जैनाचार्य श्रीलालजी स्मरणमां तेसंत नामें थयुं ॥ २ ॥

☞ इससे सम्बन्ध रखने वाले चित्र आगे दिये गये हैं ।
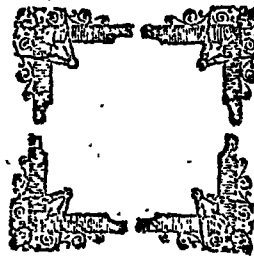
अध्याय ५४ वाँ ।

बीकानेर में हिन्द के जैन साधु मार्गियों का सम्मेलन ।

श्री बीकानेर श्रावकों की ओर से स्मारक के विचार बाबत् भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों के अग्रगण्य नेताओं को आमंत्रण किया गया था । जिस पर से भिन्न २ प्रान्तों से करीब २०० सद्‌गृहस्थ हाजर होगए थे जिनमें मुख्य २ ये थे ।

श्रीमान् सेठ गाढ़मलजी लोढ़ा अजमेर, श्रीमान् सेठ वर्द्धभाणजी पीतलिया रतलाम, श्रीयुत दुर्लभजी त्रिभुवनदास जौहरी जैपुर, श्रीयुत सुगनचंदजी चोरड़िया जौहरी जयपुर, श्रीयुत जालमसिंहजी कोठारी B.A. जोधपुर, श्रीयुत माणकचंदजी मूथा जोधपुर, श्रीयुत जौहरी मोहनलाल रायचंद बम्बई, श्रीयुत जौहरी अमृतलाल रायचंद बम्बई, जौहरी माणकचंद जकशी बम्बई, जौहरी लक्ष्मीचंद जशकरण पालनपुर, जौहरी कालीदास गोदड़भाई पालनपुर, सेठ भगवानजी नाराणजी वोरा वढवाण शहर, लाला केशरीमलजी रिटाइर्ड ज्युडीशीयल सक्रेटरी उदयपुर, जौहरी केसुलालजी ताकड़िया उदयपुर, श्रीयुत नंद-

लालजी मेहता उदयपुर, श्रीयुत सागरमलजी गिरधारीलालजी बंगलोर, श्रीयुत शमूंमलजी गंगारामजी बंगलोर, श्रीयुत श्रीचंदजी अब्बाणी ब्यावर, श्रीयुत घसूलालजी चोरड़िया ब्यावर, श्रीयुत अ..रचंदजी, घेवरचंदजी अजमेर, श्रीयुत मोतीलालजी कांसवा अजमेर, श्रीयुत कानमलजी गाढ़मलजी चोरड़िया अजमेर, श्रीयुत मिश्रीलालजी छाजेड़ जयपुर, श्रीयुत रतनचन्दजी दफ्तरी जयपुर, श्रीयुत गुमानमलजी ढड्ढा जयपुर, जौहरी कल्याणमलजी छाजेड़ जयपुर, श्रीयुत शेषमलजी बालिया पाली इत्यादि २।

उपस्थित गृहस्थों तथा बीकानेर और भीनासर संघ की एक सभा ता० २-८-२० से ता० ४-८-२० तक श्रीयुत भेरूंदानजी गुलेच्छा के मकान में एकत्रित हुई। प्रमुख स्थान श्रीयुत दुर्लभजी त्रिभुवनदास जौहरी को दिया गया। प्रारंभ में आये हुए देशावरों से सहानुभूति दर्शक तार, पत्र प्रमुख महाशय ने पढ़ सुनाये। पश्चात् १००८ श्री श्रीलालजी महाराज के अकस्मात् वियोग से समाज को जो हानि पंहुंची है उसके लिये हार्दिक खेद प्रकट किया गया।

उपस्थित सभासदों ने ऐसा विचार चलाया कि श्रीमान् स्वर्गवासी पूज्य महाराज के उपदेशों की स्मृति संघ के भावी संतानों में आरोपित करने के लिये एक ऐसी संस्था कायम की जाय कि;

जिससे उनके उपदेशामृत की यादगार चिरकाल तक स्थायी बना रहे। इस पर से निम्नांकित ठहराव सर्वानुमत से पास किये गए।

प्रस्ताव १ ला।

(१) निश्चय हुआ कि श्री संघ की उन्नत्यर्थ एक गुरुकुल खोला जावे और उसका नाम "श्री० श्वे० साधुमार्गी जैन गुरुकुल" रक्खा जावे।

(२) इस संस्था के लिये अनुमान रु० ५०००००) पांच लाख की आवश्यक्ता है जिसमें रु० २०००००) दो लाख का चन्दा वसूल हो जाने पर कार्यारंभ किया जावे.

(३) कमसे कम रु० २१०००) का विशेष प्रदान करने वाला इस संस्था का संरक्षक (Patron) गिना जावेगा और संरक्षकों में से ही इस संस्था की प्रबन्ध कारिणी सभा का सभापति चुना जावे।

(४) रु० ११०००) देने वाले गृहस्थ इस संस्था के सहायक गिने जावेंगे और उनमें से इस संस्था की प्रबन्धकारिणी सभा के उप सभापति तरीके या कोषाध्यक्ष (खजानची) तरीके चुने जावेंगे।

(५) रु० ५०००) या ज्यादा और रु० ११०००) से कम देने वाले व्यक्ति इस संस्था के शुभेच्छुक Sympathiser) गिने जायंगे और उनमें से भी मंत्री आदि पदाधिकारी चुने जा सकेंगे ।

(६) रु० २०००) या अधिक प्रदान करने वाले गृहस्थ इस संस्था के सभासद् गिने जावेंगे और उनका चुनाव प्रबन्ध कारिणी सभा में हो सकेगा ।

(७) चंदा प्रदान करने वाले गृहस्थों के नाम शिलालेखों में गुरुकुल आश्रम के दरवाजे पर मय चंदे की तादाद के प्रकट किये जावेंगे ।

(८) प्रबंध कारिणी सभा अपनी इच्छानुसार पांच अन्य विद्वान गृहस्थों को सलाह लेने के लिये शरीक कर सकेगी और उनके मत गणना में आसकेंगे और उनपर चंदे का कोई प्रतिबंध न होगा ।

नोट—इस गुरुकुल का उद्देश समाज की भावी संतान को धर्म परायण, नीतिमान, विनयवान, शीलवान, व विद्वान बनाने का होगा ।

प्रस्ताव २ रा

श्री बीकानेर संघने प्रकट किया कि यदि बीकानेर में शहर के

बाहर गुरुकुल खोला जावे तो इस समय रु० १२५०००) की रकम यहां के संघ की ओर से लिखी जाती है और प्रयत्न चंदा बढ़ाने का जारी रहेगा. रुपये दो लाख इकट्ठे होजाने पर कार्यारंभ किया जावेगा।

उक्त कार्य के लिए सभा की तरफ से श्री बीकानेर संघ को हार्दिक धन्यवाद दिया जाता है कि जिन्होंने उत्साहपूर्वक इतनी बड़ी रकम प्रदान कर एक ऐसी संस्था की बुनियाद डालने का साहस किया कि जिसकी परम आवश्यक्ता था।

प्रस्ताव ३ रा.

इस उपयोगी कार्य में सलाह देने के लिये बहार गाम से तकलीफ लेकर पधारने वाले गृहस्थों को यह सभा धन्यवाद देती है।

प्रस्ताव ४ था.

श्रीयुत दुर्लभजी भाई के सभापतित्व में यह कार्य सफलता पूर्वक किया गया अतएव यह सभा उनका उपकार मानती है।

प्रस्ताव ५ वां।

आपस में निंदायुक्त लेख छपने से समाज में पूरी हानि होती है हाल में जो सत्यासत्य कमेटी जावरे की तरफ से ३६ कलमों

का एक ट्रैक्ट निकला है उसका यथोचित उत्तर दिया जाना स्वाभाविक है मगर आज रोज श्रीमान परम पूज्य महाराजा साहिब श्री १००८ श्री जवाहिरलालजी महाराज साहिब ने शांतिपूर्वक ऐसा उपदेश व्याख्यान द्वारा विस्तारपूर्वक फरमाया कि अपने श्रीमान् सद्गत् पूज्य महाराज साहिब के उपदेशामृत को व श्री जैन मार्ग के मूल क्षमाधर्म को अंगीकार करके श्रीमान् के भक्तों की तरफ से शान्तता ही रखना चाहिए। और छापा द्वारा उत्तर प्रत्युत्तर नहीं करना चाहिए। महाराजा साहिब के इस फरमान को सबने सहर्ष स्वीकार किया। यदि किसी की तरफ से फिर भी भविष्य में निंदायुक्त लेख प्रकट हुए और न्यायपूर्वक उत्तर देना ही जरूरी समझा जावे तो निम्नलिखित पांच मेम्बरों की नाम से उसका प्रतीकार किया जावे।

१ नगर सेठ नंदलालजी वाफना, उदेपुर
२ सेठ मेघजी भाई थोभण, बंबई
३ ,, कनीरामजी बांठीया, भीनासर
४ ,, नथमलजी चोरडिया, नीमच
५ ,, दुर्लभजी भाई जौहरी, जैपुर

क्रम दिखाया । इससे उनका चरित्र प्रत्येक मनुष्य के मनन करने योग्य, अनुकरण करने योग्य और स्मरण में रखने योग्य है ।

दीक्षा लेने के पश्चात् श्रीजी के उपदेश में ब्रह्मचर्य के लिये हमेशा बहुत जोर रहता था । ब्रह्मचर्य के निर्वाहार्थ शिष्यों के आहार विहार की तरफ भी वे बहुत ध्यान देते थे और यही कारण था कि इनकी सम्प्रदाय में ढीला पोला साधु न टिक सकता था ।
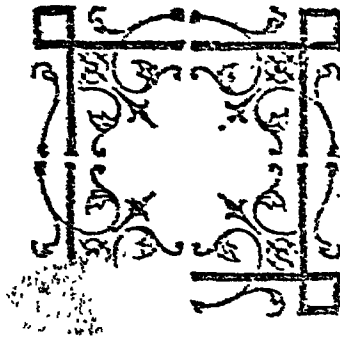
पाक, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी चारों छेदसूत्र (व्यवहार, निशीथ, बृहत्कल्प और दशाश्रुतस्कंध) तथा सूत्रों के सार रूप करीब १५० श्लोक (थोकड़ा प्रकरण) उन्हें कंठस्थ थे, शेषसूत्र भी पुनः २ पढने मनन करने से हस्तामलकवत् होगये थे, इनके सिवाय श्वेताम्बर दिगम्बर मतके अनेक तात्त्विक ग्रन्थों का भी उन्हो ने सूक्ष्म अवलोकन किया था. जैनेतर दर्शन शास्त्रों का भी पठन अति विशाल था, ऐतिहासिक ग्रन्थ पढ़ने का उन्हें अत्यन्त शोक था, इस के सिवाय आधुनिक वैज्ञानिकों के नये २ आविष्कार उसीं तरह हर्बर्ट स्पेन्सर, डार्विन इत्यादि पाश्चात्य दार्शनिकों के सिद्धांत जानने की भी उन्हें अत्यंत जिज्ञासा रहती थी. स्वयं अंग्रेजी पढे हुए न होने से ऐसे ग्रन्थ अंग्रेजी पढ़े हुए विद्वानों के पास से सुनते थे।

राजकोट के चातुर्मास में नई रोशनी वाले बी. ए, एम. ए, और वकील, बैरिस्टर पूज्य श्री के साथ दर्शनशास्त्र विज्ञान शास्त्र और भूगोल खगोल सम्बन्धी विवाद करते तब उन्हें आचार्य श्रीकी कुशाग्र बुद्धि और ज्ञान की उत्कृष्टता देख अत्यंत आश्चर्य होता और चर्चा में भी बहुत स्वाद मालूम होता था।

दर्शनार्थ आने वाले श्रावकों में से जिज्ञासु जनों को ज्ञाना-मृत की आस्वादन कराने वास्ते ज्ञानचर्चा करने के लिये पूज्य श्री

निमंत्रण करते, शिष्य के पूछे हुए एक प्रश्न का संतोषकारक समाधान होते ही " और पूछो " यह वाक्य प्रायः उनके मुख-कमल में से खिले बिना नहीं रहता था. उनकी वाणी में अद्वितीय आकर्षण था. उनके समाधान किये बाद शंका को मौका भाग्य से ही मिलता था. उनके साथ ज्ञानचर्चा करने वाले सूत्र के ज्ञाता श्रावक लोक उनके विशाल शास्त्रज्ञान पर बड़ा आश्चर्य प्रकट करते थे. एक सिद्धांत का समर्थन करने के लिए वे एक के पश्चात् एक शास्त्रीय अनेक प्रमाण अत्यन्त शीघ्रता पूर्वक प्रकाशित करते थे जैन के ३२ सूत्रों तो मानों उनकी दृष्टि के सामने ही तिरते हों, त्यों उनमें से एक के पश्चात् एक २ रत्न ढूंढ निकालते जिसे पदानुसारिणी लब्धि करते हैं वैसी लब्धि पूज्यश्री में दीख पड़ती थी. किसी भी धार्मिक विषय की चर्चा छिड़ते ही उस विषय का उनका ज्ञान तलस्पर्शी है ऐसा दूसरों को प्रतीत होता था. इतना ही नहीं परन्तु उनके मुंह से निकलते हुए अमृत जैसे मीठे वाक्य सुनकर आनंद का पार भी नहीं रहता था।

चारित्र विशुद्धि।

पूज्यश्री का चारित्र अत्यंत निर्मल था. वे इतने अधिक आत्मार्थी, पाप भीरु, और निरतिचार चारित्र पालने में सावधान रहते थे कि उनका वर्णन शब्दों में हो ही नहीं सकता, जिन्होंने

इन महापुरुष का सत्संग किया है वे ही उनके चारित्र की महिमा कुछ अंश में जान सके हैं। साधुओं में ज्ञान थोड़ा हो या अधिक हो इसकी चिंता नहीं, परन्तु चारित्र विशुद्धि तो अवश्य होनी ही चाहिये, ज्ञानका फलही चारित्र है 'ज्ञानस्य फलं विरतिः" जिस ज्ञान से विरति अथवा चारित्र प्राप्त न हो वह ज्ञान अफल समझना चाहिये। सच्चारित्र यही समस्त विश्व को वश करने वाला अद्भुत वशीकरण मंत्र है। जन समूह पर विद्या, लक्ष्मी, या अधिकार की अपेक्षा चारित्र का प्रभाव विशेष और चिरस्थायी पड़ता है, चारित्र बल से ही महात्मा गांधीजी अभी विश्व वंदनीय हैं, पूज्य श्री बार बार उपदेश देते कि नर से नारायण होते हैं इसलिये चारित्र रत्न का यत्न जीव के कष्ट होने पर भी करना चाहिये।

साधु पुरुषों का चारित्र यही सच्चा धन है। इस धन द्वारा स्वर्गीय सुख के अखूट खजाने खरीदे जा सकते हैं उसकी पूर्णता से पूर्ण-प्रभुता की प्राप्ति हो सकती है।

श्रीमान् पूज्यश्री को अविश्रान्त परिश्रम के कारण प्राप्त हुए सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्र के अपूर्व ज्ञान के सुफलरूप उदार, अनुकरणीय और अति चार रहित चारित्र की प्राप्ति हुई थी। श्री वीर प्रभु की आज्ञा यही उनका मुद्रा लेख था और यही उनका पवित्र धर्म था। इस आज्ञा के पालन में वे

प्रमाद को त्याग और शुद्धोपयोग पूर्वक संयम के सुखद सुपथ में विचरते थे। अपना मन अन्य प्रदेश में लेश भी प्रवेश न करे उसकी बड़ी संभाल रखते थे और इसलिये व्यर्थ बैठे रहना, व्यर्थ की हंसी करना, सांसारिक खटपट में भाग लेना इत्यादि २ प्रवृत्तियां कि जो अभी निठल्ले श्रावकों की संगति से कितने ही साधुओं में घुस पड़ी हैं, पूज्यश्री ने परिहार किया था। वे दिन रात ज्ञान ध्यान में निमग्न रह और ज्ञान विषय की चर्चावार्ता कर समय का सदुपयोग करते थे।

आधाकर्मी—सदोष आहार पानी न लेने बाबत वे अत्यन्त सावधान रहते थे। अजमेर कॉन्फरन्स के समय स्वधर्मी रागवश दोषीला आहार पानी वहिरावेंगे अथवा साधु निमित्त पहिले या पीछे आरंभ समारंभ करेंगे ऐसा संभव समझ पूज्य श्री ने साधुमार्गी के यहां से आहार पानी न लाने बाबत अपने शिष्यों को बिलकुल मनाकर आपने स्वयं तेला का पारणा कर दूसरा तेला कर लिया था और सात दिन में एक दिन आहार लिया था। कई वक्त साधुओं की बड़ी संख्या एक ग्राम में एकत्रित होजाती तब तब पूज्य श्री और उनके साधु छठ, अठम, चोले, पचोले की धुन लगा देते थे और ऐसे प्रसंग में कई समय कच्चा आटा लाकर पानी में डाल पीजाते थे। पूज्य श्री विशेषतः मकी और जव की रोटी गरीबों के यहां से वेर लाते,

विषय का त्याग करना या आयम्बिल करना यह उनका खास शौक था। इंद्रियों को वश रखने का कार्य सचमुच बड़ा कठिन है जिस में भी रसेंद्रिय का वश करना यह सब से अधिक दुष्कर है। शरीर पर से मुर्च्छा उतरती है जबही शरीर को पोषण देने वाले खाद्य पदार्थों पर से भी मुर्च्छा उतर सकी है।

आधाकर्मी स्थानक में उतर न जांय इस बाबत भी वे बड़े सावधान रहते थे। मांगरोलबंदर पधारे तब उन्हें भोजनशाला में उतारने की संघ की इच्छा थी। पूज्य श्री ने भोजनशाला देख, विशाल और श्रेयस्कर मकान तथा जैनों की बस्ती और साधुओं का उपाश्रय अधिक समीप होने से यह स्थान पूज्य श्री को अधिक पसंद हुआ। परंतु पूछताछ करने पर यह भोजनशाला बिगड़ी हुई थी और पूज्यश्री के लिये ही साफसुफ कराई गई थी ऐसा संदेह पड़ते ही वे वहां न ठहर ग्राम बाहर एक झोंपड़ी में उतर गए। ऐसी ही घटना मोरवी में भी घटी थी।

कल्पविहार करने में भी वे कितने अप्रमत्त रहते और कैसे कष्ट सहते थे यह व्यर्थ के बहाने निकाल स्थिरवास पड़े रहने वाले साधुओं को खास ध्यान देने योग्य है। कई समय उनके पांव में असह्य वेदना हो उठती थी, तोभी वे कल्प उपरांत अधिक नहीं ठहरते थे। सं० १९७२ के कार्तिक वद १ के रोज उदयपुर

शहर के मध्य से हो कर जब वे सूरजपोल महंत की धर्मशाला में पधारे उस समय का दृश्य जिन्होंने आंखों से देखा है वे कहते हैं कि उस समय पूज्यश्री के पांव में अतुल वेदना थी. पांवकी तली छिलरही थी. ऊपरका भाग सूजरहा था. तोभी वे वज्रसा कठिन हृदय कर विश्राम लेते २ चलते थे और अत्यन्त कष्ट होने से उनके नेत्रों में से मोती की तरह अश्रुबिंदु टपकते थे, जिसे देख भाविक भक्तों के हृदय थर २ धूज उठते थे, इसमें तो कुछ नवीनता नहीं थी, परन्तु नगर का हरएक प्रेक्षक यह स्थिति देख थर २ धूज उठता था। ऐसी स्थिति में उन्होंने एक समय नहीं अनेक समय विहार किया है।

वाक्पटुता।

प्रिय और पथ्य वाणी किसी विरले पुरुष को ही होती है. ऐसे विरले पुरुषों में पूज्यश्री का दर्जा अति उच्च था. उनका वाक् चातुर्य अति प्रशंसनीय था. धर्म और हृदय की उच्च भावनाओं से मिश्रित तथा विचार के प्रवाह से प्रवाहित हुई उनकी असाधारण वाणी में अजब आश्चर्य था, अद्भुत शक्ति थी और परिपूर्ण निरवद्यता थी।

जिसतरह प्रशस्त प्रेम का पवित्र प्रवाह पूज्यश्री के नेत्र युगल से निरन्तर बहा करता था उसीतरह कमल वदन से भी व्याख्यान के समय बहता हुआ वचनामृत का स्रोत सर्वत्र प्रेम का "वसुधैव

कुटुम्बकम्" इस भावना का प्रादुर्भाव करने के परिणाम में लीन होता था । Give the ears to all but tongue to the few. इस न्याय से पूज्यश्री सब सुनते परन्तु विचारकर बहुत कम बोलते थे । जरूरत से ज्यादा न बोलते और जो कुछ बोलते वह जिनागम के अनुकूल ही बोलते थे । पूज्यश्री का व्याख्यान अनुपम था । त्रिविध तापों से तप्त शोकाकुल निराश आत्माओं को यह प्रतापी महात्मा नवीन उत्साह देते इनकी मधुरवाणी श्रवण करते ही आनन्दसागर उछलता । सुषुप्त हृदय की अन्धकारमय गुहा में जीवनज्योति का प्रकाश फैलता, श्रोतृगण की आत्मा जागृत हो कर्तव्यक्षेत्र में प्रविष्ट होती । इनका अद्भुत वीरत्व इनके प्रत्येक वाक्य २ में व्यक्त होता था । उनकी सुधावर्षिणी वाणी से विश्व पर अवर्णनीय उपकार होता था । वे कर्त्तव्य पथ से भ्रान्त पथिकों को सन्मार्ग दर्शक सद्विचार स्फुराते थे । जिन वाणीरूपअमृत से भरपूर अति मधुर जीवनराग सुनाकर कायरों की कायरता दूर करते उन्नति का मार्ग बताते, निडरता और साहसिकता के पाठ पढ़ाते थे । कर्त्तव्य पालन में प्राण की भी परवाह न करना यह उनके उपदेश का सार था । उनके लिये जीना, मरना समान था । वे स्थितप्रज्ञ और स्वस्वरूप स्थित थे । उनका देह-प्रेम छूट गया था । इसलिये वे अप्रतिबद्ध सम्पूर्ण स्वतन्त्र, अपरिमित सामर्थ्यवान, और विशुद्ध चारित्रवान बन गए थे । तीव्र वैराग्य के कारण समाधि लाभ हमेशा उनके समीप बैठा रहता था ।

इसलिये उनका सच्चारित्र मौन दशा में भी जन समूह पर जादूसा असर उत्पन्न करता था। तो फिर उनके पवित्र आत्मा की वाणी, व्यापार, लोगों के चरित्र, संगठन में अपूर्व अवलम्बन रूप हो, इसमें क्या आश्चर्य है ? कभी २ उनके सद्बोध का पूरा रहस्य, अल्पमति श्रोतृ समुदाय भी समझ सकती थी। उनकी वाणी का प्रभाव ऐसा अलौकिक था कि वह भव्यात्माओं के अन्तरपट को खोल देता था। पूज्य श्री की शास्त्रीय शैली ने निराश हुए कई श्रावकों को अत्यंत सहृदय आत्माओं को उत्साह और आशा दिला सतेज किये हैं। सूत्रों का स्वाध्याय रस के आनन्द से अर्वाचीन समय में मस्त होने वाले कितने मुनि हैं ? मलिन वृत्तियों को हटा कर, सात्विक वृत्तियों को जागृत कराने वाला पूज्य श्री के हृदय–सारंगी के तार से उत्पन्न हुआ हृदय-भेदक-संगीत कर्ण को कितना प्रिय लगता था ! सात्विक भावना के प्रकाश दीप को प्रकटाना तो अनुभवी उपदेशकों के भाग्य में ही लिखा है। सिर्फ कर्णेन्द्रिय को प्रिय हो वह क्या काम का है ? अर्थ गंभीरता आत्मा को प्रसन्न करदे तब ही असर होता है।

पूज्य श्री की वाणी सत्य और हितकारी थी किंतु सर्वथा सब को प्रियकर हो ऐसी वाणी उच्चारण करना यह उनकी प्रकृति के प्रतिकूल था। कभी २ किसी २ व्यक्ति को इनकी वाणी में कटुता प्रतीत होती थी। क्योंकि ज्वर पीड़ित मनुष्यों को शक्कर या मिश्री भी

बदले, क्वीनाईन या चिरायता या ऐसी ही कटु दवा चतुर मनुष्य देते हैं वैसे ही पूज्य श्री उन्मार्ग गामियों को सन्मार्ग पर लगाने वास्ते कटु वचन भी कह देते थे।

प्रत्येक को हित शिक्षा देना यह पूज्यश्री का खास स्वभाव फिर चाहे वह अपने से बड़ा ही क्यों न हो या छोटा; गुरु हो या गुरु का भी गुरु हो, सब को चाहे जैसा हो, निर्भयता से और सच्चे हृदय से कह देने की उनमें आदत थी, यह गुण (चाहे इसे सद्गुण कहो या दुर्गुण) उनके लिये कई समय आपत्तिकारक भी होगया था. ठंढी से थर २ धूंजते बंदर को गृह बांधने की शिक्षा देने में सुगृही को अपना घर खोना पड़ा था. ऐसा ही मौका पूज्यश्री को प्राप्त हुआ था, अपात्र पर दया कर उनपर उपकार करने में श्रीजी को कई समय बहुत कुछ सहन करना पड़ा था.. जिस तरह चूहे को थंड से बचाने में हंस को पंख रहित होना पड़ा था। उसी तरह पामर जीवों को पाप पंक में से बचाने जाते पूज्यश्री के बहुत २ सहन करना पड़ा था परन्तु ऐसे कर्त्तव्य निष्ठ, सहन शील और पर हित परायण पुरुषों का मन तो परोपकार करने में ही सच्ची मौज मानते हैं " सहन करवूं एह छे एक लाणु. "

पूज्यश्री की वाणी में गुणीजनों के गुणगान का भी मौका आता था, आप अपनी प्रशंसा या परनिंदा तो वे कभी करते ही न थे।

चर्चा के शब्दों की मारामारी में चाहे जैसी वकीली चलाई जाय परन्तु शब्दों की अब कीमत नहीं, कहने की अपेक्षा करके दिखाने का ही यह जमाना है. उनके फट के कभी भूले नहीं जाते।
' सुंदर सब सुख आन मिले, पण संत समागम दुर्लभ भाई '

" धनवंत को आदर करे, निर्धन को रखे दूर;
एऊ तो साधु न जाणिये, वो रोटियां को मजूर "
रंग घणा पण पोत नहीं, कुण लेवे उस साड़ी को ?
फूल घणा पण बास नहीं, कुण जावे उस बाड़ी को ?

निर्भयता

भय यह मानव जीवन की उन्नति में पीछे हटाने वाला भयंकर आवरण है। एक विद्वान् ने कहा है कि " भय यह मनुष्य के आसपास कटुता फैलाता है वह मानसिक, नैतिक, और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का नाश करता है और कितनी ही दफा मृत्यु तक का अवसर पैदा करता है वह सर्व शक्ति और विकास का नाश कर देता है। "

पूज्य श्री में बालवय से ही निर्भयता भरी हुई थी। खादेड़ा प्रतिगमन, कानोड़ में सांप के साथ चार माह तक निवास, मांडलगढ़ से कोटे जाते समय भयंकर जंगल का विहार, सुनेल के सुवा सो

के सामने का सत्याग्रह इत्यादि अवसरों से वे कितने निर्भय बने हुए थे वह वाचकों को विदित ही है।

लोकापवाद का भय भी उन्हें कर्तव्य विमुख कदापि न बना सका था। सम्प्रदाय परिवर्तन तथा अनेक बड़े २ साधुओं का बहिष्कार इत्यादि प्रवृत्तियों के ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत हैं सामान्य मनुष्यों के लिये लोकापवाद की भयंकर भींत उलांघना अति कठिन है।

जनभीरुता का स्थान पूज्य श्री में पापभीरुता ने लिया था। जनभीरुता इनके रोमांच में भी न थी। पापभीरुता इनके रग रग में भरी हुई थी। उन्हें देह की चिंता भी न थी। आत्मा की चिंता तो हमेशा रहती थी।

दुनियां मुझे क्या कहेगी? इस पर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया, कभी विचार भी नहीं किया, परन्तु सिर्फ महावीर क्या कह गए हैं? उनकी क्या आज्ञा है? यही उनका जीवन पर्यंत शोध रहा, यही चिन्तवना रही और वे वीर प्रणीत निरवद्य मार्ग पर निश्चयता से, निर्भयता से आगे २ बढ़ते ही चले गए। एक फारसी काव्य वे फरमाते थे कि:—

" तीर तलवार तब्र तेगा व खंजर बरसे;
जहर खून और मुसीबत के समुंदर बरसे;

बिजलियां चर्ख से और कोट से पत्थर बरसे,
सारी दुनियां की बलायें मेरे सरपे बरसे;
खतम होजाय हर एक रँजो मुसीबत मुझपर,
मगर इमान को जुंबिस हो तो लानत हो मुझपर।"

संयम सरिता का प्रवाह सहज ही शिथिल हो जाता तो उन्हें बड़ा दुःख होता था। बिलकुल रज जैसे बारीक छिद्र न पूरे जाय तो हाथी निकले जैसे द्वार होजाते हैं इसलिये छोटे कार्य से ही जल्द साल संभाल कर लेना वे पसंद करते थे। परन्तु प्रफुल्लित हुए वृक्षों में जब क्षय घुसने लगा, ईर्ष्या और अंगद्वेष रूपी कीड़े फल को ही खाजाने लगे, तब सम्प्रदाय के मुख्य सिद्धांत और सीमा की रक्षार्थ वे जागृत हुए, घबराये नहीं। अवसर के जानकार ये महात्मा तो कबूल करते थे कि मतभेद यह महान् पुरुषों ने भी स्वीकार किया है और सजीवता का चिन्ह है जागृत रहने की चाबी है।

"मुहु मुहुं मोह गुणे जयंतं। अणेग रुवा समणँ चरंतं।
फासा फुसंती असमंजसंच। नते सुभिक्खु मणसा पउसे"।
Bear and forbear.

सब सहन करलेते और आत्मा पर विश्वास रखते. परन्तु सत्ता के मद में चारित्र की पांख कटजाय या बाजी बिगड़जाय

इससे बहुत सावधान रहते थे। दुराग्रह से किसी विचार को पकड़े न रहते तथा शास्त्र का नियम खंडित हो वहां वे झुकते भी नहीं, परन्तु सत्याग्रह करते थे। समाज संरक्षा की सौंपी हुई जोखिम से वे हमेशा जागृत रहते थे।

शिष्यों के साथ के व्यवहार में कुसुम से कोमल मालूम होने वाला हृदय उनके अन्यायी व्यवहार के समय वज्र से भी कठिन बनजाता था। सत्य के ताप का यह तेज था। मतभेद के कारण सम्भोग न होने पर भी वे दूसरों के सद्गुणों की बेदरकारी न करते थे, परन्तु अवसर मिलने पर उनके गुणों की प्रशंसा करते थे। उन्होंने अपना समस्त जीवन श्री शासन देवी के शरण में ही समर्पण किया था। उनके वय के प्रमाण में दूसरा कोई व्यक्ति भाग्य से ही मिले, ऐसा अपूर्व गांभीर्य पूज्य श्री में प्रकट होगया था। सूत्र ज्ञान की प्रवीणता अनोखी थी। वे सूत्र के ज्ञान की पुनीत प्रकाशित किरणें फैलाने के लिये शिष्य समूह को खास आग्रह करते थे। ऐसे विचारशील धर्माध्यक्ष के आश्रय में संख्या-बद्ध साधु आकर्षित होते और मनमानी प्राप्त कर जन्म सार्थक करते थे।

धर्म के कारण मरना, प्राण देना यह कुछ प्राचीन समय की ही रूढ़ि रहा, जब २ धार्मिक तेजस्विता कम होती हुई दृष्टिगत

होती, कि जल्द ही उसकी कीर्ति बढ़ाने की फिक्र लगती । धार्मिक जुल्म सहन न होता परन्तु उसे बिलकुल निर्मूल करने का ही प्रयास होता था । परिणाम में सत्ता भिन्नता पकड़ती, सर्वानुमत असम्भव हो जाता, अनिवार्य प्रसंग उपस्थित होने से भिन्न २ सम्प्रदाय होते गए और पोषाते गए, इतने अधिक सम्प्रदायों का अस्तित्व ऐसे ही कारणों का आभारी है । सांसारिक व्यवहार या मान्यता को पकड़ कर भिन्न चौतरे पर चढ़ भिन्न २ बात कहना यह भिन्न बात है गुन्हेगारों का गुन्हा बिलकुल साफ प्रकट होजाने पर भी ममत्व के कारण कितनी ही ज्ञातियों में गुन्हेगार के सगे सम्बन्धी भिन्न तड़ें डालदेते हैं उसीतरह सत्य की शमशेर के अभाव से संयम रणांगस में उतरे हुए इन तड़ों का अनुकरण करें तो श्री महावीर भगवान् की आज्ञाओं का प्रत्यक्ष अपमान होता है और श्री संघ का आदर भाव गुमाते हैं ।

अलबत्त शरम भरी हुई स्थिति में बेशरम कबूल से आघात तो होता है परन्तु धार्मिक कायदे तो जीव को जोखिम में डालकर ही निभाने पड़ते हैं इन कायदों पर अपील नहीं, ठहराविक सजा भुगतना ही चाहिए, भविष्य की भूलों का भान ऐसी सजाओं से ही जागृत रहता है और दूसरों को भी जागृत करता है । वृत्ति को पलटाने की यह कसोटी है । कसोटी के कस में शुद्ध कंचन ज्यों पार उतरने वालों का ही संयम सार्थक है ।

आकर्षणों में फंसने वाले धोबी के कुत्तों की तरह न घर के न घाट के, धर्म के नियमों के कारण प्राणार्पण करने वालों के और अभिग्रह धरने वालों के प्राचीन दृष्टांत बहुत हैं आज भी ऐसे धर्म वीरों का पाक प्रस्तुत है ।

अपनी ही सम्प्रदाय के एक साधु की दृष्टांत ध्यान में देने योग्य है । दो प्रहर को कुछ औषधी लेने एक युवान साधु को एक गृहस्थ के वहां जाना पड़ा, उस मकान में उस समय एक विधवा स्त्री के सिवाय कोई न था, मुनिराज पीछे फिरते थे कि वह स्त्री विकारवश हो मुनि के पीछे पडी । मुनि ने असरकारक उपदेश दे स्त्री धर्म समझाया, परन्तु काम अंधा है समय बड़ा तीव्र था बूम देने से उलटी अपनी इज्जत बिगड़ती है आत्मा के श्रेय के कारण ही सिर मुंडाने वाले इन मुनि ने मन में ही आलोयणा कर अपनी जीभ काट अपने व्रत निभाने वास्ते अपनी प्रतिज्ञा पालने वास्ते अपने धर्म वास्ते अपना प्राण बहादुरी से अर्पण किया । एक गुरु ने शिष्य के संथारे के समय शिष्य की शिथिलता के कारण उस संथारे के स्थान पर सोकर प्राण दे टेक निभाई थी ।

आयर्लेंडमें नगर सेठ लार्ड मेयरने जेलमें खुराक न ले उपवास कर आत्मभोग दिया श्रीयुत् शेठी अर्जुनलालजी ने जेल में इष्टदेव के दर्शन बिना किये अन्न लेना इन्कार कर दिया था । रामरक्त ब्राह्मण ने अंडमान में जनेव बिना अन्न न ले नव्वे दिन भूखे रह मृत्यु स्वीकार

की थी ऐसे दृष्टांतों पर खास पुस्तक लिखी जा सकती है यहां सिर्फ संकेत करने का कारण यह है कि धार्मिक नियम धार्मिक प्रतिज्ञा यह कुछ बालक का खेल नहीं है कि अपनी इच्छानुसार कसोटी के समय प्रतिज्ञा को त्याग दें और समय के वश होजांय।

'नवजीवन' इस सम्बन्ध में अपना यह अभिप्राय व्यक्त करता है कि इस सुधार के जमाने में ऐसे प्राणत्याग को कोई मूर्खता से भरा हुआ भी कहदे, क्योंकि जनेव के कारण मरने को तैयार हो जाना ऐसी सलाह आजके समय कोई सचमुच में नहीं देगा. परन्तु अपने को जो वस्तु धर्म जची है उसके लिये प्राण देने की शक्ति तो प्रत्येक मनुष्य में रहनी ही चाहिये. वर्त्तमान समय में समाज में से यह शक्ति बहुत कम होगई है इसीलिये समाज में पामरता दृष्टिगत होती है और अधर्म इतना बढ़ा चला आता है।

ईसु के इन वचनों का सार अंतःकरण में उतारना ठीक है कि गेहूं का कण जबतक जमीन में दबकर नहीं मरता तबतक जैसा का तैसा रहता है।

सत्य और निर्भयता आत्मभोग बिना सजीवन नहीं होती। सचमुच जो हमें मर्द नहीं बनना है अपनी इज्जत कायम रखने जितना भी पुरुषार्थ हम में नहीं है स्वतः में प्रभु और पंच की साक्षी से ली हुई प्रतिज्ञा पालने की सामर्थ्य भी (मर्दपना) नहीं है तो यह

ठीक है कि लाचारी के साथ अपना पहिना हुआ भेष उतारकर फेंकदे, परन्तु भेष को न लजावें, दंभ से दुनिया को न ठगें. चोर चोरी करे इसमें नवीनता नहीं है परन्तु चोकी पहरे वाले, रक्षण करने वाले ही भक्षण करने लगजाँय वह असह्य होजाता है।

कर्तव्य पालन की टेवें निर्भयता का पोषण करता है. पूज्यश्री का जीवन विविध घटनाओं से पूर्ण है वे कभी दुःख से दबे नहीं, किंकर्तव्यमूढ़ बने नहीं, उदासीनता से दुबले हुए नहीं, आत्मा की भूख मिटाने, प्यास छिपाने में उन्होंने अविश्रान्त श्रम किया है. पाप पुंज के अग्नि समान और अन्याय के शत्रु समान वे हमेशा गर्जारव करते रहे, कभी भी कोमलता नहीं त्यागी. श्रीकृष्ण को एक ब्राह्मण ने लात मारी उसे अलंकार की तरह धारण करली, गांधारी ने घोर श्राप दिया, जिसे श्रीकृष्ण ने अधिक सन्मान दिया. साधु सरिता की ओट होजाने पर भी श्रीजी ऐसे ही अविचलित, गंभीर और महासागर बने रहें।

"आचार सिंधु महा शोधक मोती नोंतु !
दोरी विना उदधि ने तलीये ज्वानुं !
त्यां मच्छ सिंधु महिं, छाया गली जनारा !
तोफान गिरि मूल तेय उखेड़नारा !
ते राक्षसोनी उपर प्रीति राखवानी !
ते राक्षसोनी सहसा अव दैव अंश !

छे युद्ध तो जगाववुं, पण प्रेण प्रेम राखी !
लोही लीधा वगर लोही दइज देवुं ।"
कलापी.

एमर्सन के ये वाक्य यहां याद आजाते हैं ।

"Doubt not O Poet but persist say-it is in me and shall outstand there, bulked and dumb shu'tering and stammering hissed and hooted, stared and strive until a last ruge draw out of thee that dream power which every night shows thee is thine own. A man transcending all limit and privasy and by virtue of which a man is conductor of the whole river of electricity." Emerson.

स्मरणशक्ति ।

पूज्यश्री की जैसी स्मरणशक्ति अच्छे २ अवधानियों में भी नहीं दिखती. उनकी असाधारण स्मरणशक्ति के एक दो उदाहरण यहां देता हूं ।

पूज्यश्री राजकोट विराजते थे, तब एक दिन मोरवी से कितने ही अग्रगण्य श्रावक मोरवी पधारने के लिये विनन्ती करने आये थे. उनमें सेठ अम्बाविदास डोसाणी भी थे. जब सेठ अम्बावीदास भाई ने वंदना की, तब महाराज श्री ने उनका नामले 'जी' कहा,

यह देख अम्दावीदास भाई को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्हों ने कहा कि " महाराज श्री ! मुझे तो आज ही पहिले पहल आपके दर्शन का लाभ मिला है तब आप मुझे कैसे पहचान सके ? पूज्यश्री ने कहा कि अजमेर कॉन्फरन्स के समय मैंने तुम्हारा फोटू देखा था, उस पर से मैं तुम्हें पहचान सकाहूं ।

उदयपुर के श्रावक रतनलालजी मेहता कहते कि " उदयपुर में हम रात्रि के समय पूज्य श्री के साथ अधिक रात बीतने तक ज्ञान चर्चा करते रहते थे । पूज्य श्री अंदर मकान में विराजते और हम बाहर बैठते थे तब कोई श्रावक वहां से जाता तो तुरन्त महाराज श्री कह देते कि ये अमुक श्रावक है जिससे उपस्थित श्रावकों को अत्यन्त आश्चर्य पैदा होता । एक समय मैंने प्रश्न किया कि महाराज हम उसे नहीं पहचान सकते और आप अंधेरे में भी उसे कैसे पहचान सकते हैं ? पूज्य श्री ने उत्तर में फरमाया कि उसकी चाल और पग रव पर से मैं अनुमान कर सका हूं इसी तरह बाहर ग्राम के आये हुए श्रावक रात को वंदना करने आते और 'मत्थेराणे वंदामि' बोलते ही उसे सुन पूज्य श्री उसे पहचान लेते थे । बहुत वर्ष बीत जाने पर भी अंधारे में केवल आवाज से ही पूज्य श्री पहचान सकते थे ।

अपने समागम में सिर्फ एक ही समय जो मनुष्य आया हो

उसका नाम ठाम पूज्य श्री नहीं भूलते थे । भीणाय वाले पंडित बिहारीलालजी इस के सबूत में सत्य कहते हैं कि:—

" मुझे इनकी अद्भुत स्मरण शक्ति देख अत्यन्त आश्चर्य होता था और कभी २ मुझे ऐसा भान होता कि ये मनुष्य हैं या देवता हैं ।

कर्तव्य पालन में सावधानी ।

आचार्य पद प्राप्त हुए पश्चात् दूसरों की तरह अपना प्रचार बढ़ाने की ओर पूज्य श्री का बिलकुल लक्ष न था, परन्तु अपनी आज्ञा में विचरने वाले चतुर्विध संघ में ज्ञान, दर्शन, चारित्र तप को बढ़ा कर जैन शासन की उन्नति करें यही उनका परम ध्येय था । पूज्य श्री अपने साधुओं से बार बार कहते कि:—

" तुमने दिक्षाली है और घर कुटुम्ब स्त्री सब को छोड़ दिया है सो अब उनके काम के तो तुम नहीं रहे हो यह दिक्षा चिंतामणि रत्नों का हार है इसको अच्छी तरह से पालने में उत्कृष्टा रस आवेगा तो सिर्फ एक भव कर के मोक्ष में चले जाओगे संसार के सुख वैभव भुंगड़े की मुठी समान हैं सो इस भुंगड़े की मुठी के वास्ते चिंतामणि रत्नों का हार मत खो बैठना " व्याख्यान बाचने वाले साधुओं को उद्देश्य कर वे कहते कि:—

"अन्य को उपदेश देना सरल है परन्तु उस मुआफिक वर्ताव करना कठिन है उपदेशक होने की अपेक्षा आदर्श होने में ही अपना और जगत का श्रेय विशेष सिद्ध कर सकते हैं इसलिये मुनियों ! तुम उपदेष्टा होने के पहिले दृष्टांत रूप बनो । वचन की अपेक्षा वर्ताव में बल अधिक है उत्तम वर्ताव कभी भी न घिसे ऐसे गहन संस्कारों द्वारा परिचित जनों के हृदय पट पर अंकित हो जाता है" ।

पूज्य श्री बाह्य त्याग की अपेक्षा आंतर त्याग को प्रधान पद देते और कहते कि:—

" विषय कषाय के त्याग रूप आंतर त्याग विना सिर्फ बाह्य त्याग जीवन के विना देह विना नीर के कुए जैसा है । वे कहते कि:—

कामना सब दुःखों की जननी है । निष्काम वृत्ति धारण करना यही सुख प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन है । खारे जल के पीने से तृषा तृप्त नहीं होती परन्तु उलटी अधिक तृषा लगती है इसी तरह विषयों के सेवन से विषय वासना घटती नहीं परन्तु उलटी अधिक बढ़ती है "

" अशुचि मय शरीर पर मोह ममत्व रखना यह बड़ी भारी भूल है । शरीर के अन्दर जो २ वस्तुएं हैं वे अगर शरीर के बाह्य

भाग पर होती तो उसे खाने को गीद्ध कोए, इत्यादि पक्षी शरीर पर गिरते और उन्हें हटाने में ही अधिक समय व्यतीत करना पड़ता।"

"मुनियो! तुम जो संसार के क्षुद्र बंधनों से पूर्ण वैराग्य पूर्वक मुक्त हुए हो अगर हो जाओ तो तुम आनन्द की भूमि में विचरने वाले हो। भय और दुःख तो हमेशा तुम्हारे से दूर ही रहेंगे। दुनियां जिसे दुःख २ कह कर रोती है उसे तो तुम आनंद देने वाली मान लोगे"

"केवल शास्त्र पढ़ने से ही मुक्ति नहीं मिल सकती परन्तु शास्त्र की आज्ञानुसार चलने से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है"।

उपरोक्त सद्बोधामृत का अपने शिष्य समुदाय को पान करा कर कर्तव्य पालन के लिये उचित प्रोत्साहन देते थे और अपने उत्तम चारित्र बल से सम्प्रदाय की नांव सही सलामत रीति से रास्ते पर आगे बढ़ाते चले जाते थे।

चतुर्विध संघको पूज्यजी परमावलम्बन के समान थे। सत्पुरुष सद्गुण और सद्वर्तन की जीती जागती मूर्ति हैं सब संग परित्यागी किये हुए महात्माओं के देखते ही उनके दर्शनमात्र से ही कई संस्कारी जीवों को उनके उत्तम गुणों के अनुकरण करने की स्वतः

ही स्फुरणा हो आती है। सचमुच महात्मा पुरुष इस अंधकार मय संसार समुद्र में फिरती हुई जीवन नौकाओं को खराब मार्ग में टकराकर नाश होने से बचाने वाली दीपदाण्डियों के समान है।

श्री वीतराग प्रभु की आज्ञा का विराधन न हो और अपनी आज्ञा में विचरते साधु आचार में शिथिल न होजायं सिर्फ इसी के लिए उन्होंने शोभते साधुओं को अपनी सम्प्रदाय से अलग करने में तनिक भी देर न की थी जो वे थोडी भी झुकती दोरी कर देते तो भिन्न हुए कितने ही विद्वान् साधु, वक्ता, शास्त्र के ज्ञाता सुप्रसिद्ध मुनि और स्थेवर उनकी आज्ञा में चलना अपना गौरव समझते, परन्तु जिनाज्ञा को अपना सर्वस्व मानने वाले पूज्य श्री ने उनकी आज्ञा के बाहर एक पांव भी रखना न चाहा। पूज्य श्री के लिए यह सचमुच कसोटी का प्रसंग था और जिसमें भी उन्हें "प्राणान्ते ऽपि प्रकृति विकृति जायते नोत्तमानाम्" अर्थात् उत्तम पुरुष की प्रकृति में प्राणांत कष्ट तक भी विकृति नहीं हो सकती यह कथन सत्यता सिद्ध कर दिखा सकता है।

प्रत्येक महान पुरुष को अपने युग के बड़े से बड़े खास अन्यायों के साथ लड़ना पड़ता है, जिस से क्राइष्ट हजरत महमद, गौतमबुद्ध, मार्टीन ल्युथर और अपने लौकाशाह इन सबको अपने युग की कठिनाइयों और अन्याय के साथ लड़ना पड़ा था, कइयों

को मरना भी पड़ा था पूज्य श्री को भी चारित्र शुद्धि के लिये अपना आत्मभोग देना पड़ा था ।

फांसी की सज़ा पाए समाज वाद के एक कवि जोहले ने कहा है कि ।

Don't mourn for me;
Friends ! organise !!

दोस्तो ! मेरे लिये शोक न करते समाजको सुव्यवस्थित करने ऐसा ही उपदेश श्रीजी के अवसान समय का था..

त्याग

" धर्म के प्रत्यक्ष अनुभव का प्रथम सोपान त्याग है जहां तक बने वहां त्याग तक व्रत स्वीकार करें "

स्वामी विवेकानन्द

पूज्यश्री के रक्त के एक २ अणु में त्याग की भावना उछल रही थी दुनियां धन दौलत हाट हवेली स्त्री इत्यादि मिलाकर आनंद पाती है परन्तु पूज्यश्री इन सब के त्याग में परमानन्द अनुभव करते थे.. बाह्य और अंतर इन दोनों प्रकार के त्याग से उन्हों ने आत्माको समुज्वल किया था, सर्व संग परित्यागी और तपोधन महात्माओं के देखते ही त्याग वैराग्य की उर्मियां देखनेवालों के

हृदय में उछलने लगती ऋद्धि और रूप गुणवती रमणी को छोड़ घोर कष्ट सहने वाले इन साधु शिरोमणि के दर्शन मात्र से ही बहुत से लखपति और क्रोड़पति के हृदय में दान के गुण स्वतः प्रकटते और यथाशक्ति दान पुण्य करने की वृत्ति सहज ही हो जाती।

सचमुच सत्पुरुष सद्गुणों की जीती जागती मूर्ति है, इस अंधकार मय संसार समुद्र में पर्यटन करती हुई अपनी जीवन नौका को चट्टान से टकराकर नाश होने से बचाने वाली ये दीप शिखाएं हैं, उन्नति की दिशा बताने वाले ये ध्रुव के तारे हैं।

Be in the world, not of the world.

निरहंकार वृत्ति।

दूसरे जब कीर्ति के पीछे दौड़ते फिरते हैं और जहां तहां अपनी बड़ाई के फव्वारे छोड़ते हैं वहां पुज्य श्री कीर्ति को उन्नति के पथमें अंतराय सम समझ उस से दूर भागते थे.

पहिले पाठक देख चुके हैं कि पूज्य श्री पूर्ण शास्त्र विशारद, समर्थ ज्ञानी होने पर भी श्रावकों से चर्चा करते समय क्वचित् कोई गहन प्रश्न का निराकरण करने में उन्हें कठिनता प्रतीतहोती तो उस समय वे विना संकोच कहदेते कि इस समय मेरी बुद्धि

काम नहीं देती एक बड़े आचार्य होने पर सभा में स्पष्ट ऐसा कह नेवाले निरभिमानी स्फटिक रत्न जैसे निर्मल हृदय के महापुरुष बिरले ही होंगे ।

लिंबड़ी सम्प्रदाय के विद्वान् मुनि श्री उत्तमचंदजी महाराज की प्रशंसा करते हुए पूज्य श्री कहते कि अमुक सिद्धांत वचन का सच्चा रहस्य मुझे उन्होंनें समझाया है । इसी तरह गोंडल संघाड़े के आचार्य श्री जसाजी महाराज के ज्ञान की भी वे तारीफ करते थे । पंडित श्री रतनचंदजी महाराज के पास से विनय पूर्वक चंद्रप्रज्ञप्ति सूत्रकी बांचना लेते थे, यह कितनी अधिक लघुता ।

पूज्य श्री किसी ग्राम पधारते या कहीं से विहार करते उसकी खबर श्रावकों को न होने देते थे, एक समय छतरपुरे से ब्यावर पधारते थे तब रास्ते में खबर मिली कि सैंकड़ों श्रावक श्राविकाएं आप के सन्मुख आरहे हैं महाराज श्री ने यह सुन दूसरी राह ली और विकट रास्ते चल एक छोटे से ग्राम में पधारे वहां ओसवाल का एक भी घर न था। उसने कहाकि हमारी पीढियां बीतगई परंतु कोई साधूजी यहां पधारे ऐसा मैने नहीं सुना ।

पूर्ण योग्यता न होने पर भी आचार्यपद प्राप्त करने के लिये कितने ही साधु तनतोड़ परिश्रम और व्यर्थ के दावे रचते हैं ।

परन्तु पुज्य श्री को आचार्यपद प्राप्त होते भी उन्हों ने सं० १९७१ में अपने बहुत से अधिकार अपनी सम्प्रदाय के सुयोग्य मुनिवरों को सुपुर्द कर स्वतः ने अपने सिर का भार हलका किया था।

अखिल भारतवर्ष के साधु मार्गी जैन सम्प्रदाय में सब से अधिक साधुओं पर आधिपत्य धरानेवाले ये पूज्य श्री थे और उन के सदुपदेश से अनेक भव्यात्मओं ने वैराग्य पा दिक्षा ली थी तौभी आश्चर्य यह था कि उन्होंने अपनी नेश्राय में एक भी शिष्य न किया। उन्होंने तो दिक्षा न लेने के पहिले शिष्य न करने का निश्चय कर लिया था।

शिष्य के लिये संयम लुटानेवाले, चाहे जिसे मूंड़ अपने परिवार या नाम बढ़ाने की आकांक्षा वाले साधु पूज्य श्री का अनुकरण करें तो क्या ही अच्छा हो? करोड़ो तारों से जो अंधकार दूर नहीं होता वह सिर्फ एक चंद्र से दूर हो सकता है। जैन समाज में अभी भी लालजी जैसे चंद्र की आवश्यकता है। वेषधारी या जैनाभावी, प्रमादी, या पासत्थे के झुंड के झुंड मूंड़ कर इकट्ठे करने से उसका उद्धार नहीं हो सकता। वे जो जैन शासन रूपी सूर्य को राहू रूप और जगत के केवल भाररूप हैं।

परमत सहिष्णुता।

एकांत में या व्याख्यान में पर धर्म की निंदा का एक शब्द

भी पूज्य श्री के मुंह से न निकलता था। इतना ही नहीं परन्तु अन्य दर्शी पूज्य श्री की वाणी सुन सन्तुष्ट होते थे।

जोधपुर के चातुर्मास में एक समय एक रामस्नेही सम्प्रदाय के अनुयायी गुलाबदासजी अग्रवाल जो अभी पक्के जैनी हैं पूज्य श्री के पास आ प्रश्न किया कि महाराज मुझे कोई ऐसा सीधा सरल उपाय बताइये कि जिससे मेरा मन शांत और स्थिर रहे।

महाराज श्री ने कहा कि भाई, तुम रामको जपते हो, उसीतरह चित्त को विशेष एकाग्र कर निरंतर रामनाम जपते रहो भक्ति से तुम्हारा मन पवित्र और शांत हो जायगा। यह सुनकर तथा महाराज श्री की सब धर्म पर ऐसी उदार भावना देखकर वे महाशय अत्यन्त आनंदित हुए और पूज्य श्री के सत्संग से जैन धर्म का रहस्य समझ जैन धर्म उन्होंने प्रेम पूर्वक स्वीकार किया।

कई उपदेशक अन्यधर्म की निंदा कर उस धर्म को जैन-धर्म के अनुयायी बनाने की आशा रखते हैं परन्तु इसका परिणाम उलटा होता है लोग ऐसे निंदकों से हमेशा भड़क कर दूर भागते हैं ज्ञानी पुरुष शुद्ध आत्मिक प्रेम की शृंखला से दुनिया को युक्ति मार्ग की ओर लगाते हैं अन्य सम्प्रदाय या धर्म की निंदा करने से सम्प्रदाय की सेवा बजाने का भ्रम कइयों के हृदय से उन्होंने निकलवा दिया है।

परनिंदा परिहार ।

पूज्य श्री कदापि किसी की निंदा न करते और न सुनते थे और अपने भक्तों को भी निंदा से सर्वथा दूर रहने का आग्रह पूर्वक उपदेश देते थे इसके लिए सिर्फ एक ही दृष्टांत बस है ।

सं० १९७६ के पौष माह में पूज्य श्री जावद में विराजते थे तब रतलाम के श्रावक बालचंदजी श्रीमाल पौषध कर पूज्य श्री की सेवा में बैठे थे उस समय जावरे के एक श्रावक ने आकर तेजसिंहजी महाराज की सम्प्रदाय के साधु प्यारचंदजी तथा इंदरमलजी से संभोग प्रारंभ करने के लिए पूज्य श्री से अर्ज की और विशेषता में कहा कि अभी ऐसा ही मौका है जो आप विचार न करेंगे तो दूसरे पक्ष वाले दुश्मन इन्हें मदद देंगे। यह वाक्य सुनकर आचार्य श्री बोले कि भाई तुम दुश्मन किसे कहते हो ? वे तो हमारे परम मित्र हैं उनकी प्रवृत्ति से हमें अपना चारित्र विशेष विशुद्ध करने का अवसर प्राप्त हुआ है ।

उस समय वहां वे दोही श्रावक थे। और दोनों पूज्य श्री के परम भक्त थे, तोभी एकांत में भी पूज्य श्री दूसरे पक्षवाले को परम प्रिय समझ बातचीत करते थे ।

उपरोक्त घटना घटी उसी दिन पूज्य श्री ने बातचीत में बाल-

चंदजी श्रीमाल से कहा कि मेरे सम्बन्ध में इस मामले में कुछ भी लेख निंदा या स्तुति रूप तुम्हें नहीं छपाने चाहिए।

इसके सौगंध लेलो, परन्तु उन्हों ने कुछ उत्तर न दिया, तब पूज्यश्री ने फिर फरमाया कि जो तुम सौगन न लेओगे तो मैं तुमसे बोलनाभी बंद कर दूंगा, तब उन्होंने उसी समय सौगन लेलिये।

दूसरे उनकी निंदा करते हैं ऐसे शब्द कभी वे सुनते तो उस मौके पर पूज्यश्री की गंभीर मुखमुद्रा पर उसका अणुमात्र भी असर नहीं होता था, तथा एक भी शब्द उनके मुंह से निंदा या अप्रसन्नता का इसके प्रतिकूल कभीनहीं निकलता था।

किसी भी धर्म वाले के साथ बड़ाई के कारण शास्त्रार्थ करने वितडावाद में उतरने के लिये पूज्यश्री बिलकुल खुश न थे. जिसका मुख्य कारण अपनी वाणी विवेक बचाये रखना ही था।

सं० १९७५ के चातुर्मास में एक समय उदयपुर में पूज्यश्री के व्याख्यान में एक वक्ता ने अपने भाषण में अमुक पक्षके साधुओं की प्रवृत्ति के लिये सत्य परन्तु कटु टीका की, इस टीका के मंगलाचरण में ही पूज्यश्री पाटपर से उठकर चलेगए।

उदयपुर में तीन आचार्यों के चातुर्मास संवत् १९७१ में एकसाथ हुए थे, उस समय तेरहपंथी एवम् मूर्तिपूजक भाइयों ने

निंदा ट्रेक्टबाजी इत्यादि कई क्लेशवर्धक प्रवृत्तियां की। परन्तु पूज्यश्री ने अनुपम क्षमा और शांति धारण कर निंदकों को प्रशंसक बना लिये थे, उनके साथ पूज्यश्री का प्रेममय वर्ताव "द्वेष का नाश द्वेष से नहीं परन्तु प्रेम से ही होता है" इस आप्तवाक्य को चरितार्थ करता था। पूज्यश्री का प्रेममय व्यवहार जावरे वाले मुनिराजों के निम्नांकित काव्यों से स्पष्ट समझा जायगा।

राग आसावरी।

पूजजी के चरनों में धोक हमारी, जाऊं क्रोड़ २ बलीहारी
पूजजी के चरनों में धोक हमारी।
टोक नगर में रेनो थो मुनि को, मात पिता परिवारी।
गुरु मुख उपदेश सुनीने, लीनो संजम भारी॥ पूज० ॥ १ ॥
आतम वंस कर इंद्री जीती, विषय विकार विडारी।
वैराग्य माहे जली रया हो, धन २ हो ब्रह्मचारी॥ पूज० ॥ २ ॥
होकम मुनि की संप्रदाय में, प्रगट भये दिनकारी।
अचारज गुण करने दीपो, महिमा फैली चउदिशकारी॥ पू० ३ ॥
नाम आपको श्रीलालजी, गुण आपका है भारी।
चारों संग है मिल पदवी दीनी रत्नपुरी पुजारी॥ पूज० ॥ ४ ॥
बीजचंद्र ज्यूं कला बढ़त है, पूरण छो उपकारी।
निरखत नैना तृप्त न होवे, सूरत मोहनगारी॥ पूज० ॥ ५ ॥

क्या तारीफ करू में आपकी, वाणी अमृतधारी ।
मुझ ऊपर किरपा झट कीजे, पूरण होत विचारी ॥ पूज० ॥ ६ ॥
उगणीसे इकसठ साल में रतनपुरी गुजारी ।
चोथमल की याही विनती, कदमों में धोक हमारी ॥ पूज० ॥ ७ ॥

पूज्य श्री हुकमीचंद्रजी महाराज की पाटावली ।

इस भरत खण्ड में तरण तारण की जहाजें
हुआ हुकमीचंद्रजी महाराज सुधारे काजे ॥ टेर ॥

इकवीस वर्ष लग बेले तप ठाया,
इक वस्तर ओढ़त, ओढ़त अंग जीर लगाया ।
करी आचार विचार को शुद्ध सिंघ जिम गाजे ॥ हु ॥ १ ॥

पीछे पूज्य श्री सीवलालजी महा यश लीनो,
तेतीस वर्ष तक तप एकांतर कीनो ।
बहुविधि सम्प्रदा साधु साध्वी आजे ॥ हु ॥ २ ॥

श्री उदयचंदजी महाराज आचरज भारी,
केई राजा को समझाय आतमा तारी ।
ये तो हुआ जगत विख्यात सिंघ जिम गाजे ॥ हु ॥ ३ ॥

चौथे पाट हुआ चौथमलजी महा गुणवंता,
हुआ पंडितों में परमाण आचार्य दीपंता।
केई जण को दियो ज्ञान ध्यान और साजे ॥ हु ॥ ४ ॥

अब पंचम पाटे आप हुआ बड़ भागी.
श्रीलालजी महा गुणवंत छती के त्यागी,
कियो धर्म अधिक उद्योत मिथ्यात्वी लाजे ॥ हु ॥ ५ ॥

ये मुनी माल रसाल ध्यान नित धरना,
हीरालाल कहे इस धर्म उन्नति करना।
जीवागंज कियो चौमासो मोक्ष के काजे ॥ हु ॥ ६ ॥

अथ स्तवन।

पूज्यजी सीतल चंद्र समान, देखलो गुणरतनो की खान ॥ टेर
जिन मारग में दीपतासरे, तीजे पद महाराज।
कली कालमें प्रगट भये हो, दया धर्म की जहाज ॥ पु ॥ १ ॥
पूर्व पुण्य में आप पूज्यजी पूरा पुण्य कमाया।
धन्य है माता आपकी, सरे ऐसा नंदन जाया ॥ पु ॥ २ ॥
मीठी वाणी सुणी आपकी, खुशी हुए नर नार;
फागण सुद पूनम के ऊपर कियो घणो उपकार ॥ पु ॥ ३ ॥

हाथ जोड़ कर करूं वीनती, अरजी पर चित दीजे ।
बनी रहे सुनजर आपकी, चरणोंमें रख लीजे ॥ पु ॥ ४ ॥
भवजीवां ने तारतासरे, किरपा करी दयाल,
रामपुरे महाराज विराजे, रह्या कल्पतो काल ॥ पु ॥ ५ ॥
उगणी से त्रेसठ पुज्यजी, ठाणा एक सहस्र आठ
रामपुरा में खूब लगाया, दया धर्मका ठाठ ॥ पु ॥ ६ ॥
महामुनि नंदलाल तणा शिष्य, कहे सुणो गुरुदेवा ।
वो दिन भलो ऊगसी सरे, मिले आपकी सेवा ॥ पु ॥ ७ ॥
(मुनि खूबचंदजी कृत

तपश्चर्या ।

एकांतरः—पूज्य श्री के ३३ चातुर्मासों में एक भी चातुर्मास ऐसा शायद ही गया होगा कि जिस में आषाढ़ चौमासे से संवत्सरी तक उन्होंने एकांतर उपवास न किये हों । कई वक्त वे कार्तिक पूर्णिमा तक उपवास प्रारंभ रखते थे ।

बेला, तेला, चोला, पचेला, तो उन्होंने इतने किये हैं कि उन को पूरी २ गिनती देना भी अशक्य है । पूज्य पदवी प्राप्त होने के पश्चात् ६ वर्ष तक तो हर महिने वे एक २ तेला विना नागा करते थे । फिर भी कोई एकही ऐसा मास गया होगा कि जिस में पूज्य श्री ने तेला न किया हो ।

छः सात और आठ उपवास के भी उन्होंने कई स्तोक किये हैं सात २ आठ २ उपवास के दिन भी पूज्य श्री स्वयं ही व्याख्यान फरमाते थे।

तेरह उपवास का भी एक स्तोक पूज्य श्री ने किया था।

वैयावृत्यः—स्वयं आचार्य होने पर और शिष्य समुदाय भी अति विनीत होने पर भी आप स्वयं आहार पानी लाते और शिष्यों के लिये भी ला देते थे। इतना ही नहीं परन्तु पात्र, झोली, पल्ले, इत्यादि धोने या पानी छानने इत्यादि के कार्य में भी वे शिष्यों की पूरी मदद करते थे। उनके विनयवंत शिष्य ये काम न करने के लिये पूज्य श्री से वार २ निवेदन करते परन्तु वे अपने स्वभाव के कारण प्रमाद न कर कोई न कोई धर्म कार्य या वैयावृत्य में लगे रहते थे।

अल्पनिद्रा और स्वाध्यायः—पूज्य श्री रात को १० या १२ और कभी २ एक बजे तक निद्राधीन न होते थे और एक दो या तीन बजे जागृत हो जाते थे। एक प्रहर से अधिक निद्रा वे कचित ही लेते थे। नित्य प्रति रात को दो से तीन बजे तक निद्रा से जागृत हो सूत्र की स्वाध्याय करते थे। बहुत से सूत्र, उन्होंने कंठस्थ कर लिये थे। उसमें से दशवैकालिक सूत्र का पाठ तो वे सबसे पहिले कर लेते थे। फिर उत्तराध्ययन के कितने

ही अध्ययनों का पाठ करते थे। इसके पश्चात् आचारांग सूत्र-कृतांग, नंदी, सुखविपाक इत्यादि जो सूत्र कंठस्थ थे उनमें से किसी सूत्र का स्वाध्याय करते थे। फिर अर्थ का चिंतवन और तत्वविचार में लीन हो अप्रमादपन से रात निर्गमन करते थे, संखयाबद्ध स्तोक उन्हें कंठस्थ थे, उनकी पर्यटना वे हमेशा करते थे, उनमें भी २४ तीर्थंकरों का लेखा ज्ञानलब्धि इत्यादि कई थोकड़ों की पर्यटना तो वे नित्य प्रति करते थे।

कभी २ एक आध घंटे की निद्रा ले वे जागृत हो जाते और स्वाध्यायादि में प्रवृत्त रहते थे। फिर निद्रा आने लगती तो स्वाध्याय किये पश्चात् एक आध घंटा निद्रा लेलेते और प्रतिक्रमण के पहिले जागृत हो जाते थे. सूत्रों की स्वाध्याय कई समय वे अपने शिष्यों के साथ करते, शिष्य भी जल्द उठ पूज्यश्री के साथ स्वाध्याय करने लग जाते थे.

धीमे २ परन्तु गंभीर और सुमधुर स्वर से इस स्वाध्याय सुनने का जिन २ भाग्यशाली साधु श्रावकों को सुअवसर प्राप्त हुआ है वे कहते हैं कि हमारे जीवन की वे सफल घटिकाएं थी, उस समय का दृश्य कितना रम्य, बोधप्रद और आकर्षक था कि सिर्फ अनुभव से ही ज्ञात हो सक्ता है। सूत्र की अलौकिक वाणी का प्रवाह रात्रि की नीरव शांति में पूज्यश्री जैसे पवित्र पुरुष के मुख कमल में से बहता तब उसका प्रभाव कुछ भिन्न ही पड़ता था।

बालकों के शिक्षादेने का शौक।

लघुवय से ही बालकों को सत्पुरुषों के संसर्ग का लाभ मिलता रहे तो उनके चारित्र का बंध उत्तम हो जाता है। उत्तम गुण उनमें स्वयं प्रकट हो जाते हैं। इसीलिये प्राचीन समय के श्रावक अपने बालकों को व्यवहारिक शिक्षा देने के पश्चात् धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये सद्गुरुओं के पास भेजते थे।

मोरवी में जब पूज्यश्री का चातुर्मास था तब जैन शाला के विद्यार्थी महाराज श्री के सत्संग का लाभ लेते. पूज्यश्री के दर्शन और वाणी श्रवण का लाभ लेने के लिये अत्यंत आतुरता के साथ वे कोमल वयस्क बालक हमेशा पूज्यश्री के पास आते, भक्ति के रंग से रंगा हुआ उनका कोमल हृदय कमल वहां प्रफुल्लित होजाता था और विनय से झुककर उनके शीष कमल पूज्यश्री के पदकमल का स्पर्श करते थे. इस विधि के पश्चात् वे सब सुमधुर ध्वनि से "जयवंता प्रभुवीर" का गायन ललकारते थे. उस समय का दृश्य अत्यंत रमणीक लगता था गायन के पश्चात् वे पूज्यश्री के पास मर्यादा से बैठ जाते थे. ऐसे छोटे बालकों के योग्य कर्तव्य समझाने के लिये पूज्यश्री अपनी रसालवाणी का प्रयोग युक्ति पूर्वक करते कि जिससे बच्चों को आनन्द के साथ ज्ञान प्राप्त हो और अपना कर्तव्य क्या है उसे स्पष्ट समझलें।

" कम खाना और गम खाना, पढ़ना ज्ञान, देखना अपना दोष, मानना गुरु वचन, सुनना शास्त्र, ग्रहण करना हित-शिक्षा, देना हितोपदेश, लेना परायागुण, सहना परिषह, चलना न्यायमार्ग, खानागम, मारनामन, दमना इंद्रिय, तजना लोभ, भजना भगवंत, करना जीवाजीव का जतन, जपना जाप, तपना तप, खपाना कर्म, हरना पाप, मरना पंडित मरण, तरना भवसागर, करना सबका भला, धरना ध्यान, बढ़ाना क्रिया, रटना प्रभुनाम, हटाना कर्म, मांगना मुक्ति, लगाना उपयोग, करना जीवोंका उपकार, रोकना गुस्सा, छोडना अभिमान, तजना झूंठ, त्यागना चोरी, छोडना पर स्त्री, रखना मर्यादा "

ऐसे २ छोटे वाक्य बालकों को कंठस्थ याद करवाकर उसका रहस्य वे ऐसी खूबी से तथा मनोरम दृष्टांतों से समझाते कि बालकों के हृदय पर उनकी गहन छाप पड़जाती कि जो कभी न हट सके और एक रुढ़ी शिक्षा का अमल उस दिन से ही प्रायः प्रारंभ हो जाता था।

पाठक! स्कूल में नीति पाठ रटा २ बालकों के मस्तिष्क में ठूंस २ कर भरते हैं परन्तु उनका बहुत प्रभाव नहीं पड़ता। घरमें माता पिता बार २ जो शिक्षा देते हैं वे भी उनके गले नहीं बैठती, परंतु ऐसे सचारित्री और प्रभावशाली महात्माओं के बोध से तत्काल प्रभाव पड़ता है यह उनके चारित्र का ही प्रभाव समझना चाहिए।

मोरवी के जैसी शुभ प्रवृत्ति राजकोट के चातुर्मास में भी पूज्य श्री की ओरसे प्रचलित रही।

अवकाश मिलने पर बालकों को अपने समीप बिठाकर पंच-परमेष्ठी मंत्र सिखाते थे, उसकी अपार महिमा समझाते, सोते उठते बैठते, प्रभु के नाम की गुणों की याद करने की सुचाते थे, नवकार मंत्र का उच्चारण करते समय चंचल मन अन्य विषयों में गति न करें इसलिये आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी की उपयोगिता समझाते, इतना ही नहीं, परन्तु बालकों को अनुपूर्वी की पुस्तक की मदद लिए बिना ही अंगुली के इशारे द्वारा गिनने की रीति समझाते थे, ऐसी २ रीतियां सीखना बड़े मनुष्यों को भी कठिन और कंटाले जैसा मालूम होती है, परन्तु पूज्य श्री की प्रशंसनीय शिक्षा पद्धति से बालकों को ये रीतियां सरल और आनंद प्रदायक मालूम होती थीं।

अन्य मुनिवरों का ध्यान इस ओर खींचना लेखक अपना कर्तव्य समझ विनयपूर्वक प्रार्थना करता है। बालक ये भविष्य का संघ है थोड़े वर्ष पश्चात् वीर शासन के रक्षा की धुरी इनही के स्कंध पर रखी जायगी इसलिए उन्हें अभी से ऐसी शिक्षा देना आवश्यक है कि जिससे उनके हृदय में धर्म पर प्रेम जगे। वे धर्म के सच्च रहस्य को समझ सद्वर्ताव शाली और सुखी हों। एवं थोड़ी उम्र में ही वे धर्म को दिपाने वाले शासन के शृंगार रूप बन जायं नहीं

तो ज्ञान के बिना धर्म सिर्फ अंग्रेजी शिक्षा का जो परिणाम होता आरहा है वह सब दृष्टिगत होता ही है।

निश्चय पर अटलता।

पूज्यश्री स्वशक्ति और परिस्थिति का पूर्णता से विचार कर प्रबल बुद्धिमत्ता से जीवन के उद्देश निश्चित करते थे। फलां कार्य करना है और फलां नहीं करना है। वह मार्ग जाने योग्य है और वह अयोग्य है। ऐसी २ प्रतिज्ञाएं लेते, फिर प्राण की परवाह न कर उन्हें बराबर पालते थे।

देहं पातयामि वा कार्यं साधयामि।

यह उनका मुद्रा लेख था। छोटी उम्र ही से वे दृढ़निश्चयी थे। छोटे या बड़े प्रत्येक निश्चय में वे मेरू की तरह अटल रहते थे।

दीक्षा लेने का उनका निश्चय फिराने वास्ते कुटुम्बी जनों ने आकाश पाताल एक करडाला, अनेक परिसह आये, कैद में भी रहे, परन्तु ये नेक सत्याग्रही महापुरुष अपने निश्चय से तनिक भी न डिगे। साध्य प्राप्त करने की दृढभावना वाले महापुरुष अपने मार्ग में चाहे जैसे आवरण आवें उन्हे प्रबल पुरुषार्थ द्वारा किस-तरह हटा देते हैं इसकी शिक्षा पूज्यश्री के जीवन में पद २ पर

मिलती है। मन वश करने के लिये निश्चय की निश्चलता एक उत्कृष्ट साधन है और जिन्होंने मन जीता, उन्होंने सब जीत लिया। मन और इंद्रियों पर विजय प्राप्त करना यही सच्चा जैन धर्म है। जगत् की सब सिद्धियां मन बल से मन की दृढ़ता से सिद्ध हो सकती हैं। पूज्यश्री आशातीत उन्नति साध सके यह उनके मनोनिग्रह का ही आभार है उनके जैसे निश्चल निश्चयवान, पवित्र चारित्रवान प्रभाविक महापुरुष की भावनाएं हृदय में उतारकर उनसा पुरुषार्थ कर स्व परहित साधना यही कर्तव्य है यही प्राप्तव्य है और यही परम साध्य है। यह कर्तव्य और प्राप्त व्यक्ति जितना समीप पासके उतनी ही जीवनयात्रा की सफलता है।

अपने आर्य धर्मग्रन्थों का प्रधान आशय एक्यता से भरा हुआ है परन्तु मताग्रह के कारण ऐक्य की कड़िया ढीली होती जाती हैं और अवनति को अवकाश मिलता जाता है। स्वयं जानबूझकर जहर खाते हैं जानबूझ कर अपना अकल्याण अपने हाथ से ही करते हैं. स्वार्थपूर्णता के कारण प्रकृति ने न्याय न किया. कुदरत की प्रणाली पलटजाय, निश्चयनय खूंटी पर रक्खाजाय, वहां उदय की आशा व्यर्थ है। मीठे तरवरों की जड़ें काट फिर पत्तों के खिरने से उनकी पूजा करना हास्यजनक गिना जाता है. संदेह के बदले सत्यका आदर होना चाहिये। संदेह में पड़े रहने से भलाई किसमें हैं यह दृष्टिगत नहीं होती तो फिर भला कैसे हो?

एक अनुभवी महाशय सलाह देते हैं कि संसार में सत्य और मिथ्या का मिश्रण सबतरफ फैला हुआ दृष्टिगत होता है उसमें सत्य को ग्रहण कर झूठ को त्याग देना यही मनुष्य कर्तव्य है। उस मनुष्य के देव और देवत्व प्राप्त करने में अधिक भोग देना पड़ता है। उस समय दृढ़ता से आगे बढ़ा जाय और असत्य के आकर्षणों से बचता जाय यही सच्ची कसौटी है।

अंतःकरण में उठते असंख्य विचारों—विकारों को वश करने का बल यही हृदयबल, यही सर्वोत्कृष्ट बल 'साधयति आत्मकार्य मिति साधुः।'

परिशिष्ट:

पण्डित प्रवर पूज्य श्री १००८ श्री जवाहीरलालजी महाराजानां
सुशिष्येण श्रीघासीलालजी मुनिना विरचितम् ।

स्वर्गवासि—

पूज्यप्रवर श्री १००८ श्रीलालजी महाराजस्य

पूज्यगुणादर्शकाव्यम् ।

श्रीसन्दोहलसत्स्वरूपविभया यो मोदयन्मेदिनिं
लावंलावमलीलवल्लवमपि क्रोधादिकर्मोद्भवम् ।
लङ्कानिर्दहनोपमं च मदनं योऽधाक् त्रिदुःखच्छिदे
मुक्तं पादचतुष्टयादिचरमैर्वर्णैरमुं स्तौम्यहम् ॥ १ ॥

जिन्होंने शोभा समूह से देदीप्यमान आकृति की प्रभा द्वारा संसार को प्रसन्न किया, क्रोधादि कर्मों के कारणों को एक २ कर के काट दिया एवं जिस प्रकार हनुमान् ने लङ्का का दहन किया था ठीक वैसे ही जरा—जन्म-मरण रूप दुःखों को मिटाने के लिये जिन्हों ने काम को नष्ट करादिया, शरीर से मुक्त-उन पूज्य श्रीलालजी

मुनि की इस पद्य के*चारों चरणों के आद्यन्त अक्षरों से वन्दना पूर्वक मैं स्तुति करता हूं । लंका दहन की उपमा लोकोक्ति है ॥ १ ॥

कल्याणमन्दिरनिभात्सुरमन्दिरस्थात्
श्रीलालपूज्यकरुणावरुणालयाच्च ।
कल्याणमन्दिरमवाप्तुमना विनौमि
कल्याणमन्दिरपदान्तसमस्यया तम् ॥ २ ॥

कल्याणागार, स्वर्गस्थ, करुणानिधि पूज्य श्रीलालजी से अधिक कल्याण प्राप्त करने की इच्छा से ही कल्याणमन्दिरस्तोत्र के पद को×अन्तिम समस्या के रूपमें लेकर उक्त श्री चरणों की स्तुति करताहूं ॥२॥

जन्मान्तरीयदुरिताक्तविपत्तिरद्य
सावद्यहृद्यमभिपद्य विपद्यमानः ।
पूज्य ! त्वदीयपदपद्ममहं श्रयामि
कल्याणमन्दिरमुदारमवद्यभेदि ॥ ३ ॥

हे पूज्य ! जन्मान्तर में किये पापों से पीड़ित, सम्प्रति भी कुकर्मों को ही ध्येय—ग्राह्य समझ कर अपनाने से उद्विग्न मैं आपके चरणकमलों का आश्रय लेताहूं । क्यों कि, आप के चरणकमल ही सुख निकेतन, अत्यन्त उदार, एवं पापों के नाशक हैं ॥ ३ ॥

---

* श्रीलाल मुनिं वन्देऽहम्

×इस काव्य के प्रत्येक श्लोक का अन्तिम पद कल्याणमंदिर स्तोत्र से पूरा किया गयाहै।

दुःखी स्वदुःखशमनाय सुखी सुखाय
धीमान् धियेऽधरदरं सुकृती शमाय ।
यत्ते सुपूज्य ! शुभसद्म तदा स्मराणि
भीताऽभयप्रदमनिन्दितमङ्घ्रियुग्मम् ॥ ४ ॥

हे सुपूज्य ! आपके जिन चरणों को दुःखी सुख की कामना के लिए, सुखी एकान्त सुख के निमित्त, बुद्धिमान् प्रज्ञावृद्धि के लिए, तथा धार्मिक जन शान्तिके लिए आत्मसात् करते थे, उन्हीं चरणों का मैं स्मरण करता हूं—कारण कि, संसारभयोद्विग्न मनुष्य को वही प्रशस्तचरण अभयदान दे सकते हैं ॥ ४ ॥

लोकेषु भूर्भुवि नरो नृषु मानतन्तु-
स्तेनापि चेन्न हि भवेदणुजीवमन्तुः ।
तेनाप्यमेति भवतेति तरिं व्यबोधि
संसारसागरनिमज्जदशेषजन्तुः ॥ ५ ॥

तीनों लोकों में पृथ्वी बड़ी है, पृथ्वी में मनुष्य श्रेष्ठ गिना जाता है, मनुष्यों में विवेक की पूजा होती है और विवेक में भी अहिंसात्मक ज्ञान को आराध्य समझा जाता है कारण कि, इसीसे मनुष्य अपने ध्येय को प्राप्त करता है आपने भी वही सर्वोत्तम ज्ञान रूप नौका ही अपार संसार सागर में डूबते हुए मनुष्यों को साधन बतलाया है ॥ ५ ॥

तं त्वां स्मरामि सततं य इह प्रपञ्च-
पञ्चाननाश्रितकलावमलोमलेऽपि ।
ग्राहेऽगृहीत उदगा दिवमङ्घ्रियुग्मम्
पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥ ६ ॥

महाप्रपञ्चरूपी सिंह से युक्त, महामलिन, ग्राह समान दूर से ही पकड़ने वाले इस विकराल कलिकाल में भी मात्र वीर प्रभु के चरणों को ही नमस्कार कर आप स्फटिक तुल्य निर्मल तथा विषयों में अनासक्त रहकर देव लोक में पहुंच गये वैसे ही मैं भी आपका स्मरण करता हूं कारण कि, स्वर्गारोहण की पद्धति आप बता ही गये हैं ॥ ६ ॥

दुर्दान्तदम्भिमदनोदनिदानमोद
पाथः पयोदवचनस्य तव स्तुतिं काम् ।
कुर्यामहं न गदितुं स हि यां समीष्टे
यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमाम्बुराशेः ॥ ७ ॥

दुर्दान्त दम्भियों के मद को चूर करने का कारण, तथा अमृत जल वर्षी मेघ के समान गीर-वचन वाले आप की स्तुति मैं (क्षुद्र) तो क्या ही कर सकता हूं किन्तु प्रसिद्ध वक्ता बृहस्पति भी नहीं कर सकता क्योंकि आप गरिमा के सागर हैं ॥ ७ ॥

वांचा धमेन करणेन कृतेश्चयेन
प्रीणन्तु सन्तमसुमन्तमथो कियन्तः ।
स्तन्वन्तु तान् तव दृशाऽऽदिशतोऽतिमोदं
स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर्न विभुर्विधातुम् ॥ ८ ॥

मन वचन और काया से एवं अन्यान्य साधनों से जो मनुष्य सत्पुरुषों को अथवा जीव मात्र को प्रसन्न कर सकते हैं उनकी स्तुति साधारण भी कर सकते हैं किन्तु दृष्टिमात्र से एकान्तात्यन्त आनन्द देने वाले आपकी स्तुति तो प्रगल्भ तथा विस्तृत बुद्धि मनुष्य भी नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

आसाद्य भासुरधनानि वसुन्धरां च
सम्राट् पदं भजतु कोपि नृपासनस्थः ।
त्वन्तून्नतः प्रतिनिधिर्हृदयंगतोऽभू–
स्तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतोः ॥९॥

देदीप्यमान धन, विशालवसुंधरा और सम्राट पद को कोई भी (साधारण) मनुष्य प्राप्त कर सकता है किन्तु कमठ नामक तापस के मदको चूर करने वाले तीर्थंकर के प्रतिनिधि तथा प्रिय बनकर सब से उच्च आसन पर आपही बैठते थे ॥ ९ ॥

यो मत्सरं समपनीय दधार हार्दं
हित्वैव स्वार्थमपरार्थविधिं व्यधत्त ।

शक्तिं विनापि बहुभक्तिवशोऽधिकाश-
स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥ १० ॥

हे पूज्य ! जो आपने द्वेष छोड़कर विश्वव्यापी प्रेम धारण किया था और अपना स्वार्थ छोड़ कर परमार्थ का ही विधान किया था उन आपकी स्तुति केवल भक्तिवश होकरही शक्ति के बिना भी मैं करूंगा ॥ १० ॥

ब्रूमः कथं हृदयहैमगिरेः प्रभूतां,
शान्तिक्षमासुजनताकरुणानदीं ते ।
यत्कारुकर्मकरतोऽहमनीश एतत्
सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूपम् ॥ ११ ॥

आपके हृदयरूप हिमालय से निकली हुई शान्ति, क्षान्ति सुजनता, तथा दया रूप नदी की तो मैं क्या महिमा कर सकता हूं किन्तु जिसको चित्रकार लोग हाथों से लिख सकते हैं उस आपके स्वरूप को मैं सामान्यतः भी नहीं कह सकता ॥ ११ ॥

यत्कर्मवीरमतिधीरचरित्रलेखे
वाणी विचिन्तयति नीतललाटपाणी ।
शेषो न चेश इह मन्दधियोऽपि तस्मा-
दस्मादृशाः कथमधीश ! भवन्त्वधीशाः ॥१२॥

अ० जिस अत्यन्त बुद्धिमान् कर्मवीर का चरित्र लिखने के लिये सरस्वती भी मस्तक पर हाथ रख कर चिन्ता में पड़ती है, शेष भी सहस्र मुख से नहीं कहसकता हे नाथ! फिर हमारे सरीखे मन्दबुद्धि समर्थ कैसे हो सकते हैं। (शेष का नाम लोकोक्ति है)॥१२॥

कुर्मो वयं बहुविधां द्रुमवर्णनां तु
किन्तावता सुरतरु-प्रभव-प्रभावः।
वाच्यस्तथैव तव वर्णनहीनसन्धो
धृष्टोऽपि कौशिकाशिशुर्यदि वा दिवान्धः ॥ १३ ॥

हम लोग साधारण वृक्षों का वर्णन अनेक प्रकार से कर सकते हैं किन्तु कल्पवृक्ष का प्रभाव नहीं कह सकते जैसे उल्लू का बच्चा अपनी जाति में कदाचित् ढीठ भी हो तो क्या सूर्य को देख सकता है ? इसी प्रकार हम आपके वर्णन में कृतप्रतिज्ञ नहीं हो सकते ॥१३॥

मल्लं हयं गजमजं धनिनं वदान्यं
संवर्णयेयामिति किं भवतोऽपि नूयाम् ।
घूकोऽवलोकयति वस्तु विहायसैति
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः ॥ १४ ॥

जिस प्रकार मल्ल, (पहलवान) घोड़ा, हाथी, बकरा, धनी और दानी का वर्णन हम अच्छी तरह से कर सकते हैं क्या? इसी

प्रकार आपका भी वर्णन कर सकते हैं? नहीं,नहीं उल्लू अपनी आवश्यक्ता की वस्तुएं देखता और आकाश में भी गमन करता है तो क्या सूर्य का स्वरूप भी कभी देख सकता है ॥ १४॥

गुर्वाश्रम श्रमकृदस्तसमस्तदोष-
स्तोषान्वितोऽपि विबुधोऽपि कुशाग्रबुद्धिः।
शक्तो न वक्तुममितां भवदीयकीर्तिं
मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ ! मर्त्यः ॥ १५ ॥

गुरु के आश्रममें श्रम करने वाला, समस्त पापों को नाश करने वाला, प्रसन्न चित्त, विद्वान्, तथा तीक्ष्णबुद्धि मनुष्य मोह के क्षय से (मोहनीयकर्म के क्षयोपशम से) सांसारिक पदार्थों का अनुभव करता हुआ भी हे नाथ ! आपकी विशाल कीर्तिको नहीं कह सकता ।१५।

पारे परार्द्धमभिते गणिते गरिष्ठो
रात्रिंदिवा यदि भवेद्गणनैकनिष्ठः ।
गीर्वाणजीवनशतं निरुगेव जीवे-
न्नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत ॥ १६ ॥

सब संख्याओं में बड़ी संख्या को परार्द्ध (अन्त संख्या) कहते हैं उक्त संख्या में निपुणभी नीरोग मनुष्यदेवताओं की आयुष्य ।, कर के आपके गुणों की गणना करने में कृतकार्य नहीं हो कता ॥ १६ ॥

अत्यन्तशान्तमनसो बचसोपनीता
भावा न भव्यभविभिः परिभाविताःस्ते ।
किं गण्यते मणिगणो जलधेर्वणिग्भिः
कल्पान्तवान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मात् ॥ १७ ॥

आपके सुतरां शांत मन से वाणी द्वारा प्रकटित भी भाव (अभिप्राय) सांसारिक प्राणी नहीं गिन सकते जैसे कि, जल निकाल डालने से प्रकटित, समुद्र के रत्न बड़े से बड़ा हिसाबी व्यौपारी भी गिन नहीं सकता ॥१७॥

निर्गण्यगुण्यशुभपुण्यसुपूर्णकाय-
कारुण्यपूर्णकरणस्य विभोर्गुणौघः ।
गण्यो न ते गुणनिधेर्जगदार्तिहर्त्तु
र्मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः ॥ १८ ॥

असंख्य गुणों से युक्त एवं मांगलिक पुण्य से पूर्ण है शरीर जिनका और करुणा रस से भरी हुई हैं इन्द्रियां जिनकी ऐसे गुणाकर तथा संसार के त्रिविध दुःखों को दूर करने वाले आपके गुण गणों की गणना नहीं हो सकती कारण कि, समुद्र के रत्नों की गणना अद्यावधि नहीं हो सकी ॥ १८ ॥

नाहं कविर्न च सुकर्कशतर्कशीलो
यद्गौरवात्कृतमतिस्तव वर्णनेऽस्याम् ।

वाचालयत्यतिमहात्मगुणो हि मूक-
मभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ ! जडाशयोऽपि ॥ १६ ॥

हे नाथ ! मैं कवि नहीं हूं शब्द शब्द में तर्क करने वाला तार्किक भी नहीं हूं जिससे आपकी स्तुति करने का विचार करूं किन्तु यह बात प्रसिद्ध है कि, महात्माओं के गुण मूक को भी वाचाल बना देते हैं इसी आशा से मन्दबुद्धि भी मैं आपके गुण-गायन में प्रवृत्त हुआ हूं ॥ १६ ॥

मन्त्रप्रभाव इव सज्जनशक्तिरात्म-
सेवापरं निजगुणेन गुणीकरोति ।
स्यां सिद्ध एवमिह ते स्तवने प्रवर्त्त
कर्तुं स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य ॥ २० ॥

महात्माओं के समीप रहने से मन्त्र के प्रभाव समान महात्माओं के गुण भी मनुष्य को गुणी बना देते हैं ठीक इसी तरह आपकी स्तुति करने में मुझको आपके प्रभाव से सिद्धि अवश्य मिल सकेगी इसी आशा से जाज्वल्यमान अनेक गुणों के निधान आपकी स्तुति करने के लिये मैं उद्यत हुआ हूं ॥ २० ॥

हास्यं श्रमे सफलयेदिह मे विपश्चित्
कामं ततो नहि मनागपि मे विषादः ।

हास्यास्पदं गुणवतां वियतः प्रमाणे
बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य ॥ २१ ॥

आपकी स्तुति करने में मैं जो श्रम करताहूं इस श्रम को देख कर यदि विद्वान् लोग हंसे तो यथेष्ट हंसलें मुझे इस में कुछ विषाद न होगा क्योंकि आकाश के प्रमाण को बतलाने के लिये हाथ फैलाने वाला बालक विशेषज्ञों का हास्यपात्र अवश्य होता है ॥ २१ ॥

श्रीमद्गुणाब्धिरहमल्पपदार्थलब्धि-
र्भेदे महत्यपि गुणान् कथये तथा ते ।
कूपस्थितोऽप्यनवलोकितलोकभेको
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ॥ २२ ॥

आपके गुण तो अगाध सागर हैं तथा मेरी बुद्धि अल्पज्ञ है इस प्रकार का महान् भेद (दिन रात का फर्क) रहने पर भी जो मैं आपके गुणों को कहने की धृष्टता करता हूं सो उस कूप मंडूक के समान है जो संसार और सागर को न जानता हुआ भी उक्त दोनों की विस्तारता कूपमें ही अपने पांव फैलाकर दिखलाता है ॥ २२ ॥

सन्तः कियन्त इह सन्ति वदन्ति धर्मं
पञ्चव्रतान्यपि धरन्ति महीमटन्ति ।
त्वय्येव ते तु निजदर्शकहर्षिणोन्त-
र्ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश ! ॥ २३ ॥

हे नाथ! इस अपार संसार में कितने ही साधु महात्मा हैं जो सदा धर्मोपदेश देते पांच महाव्रतों को पालते एवं दूसरों से पलवाते पृथ्वी में फिरते हैं किन्तु अदृष्टपूर्व दर्शकों को आनंद देने वाले गुण आप ही में थे जो अन्यान्य मुनियों में नहीं मिल सकते थे इसका साक्षी वही हो सकता है जिसने कदाचित् आपके दर्शनों का लाभ उठाया होगा ॥२३॥

ये सद्गुणास्तव हृदाद्रिदरीनिलीना-
स्त्वत्कण्ठमार्गमसदन्न हि जातु कुत्र।
साकं त्वयैव विधिना दिवि संप्रयाता
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः ॥ २४ ॥

जो सद्गुण आपकी हृदय रूपी गुफा में छिपकर बैठे थे कभी भी आप के कंठ मार्ग द्वारा वाहिर नहीं आये थे (अपनी प्रशंसा आप कभी नहीं करते थे) वे गुण दैवयोग से स्वर्ग तक आप के साथ ही पहुंचे इसीसे उनको यथावत् कहने का अवकाश मुझे प्राप्त नहीं हो सका ॥ २४ ॥

आत्मप्रबोधविरहात्कलहायमानान्
जाग्रत्प्रपञ्चकलिकालविवञ्चितांश्च।
अस्मान् विहाय दिवसंगमनं तवैत-
ज्जाता तदत्रमसमीक्षितकारितेयम् ॥ २५ ॥

आत्मज्ञान के अभाव से परस्पर कलह करते हुये तथा महाप्रपंची इसविकराल कलिकाल से छले हुए हमको छोड़ कर आप स्वर्ग को विधारे कदाचित् आप ने अविचारित कार्य किया है तो यही किया है ॥ २५ ॥

श्रीमत्कृपाकृतिचयोपकृता वयं स्मो
नो शक्नुमोऽत्र भवतां प्रविकर्त्तुमेव ।
कुर्मः स्तवं परमिहोपकृता यथाव-
ज्जल्पन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥ २६ ॥

हे पूज्यवर ! आपकी कृपा और क्रिया से हम अधिक उपकृत हुए हैं किन्तु प्रत्युपकार करने कि शक्ति न होने से मात्र आपका गुण गायनही करते हैं कारण कि उपकृत पक्षीभी अपने उपकारी की गद्गदवाणी से स्तुति करता हूं ॥ २६ ॥

यस्मान्न्यवर्त्ततभवान् विषयोपभोगाद्
रोगादिव प्रतिदिनं व्यलिखत्तमेव ।
श्रोतुर्हृदाकृतिपटे भयदं हि चित्र-
मास्तामचिन्त्यमहिमा जिनसंस्तवस्ते ॥ २७ ॥

हे पूज्य जिन विषयोपभोगों को रोग समझ कर आप दूर हटाते थे प्रत्युत् श्रावकों के भी हृदयपटल पर उसी को

लिखते थे और स्वरचित, अचिन्त्य महिमा, जिनेन्द्र संस्तव करने में जो आपकी अलौकिक शक्ति का प्रत्यय मिलता था इत्यादि का वर्णन कैसे कर सकूं ॥ २७ ॥

यस्ते पवित्रितजगत्त्रितयं विचित्रं
चित्ते चरित्रमतुलं सततं दिदध्यात् ।
तस्योन्नतिस्त्विह परत्र किमत्र चित्रं
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति ॥ २८ ॥

त्रिलोकी को पावन करने वाले जो आप के विचित्र तथा अनुपम चरित्र को हृदयङ्गम करेगा उसकी उभय लोक की अवश्य उन्नति होगी। इस में आश्चर्य ही क्या है ? कारण कि आपका नाम ही असार संसार से रक्षा कर ने वाला है ॥२८॥

श्रीमद्वियोग इह साधुसमाजनिष्ठान्
दुःखाकरोति नितरां सुजनान् तथैव ।
पित्सून् यथा जलमलं पयसामभाव-
स्तीव्रातपोपहतपान्थजनान्निदाघे ॥ २९ ॥

हे पूज्य ! श्री चरणों का वियोग साधुमार्गी जैन समाज को तथा सत्पुरुषों को वैसेही अत्यन्त दुःखी बना रहा है जैसेकि, आषाढ़मास की कड़ी धूपसे व्याकुल तथा प्यासे पथिक को जल का अभाव ॥२९॥

धाम्नुद्गतेऽत्रभवति प्रगतोऽभिलाषो
नः श्रोतुमत्र भवतो वचनं सुचारु।
दृष्टिं दयार्द्रविपुलां भवतः समीहे
प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥ ३० ॥

आप के स्वर्ग में निवास करने से आपका वचनामृत तो हम पान कर नहीं सकते मात्र आपकी दयार्द्रदृष्टि की चाहना है कारण कि, पद्मसरोवर का पावन पवन भी संसार को पवित्र तथा प्रसन्न करता है ॥ ३० ॥

यादृक् प्रमोदजलसान्द्रपयोद आसीद्
दृग्वर्त्तिनि त्वयि मुने! व्यतरन् सुधौघम्।
तादृक्कुतस्तदपि विघ्नविषादयूथा
हृद्वर्त्तिनि त्वयि विभो! शिथिलीभवन्ति ॥ ३१ ॥

हे विभो! आपकी उपस्थिति में सर्वत्र अमृतमय वृष्टि होती थी अर्थात् बाह्य एवं आन्तरिक दुःख या पाप छू तक नहीं सकते थे. अब आपके न रहने पर वे उच्च आनन्द तो खपुष्प होगया है तो भी आपको आत्मसात् करने पर विघ्न और विषाद अवश्य शिथिल होते हैं ॥ ३१ ॥

ध्यानप्रभावविधिना मधुलिट्स्वरूपं
कीटा भजन्त इति सन्त इहामनन्ति ।
तद्वद् गुणांस्तव विभावयतो विभिन्ना
जन्तोः क्षणेन निविडा अपि कर्मबन्धाः ॥ ३२ ॥

ध्यान एक ऐसी वस्तु है जिसके प्रभाव से साधारण, विजातीय कीट भी भ्रमर बन जाता है ऐसा सत्पुरुषों (विज्ञानवेत्ताओं) का कहना है वैसे ही आप के गुणों का ध्यान करने पर मनुष्य के अनेक जन्मोपार्जित कर्म बन्धन भी सुतरां क्षण मात्र में दूर हो सकेत हैं क्योंकि—जब आप अशुभ कर्म्मों के बन्धन से मुक्त हैं तब आप को आत्मसात् करने वाला भी अवश्य वैसाही होना चाहिये ॥ ३२ ॥

अस्मिन् द्विजिह्वजनजिह्ममये नृलोके
प्राप्ता वयं हि मुनिजाङ्गुलिकं भवन्तम् ।
इच्छन्ति खं त्वयि गते ग्रसितुं खला नः
सद्यो भुजङ्गमया इव मध्यभागम् ॥ ३३ ॥

सर्पतुल्य द्विजिह्व तथा कुटिल लोगों से ठूंस ठूंस कर भरे हुए इस संसार में विष के वैद्य एक आपही थे. अब आपके स्वर्ग चले जाने पर सर्प रूप वे दुर्जन हमें हृदय में काटना चाहते हैं ॥ ३३ ॥

जाते दिवं त्वयि विभो ! सुषमां सुधर्मा
भेजे यथा सुरतरौ सति नन्दनस्य ।

देवैर्युतापि हि यथा शुकसङ्गतस्य
सत्यागते वनशिखण्डिनि चन्दनस्य ॥ ३४ ॥

हे पूज्य ! देवताओं से भरी हुई भी इन्द्र की सभा आपके पधारने से खूब सुशोभित हुई होगी—कारण कि, शुकादि पक्षियों से युक्त चन्दन वृक्ष की शोभा मोर के आने तथा अनेक वृक्षों से युक्त नन्दन वन की शोभा कल्पवृक्ष के होने से ही होती है (यह कवि की उत्प्रेक्षा है) ॥ ३४ ॥

वीर ! त्वदीयदयया मिलितः सुपूज्यः
कालेन संहृत इतो न जनोऽस्त्यनीशः ।
तस्यानुकम्पनतयाऽऽप्तसुपूज्यवर्या
मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा मुनीन्द्र ! ॥ ३५ ॥

हे वीर प्रभो ! आपकी कृपा से प्राप्त हुए पूज्य श्रीजी को तो काल उठाकर स्वर्ग में लेगया किन्तु इस से (यह) जन नायक हीन नहीं होसका कारण कि, उक्त पूज्यश्री एक ऐसे पूज्य प्रतिनिधि को स्वस्थानापन्न कर गये हैं कि, जिनके कृपाकटाक्ष से ही असंख्य प्राणी बन्धनमुक्त हो रहे हैं ॥ ३५ ॥

श्रीलालपूज्य ! महिमा तव किं निगाद्यो
ऽविश्रान्तसाश्रितकलोऽखिविभाधिलीनाः ।

धैर्यं मुदं नहि जहुर्बहुहन्यमाना
रौद्रैरुपद्रवशतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि ॥ ३६ ॥

हे श्रीलालजी पुज्य! अवर्णनीय आपकी महिमा का वर्णन क्या करें क्योंकि, आपके दर्शनमात्र से ही अविश्रान्तसंचित पाप कारणों से आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक इन तीनों प्रकार के दुखों में तल्लीन भी मनुष्यों ने धीरता और प्रसन्नता न छोड़ी इससे बढ़कर और प्रभाव ही क्या हो सकता है ॥ ३६ ॥

जागर्ति नृत्यति जने वृजिनं च तावद्
यावद्व्ययौ दुरितपूरितचेतसापि ।
सूर्येऽन्धकार इव पापमपैति नूनं
गोस्वामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टिमात्रे ॥ ३७ ॥

इस संसार में पाप जीताजागता तब तक ही प्रचंड तांडव करता है जब तक उसे पीठमर्दक पापी मनुष्य मिलते रहते हैं; लेकिन जब इन्द्रियों को वश करने वाले एवं देदीप्यमान कांति वाले आप जैसे महात्मा दृष्टिगोचर होते हैं तब पाप की वही दशा होती है जोकि, सूर्योदय में अंधकार की ॥ ३७ ॥

दृष्टे भवत्यभिभवान् बहु पापमाप
विद्रुक् ययौ हि बहुशो भयभीतभीतम् ।

ग्रस्ता जना हि खलु तेन भयान्निरस्ता
श्चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥ ३८ ॥

आपके दृष्टिगोचर होते ही पाप के होश हवाश उड़गये और वह चारों ओर भागने लगा जिससे पाप ग्रस्त (पाप से पकड़े हुए) लोग भी वैसे ही छूट गये जैसे कि, डरसे भागते हुए चोर के हाथ से पशु छूट जाते हैं ३८ ॥

ये संसृतेः कृतिपरानुपदेशदानै
र्धर्माऽद्‌दरान् व्यधिषतेह नरान्मुनीशाः ।
शान्तिं क्षमामपि ददुः सततं भविभ्य
स्त्वं तारको जिन! कथं भविनां त एव ॥ ३६ ॥

हे जिन! सांसारिक जीवों को भवसागर से पार लगाने वाले वे ही मुनिश्रेष्ठ, पुज्यप्रवर हो सकते हैं अर्थात् जीवों के मोक्ष दाता पूज्यवर ही हैं आप नहीं होसकते, कारण कि, सांसारिक कृत्यों में लवलीन मनुष्यों को दिन रात उपदेश देकर धर्मशील, शांति प्रिय एवं क्षमादि गुणयुक्त उक्त पूज्यवरों ने ही किया है ॥ ३६ ॥

तात्स्थ्यात्स धर्म इति सत्यवचो मुनीश!
धृत्वा जिनं हृदि जना दिवमुत्सवन्ति ।
दृग्भ्यो गतान् जिनपरान् भवतो जनाश्च
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः ॥ ४० ॥

हे मुनिराज! धर्म धर्मी में रहता है यह शास्त्र सिद्धान्त सत्य है, कारण कि, जिनेन्द्र को आत्मसात् करके मनुष्य स्वर्ग तक नहीं २ सिद्धिशिला तक पहुंच जाते हैं इसीसे जिनेन्द्र में तल्लीन तथा अभी अन्तर्धान हुए आपको संसारसागर को पार करने की इच्छा वाले मनुष्य हृदयङ्गम करते हैं ॥ ४० ॥

हित्वा हृदिस्थितमनोरथसर्वगर्वा
स्तद्धीनधर्मवपुषो भवतो निधाय ।
भव्यो जनस्तरति संसृतिमेव सम्यग् ।
यद्वाद्दतिस्तरति यज्जलमेष नूनम् ॥ ४१ ॥

सांसारिक जीव अपने अन्तःकरण से मनोरथ और अहंकार को दूर कर वीतराग, धर्ममात्र शरीर वाले आपको ही, हृदय में रखकर इस संसार से पार होते हैं; जैसे कि, वायु के प्रभाव से मशक भी अगाध जल से पार पा लेती है ॥ ४१ ॥

श्रीमन्तमेव हृदये निदधाति यस्मा
त्तस्माज्जनो दिवमुपैति मतं ममैतत् ।
उड्डीयते दिवि सदा पृथु पार्थिवं य-
श्चान्तःस्थितस्य मरुतः स किलानुभावः ॥ ४२ ॥

यदि जीव स्वर्ग तक पहुंचते हैं तो वे निस्सन्देह पूज्यचरणों को मनोमंदिर में प्रतिष्ठा करते हैं, ऐसा मेरा मत है; क्योंकि, जो

भौतिक पदार्थ आकाश में उड़ता है सो उसमें स्थित वायु का ही प्रभाव है न कि, उस पृथुल पदार्थ का ॥ ४२ ॥

क्रोधादिषड्रिपुगणं विनिहत्य नूनं
शान्तिं वितत्य च भवान्सुरमत्यशेत ।
लोकोऽमुना विजित इत्यपि किं विचित्रं
यस्मिन् हरप्रभृतयोऽपि हतप्रभावाः ॥ ४३ ॥

आपने इस लोक को जीत लिया, इसमें कौन बड़ी आश्चर्यजनक बात है कारण कि, आपने अन्तः करणस्थ उन क्रोधादि शत्रुओं को जीतकर और शान्ति का विस्तार कर देवों को नीचा दिखलाया जिन (क्रोधादि) से हरिहर प्रभृति भी पार न पासके ॥४३॥

आकीटकैटभरिपुर्दमनेन यस्य
दीनो नु भामिनिपदं सभयं ह्युपास्त ।
कान्तानिदेशवशतः कपितां समाप ।
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन ॥ ४४ ॥

जिस कन्दर्प के दर्प से कीट से लेकर विष्णु तक दीन बनकर स्त्री की सभय चरणसेवा करते हैं और स्त्री की आज्ञा बजाने में बंदर बन जाते हैं उसी दुर्दान्त दंभी काम को आपने पल भर में नष्ट भ्रष्ट कर दिया ॥४४॥

कामादयः समभवन् जगदाश्रयासाः
पाशा इवेह सततं नृपशून् ववन्धुः ।
कीलालमेव हि भवान् भविभिः सुलब्धो
विध्यापिता हुतभुजः पयसाऽथ येन ॥ ४५ ॥

काम वगैरह संसाररूपी आश्रय को हड़प जाने वालीं अग्निये हैं इन्हों ने पाश के समान अपनी देदीप्यमान ज्वालाओं से नर पशुओं (अज्ञानियों) को लिपटा रक्खा था, लेकिन आपको शीतलजल के समान पाकर मनुष्यों ने उन कामाग्निओं को बुझा डाला ॥ ४५ ॥

कामं जलं वदतु काममपीह कामी
त्वां वाऽनलं वदतु नैव तथापि हानिः ।
निर्वापयत्यनलमेव जलं न वेत्तु ।
पीतं न किं तदपि दुर्धरवाडवेन ॥ ४६ ॥

विषयी लोग भले ही काम को जल और आपको अग्नि समझें तो भी इसमें हानि नहीं, सर्वत्र जल ही आग को बुझाता है ऐसा उनका मानना भ्रम मात्र है, कारण कि, वडवा नाम की अग्नि भी जलको भस्म करदेती है ॥ ४६ ॥

उड्डीयतेऽनिलरयेण रजस्तदेव
नाऽऽसादितेह रजसा गुरुता च येन ।

मत्प्राणरेणव इहाऽऽश्रयतस्त्वदीयात्
स्वामिन्ननल्पगरिमाणमपि प्रपन्नाः ॥ ४७ ॥

वायु के वेग से वही धूलि उड़ सकती है जिसमें भारीपन न आया हो किन्तु हमारी प्राणरूपी धूलि आपको आत्मसात् करने से भारी हो चुकी है इसीसे हे स्वामिन् ! इन काम क्रोधादि रूप वायु से वह धूलि उड़ नहीं सकती ॥ ४७ ॥

ये शीर्णपर्णनिभसूक्ष्मतरा नरास्ते
धूता भवन्तु मदकामसमीरणैश्च ।
नीता भवन्तु गुणगौरवमादधानं
त्वां जन्तवः कथमहो ? हृदये दधानाः ॥ ४८ ॥

अहंकार व कामरूपी वायु उन्हीं को उड़ा सकती है, जो मनुष्य सूखे हुए पत्ते के समान एक दम हलके हैं लेकिन गुणों की गुरूता को धारण करने वाले पुज्य चरणों को जो मनुष्य हृदय में धारण करते हैं उन्हें उक्त वायु उड़ा नहीं सकती ॥ ४८ ॥

पूज्याऽनुराग इह भक्तिरतो विमुक्ति-
रेवं हि कार्यकरणं सुधियो वदन्ति ।
विद्युत्प्रशक्तिमिति युक्तिमवेत्य भक्ता
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन ॥ ४९ ॥

पूज्य के चरणों का अनुराग ही भक्ति कहलाता है एवं भक्ति से ही मुक्ति होती है इस प्रकार का कार्यकारण भाव विद्वान् लोग कहते हैं, इसीसे विजलीकीसी शक्ति वाली उक्त युक्ति को जान कर अविलंब से ही भक्त जन जन्मरूपी महासागर को पार करते हैं ॥ ४६ ॥

सन्तो भवन्त इह नो विषयानभिन्दन्
संखेदयन्ति हृदयानि परासवोऽपि ।
ते चैव सम्प्रति न नो हृदयात्प्रयान्ति,
चिन्त्यो न हन्त ! यदि वा महतां प्रभावः ॥ ५० ॥

इस संसार में रहते हुए आपने हमारे प्रिय विषयों को हमसे छुड़ाया और स्वर्ग में जाकर वियोगरूपि दुःख खड़ा करदिया, इस तरह भारी विरोध करने पर भी हमारा हृदय आपको छोड़-ता नहीं, इसीसे सिद्ध होता है कि, महान् आत्माओं का (सत्पुरुषों का) प्रभाव अचिंतनीय है ॥ ५० ॥

संवीक्ष्य दिक्षु जनतापदपापलीना
नस्मान्दुरुद्धरतरान् कृपया गतोऽसि ।
त्वं क्रोधनःकथमभूरिति विस्मयो नः
क्रोधस्त्वया ननु विभो ! प्रथमं निरस्तः ॥ ५१ ॥

दशों दिशाओं में पापलिप्त एवं मुशकिल से उद्धार करने योग्य हम लोगों को देख आप खिसलाकर यहां से चलते बने किन्तु आप क्रोध के आवेश में क्योंकर आगये यही हमें आश्चर्य होता है कारण कि, हे विभो ! क्रोध को तो आप प्रथम ही जीत चुके थे ॥ ५१ ॥

आचार्यवर्य ! भवताऽपि वतापि रोषोऽ
शेषो न चेत्तदपि सत्यममुष्य लेशः ।
नो चेद्वयं विरहिता रहिता हितौघै
र्ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौरा ॥ ५२ ॥

हे आचार्यप्रवर ! खेद की बात है कि, पूर्ण रूप से तो नहीं किन्तु कुछ अंश में आप भी क्रोध की धमकी में आगये यदि ऐसा न होता तो हितविमुख एवं दीनहीन हम लोगों को छोड़कर आप स्वर्ग में न चले जाते और अशुभ कर्मरूप चोरों का सर्व नाश न कर डालते इसका उत्तर आप ही दें ॥५२॥

आस्तां वितर्कविधिरेष न रोषलेशः
श्रीमत्सु शान्तिसहिताऽस्त निरीहतैव ।
सैवाऽजहाद्द्रुमततीर्हिमसंहतिर्हि
प्लोषत्यमुत्र यदिवा शिशिरापि लोके ॥ ५३ ॥

अथवा इस तर्क वितर्क को कल्पना मात्र ही रहने दो, आपमें तो क्रोध का लेश मात्र भी न था, सिर्फ शान्ति के साथ थोड़ी निरीहता

(तमाम आशाओं का अभाव) थी वही बेगर्जी हम लोगों को छोड़ कर स्वर्ग चले जाने में कारण हुई क्योंकि, शीतल भी हिम वृक्षसमूह को जला कर खाक कर डालता है ॥ ५३ ॥

दुर्दान्तषड्रिपुपुरातनकर्मचौरा
श्चूर्णीकृतास्तव सुशान्तिनिरीहिताभ्याम् ।
दाह्यानि दावदहनैर्दहतीह तानि
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ॥ ५४ ॥

अदम्य क्रोधादि छः शत्रुओं और पुराने चोर कर्म को आपकी अटल शान्ति और निरभिलाषिता ने चूर २ कर दिया, कदाचित् संदेह हो कि, अत्यन्त मृदु तथा शीतल शान्ति ने वज्र का काम कैसे किया तो इसका निवारण यों है कि, वन के भयंकर अग्नि से (दावाग्नि) भस्म होने योग्य उन हरे भरे वृक्षों को हिमसंहति (हिम की अधिकता) भी जला देती है ॥ ५४ ॥

यस्योपदेशमवसाय विहाय मोहं
सोऽहं विदन्ति च वदन्ति जगन्ति तत्त्वम् ।
यस्य प्रभावमधिगन्तुमचिन्तयँश्च
त्वां योगिनो जिन ! सदा परमात्मरूपम् ॥ ५५ ॥

हे जिनेन्द्र ! जिस पूज्यवर के उपदेश से योगी लोग मोहमाया

को छोड़ कर 'सोऽहं सोऽहं (मैं वही हूं) तत्व को समझते और रटते हैं वह पूज्यवर के आत्मप्रभाव को जानने के लिये परमात्म-रूप आपका ध्यान करते हैं ॥ ५५ ॥

तं पूज्यवर्यमविचार्य गतं द्युलोकं,
सद्योऽनवद्यमतिहृद्यमनाप्य भक्ताः ।
त्वां त्वत्पदे जिन ! निरस्य तमेवलोकाः
अन्वेषयन्ति हृदयाम्बुजकोशदेशे ॥ ५६ ॥

विना विचारे स्वर्ग में सिधारे हुए, दूषण रहित, गुण रूप भूषण सहित उस पूज्यवर को न पाकर हे जिनेन्द्र ! आपको ध्यान स्थान (हृदय) से निकाल कर भक्त अब उन्हीं पूज्य चरणों की खोज में हैं ॥ ५६ ॥

आसादयेप्सितपदं शिवमस्तु वर्त्म
सुस्वागतं समुचितं दिवि ते विभातु ।
पूज्य ! स्वपुण्यकिरणैरवलोकयास्मान्
पूतस्य निर्मलरूचेर्यदि वा किमन्यत् ॥ ५७ ॥

हे पूज्य ! आप अपना अभिष्ट पद प्राप्त करें, आपके लिये मार्ग मंगलमय हो, स्वर्ग में आपका समुचित स्वागत खूब धूमधाम से हो, अपने पुण्य प्रकाश से हम लोगों को भी कर्तव्य मार्ग बतलावें कारण कि, पवित्र एवं निर्मल कान्ति से इतना मांगना पर्याप्त है ॥ ५७ ॥

भूतास्तिरोहिततवपुर्दिवि संगतोऽपि
पूज्य ! प्रभाविन उपैधय साधुमार्गान् ।
आत्मा हृषीकमिव शक्तिमृते किमन्य
दत्तस्य सम्भवपदं ननु कर्णिकायाः ॥५८॥

हे पूज्य ! जिस प्रकार आत्मा इन्द्रियों को चैतन्य शक्ति देता है वैसे ही स्वर्गसिधारे हुए आप भी इस साधुमार्गी संप्रदाय को कर्तव्य शक्ति दो कारण कि, हृदय की शक्ति के बिना इन्द्रियां नकामयाब ही होती हैं ॥ ५८ ॥

देवाधिदेव ! जिनदेव ! तदेव नाम
ध्यानं सुदेहि मुनिभक्तमनोजनेभ्यः ।
यस्मात्सुपूज्यवरसुन्दररूपमीपी
ध्यानाज्जिनेश ! भवतो भविनः क्षणेन ॥ ५६ ॥

हे देवाधिदेव भगवान् जिनेन्द्र ! मुनिभक्त, साधुमार्गी जनता को वह ध्यान दो जिससे आपके रूप के साथ २ पूज्यवर का भी सुन्दर स्वरूप दीख पड़े ॥ ५६ ॥

अस्मिन्ननादिनिधने भुवि भूरिशोके
तद्ध्यानतो मम दशं समुपेतु पूज्यः ।
लोकाः सुरानपि यतोऽप्यतिशेरते स्म
देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति ॥ ६० ॥

सदा से आते हुए, मृत्युकारक तथा शोक वाले इस संसार में पूज्य चरणों का हम उस ध्यानसे दर्शन करें जिस ध्यान से साधारण मनुष्य भी देवताओं को पराजित करते और शरीर छोड़ने पर परमात्मस्वरूप में लीन होते हैं ॥ ६० ॥

पूज्य ! त्वदीयगुणचिन्तनमस्मदादीन्
संशोध्य शुद्धमनसो विदधातु तद्वत् ।
यादृक् कठोरमुपलं कनकत्वमेति
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके ॥ ६१ ॥

हे पूज्य! आपका गुणगान हमको ठीक वैसे ही शुद्ध बनादे जिस प्रकार तीव्र अग्नि पत्थर की कठोरता को छुड़ा कर उसे निर्मल स्वर्ण बना देती है ॥ ६१ ॥

गृह्णन्ति ये तव सुनाम वदन्ति भावं
सम्यक् स्मरन्ति रमणीयवपुः सदैव ।
तेऽपि त्वदीयगुणगौरवमाप्नुवन्ति
चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः॥६२॥

हे स्वामिन् ! जो मनुष्य आपका नाम रटते हैं, आपके अभिप्रायों से वाणी को पवित्र तथा निर्मल करते हैं और आपके रमणीय स्वरूपका सदा स्मरण करते हैं वे भी आपके गुणगौरवको प्राप्त

करते हैं, जैसे लोहा वगैरह धातु पारस के संयोग से सोना बन जाते हैं ॥ ६२ ॥

योऽन्यं सदोपकुरुते दययाऽनृतं नो
ब्रूते कदापि समतां न हि सञ्जहाति ।
तादृक्तवानुकृदिहासमदीयपूज्यः
अन्तःसदैव जिन ! यस्य विभाव्यसे त्वम् ॥ ६३ ॥

हे जिन ! परोपकारी, हित तथा मनोहर भाषी एवं दया पूर्ण हृदयसम्पन्न जैसे आप हैं वैसेही आपका अनुकरण करने वाले हमारे भी पूज्य थे क्योंकि, इसीसे हमारे पूज्य के अन्तःकरण में आप हमेशा विराजते थे ॥ ६३ ॥

यद्रूपमासमसुमाद्धिरसोर्विशेषं
चिन्तामणिप्रतिकृतं परिपूजितं च ।
त्वं पूज्यरूपमधुना परिगृध्नुभिः स्म
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम् ॥ ६४ ॥

सांसारिक जीवों ने जिस मधुररूप को प्राणों से कई गुणा अधिक प्रिय समझ कर अपनाया था एवं चिन्तामणि के समान जिस रूप की पूजा करते थे व भव्यजीव जिस स्वरूप को देखना चाहते थे उस पूज्यरुप को आपने कैसे नष्ट कर दिया ॥ ६४ ॥

सन्त्वत्र सुन्दरतराणि मुखानि भूरि
सर्वाणि किन्तु निजकृत्यपराङ्मुखानि ।
तत्पूज्यकृत्यसुमुखं सुजनाः स्मरन्ति
एतत्स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनोऽपि ॥ ६५ ॥

इस संसार में सुन्दर मुख क्रोड़ों की तादाद में हैं, किन्तु सब के सब अपने कर्त्तव्य से विमुख हैं मात्र कर्त्तव्य में तत्पर हे पूज्य ! आपका ही स्वरूप था जिसका भूलोकवासी सज्जन सदा स्मरण करते हैं ॥ ६५ ॥

सम्प्रत्यसाम्प्रतमितो ह्यभवत्सुपूज्य
प्रस्थानमत्रभवतो विबुधा वदन्ति ।
स्वस्वाऽग्रहग्रहगृहीतसुविग्रहे के
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥ ६६ ॥

वर्त्तमान समय में इस लोक से स्वर्ग को सिधारना यह आपने सच मुच उचित नहीं किया ऐसा ही सभी विचारशील मनुष्य कहते हैं क्योंकि, अपने २ आग्रह (हठ) रूप ग्रह से मचे हुए लड़ाई झगड़ों को कौन मिटा सकेगा कारण कि, आपके समान महानुभाव ही उसका शमन कर सकते हैं ॥ ६६ ॥

जाते दिवं त्वयि विभो ! सकला जनाशा
जाता विनाशमभितोऽस्तपदावकाशा ।

आशास्ति ते गुणगणेन गुणीकृतश्चे
दात्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्ध्या ॥ ६७ ॥

आप के स्वर्ग चले जाने पर हम लोगों की तमाम आशायें निराशा के रूपमें मिलकर नष्ट भ्रष्ट होगयीं हैं सिर्फ एक ऐसी आशा शेष रही है जिससे आपकी अभेदबुद्धि द्वारा आपके ही गुणों से अपनी आत्मा को विद्वान् गुणसंपन्न बना सकेंगे ॥ ६७ ॥

पूज्य त्वदीयकृपया प्रतिमास्तवैव
लब्धा विभान्ति मतिशान्तिधनाः सुपूज्याः ।
तद्ध्यानतद्गुणकरं प्रवदन्ति यस्माद्
ध्यातो जिनेन्द्र! भवतीह भवत्प्रभावः ॥ ६८ ॥

हे पूज्य ! आपकी परमकृपा से आपके समान ही शान्त दान्त तथा अगाध मतिवैभव वाले पूज्य मिलगये हैं, ध्येय (जिसका ध्यान किया जाय) के गुण ध्याता (ध्यान करने वाले) में आजाते हैं ऐसी लोकोक्ति है, इसीसे हे पूज्य ! आपका ध्यान करने से आपका प्रभाव होना ही चाहिये था ॥ ६८ ॥

ध्यानं धरातलजुषां विदितप्रभावं
ध्येयानुकूलफलमालभतेऽत्र योगी ।
स्वस्यामरत्वमभिकांक्षिगदातुराणां
पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानम् ॥ ६९ ॥

सांसारिक जीव ध्यान के प्रभाव को खूब समझते हैं कि, ध्यान-शील योगी ध्येय के अनुकूल (जिसका ध्यान किया जाय उसीके अनुसार) अभीष्टफल को प्राप्त करते हैं, इसीसे ही अपने अमरत्व (सदा नीरोगिता) को चाहने वाले रोगियों के लिये जलभी अमृतमय होजाता है ॥ ६९ ॥

यो मासपूर्वमवदो बहु नो हितार्थं
स त्वं स्मृतोऽपि शुभदो भव भव्यमूर्ते ! ।
तिष्ठन्स्मृतोऽपि गरुडोऽहिरदष्टतानां
किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ॥ ७० ॥

मास दो मास पहिले आप अनेक प्रकार के हितोपदेश दिया करते थे, अतः अब स्मरण किये गये भी आप शुभदायी हो कारण कि, जो गरुड़ सर्प के काटे हुए का विष प्रत्यक्ष होकर उतारता हैं तो क्या वह स्मरण करने से विष विकार को दूर नहीं कर सकता ? ॥७०॥

निन्द्यो निरक्षर इति प्रथमं त्वनिन्दन्
त्वच्छान्तिशीलविधिना विगतप्रभावाः ।
निन्दन्ति तच्चरितमात्मगतं स्तुवन्ति
त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि ॥ ७१ ॥

जो झूठे प्रतिवादी प्रथम आपकी निन्दा किया करते थे वे ही अब आपकी अटल शान्ति के प्रताप से प्रभावहीन होकर अपने

निन्द्य एवं व्यर्थ जीवन की निन्दा करते, आत्मा को कोसते और अतीत पर पश्चात्ताप करते हुए अज्ञान को दूर करने वाले आपकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं ॥ ७१ ॥

येऽपि त्वदीरितपथाऽन्यपथप्रवृत्ता
स्त्वद्देवदेवनमपोह्य परं भजन्ते ।
तेऽपि त्वदीरितगुणाकृतिमन्तमेव
नूनं विभो ! हरिहरादिधिया प्रपन्नाः ॥ ७२ ॥

जो मनुष्य आपके बतलाये हुए मार्ग को छोड़कर दूसरे मार्ग में प्रवृत्त हैं एवं आपके आराध्य देव की वन्दना न कर दूसरे को हृदयङ्गम करते हैं; हे विभो ! वे भी मनुष्य केवल हरिहर आदि की बुद्धि से आपके ही बतलाये हुए गुण तथा आकार को प्राप्त करते हैं ॥७२॥

येषां मतावतिविपर्यय एव जातो
येषां न वा मतिरभूत्तव ते प्रतीपाः ।
पीतोऽथ सन्नपि जनैर्विदितोऽस्ति नान्धैः
किं काचकामलिभिरीश ! शितोऽपि शंखः ॥ ७३ ॥

जिनकी बुद्धि उलटे रास्ते बह गई थी या जो ज्ञानसे ही शून्य थे वे ही आपके विरुद्ध चलते थे; क्योंकि, अंधे के लिये मौजूद भी

शंख का अस्तित्व नहीं है और जिनकी आंखों में कामला रोग हुआ है उन्हें सफ़ेद भी शंख सदा पीला ही दीखता है ॥ ७३ ॥

यस्ते निदेशमधरद्धृदये न जन्तु
र्मन्तुर्न तस्य यदसौ श्रवणेन हीनः ।
दृष्टं न किंनु भवता बधिरैर्हितोऽपि
नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण ॥ ७४ ॥

जिस मनुष्य ने आपके उपदेश को हृदय में अंकित नहीं किया उसका कुछ भी अपराध नहीं है कारण कि, उसके कान ही नहीं थे, बधिर (कानों से बहरा) मनुष्य अपने हित की बात को भी नहीं समझता, कदाचित् समझ भी ले तो उलट पलट समझता है ॥ ७४ ॥

वर्षर्तुवारिदनिभेऽम्बुमृतं वचस्तद्
वर्षत्यरं त्वयि मयूरनिभा जनौघाः ।
हर्षप्रकर्षमविदन् मुदमाप धर्मो
धर्मोपदेशसमये सन्निधानुभावात् ॥ ७५ ॥

वर्षा ऋतु का मेघ जिस प्रकार जल बरसाता है ठीक उसी तरह जब आप वचनामृत की झड़ी लगा देते थे, तब जनता मयूरों के समान अनिर्वचनीय आनंद को प्राप्त होती थी और अपनी समीपता देखकर धर्म भी फूला नहीं समाता था ॥ ७५ ॥

संयोगमप्रियमवाप्य प्रियाद्वियोगं
चेत्खिद्यते यदि भवद्धृदयं त्वया तत् ।
माऽसञ्जि जीव निकरेऽतिनिदेशतोऽस्मा
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः ॥ ७६ ॥

" तुम्हारा हृदय यदि अप्रिय के संयोग से और प्रिय के वियोग से दुखी होता हो तो तुम भी किसी जीव को कष्ट मत दो, प्राणी मात्र को आत्म भाव से देखो और बन पड़े वहां तक दया देवी का हृदय में आह्वान करो ,, इस प्रकार का आपका उपदेश सुनकर मनुष्य ही नहीं किन्तु वृक्ष भी वीतशोक हो जाया करते थे ॥ ७६ ॥

श्रीमद्वचोदिनकरे सदसि द्युलोके
सिंहासनोदयगिरेरुदिते जनानाम् ।
चेतोरविन्दमभिनन्दति किं विचित्र
मभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि ॥ ७७ ॥

सिंहासन रूपी उदयाचल-पर्वत से सभा रूपी विशाल आकाश में आपके वचन रूपी सूर्य का जब उदय होता था, तब चारों तीर्थों के हृदय कमल एक दम खिल उठते थे, इसमें आश्चर्य ही क्या है, कारण कि, सूर्योदय में समस्त संसार ही जग जाता है ॥ ७७ ॥

श्रीमत्सुशान्तिमतिभानुविधुप्रकाशे
आसीत्प्रकाश इह जीवहृदोऽवकाशे ।

किं चित्रमत्र तपनं तपति प्रशोकः
किं वा विबोधमुपयाति न जीवलोकः ॥ ७८ ॥

आपके शांति रूप चंद्र तथा ज्ञानरूप सूर्य के प्रकाश से चारों तीर्थों के हृदयाकाश में प्रकाश हुआ है, इसमें आश्चर्य की कौनसी बात है; एक ही सूर्य के उदय होने से क्या वह समस्त संसार बोध को प्राप्त नहीं होता ? ॥ ७८ ॥

जाते तव प्रवचने तपनेऽत्र लोके
हर्षन्ति सर्वसुमनांसि विनिस्तमांसि ।
सूर्याख्यपुष्पमिव दुर्जनचित्तमेकं
चित्रं विभो ! कथमवाङ्मुखवृन्तमेव ॥ ७९ ॥

आपके वचन रूपी सूर्य के उदय होने पर कमलों के समान सज्जनों के हृदयों में प्रसन्नता छा गई, लेकिन सूर्यपुष्प (सूरजमुखिया) के समान सिर्फ दुर्जनों का मन अधोमुख ही रहा यही आश्चर्य है । ७९॥

हित्वा भुवं दिवमुपेतुमितः प्रयाते
श्रीमत्यवर्णनगुणः सुरसंभ्रमोऽभूत्
दध्वान दुन्दभिरगायत मञ्जु हाहा
विष्वक् पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः ॥ ८० ॥

इस लोक को छोड़कर जब स्वर्ग के लिये आपका प्रयाण हुआ था, तब देवों का संभ्रम (अतिथिसत्कार में कुतूहल) अवर्णनीय था, जैसे कि, देवदुंदुभियों से स्वर्ग गूंज रहा था, गंधर्वों का मधुर गायन मोहित कर रहा था तथा चारों ओर निरंतर मंदार के पुष्पों की वृष्टि हो रही थी इत्यादि २ (उत्प्रेक्षा) ॥८०॥

पूज्य ! त्वदीयगुण अर्पितदृष्टिपातः
पातोऽप्यतप्यततदैव हृदो वियोगे ।
धर्त्तुं गुणांस्तव लसन्ति मनांसि नूनं
त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश ! ॥ ८१ ॥

हे पूज्य ! आपके गुणों को देखते ही राहु हृदयशून्य होकर अत्यन्त दुखी हुआ, कारण कि, आपके दर्शन होते ही देवताओं का हृदय गुण ग्रहण करने में अपूर्व उत्साह दिखलाता है (राहुका नाम लोकोक्ति है)॥८१॥

वन्हिप्रभे भवति दृष्टिपथे प्रयाते
एनांसि पापिनि भवन्ति समिन्धनानि ।
भस्मीभवन्त्यसुमतां भुवि तत्कृतानि
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥ ८२ ॥

अग्नि के समान जाज्वल्य मान प्रभा वाले आपके दृष्टिमार्गमें आवे

हुए पापियों के पाप सूखी लकड़ी के समान भस्म होजाते हैं, इसीसे उन पापों द्वारा प्राप्त बंधन भी छिन्न भिन्न होजाते हैं ॥८२॥

जाते दिवं त्वयि निराश्रयतां गताया
निर्व्याजशान्तिधृतिबुद्धिदयाक्षमायाः ।
हृत्कम्पतापकरुणार्द्रविलाप आस्ते
स्थाने गभीरहृदयोदधिसम्भवायाः ॥ ८३ ॥

आपके गंभीर हृदय-समुद्र से उत्पन्न स्वाभाविक शांति, धृति, बुद्धि दया तथा क्षमा के हृदय में कंपन, संताप और सकरुण-क्रंदन होरहा है; सो युक्त है, क्योंकि, वे सब की सब आपके स्वर्ग पधारने से आश्रय हीन होचुकी हैं ॥ ८३ ॥

जाने जनो भुवि सदाल्पगुणाभिधानो
ब्रूते हरिं गिरिधरं मुरलीधरं हि ।
पीयूषयूषमिव सद्वचनं ततोऽमी
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति ॥ ८४ ॥

ऐसा मालूम होता है कि, संसार में मनुष्यमात्र का यह स्वभाव सा होगया है कि, बड़े से बड़े को छोटे से छोटा पुकारना, जैसेकि, गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले हरि को मुरलीधर कहते हैं ऐसे ही आपकी वाणी यद्यपि अमृत का माचा (सार) है तोभी उसे अमृत समान ही बोलते हैं ॥८४॥

पूज्य ! त्वदीयवचनारचना विचित्रा
पीयूषयूषमिव नः श्रवसोरसिञ्चत् ।
तां चाधरीकृतसुधामधुमाधुरीं स्मः
पीत्वा यतः परमसंमदसंगभाजः ॥ ८५ ॥

हे पूज्ज ! आपकी वचन रचना मनोहर एवं अलौकिक थी, हमारे कानों में मानो सदा अमृत का माधा (सार) बरसाया करती थी, इसीसे सुधा तथा मधु की माधुरी की अवहेलना करने वाली उस आपकी वाणी को श्रवण पुटों से पीकर हम अब तक भी आनंद में हैं ॥८५॥

केचिद्व्रजन्ति यशसा स्तुतिपात्रतान्तु
केचिद्रणे जयरमां महसा लभन्ते ।
युष्मादृशं हि सहसा समुपास्य धीरं
भव्या व्रजन्ति तरसाऽप्यजरामरत्वम् ॥ ८६ ॥

हे विभो ! कई एक यश से स्तुति पात्र बन बैठते हैं और कई एक बल प्रयोग से युद्ध में जय को प्राप्त करते हैं, किन्तु आप जैसे धीर की उपासना करने वाले सब से उच्च अजरामरत्व–पद पर पहुंचते हैं ॥ ८६ ॥

नम्रास्त्वदीयचरणे सुरसुन्दरीणां
कम्राः प्रयान्ति सुरसद्म तथैव जीवाः ।

लङ्कां गता इह यथा पवनात्मजाताः
स्वामिन् ! सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तः ॥ ८७ ॥

हे स्वामिन् ! आपके चरणों में जो मनुष्य नम्र होते हैं वे ठीक वैसे ही देवाङ्गनाओं को मोहित करने वाला रूप प्राप्त कर क्षण भर में स्वर्ग जाते हैं जैसे कि, रामचन्द्रजी के चरणों में नम्र होकर तुरन्त मारुति (हनुमान्) लंका में पहुंचा था ॥ ८७ ॥

स्वः संगते त्वयि विभो ! दिविषत्प्रसादाः
अस्मादृशा ककुभि ते बहुलीभवन्ति ।
एवं हि वालनिकरान्मुहुरा किरन्तो
मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः ॥ ८८ ॥

हे विभो ! आपके स्वर्ग जानेपर देवताओं की प्रसन्नता हमारे समान दसों दिशाओं में पर्याप्त फैल रही है, मानो यही संदेश देते हुए देवताओं के चामर अपने शुभ्रबालों को आकाश में इतस्ततः बिखेर रहे हैं ॥ ८८ ॥

तेऽस्मिन् जनेऽमरपुरे मुदमाप्नुवन्ति
लप्स्यन्त आपुरभितः समयत्रये च ।
संमोहयन्ति जनतां परिमोदयन्ति
येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुङ्गवाय ॥ ८९ ॥

वे ही मनुष्य इस लोक में तथा परलोक में तीनों काल आनंद पाते हैं, संसार को अपने अधीन कर सकते हैं तथा प्राणीमात्र को प्रसन्न बना सकते हैं जो मनुष्य मुनिपुंगव—आपको नमस्कार करते हैं ॥ ८६ ॥

पूज्याङ्घ्रिपद्मजपरागसुरागितान्तः
स्वान्ता भवन्ति मनुजा हि नितान्तशान्ताः ।
तस्माद्व्रजन्ति वृजिनं परिवर्ज्य जीवा
स्ते नूनमूर्द्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः ॥ ६० ॥

पूज्यश्री के चरण कमलों के पराग से जिन मनुष्यों का अंतः-करण रंगा गया है, वे ही मनुष्य एकांतशांत मनोवृत्ति वाले होते हैं इसीसे तमाम पापों का क्षयोपशम कर एवं शुद्धात्मा होकर स्वर्ग सिधारते हैं ॥ ६० ॥

धर्मानुरक्तदुरितादिविरक्तभक्त
भूषामणीनिव गुणान् परिवर्धयन्तम् ।
पूज्यं पराशुमपि दृग्स्थितमेव मन्ये
श्यामं गभीरगिरमुज्वलहेमरत्नम् ॥ ६१ ॥

धर्मानुरागी तथा पापादियों में विरागी ऐसे भक्तरूप भूषण में मणिरूप गुणों की वृद्धि करने वाले शांत एवं गंभीर वाणी बोलने

वाले और स्वर्ण के नगीने सरीखे श्याम वर्ण--पूज्यश्रीजी को अपने नेत्रों के सामने उपस्थित ही देखता हूं ॥ ६१ ॥

कारुण्यनीरधरमुत्तममात्मविज्ञं
चारित्र्यभूमिगुणसस्यविशेषशेकम् ।
हर्षन्ति सर्वसुजनाः शरणं विलोक्य
सिंहासनस्थमिह भव्यशिखण्डिनस्त्वाम् ॥ ६२ ॥

करुणारूप जल से भरे हुए तथा चरित्र रूपी भूमि में गुणरूपी धान्य को उचित रीतिसे सींचने वाले ऐसे आत्म ज्ञानी, उत्तम रक्षक तथा सिंहासन पर बैठे आपको निहार कर समस्त सज्जन रूपी मयूर हर्षित होते हैं ॥ ६२ ॥

ज्ञानासिमेत्य शुभकर्म तनुत्रितं च
पाखण्डखण्डनपरं सुकृताजिशूरम् ।
अर्हद्गिरं भुवि भवभ्रमतान्द्रियार्था
मालोकयन्ति रभसेन नदभ्रमुखैः ॥ ६३ ॥

धर्म युद्ध में ज्ञान तलवार को पकड़ कर शुभकर्मों का कवच पहिन कर पाखंड मत खंडन शूर, अतिन्द्रिय अर्थ युक्त--अर्हद् वाणी को वीरवचनों में बोलते हुए आपको सभी प्रसन्न हो होकर देखते हैं ॥ ६३ ॥

दुर्नीतिरीतिगिरिराजिषु सेकशीला
अर्थोदका जनघनाः प्रतिवारिता यैः ।
वायुर्विवाहयति वारिमुचं समन्ता
च्चामीकराद्रिसिरसीव नवाम्बुवाहम् ॥ ६४ ॥

दुर्नीति तथा कुरीति रूपी पर्वत पर जल बरसाते हुए जन रूपी मेघ को पूज्यश्रीजी ने इस तरह उडाया कि, जिस तरह सुमेरु पर बरसते हुए नवजलधर को प्रकुपित वायु उडादेता है अर्थात् दुर्नीति और कुरीति रूपी मेघ के लिये आप प्रलयकालीन वायु थे ॥६४॥

तापत्रयं जनमनोजनि येन नष्टं
निस्तन्द्रशारदशशाङ्कमनोहरेण ।
अत्यन्तशान्तमनसस्तव का कथास्ते
उद्गच्छता तव शितिद्युतिमण्डलेन ॥ ६५ ॥

जब शरत्पूर्णिमा के चन्द्रसमान आल्हाद जनक तथा मनोहर आपके दर्शन से ही मनुष्यों के तीनों प्रकार के दुःख दूर होजाते हैं फिर यदि उसमें सुतरां शान्त मन वाले आप के अन्तःकरण से निकली हुई आशिर्वाद भी हो तो क्या नहीं होसकता ॥ ६५ ॥

धर्मस्तरुः कलिनिदाघगतो विशुष्कः
पाखण्डचण्डवचनैर्मिहिरैः कठोरैः ।

श्रीमद्वचोऽमृतझरैरभितोऽपि सिक्तो
लुप्तच्छदच्छविरशोकतरुर्बभूव ॥ ६६ ॥

इस प्रचण्ड कलिकाल निदाघ-समय में पाखण्डियों के मुख रूपी उदयाचल से निकले हुए कठोर सूर्य से धर्म्मतरु पतझड़ हो कर झुलस रहा था, परन्तु आपके वचनामृत झरने से फिर हरा भरा हो गया ॥ ६६ ॥

उत्पत्तिमूलबहुकामदलार्तिपुष्प
सौख्यालिसंसृतितरुर्विशदो जगालः ।
नश्यत्यवश्यमिह तत्र भवत्प्रसादा
त्सांनिध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग ! ॥ ६७ ॥

जन्म ही जिसका मूल (जड़) है, मनोरथ ही जिसके पत्र हैं, तीनों प्रकार के दुःख ही जिसके फल फूल हैं और सुख जिसके भ्रमर हैं ऐसे संसार रूपी विशाल वृक्ष का आपकी कृपा तथा सानिध्य से ही विध्वंस होता है ॥ ६७ ॥

भोगोचितेन वयसा कमलादयाभिः
सम्पन्न एव हि भवान् जगदत्यजद्यत् ।
वैराग्यमेतदयतो धनतो विहीनो
वीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि ॥ ६८ ॥

अगाधलक्ष्मी सम्पन्न आपने भोगोचित अवस्था (जुवानी) में जो संसार का त्याग किया सो ही वास्तविक त्याग कहलाता है; अन्यथा धन के नष्ट होजाने तथा इन्द्रियों के शिथिल पड़जाने पर तो बुद्धिमान् से बुद्धिमान् को भी वैराग्य होजाता है ॥ ६८ ॥

उन्मादवालममताविपदादिचिन्ता
सन्तानशामकनिदानमतिं सुपूज्यम् ।
यद्यात्मचिन्तनरसे रसिकाः स्थ यूयं
भो ! भो !! प्रमादमवधूय भजध्वमेनम् ॥ ६६ ॥

हे संसार के उपासको ! यदि आत्मचिन्तन रूपी रसके रसिक बनना चाहते हो तो प्रमाद की जड़ उखाड़ो और उन्माद, ममता, तथा अनेक विपत्तियों के दूर करने में कृतहस्त बुद्धि वाले पूज्य की आराधना करो ॥ ६६ ॥

ध्यानादिसम्बलयुता शिवमार्गगा भो !
आधेःकदम्बबहुजर्जरिता गुणज्ञाः ।
सज्जीभवन्तु कुरुते ह्यनुहूतिमेतु
मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम् ॥ १०० ॥

हे ध्यानादि पाथेय (रास्ते में खाने के लिये बनाई हुई वस्तु) वाले मोक्षमार्ग के पथिको ! तथा मानसिक दुःखों से दुखियो एवं

गुणज्ञ मनुष्यो ! आपको मोक्षपुरी में लेजाने को पूज्यश्री बुलारहे हैं अतः शीघ्र ही मोक्षगामी संघ में सम्मिलित हो जाओ ॥ १०० ॥

नो प्राणिपीडनमथो न च दुष्टवाक्यं
नो चौर्यमाचरत चारु समाचरध्वम् ।
संश्रूयते दिवि गतोऽपि भवान् यथाप्रा-
गेतान्निवेदयति देव ! जगत्त्रयाय ॥ १०१ ॥

तुम सब किसी भी जीव को कष्ट मत दो, असंस्कृत (दुष्ट) भाषा को व्यवहार में मत आने दो, चोरी का आचरण मत करो और सदा अपने आचार विचार को शुद्ध बनाओ इत्यादि जैसा आप कहा करते थे ज्यों का त्यों अब भी सुन पड़ता है। (यदि कोई मनुष्य नाटक आदि की सीन सीनरी को दत्तचित्त तथा एक-रस होकर देखता है तो बहुत दिनों तक उसके सामने वही नजारा (दृश्य) उपस्थित रहता है) ॥ १०१ ॥

प्रस्थानमाविरभवच्च तवेदमेत
दाकस्मिकं तु मुनिनाथ ! पयोदकाले ।
गर्जन्ति मेघनिवहाः सुजना त्रिदन्ति
दंध्वन्यते तव मुदे सुरदुन्दुभिर्हि ॥ १०२ ॥

हे मुनिराज ! जब भी बादल गर्जता है तभी लोग समझते

हैं कि, आपके स्वागत में देवगण दुन्दुभि ही बजा रहे हैं, कारण कि, आपका आकस्मिक प्रस्थान ही इस वर्षा ऋतु में हुआ है, इससे आपके स्वर्गारोहण का दिवस वर्षाऋतु भर उभय लोक में खूब धूमधाम से प्रति वर्ष हुआ करेगा ॥ १०२ ॥

शास्त्रैर्विकाशनपरैर्मिहिरैः सदा हि
लुप्तप्रतत्त्वनिचयाः परवाद्युलूकाः ।
नश्यन्ति दूरमथवा स्वधियं त्यजन्ति
उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ ! ॥ १०३ ॥

जैसे द्योतमान सूर्य के समान शास्त्रों से परवादी उल्लू अपने २ तत्त्व को भूल कर लुप्त प्राय हो जाते हैं, वैसे ही आपके प्रखर प्रताप से भी यही घटना घट रही है ॥ १०३ ॥

शिष्यौघतारकयुतं भवदिन्दुमद्य
शीतैः प्रतीग्मरुचिभिश्च निदेशनाभिः
शश्वत्प्रकाशमवलोक्य विशादयुक्त
स्ताराञ्वितो विधुरयं विहताधिकारः ॥ १०४ ॥

शिष्यरूपी तारागणों से सुशोभित एवं शीतल तथा देदीप्यमान धर्मदेशनारूप चंद्रिका से सुतरां प्रकाशमान आज आपको देखकर नक्षत्रों सहित चंद्रमा अपने अधिकार को भूल रहा है ॥ १०४ ॥

अभ्यागते त्वयि गते दिवि देवतानां
स्वस्वामिभावमपनीय बभूव वार्ता ।
चष्टेऽमरोऽमरपतिं त्यज शीघ्रमिन्द्र !
मुक्ताकलापकलितोल्लसितातपत्रम् ॥ १०५ ॥

हे पूज्य ! आपके स्वर्ग चले जाने पर स्वामीसेवक भाव को एक ओर रखकर देवता इन्द्र से इस प्रकार कहने लगे हैं कि, हे इन्द्र ! झूमती हुई मोतियों की लड़ियों वाले अपने छत्र को यहां से दूर करदो ॥ १०५ ॥

यस्त्वां जहार कुटिलः समयः स नून
मस्माकमाविरभवत्परमार्थशत्रुः ।
यामीं कृतिं सकललोककृते सुपूज्य
व्याजत्त्रिधाधृततनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ॥ १०६ ॥

जो कुटिल काल ने आपको हर लिया (चुरालिया) सो वह अवश्य ही हमारा परमार्थ शत्रु है, कारण कि, छल से भूत, भविष्य और वर्त्तमान इन तीनों रूपों से उस काल ने सब के लिये यमराज का कार्य स्वीकार किया है ॥ १०६ ॥

धर्मस्वरूपसमुदर्कसुरद्रुमेण
प्रद्योतितं हि भवता वचसा समन्तात् ।

उद्गीयमानयशसा दिवमद्य भाति
स्वेन प्रपूरितजगत्त्रयपिण्डितेन ॥ १०७॥

धर्म स्वरूप तथा रमणीय फल वाले कल्पवृक्ष द्वारा प्रकाशित स्वर्ग भी गाया जाता है यश जिन्हों का और पूर्ण करदिये हैं तीनों लोक जिन्होंने ऐसे आपके वचनों से ही शोभित होता है ॥१०७॥

मानी धनी स्वमतिमन्थितशास्त्रराशि
र्दासीकृतेतरजनोऽपि विधर्षितस्त्वं ।
प्रोद्यन्मरीचिनिचयेन भवन्मुखेन
कान्तिप्रतापयशसामिव सञ्चयेन ॥ १०८ ॥

धनी, अभिमानी, निज बुद्धि द्वारा शास्त्रों को विलोडन करने वाले तथा दूसरे जीवों को दास बना लेने वाले मनुष्य भी कान्ति, प्रताप और यश इन तीनों के समूह के समान देदीप्यमान है तेजः पुंज जिसमें ऐसे आपके मुख को देख कर प्रसन्न हो जाते थे अर्थात् उन मनुष्यों में उक्त दोष नहीं रहते थे ॥ १०८ ॥

त्वत्पादसेवनसुधा प्रददाति सौख्यं
तन्नैव नैव लभते गुणिनां प्रमुख्य ! ।
एवं वदन्ति कवयो नृपमन्दिरेण
माणिक्यहेमरजतप्रविनिर्मितेन ॥ १०९ ॥

हे गुणिगणाग्रगण्य ! आपके चरणों की सेवा मनुष्यों को जितना सुख देती थी उतना सुख मणि, सुवर्ण और चांदी से बना हुआ राजभवन भी नहीं देता है. इस प्रकार कविलोग कहते हैं । १०६ ॥

त्रैलोक्यपूत ! समितौ समये तु तस्मिन्
त्वत्तुल्यकान्तिसुषमां न कदाऽऽप कोऽपि ।
अद्याऽपिकोऽपि गणनाथ ! यथा त्वमेव
सालत्रयेण भगवन्नभितो विभाति ॥ ११० ॥

हे भगवन् ! त्रिलोकपावन–पार्श्वनाथ ! उस त्रिदुर्ग से उस समय में जो शोभा आपने प्राप्त की थी उसे कोई भी जीव प्राप्त न कर सका तथा वैसे ही हे गणनाथ ! आप जैसे आपही शोभते अर्थात् आप आप ही हैं, आपकी समता सिवा आपके दूसरों नहीं हो सकती ॥ ११० ॥

देवेन्द्रभक्तिविभवार्चितपादपीठ !
संस्पृश्य पादयुगलं तव पूर्णपूताः ।
पूज्यस्य संश्रितदिवो बहुशोभमाना
दिव्यस्रजो जिन ! नमत्त्रिदशाधिपानाम् ॥ १११॥

हे देवेन्द्र की भक्ति से पूजित चरणों वाले–सुपूज्य ! स्वर्ग में

पधारे हुए आपके चरणों के स्पर्श से अत्यन्त पवित्र एवं सुशोभित मंदारमाला नमस्कार करते हुए इन्द्र की और भी अधिक सुशोभित होती है ॥ १११ ॥

स्वर्गापवर्गसुखरत्नचये वदान्यं
सम्पन्नभूपनिवहाश्चरणौ पतन्ति ।
स्वच्छुद्धबोधमधिचित्तमभीप्सवस्त्वद्
उत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबन्धान् ॥ ११२ ॥

स्वर्गापवर्ग सुखरूपी रत्न समूह के देने वाले आपके अनंत-ज्ञान को हार्दिक सन्मान देते हुए तथा मन में आपके शुद्ध-बोध को लेने की इच्छा वाले राजालोग रत्नजटित मुकुटों को अलग कर आपके चरणों पर पड़ते हैं ॥ ११२ ॥

संसारतापपरितप्तचितो जना हि
मिथ्यात्वमोहगदजर्जरिता मुनीन्द्र ! ।
आप्तुं सुखानि भुवनेऽभयदावुदारौ
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वा परत्र ॥ ११३ ॥

हे मुनिन्द्र ! संसार के त्रिविध तापों से संतप्त एवं मिथ्यात्व रोग से पीड़ित मनुष्य उभयलोक में सुख की कामना से उदार तथा अभयप्रद आपके चरणों का आश्रय लेते हैं ॥ ११३ ॥

हस्त्यश्वयानमणिजातसुखाङ्गमन्यद्
वाराङ्गनादिकृतगीतमभिप्रपन्नाः ।
ये चैहलौकिकसुखे निरतास्त एव
त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव ॥ ११४ ॥

जो मनुष्य हाथी, घोड़े, रथ और रत्नादिक सम्पत्ति के सुख में मग्न होकर तथा वैश्या आदि के विलास और गीतों में आशक्त हो केवल ऐहिलौकिक सुख को ही जानते एवं मानते हैं हे नाथ ! वे ही मनुष्य आपके संगसे प्रसन्न नहीं हैं ॥ ११४ ॥

वीरप्रभोर्वचनमानसमस्ति शस्तं
नीरं सदक्षरतरङ्गसुभक्तिरत्र ।
तीर्थारविन्दमिह तत्र निवासिहंसः
त्वं नाथ ! जन्मजलधेर्विपराङ्मुखोऽसि ॥ ११५ ॥

हे नाथ ! अक्षररूपी जल वाले एवं भक्तिरूप तरङ्गों से तरङ्गित तथा साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका इन चारों तीर्थकमलों से मण्डित, भगवान् वीरप्रभु के वचनरूपी मानस-सरोवर में सर्वदा विहार करने वाले राजहंसरूपी आप जन्म-समुद्र से विरुद्ध है. मानस-सरोवर में रहने वाला राजहंस खारी जन्म-समुद्र से कोसों दूर रहता है, यह स्वभावसिद्ध है ॥ ११५ ॥

ज्ञानक्रियातरणिरूपमतिर्मतोऽसि
जन्मादिशम्बरविपत्तितरङ्गरूपात् ।
संसारसागरनिभादुचितं त्वमेव
यत्तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान् ॥ ११६ ॥

जन्मरूपी गहरे जल वाले तथा विपत्तिरूपी कुटिल तरङ्गों वाले भयंकर संसार-सागर से शरणागत जीवों को आप पार करते हैं सो उचित ही है, क्योंकि, ज्ञानक्रियारूपी नौका के सादृश बुद्धि वाले आप ही प्रसिद्ध हैं ॥ ११६ ॥

अस्मद्गुरोर्गुणनिधेश्च दयैकसिन्धो
र्नित्ये परार्थनि वहार्पितजीवितस्य ।
सर्वातिशायिजिनतन्त्र उदारधी त्वं
युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव ॥ ११७ ॥

गुणनिधि, करुणा-सागर तथा परोपकार में समर्पित जीवन वाले हमारे पूज्य गुरुजी का उदार बुद्धि होना समुचित ही है, क्योंकि, विशाल, सर्वजीव हितकारी तथा सर्वोत्तम जैनतन्त्रों में श्रीजी की ही मति परिपक्व थी ॥ ११७ ॥

सामान्यधीर्भवतु कर्म विपाकरिक्तो
जानाति नो य इह कर्म विपाकमेव ।

विज्ञाततत्त्वनिकुरम्बमुनीन्द्रचन्द्र !
चित्रं विभो! यदसि कर्मविपाकशून्यः ॥ ११८ ॥

जो जीव इस संसार में कर्म क्या वस्तु है और उसका विपाक क्या है ऐसा नहीं जानते हैं वे ही कदाचित् कर्म विपाक से (क्रियाजन्य फलेच्छा से) शून्य हो सकते हैं. किन्तु तत्व को जानने वाले आप भी कर्मविपाक से रहित हैं यही आश्चर्य है ॥ ११८ ॥

सत्प्रातिहार्यमपि यस्य सुरश्चिकीर्षुः
शेतेऽष्टसिद्धिरनिशं शयशायिनीव ।
नाथोच्यसे तदपि मन्दधिया जनेन
विश्वेश्वरोऽपि जनपालक दुर्गतस्त्वम् ॥ ११९ ॥

हे नाथ ! हे जनपालक ! जब आपकी नौकरी देवताभी बजाना चाहते हैं और आपके हाथों में आठों सिद्धियां सदा नृत्य सी करती रहती हैं. तब भी मन्दबुद्धि लोग आपको अकिञ्चन कहा करते हैं यह कितना आश्चर्य है ॥ ११९ ॥

आस्यं वशेऽस्ति रसनाऽपि वशंवदैव
लेखन्यखेदमिलिखुर्मसिपात्रमत्र ।
त्वामस्म्यहं लिखितुमुद्यत एव मूढः
किंत्वाऽक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश ! ॥ १२० ॥

हे नाथ ! मुख भी मेरे अधीन है, जिह्वा वशं वदा में है, लेखिनी आलस्य छोड़कर लिखना चाहती है मसी (स्याही) आदि साधन भी आधिक्य से मौजूद हैं और मैं भी लिखने को लालायित हूं तो भी आपको वर्णन नहीं कर सकता और न लिख सकता हूं इससे स्पष्ट जाना जाता है कि, आप अक्षरप्रकृति होकर भी उल्लेख में नहीं आ सकते ॥ १२० ॥

तन्त्रार्णवे विविधधर्ममणिव्रजस्य
निःशारणे कुशलसंविदलं न मूढः ।
अस्यां स्थितौ तव कृपानिकरैः सुशक्ति
रज्ञानवत्यपि सदैव कथं चिदेव ॥ १२१ ॥

शास्त्ररूपी अगाधसागर से अनेक प्रकार के धर्म-रत्नों को निकालने के लिये विचारशील मनुष्य ही समर्थ एवं कटिबद्ध होते हैं. मंदबुद्धि कोसों दूर भागते हैं. ऐसी विकट स्थिति में आपकी अतुल कृपा से वह शक्ति अज्ञानी जीवों में भी आवसी जिससे सर्व साधारण भी उक्त समुद्र से धर्मरूपी रत्नों को लूट रहे हैं ॥ १२१ ॥

अत्यन्तदुष्कृतिनिलीनमनाश्च साधु
द्रोही जिघांसुरपि जीवचयं त्वदीयम् ।

सान्निध्यसन्निधिमवाप्य जहौ स्वभावं
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकाशहेतु ॥ १२२ ॥

अत्यन्त पापमें मन देने वाले, साधु से द्वेष करने वाले, जीवों को घात करने की इच्छा वाले, महापातकी मनुष्य आपके सान्निधि (समीपता) रूपी सन्निधि (शाश्वत खजाना) प्राप्त कर अपने क्रूर स्वभाव का त्याग करते हैं. अतः विदित होता है आपका ज्ञान जगत् के विकाश करने में देदीप्यमान तथा कृतहस्त था ॥१२२॥

मिथ्यात्वमोहकलुषाऽविलचेतनाजुट्
जन्तोर्यथा जलधरः पयसा निजेन ।
प्रक्षालये दिवतमस्तव नाथ ! नाम
प्राग्भारसंभृतनभांसि तमांसि रोषात् ॥ १२३ ॥

जिस प्रकार धूलि से मलिन आकाश को गर्जना करता हुआ नवीन जलधर (बादल) अपने जल से साफ कर देता है ठीक उसी प्रकार आपका नाम भी मिथ्यात्व और मोह से मलिन बुद्धि वाले जीवों के हृदयाकाश को शुद्ध और साफ कर देता है ॥ १२३ ॥

मृत्योरहेः खगपतिः स्मरदन्तिसिंहो
लोभैनराजिमृगयुः शुचरात्रिभानुः ।
हन्तीह नाथ ! दुरितानि तवाऽभिधान
मुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि ॥ १२४ ॥

मृत्युरूपी सर्प के लिये गरुड़, कामरूपी उन्मत्त हाथी के लिये सिंह, लोभरूप मृग के लिये व्याध और शोकरूपी अंधारी रात्रि के लिये प्रचंड भानु के समान जो आपका नाम है वह नितरां कमठ नामक शठ तापस से उठाये गये पापों को निस्सन्देह नाश करने की शक्ति रखता है ॥ १२४ ॥

पाखण्डमण्डनपरैर्निजशक्तिसारै
रिच्छानुसारकृतिमेव विकाशयद्भिः ।
तीर्थादिसस्य उदवग्रहसाग्रहश्च
छायाऽपि तैस्तव न नाथ! हता हताशैः ॥ १२५ ॥

अपनी प्रौढ शक्ति से पाखंड मत का मण्डन करने वाले, स्वेच्छाचार का विस्तार करने में कुशल एवं चारों तीर्थरूपी सस्यों में वृष्टि को रोकने वाले दुर्जन हताश होकर आपकी छाया को भी इधर उधर न कर सके ॥ १२५ ॥

कुड्येऽश्मराजिरचिते सविधास्थितास्तै
र्लोष्ठैर्विघट्य सहसा प्रतिवर्तितैश्च ।
चेमा हतो भवति तत्कपटैस्तथैव
ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥ १२६ ॥

जिस प्रकार पत्थर की दृढ बनी हुई दीवार पर कोई जोर से

पत्थर पटके तो वह पत्थर दीवार से टकरा कर उलट पटकने वाले के मुँह पर आ लगता है उसी तरह दुर्जनों के किये हुये उत्पातों से दुर्जन ही नष्ट हुए ॥ १२६ ॥

साभ्रेऽह्नि संभ्रमविहीनधियैव धीमन्!
धर्म्यं वचस्तव मुखाद्बहिराजगाम।
गर्जद्गुरु प्रतिभटं च तिरश्चकार
यद्गर्जदूर्जितघनौघमदभ्रभीमम् ॥ १२७ ॥

वर्षा ऋतुमें संभ्रमके बिना ही आपके मुख से निकले हुए धर्मरूपी मधुर वचन जोर से गर्जने वाली काली घटाको तिरस्कार करते थे अर्थात् मेघकी मंद एवम् मधुर ध्वनि से भी आपकी वाणी विशेष मधुर थी ॥ १२७ ॥

स्वान्तप्रशान्तरसिका वशिका सभासु
तारापथे च तव गीः प्रणिनाद मेघम्।
गम्भीरतारगुणजाततया जिगाय
अस्यत्तडिन्मुसलमांसलघोरनादम् ॥ १२८ ॥

अत्यन्त शान्तमन वाले रसिकों को वशमें करने वाली आपकी मधुर वाणी जब सभा मंडप में घूमती हुई आकाश को प्रतिध्वनित करती थी तब चकमकाती हुई बिजली वाली, मुसल-धार जल वर्षाने वाली नील घन-घटा भी शर्माती थी ॥ १२८ ॥

गर्वोर्जितात्ममकरध्वजनाशदक्षः
सत्पक्षमाक्षिपति पक्ष इनो विपक्षः ।
पार्श्वप्रभुर्व रिपुणोक्तमसौ सुसोढा
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारिदध्रे ॥ १२६ ॥

अहंकार से जिसकी आत्मा उन्नत है ऐसे काम को नष्ट करने में कृतहस्त, सत् पक्ष में झूठे आक्षेप करने वालों के प्रबल विरोधी पूज्य श्री ठीक वैसे ही दुर्जनोंकी दुष्ट वाणीरूपी वर्षा को एक चित्त से सहते थे जैसे कि, दैत्यों द्वारा वर्षाये हुए जल को श्री पार्श्वप्रभु बडी शान्ति से सहते थे ॥ १२६ ॥

वाग्वारि योऽत्र विततार मलीमसात्मा
मालिन्ययुक्तमधिसाधुमुदैव सेहे ।
दाताऽऽप तापमभितोऽभिहितेन वक्तु
स्तेनैव तस्य जिन ! दुस्तरवारिकृत्यम् ॥ १३० ॥

हमारे पूज्य श्री पर मलिन आत्मा दुष्टों ने जो वाणीरूपी जल को वर्षाया उस कठोर वाणी-वर्षा को पूज्य श्री ने बड़ी खुशी से सह लिया, किन्तु वर्षा करने वाले वाद में संतप्त हुए और बोलने वाले को उन दुष्ट वचनों से निकले हुए विषयुक्त जल को पीने का फल भी मिला ॥ १३० ॥

प्रागूजन्मसञ्चितसुपुण्यविभावतश्चेत्
साधानवद्यमभिगद्य न खिद्यतेऽसौ ।
मृत्वा व्रजिष्यति यमालयमाविषीदन्
ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृतिमर्त्यमुण्डः ॥ १३१ ॥

अगर साधुओं की निन्दा करने वाला पूर्वजन्म के इकट्ठे किये हुए पुण्योदय से दुःखी न हुआ तो भी केशों के उखाड़ने से विकृताकार तथा दुःखी होता हुआ वह मनुष्य अवश्य ही नरक में पड़ेगा ॥ १३१ ॥

निन्दाऽभिनन्दितधियां दुरितक्षयाय
कालिन्ददिष्टपुरुषैः परुषैः समिद्धः ।
जिव्हेन्धनो धमतिनो विकलं करोति
आलम्बभृद्भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः ॥ १३२ ॥

जो मनुष्य सदा दूसरों की निन्दा करना ही अपना कर्तव्य समझते हैं उन्हें पापों से मुक्त करने के लिये धर्मराज की आज्ञा से भयानक यमदूत उक्त मनुष्यों की जिह्वा में आग लगा देते हैं जिससे वह आग उनके मुखों से बड़ी २ ज्वाला रूप से निकलती है और उन्हें भस्मसात् करती जाती है ॥ १३२ ॥

नाथ ! त्वदीयहितदेशनतः सनाथ
तिष्ठन् तिरोहिततनुस्तरुमौलिलीनः ।
तत्याज्य तूर्णमपिसाथ परेतयोनिं
प्रेतव्रजः प्रतिभवन्तमपीरितो यः ॥ १३३ ॥

हे नाथ ! आपके हितोपदेश से सनाथ-वृक्ष की सघन शाखाओं में शरीर को छिपा कर बैठे हुए प्रेत भी आप के प्रति भक्ति प्रेरित होकर तथा आपको आत्मसात् करके प्रेतयोनी से मुक्त होते हैं ॥ १३३ ॥

यैः प्राज्ञमानिनिवहैर्भवतोपदेशः
प्रत्तः कृतो न निजकर्णगतोऽभिमानात् ।
तस्माद्विरुद्धविधिमाविदधे विरोधात्
सोऽस्याऽभवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः ॥ १३४ ॥

अपने को ही पण्डित मानने वाले जो लोग आपके दिये गये अमृतमय उपदेश को कानों द्वारा नहीं पीते थे प्रत्युत विरोधी होकर उपदेश से विपरीत आचरण करते थे उनके जन्म २ के लिये वह विरोध दुःख का कारण बन बैठा है ॥ १३४ ॥

सद्वाक्यरत्ननिचयं व्यतरन् जनेभ्यो
ज्ञानप्रभावगुणगौरवगुम्फिताश्च ।

ध्यायन्ति धीरधिषणास्त्वमिव प्रभुं चेत्
धन्यास्त एव भुवनाधिप! ये त्रिसन्ध्यम् ॥ १३५ ॥

सुन्दर वाणी रूपी रत्न समूह को लेकर सारी जनता को देने वाले, ज्ञान एवम् प्रताप से सुशोभित जो विद्वान् आपके समान तीनों कालों में परमेश्वर का ध्यान करते हैं वे भी धन्य हैं ॥ १३५ ॥

सुज्ञानदर्शनचरित्रपवित्रचित्तं
यत्सर्वजन्मितरणिं शरणं प्रपद्य ।
दुष्टाष्टकर्मरिपुमोचनसिद्धहेतु
आराधयन्ति सततं विधुतान्यकृत्याः ॥ १३६ ॥

सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन तथा सम्यक् चारित्र से जिन्होंने हृदय को पवित्र किया है और प्रतिपक्षी (शत्रु) आठों कर्मों के मिटाने के प्रधान कारण तथा प्राणीमात्र को भवसागर से पार करने को नौका के समान परमेश्वर को तल्लीनता से जो भजते हैं वे धन्य हैं (इतना पूर्व श्लोक से जानना) ॥ १३६ ॥

आबालवृद्धयुवकायधराऽविशेषाः
प्राप्तत्वदीयवचनार्थमुदाद्यशेषाः ।
न्यस्ताक्षजीवसुलभात्रिविधार्चलेशा
भक्त्योल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः ॥ १३७ ॥

बालक, वृद्ध, युवा एवम् समस्त प्राणधारी जीव आपके सारगर्भित वचन-जन्य अर्थज्ञान से हर्षित हुए तीनों प्रकार के दुःखों को त्याग कर भक्ति से रोमाञ्चित देह वाले हो रहे हैं ॥ १३७ ॥

शास्त्राब्धिगूढहृदयार्थविदः समन्ता
ज्जीवादितत्त्वनिकरे परमार्थविन्दाः ।
तेऽप्यालपन्ति भवदुःखविनाशहेतु
पादद्वयं तव विभो ! भुवि जन्मभाजः ॥ १३८ ॥

शास्त्ररूपी समुद्र के छिपे हुए हृदयरूप अर्थ को जानने वाले, जीवादि तत्वों को प्राप्त करने वाले, प्राणी भी आपके चरणों को सांसारिक दुःखों के दूर करने का कारण ही कहते हैं ॥ १३८ ॥

जन्मान्तताप्विषयपङ्कवितर्षगर्ते
गर्वोर्मिजन्ममकरस्वभ्कपाष्टकर्मे ।
पापाणदम्भविशदेऽवनिमज्जतोऽस्मान्
अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश ! ॥ १३९ ॥

हे मुनिराज ! जन्म तथा मरणरूपी जल वाले, विषयरूपी भयंकर तृष्णा ही है भंवर जिसमें, अहंकार की तरंगों से युक्त, जीव ग्राहों से भरे हुए वन्धुवर्ग है मीन जिसमें, आठों कर्म रूपी

चट्टानों से विषम तथा दम्भ से वृद्धि प्राप्त ऐसे दुस्तर भवसागर में डूबते हुए हम लोगों की रक्षा करो ॥ १३९ ॥

विश्राणने विमलवैश्रवणेन तुल्यो
धर्मादितत्त्वनिचयस्य वदान्यकस्त्वम् ।
शाणायमानधिषणः सकले प्रतीतो
मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि ॥ १४० ॥

दान में कुबेर सदृश, धर्म्मादि तत्त्व प्रदान में शाण समान बुद्धि वाले तथा जगत्प्रसिद्ध भी आपको मैं नहीं जान सका (यही मेरी वज्रमयी अज्ञता का नमूना है) ॥ १४० ॥

संग्रामवह्निभुजगार्णवतिग्मशस्त्रो
न्मत्तेभसिंहकिटिकोटिविषाक्तवाणाः ।
दुष्टारिसंकटगदाः प्रलयं प्रयान्ति
आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमन्त्रे ॥ १४१ ॥

युद्ध, अग्नि, विकराल सर्प, दुस्तर समुद्र, तीखे शस्त्र, उन्मत्त हाथी, भयंकर सिंह, उद्धत सूअर, विषालिप्त वाण, दुष्टात्मा शत्रु, संकट और रोग ये सब उसी क्षण में नष्टप्राय हो जाते हैं, हे नाथ! जब आपका नाम रूपी पवित्र मन्त्र सुनलेते हैं ॥ १४१ ॥

चिन्तावितानजननान्तविनाशहेतौ
कल्पद्रुमे त्वयि सुसिद्धिसमानरूपे ।

हृत्पद्मसद्मवसिते भविनां मुनीन्द्र !
किंवा विपाद्विषधरी सविधे समेति ॥ १४२ ॥

चिन्ता समूह को तथा जन्म मरण को नाश करने वाले एवं कल्पवृक्ष के समान अष्टसिद्धि स्वरूप आप जब जनता के हृदय सरोज में निवास करते हैं, हे नाथ ! तब क्या विपत्तिरूपी महा विषधरी—नागिन पास आसकती है ? ॥ १४२ ॥

पीयूषयूषसमशान्तिनितान्तपुष्टो
हृष्टः सदा धनगणैश्चरणप्रभावात् ।
नो विस्मरामि शुभतत्वगृहीतकोऽहं
जन्मान्तरेऽपि तव पादयुगं मुनीश ! ॥ १४३ ॥

अमृत के मावा समान सरस शान्ति से पुष्ट तथा आपके चरणों के प्रताप से धन ध्यानादि से संतुष्ट एवं तत्त्वग्राही हम आपके श्री-चरणयुगलों को जन्मान्तर में भी नहीं भूल सकेंगे ॥ १४३ ॥

विश्राणनश्रमितशीलतपोव्रतस्य
सुध्यानयोगशमसंयमसिद्धशुद्धेः ।
कस्यापि शुद्धचरणं तव चाप्यसद्यो
मन्ये मया महितमाहितदानदत्तम् ॥ १४४ ॥

अभयदान तथा सत्पात्र दान में तत्पर, शील एवं तप के

धारक, शुक्ल ध्यान तथा संयमादि से युक्त ऐसे किसी महापुरुष के पवित्र चरणों को जन्मान्तर में आत्मसात् करके ही अभीष्टप्रद, समर्थ एवं जगत्पूजित आपके चरणकमलों को प्राप्त किया है ऐसी हमारी प्रबल धारणा है ॥ १४४ ॥

श्रीमत्सु सत्सु न हि दुःखमवाप चास्मान्
यातेषु खं प्रतिनिधीन् समयज्ञसुज्ञान् ।
ज्वाहिरलालशमिनः प्रददत्सु नाणु
स्तेनेह जन्मनि मुनीश ! पराभवानाम् ॥ १४५ ॥

हे मुनिराज ! आपके रहते हुए हमें दुःख का अनुभव नहीं हुआ तथा आपके स्वर्ग सिधारने पर अवश्य देश, काल, क्षेत्र एवं भाव के जानकार प्रबल पण्डित श्री १००८ श्री जवाहिरलालजी महाराज को आप अपने स्थानापन्न कर गये हैं, इससे वर्तमानभव में तो हम पराभूत नहीं हो सकते ॥ १४५ ॥

काव्यप्रणीतिजनितानवकीर्त्तिदूत्या
आहूतिनीतमतिरद्य भवाद्विभूतेः ।
प्राप्तोऽपवादपदभागभिसारिकाया
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ॥ १४६ ॥

काव्य बनाने से पैदा हुई नवीन कीर्तिरूपी दूती के बुलाने पर सम्मत होकर पूज्यप्रवर श्रीजी की विभूतिरूप अभिसारिका

के आदेश से हमनें मलिन आशय वालों के अपवाद से युक्त पद को प्राप्त किया है ॥ १४६ ॥

यो भाव आविरभवत्तव चिद्वियत्तो
भास्वत्प्रभाव इव तेन तमो निरस्तम् ।
त्वद्भावभावितजनैरिह ते प्रतीपै
र्नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन ॥ १४७ ॥

हे नाथ ! जो भाव आपके मनोव्योम में प्रचण्ड भास्कर के समान प्रकट हुआ उस तेजोमय भाव के प्रताप से आपके अनुयायी मनुष्यों के हृदयपटल पर जो मोहमय अन्धकार था सो एका एक नष्ट होगया परन्तु आपके विपक्षचारियों की आंखें मोह से चकाचौंध गयीं जिससे उनके हृदयाकाश का मोहान्धकार दूर न होसका ॥ १४७ ॥

जातः सतोऽमितहितोऽत्र भवान् महीतो
दृष्टिं गतो नहि भवेदिति नैव कष्टम् ।
ख्यातो भविष्यसि यतो हि जनैर्वियुक्तः
पूर्वं विभो ! सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ॥ १४८ ॥

सुतरां सज्जनों के हितकारी, परमपूज्य आप इस संसार से पधार गये अतः अब आपका साक्षात्कार दुर्लभ होगया है, तोभी इस बात की विशेष चिन्ता नहीं; कारण कि, आपका प्रथम दर्शन

किया हुआ है जिससे अब ध्यान से आपका साक्षात्कार होजाया करेगा ॥ १४८ ॥

युष्मत्पदानुगमने भविनां मनीषा
उत्कण्ठयन्ति रमयन्ति सदादिशन्ति ।
कृत्वाऽखिलं परिकरं गमनोत्सुकश्च
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः ॥ १४९ ॥

आपका अनुसरण करने की इच्छा भव्य जीवों को उत्कण्ठित करती है, प्रसन्न करती है एवं सब प्रकार से आज्ञा देती है इसीसे मैंने भी आपका अनुसरण करने की सब तरह की तैयारियें करली हैं परन्तु मर्मभेदी अनर्थ (पाप) ही मुझे बारंबार रोक रहा है ॥ १४९ ॥

स्युस्त्वाद्विधा बहुविधा विबुधाः सुशान्ता
स्त्वां वीक्ष्य मानवशिरोऽर्चितपादपीठम् ॥
आहेयभोगानि भभोगभुजा निरस्ताः
प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः कथमन्यथैते ॥ १५० ॥

अनेकों विद्वानों ने आपको समस्त जनमस्तकों से पूजित चरण पीठ देखा, ये सब आपके समान शान्तात्मा बनना चाहते थे किन्तु बन न सके वे सांसारिक भोगों को भोग कर सर्प के समान मूर्च्छित हो चुके थे, जिससे उन्हें पछाड़ खानी पड़ी

अन्यथा कुल तैयारीयां करने पर भी वे वैसे (आपके समान) क्यों न बने ॥ १५० ॥

भावाऽवबोधविधुराय निरन्तराय
द्रव्याधिपाय च समृद्धिविवर्जिताय ।
सर्वेभ्य एव समबोधमदाः सुपूज्य !
आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि ॥१५१॥

आप श्रुत—श्रवणगोचर थे, पूजित-समस्तलोकमान्य थे एवं दृष्ट—देखे गये थे इसीसे आपने भेदभाव को एक ओर छोड़कर विद्वानों, मूर्खों, धनियों तथा निर्धनों को समान ज्ञान दिया जिससे आप पूर्ण समदर्शी थे ॥ १५१ ॥

दीने दयार्द्रहृदयः परमस्त्वमासी
र्ह्द्यो दरिद्रनिवहः परमस्तवासीत् ।
यातो यतो दिवमवैमि च निर्धनेन
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या ॥ १५२ ॥

हे पूज्य ! दीन दुःखियों के लिये आपका हृदय सदा दयार्द्र रहता था और दरिद्रियों ने आपको आत्मसात्कर लिया था, इतना होनेपर भी आप स्वर्ग में चले गये इससे स्पष्ट विदित होता है कि, परमदरिद्री मैं आपको हृदय में स्थान न दे सका—अपना न सका पश्चात्ताप !!! ॥ १५२ ॥

दैवेन मे हि विमुखेन भवन्तमद्य
हृत्वा हृतं मम हृदो वद किं न सद्यः ।
किं वाऽधिकेन मम शर्मविभिन्नमर्म
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव ! दुःखपात्रम् ॥ १५३ ॥

हमारे प्रतिकूलवर्ती दैवने आपको हरकर हमारा क्या नहीं हर लिया यह आपही कहें, अधिक क्या कहें, हमारा शर्म—कल्याण (शुभ) भिन्नमर्म हो चुका है जिससे हे प्राणिमात्र के बन्धो ! आज हम दुःख के भाजन बन बैठे हैं ॥ १५३ ॥

सम्प्रत्यसाम्प्रतबहुच्छलदम्भयुक्त
स्तद्धीनसाधुपथवर्त्तिनमाक्षिपन्ति ।
रक्ष प्रभो ! बहुदुरक्षरवर्षतोऽस्मात्
त्वं नाथ ! दुःखिजनवत्सल ! हे शरण्य ! ॥१५४॥

हे प्रभो ! इस समय कपट पटु अनेकों दंभी लोग निष्कपटी साधुमार्गी जैन समाज की हंसी उड़ाते हैं अतः हे नाथ ! हे दीन बन्धो ! हे भक्तवत्स ! हे शरणागतप्रतिपालक ! उन दुष्टाक्षरों के बरसाने वालों से रक्षा करो ॥ १५४ ॥

नाथ ! त्वदीयचरणे विनयेन युक्ता
मत्प्रार्थनेयमधुना सफलैव कार्या ।

स्थादस्मदादिहृदयं शुभभावलिप्तं
यस्मात्क्रियाःप्रतिफलन्ति न भावशून्याः ॥ १५५ ॥

हे नाथ ! आपके चरणों में हमारी यह सविनय प्रार्थना अब युक्त है-उचित है अब इसे आप सफल करें और हमारे अन्तःकरणों को शुभ भावों से भावित—संस्कारित बनावें कारण कि, भावशून्य (श्रद्धाविहीन) क्रियाएं फलतीं नहीं; वे व्यर्थ होती हैं ॥ १५५ ॥

स्वस्मिन्निवाशु वहु पूरय शान्तिपुण्य
कारुण्यशास्त्रनिवहैर्मम मानसानि ।
मन्मानसाऽप्रमदमाशु विवर्त्तयेश !
कारुण्यपुण्यवसते ! वशिनां वरेण्य ! ॥ १५६ ॥

हे ईश ! हे संयमियों में श्रेष्ठ ! हे करुणा और पुण्य के निवास भवन ! अपनी आत्मा के समान हमारी आत्मा को भी उन्नत बनादो अर्थात् हमारे हृदयों में भी शान्ति, पुण्य, दया एवं शास्त्र समूह को कूट २ कर भरदो और हमारे अन्तःकरण में जो मद है उसे उलटदो अर्थात् दम (बाह्यवृत्तियों से मन को रोकना) करदो अथवा मद की उन्नति को रोक कर उसका ह्रास करदो ॥ १५६ ॥

सन्तु प्रपूर्णमनसो वचसा विनाऽपि
स्यात्केवलेन मनसाऽपि ममेष्टसिद्धिः ।
भारो न ते यदि सचेत्तदपीह सार्थो
भक्त्या नते मयि महेश ! दयां विधाय ॥ १५७ ॥

" तुम सब पूर्ण मनोरथ होवो " यदि आप ऐसा कहने का कष्ट न भी उठाकर केवल हमारे अभ्युदय को आप मनमें ही विचार दिया करें तोभी हमारी अभिलषित सिद्धि हो सक्ती है, भक्ति से नम्र हमारे जैसे भक्तों में दया करना आपका कर्तव्य है कोई बोझा नहीं मानलो यदि बोझा भी है तो निष्प्रयोजन नहीं सप्रयोजन है ॥१५७॥

चेत्खिद्यते जनमनः कलिखेदतश्च
श्रीमद्वियोगप्रभवात्परिभावतश्च ।
हित्वाऽधुना सुखनिदानसमाधिमाशु
दुःखाङ्कुरोद्दलनतत्परतां विधेहि ॥ १५८ ॥

विकराल कलिकाल जन्य दुःख से तथा श्री चरणों के वियोग से आविर्भूत परिभव द्वारा इस समय समस्त मनुष्यों के अन्तःकरण पूर्ण दुःखमय हो रहे हैं अतः आत्मा का सुख साधन करने वाली समाधी छोड़कर हमारे दुःखांकुरों के दलन में कटिबद्ध हो जाइए ॥ १५८ ॥

जन्मान्तरीयकलुषार्तजनार्तिहारि
भावत्कभव्यभवनं दुरितप्रहारि ।
आसाद्य प्रीतिनिकरं समुपैति भोगी
निःसख्यसारशरणं शरणं शरण्यम् ॥ १५६॥

भवान्तर में किये हुए पापों से दुःखी जनों के दुःख दूर करने वाले, कल्याण-मंगल के उच्च भवन, दुरित विदारक एवं असहाय के सहाय आपके चरणों को पाकर सांसारिक जीव प्रसन्न होते हैं ॥ १५६ ॥

मन्ये स पापपरिपूरितचित्त आसीद्
दुर्दैवदेवनविलासनिवास एव ।
नाऽसादि येन सुखमङ्घ्रियुगं त्वदीय
मासाद्य सादितरिपुप्रथिताऽवदात्तम् ॥ १६० ॥

निःसन्देह यह मनुष्य घोर पापी एवं दुर्दैव का क्रीडास्थल ही था जो आपके सर्व सुखकारी चरणों को पाकर भी सुखी न बन सका ॥ १६० ॥

अन्यत्कृतिप्रतिहितात्मतया न दृष्टो
दिष्टेन नष्टशुभकर्मचयेन दीनः ।
ध्यातोऽपि नैव नियतं च विवञ्चितोऽस्मि
त्वत्पादपंकजमपि प्रणिधानबन्ध्यः ॥ १६१ ॥

और और कार्यों में व्यग्र होने से तथा दुर्दैव से बाधित होने से मैं दीन हीन आपके पदारविन्दों का दर्शन न कर सका अथवा ध्यान न करने पाया, अतः हे जगतपावन ! मैं अवश्य ही छला गया ॥ १६१ ॥

त्वत्पादचिन्तनपरं प्रविहाय सर्वं
सम्प्रस्थितो यदि भवान्नहि मापवादीत् ।
सम्प्रत्यपि प्रतिपलं भवता न गुप्तो
बन्ध्योऽस्मि तद्भुवनपावन ! हा हतोऽस्मि ॥१६२॥

सर्वस्व का बलिदान कर मात्र आपके ही शरणागत था परन्तु आपने भी मुझे निराधार छोड़ बिना कहे बूझे परलोक सिधार गये अब इस समय में यदि रक्षा न करोगे तो इस अनाथ का सर्वनाश अवश्यंभावी है ॥ १६२ ॥

सर्वे भवन्तु सुखिनो गददैन्यमुक्ताः
सक्ताः परोपकृतिकार्यचये भवन्तु ।
जह्युःपरस्परविरोधमवाप्य मोदं
देवेन्द्रवन्द्य ! विदिताऽखिलवस्तुसार ! ॥ १६३ ॥

हे देवेन्द्रवन्द्य ! हे सकल पदार्थ तत्त्वज्ञ ! आपकी अतुल कृपा से आधिव्याधि एवं शोक से मुक्त होकर प्राणीमात्र सुखी हों सदा परोपकार में लगें और प्रसन्न रहकर पारस्परिक विरोध को छोड़ें ॥ १६३ ॥

विद्याऽनवद्यकृतिधर्मधनोन्नतीनां
मास्ते निदानमिति तां परिवर्धयस्व ।
त्वत्सेवकान् कुरु सुशास्त्ररसे रसज्ञान्
संसारतारक ! विभो ! भुवनाधिनाथ ! ॥ १६४ ॥

चारुक्रिया, धर्म, एवं धन आदि की उन्नति का मूल कारण सद्विद्या ही है, अतः विद्या को बढ़ाइये और सेवकों को शास्त्ररस के रसिक बनाइये ॥ १६४ ॥

संसारसागरसुसेतुमतिं विवेक
प्राग्भारपूरितकृतिहृदनीहिमाद्रिं ।
पूज्यं नवीनमतिदीनजने दयालुं
त्रायस्व देव ! करुणाहृद ! मां पुनीहि ॥ १६५ ॥

दुस्तर भवसागर में सेतु समान है बुद्धि जिनकी, विवेक संभार से पूर्ण क्रियारूप नदी के लिये हिमालय (नदी हिमालय से ही निकलती है) दुःखी जीवों में परमदयालु ऐसे हमारे नवीन पूज्य श्री जी की रक्षा आप करें ॥ १६५ ॥

ध्वान्तार्त्तजीवमिव भानुमुदन्ययार्त्तं
वारीव पन्नगगणार्त्तमिवाहिभोजी ।
यो मां जुगोप बहु गोप्स्यति पाति नित्यं
सीदन्तमद्य भयदव्यसनाम्बुराशेः ॥ १६६ ॥

आप हमारे उन नवीन पूज्य श्री की रक्षा करें जो अन्धकार से पीड़ितों के लिये प्रचण्ड मार्तण्ड हैं, पिपासा कुलों के लिये शीतल जल हैं, विषधरों से काटे हुओं के लिये गरुड़ हैं एवं जिन्होंने भय प्रद व्यसनरूपी जल से भरे हुए इस अपार संसारसागर से रक्षा की, करते हैं और करेंगे ॥ १६६ ॥

शत्रुः प्रशाम्यति पराङ्मुखतां प्रयाति
सिंहाहिदन्तिमहिदारचयाश्च हिंस्राः ।
ध्यानं नितान्तसुखदं हृदये नराणां
यद्यस्ति नाथ ! भवदङ्घ्रिसरोरुहाणाम् ॥ १६७ ॥

हे नाथ ! यदि आपके चरणकमलों का ध्यान मनुष्यों के हृदय में है तो निस्सन्देह शत्रु स्वयं नष्ट होंगे अथवा भग जावेंगे सिंह, सर्प, हाथी आदि हिंसक जीव भी पराभव पा सकेंगे ॥ १६७ ॥

वक्तुं बृहस्पतिरसक्त इनोऽपि दीनः
शक्नोति नो बहुविशारदशारदाऽपि ।
अस्मादृशोऽल्पविषयस्तव किं वदामि
भक्तेः फलं किमपि सन्ततसञ्चितायाः ॥ १६८ ॥

एकान्त संचित की हुई जिस भक्ति के फल को समर्थ बृहस्पति भी नहीं कह सकता बहुत जानने वाली सरस्वती भी कहने को

विधिवत् शुक्लादि ध्यान करके, जिनचरणों में अभिनमन करके तथा अपने चारु कृत्यों को विस्तारित करके आप इस संसार से जिस प्रकार स्वर्ग को सिधारे उसी प्रकार जितेन्द्रिय एवं समाधियुक्त बुद्धि वाले होकर हम भी आपका अनुगमन करें ॥ १७१ ॥

हित्वा यदापि गतवानिह नस्तथाऽपि
स्वीयेषु नो गणय नाथ! सदैव सौम्य ! ।
ध्यानं विदेहि तव येन सदा भवेम
सान्द्रोल्लसत्पुलककञ्चुकिताङ्गभागाः ॥१७२॥

यद्यपि हमें छोड़कर आप इस संसार से स्वर्ग चले गये हैं तो भी भव्यमूर्ते!अपनों में आत्मीयों में हमारी गणना अवश्य करें हमें अवश्य अपनायें आपकी दृष्टि मानसे ही, हम सघन एवं उत्पन्न हुए रोमांच से वस्त्रधारी बन सकते हैं अर्थात् अनिर्वचनीय आनन्द के भागी बन सकते हैं ॥ १७२ ॥

कामं विभातु भुवने सदृशस्तवेश!
शान्ति विना न तव कान्तिरमुष्य चास्ति ।
यत्राऽस्महे सुसुखिनः समवीक्ष्यमाणा
स्त्वद्दिव्यनिर्मलमुखाम्बुजवद्धलक्ष्याः ॥१७३॥

अर्थैर्जनैर्हयगजैश्च समेधमानाः
भव्यैः सुधीभिरतितश्च विवर्द्धमानाः
अन्ते समीप्सितपदं सततं ह्यचयन्ते
ये संस्तवं तव विभो ! रचयन्ति भव्याः ॥ १७४ ॥

हे विभो ! जो भव्य जीव आपके इस प्रकार संस्तव (स्तुति) की रचना करते है वे निः सन्देह इस संसार में धनसे बन्धुओंसे, सुन्दर घोडों से, उन्मत्त हाथियों से युक्त बुद्धिमान् भव्य जीवों से वृद्धि गत अन्त में निश्चय से अभिलषित पद(मोक्ष)को प्राप्त करते हैं ॥ १७४॥

परिशिष्ट २ रा.

जीवदया का पट्टा परवाना

बोहोतसा छोटा मोटा जागीरदारो व ठाकरो की तरफ से पूज्य श्री को जीवदया का पट्टा परवाना मिला था, वो सब मिल नहि शकने से जो थोड़ा सा मिला वो असल भाषा में अक्षरसः उत्र दीया है ।

॥ श्रीरामजी ॥

नंबर ३८२

महोरछाप छे

हुकम कचेरी राजस्थान बान्सी बनाम समसी पंचां जैन मार्गी साकीन सादड़ी वाला अभी अठे आये मालुम कराई के मारं श्री पूज्यजी महाराज मारवाड सुं पधारे है और अठे सादड़ी में चतुर्मास करेगा सा महाराज का फरमान उपकार के बारे में है बंदोबस्त के वास्ते फरमायो है जीसुं और ठिकाना में चाहे जैसो जैसा बंदोवस्त करावे ।

और अबे अठे भी अरज है सो उपकार को बंदोबस्त का वक्से जीसुं थांने जरिये हुकमनामा हाजा लीखो जावे है के अठे खटीक, कसाई वगेरे की दुकान श्रावण, कार्तिक, वैशाख मासमें बिलकुल बंद रहेगा इंके अलावा हमेशा मुजब इग्यारस व अमा-

वास्या को तो थावर भी दुकान बंद रहेगा खटीक, कसाई लोग बिना समजसुं दुकान करेगा तो वीने सजा देदी जावेगी संवत १९६५ के जेठ सुद १

श्री एकलिंगजी
(सही)

श्रीरामजी

खिधश्री कुंतवास राजश्री ओंकारसिंहजी दस कसबे हाजा का समस्त पंचों आपने थांकेणी करीके श्रीपूजजी महाराज सा. को पधारचो हुओ और धरम चरचा वगैरे उपकार हुओ और उपकार हमेशा के वास्ते वेणो चाले छे थास्ते यो पटो अठा के वास्ते तथा पटा की रियासत के लिये लीख देवणो सो ई माफिक बन्दोबस्त रहेगा।

वैशाख, श्रावण, कार्तिक, या तीन महीना में जीवने नहीं मारेगा, मारेगा जीने सजावेगा।

बारा महीना में पांच अमरिया अठा की तरफ से होता रहेगा सालोसाल ई माफिक और ई सिवाय पेलां सुं बन्दोबस्त अगियारस अमावस पजुसण, सगाद वगैरा की है ई जैसे मजबुत रहेगा सं० १९६६ का चैत सुदी १५

द० केशरीचंद वोराडिया
हुक्म से

श्री

नकल रोबकार महकमें खास व इजलास मुन्शी सुजानमल बांठिया कामदार कुशलगढ ता. २१—९—९ ईस्वी

सिका

B. SUJANMUL
Kamdar of Kushalgarh

चुंके मोसम बारिश खतम होने आया और जंगलमें घासभी पका होकर सुखने आगया हैं भील लोक अपनी कम फहमी से इलाके हाजा के जंगल में आग याने (दवाड़) वे अहती बाती से लगादेते हैं जिस से की तमाम घास व सब किस्म की लकड़ी जलजाती हैं जो उन्ही गरीब लोगों के गुजारे की बडी आधारकी चीज है और ऐसा होने से राजाको भी नुकसान होता है अवल भी इस अमर में माकुल इन्तजाम रखनेलिये हुकम जारी हुवा है मगर इतमिनान लायक इन्तजाम हुवा नहीं लिहाजा कबल अज गुजर जाने ऐसे वाका के इस साल इन्तजाम होना मुनासिब लिहाजा

हुकम हुवा के

एक एक नकल रोबकार हाजा महकमे मालमें भेजकर लिख जावे के इस वक्त जमाबन्धी का काम शरू है और हर देहात के भील वास्ते टकवाने के जमाबन्धी महकमें माल में आते हैं इस वास्ते हर मुखिया गांव से इस बातकी काफी समजायसकर मुचलके ताबानी रुपे पंचरा का लिया जावे के वो अपने अपने

गांव की हद के जंगल की पुरी निगरानी रखकर दावड़ न लगावें व न लगने देवे अगर दवाड़ ऊपर से आई तो फौरन तमाम गांव के लोग जमा हो बुझावे और जंगल या रास्तेमें तमाकु पीने वाले या दीगर अशखाश न आग न डालदें जिस से के अलोफैलकर जंगलमें नुकशान पहोंचानेका अहतमाल हो अगर इसमें किसी के जानीब से कसूर होगा तो बस से रुपे सदर तावान के वसूल किये जावेंगे और एक नकल रोबकार ताजा पुलिस में भेजी जावे और लिखा जाव के हर मुलिजमान पुलिसमें हिदायत की जावे के वो इस बातको पुरी निगरानी रखे याने दवाड़ के अमीनान चुड़ावार व मोहकमपुरा व छोटा शरवा कारकून तावे शराके तरफ भेजी जावे और यह असल फाईल महकमे हाजा में वास्ते दाखला के रखा जाय फक्त

सिक्का

श्रीएकलिंगजी श्रीरामजी

खावत

राजश्री जालोदा ठाकोर साहेब श्री दोलतसिंहजी
इस मुजब छोड्या मारी सीम मांही

मारी सीम में हरण व पंखेरु कोई मारे नहीं ना खाय ता उमर पीछे से भी कोई मारे नहीं ।

द० प्यारचंद मालु का श्री रावला हुकमसुं
लिखा सं० १९६५ जेठ बुदी २

श्रीरामजी ।

सावत

ठिकाना साठोला में ई मुजब नहीं वेगा । रावतजी साहब श्री दलपतसिंहजी सादड़ी का पंच अरज करवा आ था जीं पर छोड़ा ।

तालाव में मछली नहीं मारागां गजा पशु तलानठेपर बीतर आतो परगणामें कोई नहीं मारेगा और खास रावले का जानवरां के सिवाय हिरण गेज नहीं मारेगा और उपर लिख्या मुजब परगणा में कोई मारेगा तो सजादी जावेगी सं० १९६५ जेठ बुद १० द० नरसिंही राजा हुजुररा हुकमसुं श्रावण कातीक वैशाख तीन महीना में जानवर मात्र नहीं मारगा सदीवरे सौत्रे नरसिंही राजी हजुर रा केणासुं ।

नकल रोबकार महकमे खास व इजलास मुंशी सुजानमल
गांठीया कामदार कुशलगढ़ ता० २१-९-९ ई०

महोर छाप

B. SUJANMAL
KAMDAR OF KUSHALGARH.

चुके ऐसा वजह हुआ के इलाके हाजा के हर देहात में भील लोग दशहरा पर पाडा मारा करते हैं और वो पाडे ऐसे जानवर हैं के जो खेती के काम में बजाय बैलों के मदद देते हैं तो ऐसे सेंकडों जानवर के एक दिन में हलाक होने से और हर साल पर नौबत पहोंचने से बेसुमार जानवरों के नाबुद होने में बहुत भारी नुकसान उन्हो लोगों को मालुम होता है पस मुनासिब कि ऐसे ना दुरुस्त और बेरहम तरीकेके जरिये जो सेंकडो जानवरों का नाश करने में बहरत कोम कमहमी करते हैं उसके निस्बत उन को ऐसी समजुन दीजाय के वो अपनी इस भुल भरी हुई चाल का तर्क कर ऐसे पाप के काम को हरगीज न करे बल्के पाड़ो की जान का बचाव करने में अपना फायदा समझे और शायद है के उनके उन खाम खयालीकों के जो पाडा एक देवीं के भोगकी खातर हलका करते हैं वे वेसा होने से उनके जान माल की खैरहै मगर देवी को वो और तरीके से भोग दे सक्ते हैं। लेकिन इस रिवाज को कत्तई नाबुद करे ताके उन काम की बहुतही हो लीहाजा

हुक्म हुवा के

नकल इसकी भाल आफीसर की तरफ भेजकर लिखा जावे के दशहरे के दिन पाड़ा हरगीज नहीं मारे अगर जिस किसी के जानीब से ऐसा होगा उस से रु० १५) तावान लिया जावेगा ऐसे मुचलके हर देहात के मुखीया तड़वी के लिये जाकर उनके दिल

पर पूरा असर इस बात का कर दिया जावे के वो पाड़े के मारने के रिवाज को व खुशी छोड़कर उसमें अपने फायदे का एतकाद कर लेवे वनकल सारी पुलीस सुपरीन्टेन्डेन्ट की तरफ भेजकर तहरीर हो के इस बात के निगरार होके ऐसा बाकान गुजरे क्योंकि यह एक सबाब का काम है इस में इसमें हर मुलामजीम ने वादीली कोशीश करने में इसी साल इस बात का नतीजा जहुर में आयेगा कि इस हुकम की तामील व पायबंदी रीयाया इलाके हाजा के जानीब से बा इतमीनान हुई तो निहायत दर्जे खुशी का वायस होगा और एक एक नकल इसका बइनाय तामील मसन्दरे मोहकम पुराव छोटी सरवा को भेजी जाकर बजी नहीं फाईल में रहे। फक्त

सिक्का

ल० कामदार कुशलगढ़

हजुरी चेनाजी साकिन अमावली ई मुजब सोगन कर्या मारा हाथ सुं जनावर बिलकुल मारुं नहीं और घरे खाऊं नहीं माने चारभुजारा सोगन है।

द० जालमसिंह चेनाजी का कहवासुं

ठाकरां रुगनाथसिंहजी बगेली साकीन अमावली जागीरदार को भाई हरण, हुलो, तीतर मारुं नहीं खाऊं नहीं माने चारभुजारा सोगन है। द० जालमसिंह रुगनाथसिंहजी रा कहवासुं।

गाम ननाणे पेटे

ठाकरां देवीसिंहजी गोड़ इण मुजब सोगन कर्या मारा हाथसुं जानवर मातर नहीं मारुं माने चारभुजारा सोगन है कसाई लोगाने बेचणे नहीं देऊं।

द० ठाकरां देवीसिंहजी द० जीतमल का

ठाकरां दलेसिंहजी जोड़ भोमिया इण मुजब सोगन कर्यां मारा हांथसुं जानवर मात्र खाबा के वास्ते नहीं मारुं दात्र मारा हांथसुं नहीं लगावणो मवेशी बिना सेंधा आदमी ने नहीं बेचुं

द० वहेसिंह

ठाकरां जालिमसिंहजी जागीरदार अमावली ई मुजब सोगन कर्यां जींरी विगत मारा गाम में सुं गाय बिना आलखाणने बेचवा देवुं नहीं मारी सीम गाम अमावली में कोई जानवर मारी जाण में मारवा देवुं नहीं और मैं मारुं नहीं हरण खरगोश मारुं नहीं खाऊं नहीं और पंखेरु जानवर मारुं खाऊं नहीं माने चारभुजारा सोगन है।

द० जालमसिंह का हाथरा छै

॥ श्रीरामजी ॥

सावत

श्री पूजजी महाराज चांदड़ी पधारवा पर पंच सादड़ी का ठिकाणा सुंदा अरज होवा पर निचे लिख्या मुजब छोड्या और-

सरदार वगैरे से भी छोड़ाया गया सो साबित है जानवर वगैरा ई मुजब सं १६६५ का जेठ बदी बुधवार।

श्री रावली तरफ से

वेशाख कार्तीक में कसाई अमावस ग्यारस बकरा खज नहीं करेगा आगे भी बंदोबस्त हो परन्तु अब भी पुख्ता राखा जावेगा बारा ही महिनारी अमावास ग्यारस भी माफ है कार्तिक वैशाख दो महिना माफ और बाराही महिना की अग्यारस माफ ई साल में चेत्र मास में राज गन देवगन बारे है कसाई दुकान नहीं करेगा हिरण झीलरा रोज ग्यारस अमावास लुंदा में शिकार नहीं करेगा।

द० पन्नालाल रांका श्री हजुर का हुकम से

श्रीपरमेश्वरजी

सिक्को छे

सवरुप श्री ठाकरां राज श्री १०५ श्री मातासहजी लाखावतरा जिनरा साधु पूजजी महाराज श्री श्री १००८ श्री श्री श्रीलालजी महाराज मोटा उत्तम पुरुषारो पधारणों वाबरे हुओ तरे मैं वादणने गया तरे इणा मुजब सोगन किया है सो जावजीव पालां जावसुं

१—शीकार में सूर वो नार सिवाय दुजो कोई जानवर मारा हाथसुं नहीं मारसुं

२—अमावस अगियारस महिना में तिन आवे है सो मार्घ- बारारी छतीस तिथी हुए सो मारा राज में जावजीव हलांरो (हल) अगतो रेसी

३—बारसरी तिथीरें दिन कुंभार, लवार तेली न्याव, निभाड़ो, घाणी, एरणरो अमतो पालसी ने कसाई खटीकरो भी अगतो रेसी

४—मारा राज में गाय वगैरे कसाई व परदेशी मुसलमान ने नहीं वेचसी

५—सुड़ कोकड़ रा खेतारो मारा राज में वारे नाम देवी वालण देसी नहीं घालसी वो राजरो कसुरवार होसी

६—आसोज सुद १० ने सालो साल नव जीव वकरा ११ रे कुकड़क गलाया जावसी

इणां मुजब पाला जावसी ए कलमां पीढ़ी दर पीढ़ी पालां जावसी सं० १९६४ पोश सुद १५ दं० कामदार महेताब चंदरा छे श्री ठाकोर साहबरा हुकम सुं लिख दिनो छे

श्रीभेंरुनाथजी श्रीरामजी

महोरछाप

सीवश्री महाराज महारावतजी श्री भोपालसिंहजी रा. भदेसर दचनान् वड़ी सादड़ी का समस्त ओसवाल माननारा पंचा सुं पर

सादापेच अपरंच थां अरज कीधी के मारवाड़ सुं मां के श्री पूज्य जी चतुरमासो करवान आवे है सो वठांसु केवाई हैं के मारो आवो वे है ई निमित्त कुछ उपकार वणो चावे ई वास्ते अठे हुकम है के सावन कातिक वैशाख तीनों महिना कसाई दुकान सदैव बंद रहेगा और इगियारस अमावस तो आगे सदैव सुं पाले है जो पले ही है।

सिक्कोछै

सं० १९६५ का जेठ सुद १३
द० गीरधारी सिंह

श्रीएकलिंगजी श्रीरामजी
राजस्थान गोगुन्दा मेवाड़

नंबर की
८५९

महोरछाप छे

स्वामीजी महाराज श्री पूज्यजी महाराज श्री श्रीलालजी को हालमें गोगुन्दे पधारणो हुओ आपका उपदेश की तारीफ सुण मारो भी सभा में जावो हुओ. जो उपदेश श्रीमान् को मैं सुणों मारो मन बहुत प्रसन्न हुओ और आप जैसा महात्मा का उपदेश सुं मैं हमेशा के वास्ते पंखेरू जानवरां की व हरण की शिकार छोड़

दी है । और अठै राज़स्थान में आसोज सुदी ८ हमेशा सुं वीं पाड़ा रो बलदान होवे है वी में सुं १ हमेशा के लिये बंध किधो भो मारी पुस्त हर पुस्त बंध रहेगी ई के पहले सं० १९६५ में स्वामिजी महाराज चोथमलजी को पधारवो हुओ जद श्री बड़ा हजुर २ बकरा हर साल अमरा करवा को प्रण कीधो वा अब तक चलो जावे है वीरे हमेशा अमल रहेगा मैं श्री पूजजी महाराज क ई उपकार के लिये अतरो धन्यवाद करुं थोड़ो है सं० १९७१ का जेठ सुदी ७ सोम०

द० राजराणा दलपतसिंह

शेठ शांतीदास आसकरण जे. पी. मुंबाई.
महीयर राज्यमां वध वंध करावनार परमार्थी.
परिचय—परिशिष्ट २. प्रकरण ५२.

श्रीमान् महाराणा साहेबना ज्येष्ठ भ्राता
वावाजी सुरतसिंहजी साहेब—उदयपुर.
परिचय—प्रकरण ४४.
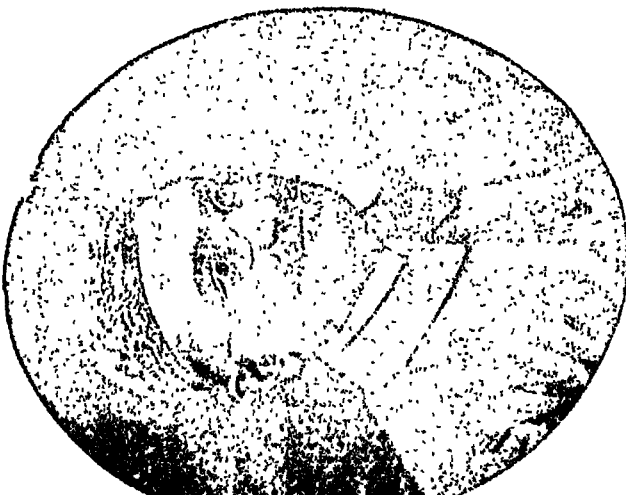
सेठ मेघजीभाई थोभणभाई.
मुंबइ श्री श्वे. स्था. सकळ श्री संघना प्रमुख.
महीयर राज्यमां देवीजीनो वध बंध करावनार परमार्थी.
परिचय—परिशिष्ट २. प्रकरण ४५.

नामदार महीयर नरेश.

राजा साहेब श्रीजनाथसिंहजी बहादूर.

परिचय—परिशिष्ट २. प्रकरण ५२.

परिचय–परिशिष्ट २. प्रकरण ४५.

महीयर राज्यना दयालु दीवान
रा. हीरालाल गणेशजी अंजारीया बी. ए.

श्री शारदा देवी पासे धर्म निमित्ते थती

महीयर स्टेटमां धर्म निमित्ते थती हिंसा केम अटकी ?

महीयर राज्यमां एक हील उपर श्री शारदा देवीनुं मंदिर आवेलुं छे तेमां देवी निमित्ते अनेक प्रसंगे देवी भक्तो तरफथी बकरा, पाडा, विगेरे हजारो प्राणिओनो लांबा कालथी दर वर्षे भोग अपातो हतो के जे वात त्यांना दिवान साहेब रा. रा. हिरालाल गणेशजी अंजारीयाने रूचिकर नहि लगवाथी तेओ आवा प्रकारनी कोईपण हिंसा हमेशने माटे बंध थाय तेवुं इच्छता हता अने ते माटे तेओ श्रीयुत मी० भगवानलाल तथा मी० दुर्लभजी त्रिभुवनदास झवेरीने वात करतां ते उपरथी जो कांइपण सारे रस्ते लोकोने दोरवी ते हिंसा अटकावाय तो ते बाबत पोतानो विचार जणाव्यो हतो. आ उपरथी मी. दुर्लभजीए शेठ मेघजीभाई थोभण भाइने पत्र लखी आ हिंसा बंध करवा माटे कंईक इलाज लेवानी भलामण करी हती, ते उपरथी अमे तेमने खास आ कार्यमाटे महीयरना मे० दिवान साहेबनी मुलाकात लेवा मोकल्या हता के ज्यां तेओए नजरोनजर आ करपीण हिंसायुक्त कार्यो जोयां हतां बाद दीवान साहेबे जणाव्युं के जो आ राज्यमां कोइ सखी गृहस्थ तरफथी एक सार्वजनिक लाभ माटे एक इस्पितालनुं मकान बंधावी देवामां आवे तो तेना बदलामां नामदार महीयरना महाराजा साहेबनी संमति मेलवी ते घातकी कार्य अटकाववा माटे हुं बंध करावी शकुं. आ उपरथी मी. दुर्लभजीए हमने एक खुली-

कत जणावतां अमे नीचेनी शरते तेवो एक इस्पीताल बंधावी आपवा ठराव कर्यो हतो

शरतो.

१ महीयर राज्यमां तमाम जाहेर देवलोमां हिंसा सदंतर बंध करवी.

२ ते बाबतना लेखित हुकमो अमने त्यांना सत्तावालाओने अपवा.

३ आवी जातनी हिंसा बंध करीने ते बाबत श्री शारदा देवीना देवालय आगल ते बाबतनो राज्य तरफथी बे पीलर लगावी हिंदी तथा अंग्रजी भाषामां शिला लेख लगाडवा.

४ अमे ते इस्पीताल बंधाववा माटे रू० १५००१ अंके पंदर हजार अने एकनी रकम स्टेटने एवी शरते सोंपीए के ते इस्पीताल उपर आबाबतनो शिलालेख पण हमेश माटे कायम राखवामां आवे अने पंदर हजारथी ओछी रकम खर्चवी नहि पण जो विशेष रकम जोइए तो स्टेट तरफथी ते आपवामां आवे अने इस्पीताल निरंन्तर निभाववानो सघलो खर्च राज्ये आपवो.

उपरना शरतो प्रमाणे ते राज्यना नामदार राजा साहेब श्रीजनाथ सींहजी बहादुरे पोताना राज्यमां तेमना दीवान साहेबनी नेक सलाहथी, धार्मिक पशुवध हमेशने माटे बंध करवाना परमार्थि ठरावो करेला छे, अने आ ठराव विरुद्ध जो कोईपण शख्स वर्तन करे तो तेने ६ मासनी सख्त केदखानानी सजा तथा रू० ५० पचास दंड

चट्टानों से विषम, तथा दम्भ से वृद्धि प्राप्त ऐसे दुस्तर भवसागर में डूबते हुए हम लोगों की रक्षा करो ॥ १३९ ॥

त्रिश्राणने विमलवैश्रवणेन तुल्यो
धर्मादितत्त्वनिचयस्य वदान्यकस्त्वम् ।
शाणायमानधिषणः सकले प्रतीतो
मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि ॥ १४० ॥

दान में कुबेर सदृश, धर्म्मादि तत्त्व प्रदान में शाण समान बुद्धि वाले तथा जगत्प्रसिद्ध भी आपको मैं नहीं जान सका (यही मेरी वज्रमयी अज्ञता का नमूना है) ॥ १४० ॥

संग्रामवह्निभुजगार्णवतिग्मशस्त्रो
न्मत्तेभसिंहकिटिकोटिविपाक्तवाणाः ।
दुष्टारिसंकटगदाः प्रलयं प्रयान्ति
आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमन्त्रे ॥ १४१ ॥

युद्ध, अग्नि, विकराल सर्प, दुस्तर समुद्र, तीखे शस्त्र, उन्मत्त हाथी, भयंवह सिंह, उद्धत सूअर, विषलिप्त वाण, दुष्टात्मा शत्रु, संकट और रोग ये सब उसी क्षण में नष्टप्राय हो जाते हैं, हे नाथ! जब आपका नाम रूपी पवित्र मन्त्र सुनलेते हैं ॥ १४१ ॥

चिन्तावितानजननान्तविनाशहेतौ
कल्पद्रुमे त्वयि सुसिद्धिसमानरूपे ।

राज्यना कोई पण जाहर मदीरोमां कोईपण माणस कोईपण देवी अथवा देवताओना नाम उपर बकरां अथवा तो बीजां जनावरानो वध करवानी के बलीदान देवानी सखत मनाई करवामां आवे छे, अने जे माणस आ हुकमनो भंग करशे अथवा कोई माणसने आ हुकम कोईए भंग कर्यानी खबर हशे अने ते दरबारमां ते बाबत नहीं रजु करशे, तो ते हुकमनो भंग करवा वालानो, अथवा तेवी खबर जाणवावालाने दरेकने ६—६ मास सुधी सखत केदनी सजा अने ५०—५० पचास रुपया सुधी दंड करवामां आवशे अने जे माणस आ हुकमनो अनादर करवावालाने पकडी दरबारमां हाजर करशे तेने १० दश रुपिआ दंडनी रकममांथी पेस्तर कापी दरबारमांथी आपवामां आवशे, अने ते माणसने राज्यनुं हितेच्छु गणवामां आवशे. आ हुकमनो अमल आजनी तारीखथी करवामां आवशे, लख्यूं

(२)

हु०

आ हुकमनी एक नकल रवन्यु ओफीसरने मोकलवी अने एवुं लखवुं के तेओ जल्दीथी सर्वे पुजारिओ तथा मानता लेनावाला माणसने आ बाबत खबर दे अने सुपरिंटेन्डेन्ट ना० पोलीसने मोकली एवुं लखवामां आवे के राज्यना दरेक गामोमां हुकम छपावी चोटाडवामां आवे अने दांडीद्वारा तेमां खबर देवामां आवे

रूबकार इजलासी मिस्टर हीरालाल गनेशजी अँजारिया साहेब - बी- ए- दीवान रियासत मईहर वाके- २ [illegible] २२ ई-

Hiralal G. Anjaria

रियासत मैहर के मंदिरान में बकरा बकरी या दीगर जानवरों का बलीदान किया जाताहै- यह कारवाई न पसंदीदा है इसलिये मुनासिब तसौवर किया जाताहै कि श्री देवी शारदा जी के मंदिर में- या रियासत हाय के आम मंदरान में कोई शख्स किसी देवी या देवतान के नाम पर बकरा व दीगर जानवर काटने की व बली- दान देने की सख्त मुमानियत की जाए, अगर जो शख्स हुक्म हाजा के खिलाफ करेगा- या जिस शख्स को ऐसे नाजायज फेल करने की खबर होगी, और वह- दरबार में इत्तला न करेगा- तो फेल करने वाले को- व- जानने वालों ६—६ माह तक सख्त कैद की सजा दी जायगी और ५०) — ५०) रूप्या तक जुरमाना किया जायगा और जो शख्स इस फेल के करने वाले को गिरफ्तार करके दरबार में इत्तला देगा उसको १०) रु इनाम जुरमाना में से वसूल कर दरबार दिया जायगा और वह शख्स खैरख्वाह दरबार समझा जायगा और इसका अमल दरामद आज ही के तारीख से होगा- लिहाजा -

जरिये नकल रूबकार हाजा [illegible] साहब को इत्तला दी जाय- और [illegible] जाय कि कुल पुजारियान व मालिकान [illegible] को अंदर इत्तला [illegible] [illegible] पोलिस को [illegible] [illegible] रियासत [illegible]

अने महीअर तलपदमां हुकमनी नकल छपावी चोटाडवामां अने वांची पिटावी जाहेर करवामां आवे अने दश २ पांच-पांच नकलो मजकुर राज्यनी आसपास जाण वास्ते मोकलवामां आवे अने एक नकल मजिस्ट्रेटने अने एक नकल बाजार मास्तर ने खबर माटे मोकलाववी असल नकल फाइलमां हाजर राखवी

(सही) फतेसिंहजी,

(सही) हीरालालजी. अंजारिया.

दीवान महीयर.

नकल मा, शेठ मेघजी भाइ

अने शान्तिदास भाईने मोकलवी.

Sd. H. G. A.

10-9-20

जीवदयाना सिद्धांतोने अनुसरीने महीयर राज्यना जाहेर देव-लोमां देवी, शारदा देवी अथवा तो कोई देवदेवीओना नामे आगर जगना नामे थतो बकराओ अथवा प्राणीओनो वध करवानी मही-यार राज्ये सख्त मनाई करेली छे अने एना दाखला लइने कच्छ मांडवीना रहीश शेठ मेघजीभाई थोभण शाह तथा शेठ शांतिदास आसकरण, जे. पी. जेओए रु. १५०००) नी रकम आ मह-

कावनी यादगीरीमां शारदा देवीने ते रकम जीवदयाना कार्यमां वा-परवा माटे अर्पण करवा विनंती करी छे. राज्य तेमनी विनंतीनो खुशीथी स्वीकार करे छे अने तेमनी साथे मसलत चाल्या पछी तेमना तरफथी अर्पण करवामां आवेली रकमथी ओछी नहीं तेटला खर्चथी एक होसपीटल बांधवाना निर्णय उपर आव्युं छे.

आ हस्पीटलनुं मकान सज्ज करवानो, नीभाववानो, दुरस्त करवानो तथा तेने लगतो तमाम खर्च राज्य तरफथी उपाडवामां आवशे.

शारदा देवीना डुंगरनी तळेटीमां बे थंभो उभा करवामां आ-वशे अने जेमां इंग्रेजी तथा हिन्दुस्थानी भाषामां बकराओ तथा बीजां प्राणीओना थता वध अथवा बलीदान अटकाववानी अने कसुर करनारने सजा करवानी जाहेर खबरोना शीलालेख लगाड-वामां आवशे.

जो कोईपण प्राणी अथवा बकारने श्री शारदा देवीने अथवा तो कोई देव अगर देवीने जाहेर देवलोमां अर्पण करवामां आवशे तो तेनो कबजो राज्य तरफ थी संभाळी तेमनो खर्च राज्य तरफथी नीभाववामां आवशे.

मईयर, सी. आइ.	(सही) हीरालाल गणेशजी अंजारीया
ता० २७मी सप्टेंबर १९२०	दीवान, मईयर स्टेट.

महीयरनी ईस्पीतालनो प्लान.

देवीने थतो कायमी वध बंध थवाना स्मरणार्थे तैयार थती होस्पीटल.

परिचय–परिशिष्ट २. प्रकरण ४५.

म्होर

महीयर, ता० २ जी सप्टेंबर १९२०

(४) महीयर राज्यमां आवेला शारदादेवीना डुंगरनी तळेटीमां उभा करवामां आवता बे स्थंभो उपर अंग्रेजी तथा हिन्दुस्थानी बन्ने भाषामां नीचे दर्शावेली जाहेर खबरनी बे आरसनी तकतीओ जडाववामां आवशे.

जाहेर खबर.

महीयर राज्यमां आवेला शारदा देवी अगर कोई देव अथवा देवीना नामे अथवा तेमनी नाममां जाहेर देवलोमां तथा प्राणी वध माटे राज्य तरफथी सखत मनाई करवामां आवे छे. जेथी करीने कोइपण मनुष्य कोइपण जातना प्राणीना कोइपण देव अथवा देवीना नामे वध अथवा तो बलीदान करी अथवा तो दई शकशे नहीं.

कसुर करनारने छ मास सुधीनी सखत मजुरी साथेनी जेलनी अने रु० ५० पचासना दंडनी सजा करवामां आवशे.

(सही) हीरालाल जी. अंजारीया, दीवान, महीयर स्टेट.

म्होर

नीचे दर्शाव्या मुजबनो शीलालेख बांधवामां आवती होस्पीटालना मकानमां (प्रसिध्ध) सुदृश्य जगाऐ लगाडवामां आवशे.

"आ होस्पीटल कच्छ मांडवीना रहीश शेठ मेघजीभाइ थोभन भाइ तथा शेठ शांतिदास आसकरण, जे. पी. जेओए. महीयर राज्यनां सर्व जाहेर देवलोमां थता प्राणिवधनी अटकायतना माटे त्यांना महाराजा साहेब श्री ब्रीजनाथसिंहजी बहादुरना आभारनी यादगीरीमां तेनां बांधकामना खर्च बदल रु० १५००१) अंके पंदर हजार एक अनायत करतां तेमना प्रेरणाथी बांधवामां आवे छे."

दीवान हिरालाल गणेशजी अजारीयाना वखतमां

महीयर,
ता० २ जी सप्टेंबर, १९२०

(सही) हीरालाल गणेशजी अंजारीया.
दीवान, महीयर स्टेट.

म्होर

परिशिष्ट ३

पूज्य श्री का, मुसलमीन भक्त सैयद असदअली M. R. A. S. F. T. S. जोधपुर।

सैयद असदअली लिखते हैं कि, जब श्री १००८ श्री पूज्य श्रीलालजी महाराज का चौमासा जोधपुर में हुआ था, मुझको श्रीपूज्य महाराज के उपदेश से फ़ैजरुहानी (आत्मज्ञान) बहुत पहुंचा। मुझको श्रीपूज्य महाराज ने अत्यन्त कृपा करके नौकार मंत्र की कृपा करी और खुद श्रीपूज्य महाराज ने अपनी जुबान फैजतर जुबान (खास श्रीमुख) से जुबानी नौकार मंत्र याद कराया जो अबतक जपता हूं और बड़ा काम देता है—जैनधर्म का उपदेश लेने के बाद उन्हीं दिनों में मूढ लोगों से बड़ा कष्ट उठाना पड़ा, यहां तक कि मूढ लोगों ने मुझे जान से मरवा डालने के उपाय किये थे। और दो तीन जगह दुष्ट लोगों ने मेरे बदन पर चोट भी पहुंचाई थी, इस वजह से कि, मेरे भाई अमीरहुसैन जिले गुड़गांव (देश-हरियाना) में डाक्टर थे। सो मैंने अपने भाई डाक्टर मजकूर से कहकर तमाम जिले में करीब ३००० तीन हजार के गौओं को वध होने से बचाया। जब कि, लेग उस तरफ फैला हुआ था और मेरे भाई डाक्टर मजकूर को हर तरह के अख्तियारात हासिल थे। इस कारवाई से रियासत जोधपुर में इस दया के काम के बाबत

खुशी के जलसे हुए थे और उन जलसों में तीन २ चार २ हजार आदमियों ने इकट्ठे होकर मानपत्र अर्पण किये थे।

दांता जिले गुजरात के राजा साहिब मेरे मेहरबान थे। वे राजा साहिब मौसूफ अम्बे भवानी के मन्दिर में तशरीफ लेगये थे मैं भी साथ में था वहां अम्बे भवानी के भेंट चढ़ाने को बकरे पचास २ के करीब आते थे याने जितने आदमी उतने ही बकरे अम्बे भवानी को व गरज सुख शान्ति चढ़ाने लाते थे और यह बात राजा साहिब को भी बड़ी खुशी और मरजी की होती थी। मैंने राजा साहिब को और हाजरीन को 'अहिंसा परमो धर्म्मः' का मसला समझाकर और सुख शान्ति बराबर रहने का अपना जिम्मा लिया। चुनांचे राजा साहिब से बकरे छुड़ाने के बदले नकद रुपया अर्पण अम्बे भवानी जी के कराना मुकरर करा दिया जाता था और उन सब बकरों के कान में कड़ियां डलवा कर अमरे करादिये गये। सब तरह से सुख शान्ति रही किसी की आंख भी वहां नहीं दुखी। इस बाबत कई द्वेषी लोगों की तरफ से मुझपर बड़े २ जोर पड़े परन्तु मैंने धर्म मार्ग में किसी तरह तकलीफ पहुंचने की परवाह नहीं की, और राजा साहिब ने वहां सबको सरोपाव दिये थे वह भी मैंने वहां नहीं लिया। इस तरह पंजाब की तरफ एक रियासत में एक रईस को हज़ार २ कागले रोज मारने का शौक होगया था, और

मार २ कर बांगिंग करते थे. जो कि, वहां पर उस रईस ने मुझको खास उनकी मुशकिल के वक्त बुलाया था। मैंने वहां पहुंचते ही उन रईस साहब से अर्ज़ करादी कि, मैं अब वापिस जोधपुर जाता हूं। आपका मुझसे जो खास काम है वह धरा रहेगा, लेकिन उन रईस साहिब का मुझसे खास तौर से मतलब और गरज़ थी उन्होंने जल्दी से मुलाकात की और मुझसे पूछा कि, बिगर मुलाकात किये वापिस क्यों जाते थे। मैंने कहा कि, मैं सुनता हूं कि, आप हज़ार हज़ार कागलों का रोज मरोह फक्त मनराजी के शकल में शिकार करते हैं। इससे आपकी बड़ी बदनामी हो रही है और लोग गालियां देते हैं और फक्त आपकी दिललगी के लिये हज़ारों जानों का मुफ्त में नाश होता है। इस तरह उनको कई तरह समझाया तो रईस ने आयन्दा के वास्ते ऐसी हिंसा करने की सौगन्द लेली। इसी तरह एक रईस साहब जो जोधपुर में बड़े मुअज्जिज़ हैं।

उनको उनकी इस किस्म की नामवरी जाहिर कराने का बहुत शौक हुआ तो उन्होंने बच्चे वाली कुतिया जंगल वगैरह से तलाश कराकर मंगाना शुरू किया और उनके शरीर पर चिथड़े लिपटा, लिपटा कर लैम्प के तेल के पीपों में उन कुतियों को डलवा देते खूब तर करवाते पीछे दिया सलाई बलवा देते जब वह बच्चे वाली कुतिया जलती कूदती उछलती वह रईस साहिब मय जनाना के बहुत हंसते खुश होते और इनाम तकसीम फ़रमाते इसी तरह सैंकड़ों जानें कुतियों

आर गधों की उन रईस साहिब ने ले डाली, जब मुझको मालूम हुआ मैं खुद उन रईस साहिब की खिदमत में गया और अपनी जान तक देना मंजूर किया और हर तरह समझा कर उनसे आइन्दा के वास्ते सोगन करा दी। लेकिन इस मौके पर यह जाहिर कर देने काबिल है कि, उन रईस साहिब को इस पाप के अशुभ फल हाथों हाथ मिल गये। जिसको मारवाड़ के छोटे बड़े। जानते हैं। मुसलमानों में एक महात्मा मौलाना रूम हुए हैं। उन्हों ने भी उन की वाणी में लिखा है कि:–

तो मशोले खौफ़ अर हल्म खुदा।
दरगिरो सख्त गिरो मर तरा॥

जनाबेमन हमारे कलेजे कांपते हैं। हमारा दिल दुखता है, हमारी कलम में जरा ताकत नहीं कि, हम एक शिम्मा बराबर भी औसाफ हमारे परम दयालु, परम कृपालु, सत्य धर्म की नाव, ज्ञान के समुद्र, दया धर्मकी होली गाईड, श्री श्री १००८ श्री श्री पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज का क्या लिख सकें, आपने हजारों पापियों को सत्य मार्गी और हजारों हिंसाकारों को "अहिंसा परमो धर्म:" पर आमिल बना दिया था। सैकड़ों चोरोंने चोरी और हिंसा के पेशे छोड़ दिए थे. मीने बावरियों तक ने तीर कमठे फैंक दिये थे और खेती बाड़ी पर गुज़रान करने लगे थे।

Indeed, I will never find such a prop-kari Guru on this world, like shri pujjya Shrilalji Maharaj again. His fatherly love & sympathy bring me into force, to weep for him once a day at least.

My Jiwan is usless now without his superium satsung, what I can write you, Sir, more than this?

परिशिष्ट ४.

वर्तमान आचार्यश्री

चरित्रनायक सद्गत पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज के पश्चात् भारतवर्ष की जैन साधुमार्गी सम्प्रदाय में सब से अधिक मुनि व आर्याजी वाली इस सम्प्रदाय का समस्त भार पूज्य श्री जवाहिर-लालजी महाराज के सुपुर्द हुआ, आप इस पद पर आरूढ होकर जैनधर्म को देदीप्यमान कर पूज्य पदवी दिपा रहे हैं। आपका संक्षिप्त परिचय पाठकों को करादेना आवश्यक है।

मालवा देशकी पवित्र उर्वरा भूमि में सं० १९३२ कार्तिक शुक्ला ४ को श्रीमती नाथीबाई के उदर से आपका जन्म थांदला ग्राम में हुआ। आपके पिता श्रीका नाम सेठ जीवराजजी था। आप वीसा ओसवाल कुंवार गोत्र में उत्पन्न हुए आपको बालवय से ही अनेक संकटों का सामना करना पड़ा। जब आप दो वर्ष के थे तब आपकी माता श्री एवम् चार वर्ष की अवस्था में आपके पिता श्री का देहान्त होगया। अतएव आप मौसार में रह पढ़ने लगे, मामा मूलचंदजी को व्यौपार कार्य में मदद भी देते और विद्याभ्यास भी करते थे. दैवात् मामाजी का आपकी चौदह वर्ष की अवस्थामें स्वर्गवास होगया, अत एव आप पर उनके समस्त कुटुम्ब बाल बच्चे

एवम् व्योपारका समस्त भार आपपड़ा आपने तीव्र बुद्धि से सबको यथोचित संभाला परंतु सांसारिक कई अनुभवों ने आपको वैराग्य में तल्लीन बनादिया आप संसार को असार समझ वैराग्यवंत हो दीक्षित होनेको तैयार हुए, परंतु आपके बड़े बाप (पिताके बड़ेभाई) ने आपको आज्ञा न दी। अतएव आप स्वयं भिक्षा लाकर गुजर करने लगे. वर्ष सवा वर्ष यों व्यतीत होने पर आपने सबकी आज्ञा ले महाराज श्री घासीलालजी महाराज श्री मगनलालजी के पास झाबुआ के समीप लीमड़ी ग्राम में सं० १९४८ में मगसर सुदी १ को दीक्षा अंगीकार की. परंतु दीक्षित होने के १॥ माह बाद ही आपके गुरुजी का परलोकवास होगया इतने अल्प समय में गुरुजी ने आपको अत्यंत शिक्षित बना दिया था उस गुरुतर मोह के कारण आपका मन उचट गया और आप पागल से होगए, पौने पांच माह पागलावस्था में रहे। दरम्यान तपस्वीजी श्री मोतीलालजी महाराज ने आपकी खूब सेवा सुश्रूषा की। आपके उस समय के पागलपनेके घावोंके निशान अभी तक मौजूद हैं। आपको भले चंगे किये और सब चातुर्मास प्रायः अपने साथ ही कराये, इसी कृतज्ञता के कारण पूज्य जवाहिरलालजी महाराज तपस्वीजी की आज तक सेवा कर रहे हैं और इस उपकार के स्मरणार्थ आप के पूर्ण अहसानमंद हैं। दीक्षा लिये पश्चात आजतक आपके निम्नोक्त ३१ चातुर्मास हुए हैं।

१ धार, २ रामपुरा, ३ जावरा, ४ थांदला, ५ परतापगढ़, ६ सेलाना, ७-८ खाचरोद, ९ महिदपुर, १० उदयपुर, ११ जोधपुर, १२ ब्यावर, १३ बीकानेर, १४ उदयपुर, १५ गंगापुर, १६ रतलाम, १७ थांदला, १८ जावरा, १९ इंदोर, २० अहमदनगर, २१ जुनेर, २२ घोड़नदी, २३ जामनगर, २४ अहमदनगर, २५ घोड़नदी, २६ मीरी, २७ दीवड़ा, २८ उदयपुर, २९ बीकानेर, ३० रतलाम, ३१ सतारा।

आप शुरू से ही विद्या के अत्यंत प्रेमी थे। आप संस्कृत पढ़े न थे परन्तु संस्कृत के काव्यादि आप बहुत प्रेमसे सीखते और मनन करते थे. जब आप दक्षिणकी तरफ पधारे तब आपको सब अनुकूलता मिली और आप संस्कृतके धुरंधर विद्वान् होगए। आपका व्याख्यान आज अत्यंत प्रभावोत्पादक ढंग का वर्तमान शैली से होता है। आपके व्याख्यान से विद्वान् जन भी अत्यंत संतुष्ट हैं। आपने अत्यंत परिश्रम कर बहुत अधिक ज्ञान सम्पादन किया। कई ग्रंथ देखे उनमें से स्याद्वादमंजरी ' लघुसिद्धांतकौमुदी, मालापद्धति, न्यायदीपिका, परिश्रामण, विशेषावश्यक, रघुवंश, माघकाव्य, कादंबरी, वंशकुमार, किरातार्जुनीय, नेमिनिर्वाण, हितोपदेश इत्यादिका तो अभ्यास किया और तत्वार्थसूत्र, गोमटसार, महाराष्ट्रग्रंथज्ञानेश्वरी, रामदासका दासबोध, लो. तिलक की गीता, कर्मयोग तुकारामजी की पुस्तकें, मनुस्मृति, महाभारत, गीता, पुराण, उपनिषाद् इत्यादि जैन सूत्रोंके सिवाय

अन्य ग्रंथों का अवलोकन किया है। आप संस्कृत के पारंगत विद्वान् होकर हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि भाषाएं बोल सकते हैं। श्रीमान् लोकमान्य तिलक आपसे अहमदनगर में मिले थे। आपने जैन धर्म के सम्बन्ध में अपनी गीता में कई सुधार करना चाहे थे और लोकमान्य ने मंजूर भी किये थे। जैनधर्म के सम्बन्ध में जगत् प्रसिद्ध लोकमान्य तिलक महाराज के सुवर्णांकित शब्द ये हैं—

"जैन और वैदिक ये दोनों प्राचीन धर्म हैं। परन्तु अहिंसाधर्म का प्रणेता जैनधर्म ही है। जैनधर्म ने अपनी प्रबलता के कारण वैदिक धर्म पर कभी न मिटने वाली ऐसी उत्तम छाप बिठाई है"

वैदिक धर्म में अहिंसा को जो स्थान प्राप्त हुआ है वह जैनों के कारण ही है। अहिंसा धर्म के पूर्ण वारिस जैन ही हैं। अढ़ाई हज़ार वर्ष पूर्व वेद विधायक यज्ञों में हज़ारों पशुओं का वध होता था, परन्तु चौवीस सौ वर्ष पहिले जैनियों के चरम तिर्थंकर श्री महावीर स्वामी ने जब इस धर्म का पुनरोद्धार किया तब जैनियों के उपदेश से लोगों के चित्त अघोर निर्दय कर्म से विरक्त होने लगे और धीरे २ लोगों के चित्त में अहिंसा दृढ जम गई। उस समय के विचारशील वैदिक विद्वानों ने धर्म के रक्षार्थ पशुहिंसा बिल्कुल बंद करदी और अपने धर्म में अहिंसा को आदर पूर्वक स्थान दिया और अहिंसा मंडन कर अपने धर्म को बचाया, यह सब अहिंसा

धर्म के प्रणेता जैन धर्म का ही प्रभाव है। (प्रो० आनंद शंकर बापुभाई ध्रुव के लेख का कुछ अनुवाद). आप के चातुर्मास जहां २ हुए वहां २ अत्यन्त उपकार हुए। उदयपुर के चातुर्मास में तपस्या के पूर पर किसना नाम के खटीक ने यावज्जीवन पर्यंत अपना क्रूरधन्धा बंद किया और उसने दूसरे नौ जनों को सुधारा, तेराइपंथी साधु फौजमलजी के साथ जेतारण में एक माह तक आपने लिखित चर्चा की, उस समय मंदिरमार्गी व वैष्णव मध्यस्थ थे। इस के फल स्वरूप सद्गत मंदिरमार्गी महाराज श्री सीवजीरामजी का लेख मौजूद है।

आपने कई ठाकुरों का मांसाहार छुड़ाया तथा शिकार का त्याग कराया। कई मुसलमान श्रावक बनायें। कई जगहों के संघ के दो भाग दूर कराये व कुव्यवहार बंद कराये हैं। प्रोफेसर राममूर्ति ने शांतता से आपका व्याख्यान सुनकर फरमाया था कि, अगर ऐसे भारतवर्ष में दस व्याख्याता भी हो जाँय तो संसार का बड़ा भारी कल्याण हो जाय।"

आपका शिष्य समुदाय विद्वान् और श्रद्धालु हैं। पूज्य पदवी प्राप्त हुए बाद आप श्री संघ एवम् साधु समाज में सिंह समान गर्ज रहे हैं। विशाल भाल, दिव्य चक्षु उज्वल कांति, देदीप्यमान शरीर रचना इत्यादि इतने आकर्षक हैं और व्याख्यान शैली इतनी उत्कृष्ट शास्त्रीय, एवम् सरल है कि, श्रोता वंशीपर नागके सदृश डोलते रहते हैं।

शिष्य समुदाय और श्री कोटापुर महाराजा साहिब–

सं० १९७७ मार्गशीर्ष बद ५ मंगलवार के दिन गिरिजम श्री १००८ घासीरामजी महाराज को लेकर हम आये। उसी दिन गोरे डाक्टर साहिब ने महाराज साहिब को देखकर निश्चय कर दिया कि, मार्गशीर्ष बद ३ गुरुवार को सफा खाना में आकर डेरा करो, और मिगसर बद ८ को शुक्रवार को आपरेशन किया जायगा।

हम इस बात के विचार में थे कि, अस्पताल में रहनें से ४ बात साधुओंके कल्प से विरुद्ध पड़ेंगी। उसका बन्दोवस्त डाक्टर साहिब से करना चाहिये जैसा कि, १ अस्पताल में नर्स वगैरह स्त्रीजाति सब काम करती है। और श्री महाराज साहिब स्त्रीजाति को छूते नहीं इसलिये स्त्री मात्र महाराज साहिब से स्पर्श न करे।

(२) पानी वगैरह कोई भी चीज अस्पताल के काम में नहीं आना चाहिये।

(३) अस्पताल के सब कमरों में रोशनी जलती है परंतु महाराज साहिब के कमरे में रोशनी नहीं होनी चाहिये।

(४) दूसरे कोई रोगी महाराज साहिब के कमरों में दोनों

साथ वाले साधु महाराजके सिवा नहीं रहने चाहिये। इसी विचार में थे कि, इतने में ही श्री गुरु देवों के प्रतापसे कोल्हापुर के सेठ फतहचंदजी श्रीमालजी जिन्होंने सातारा में श्री १००८ घासीरामजी से सम्यक्त्व ली थी आन मिले। और फतहचंदजी डाक्टर साहिब के पहिले से मुलाकाती होने के सिवा कोल्हापुर के महाराज साहिब के मर्जीदानों में हैं। इस वास्ते फतहचंदजी ने कहा कि, मैं कोल्हापुर से महाराज साहिब की शिफारस डाक्टर साहिब के नाम लिखा लाऊंगा। जिसमें महाराज साहिब का कल्प के मुजब सब बन्दोबस्त हो जायगा। यह बात मार्गशीर्ष वद बुद्धवार की है।

उसके दूसरे दिन ७ गुरुवार को महाराज साहिब कोल्हापुर गुरुदेवों के प्रताप से अकस्मात् उनके किसी हजूरी का ओप्रेशन कराने के लिये अस्पताल मिरिजम में आगये उसी दिन श्री १००८ घासीलालजी महाराज साहिब भी डाक्टर साहिब के कथनानुसार अस्पताल में पहुंचे। सो सेठ फतहचंदजी ने महाराज साहिब से इन्ट्रोड्यूस (Introduse) श्री महाराज साहबको कराया और पछि गोरे डाक्टर साहिबके रूबरूही कोल्हापुरके महाराजने श्री महाराज साहिबसे धर्म सम्बन्धी वार्तालाप किया। उस समय श्रीमहाराज साहिबने संस्कृत के अनेक गीता आदि ग्रंथों के श्लोकों से जैनधर्म का महत्व सिद्ध कर सुनाया जिस पर डाक्टर साहिब ने भी बहुत प्रसन्न होकर कहा

कि, मैं भी जैनतत्वों को सुनना समझना चाहता हूं। उस समय महाराज साहिब के पास ऐसी हेन्डबुक मौजूद थी जिसमें ऊपर संस्कृत श्लोक और नीचे अंग्रेजी तरजुमा भी था। वह किताब साहिब को दी सो साहिब ने बहुत खुशी से ले ली। उस वक्तमें कोल्हापुर के राजा साहिब ने डाक्टर साहब से खास तौर पर इन शब्दों में शिफारस की कि, ये हमारे गुरु महाराज हैं आप कल इनका अप्रेशन बहुत तवज्जह और महेरबानी से करें" इस बात का असर डाक्टर साहिब पर ऐसा हुआ कि, जो चारों बातें ऊपर लिख आये हैं उन सबका इन्तजाम महाराज साहिब के कल्प के अनुसार हुआ और अपेशन करते समय भी बहुत तवज्जह से काम किया और सातारा वाले सेठ मोतीलालजी को भी अप्रेशन के समय में मौजूद रहने दिया। और खुद डाक्टर साहिब भी और अस्पताल के कुल कर्मचारी हिन्दू अंग्रेज वगैरह श्री महाराज साहिब को गुरु महाराज के नाम से बोलते हैं दोनों साधु महाराज और हम लोग महाराज साहिब के पास रात दिन हाजिर रहकर कल्प के अनुसार सेवा करने पाते हैं। और आहार पानी आदि का भी साधु नियमानुसार ही काम चलता है।

अप्रेशन के पूर्व दिन कोल्हापुर राजा साहिब कोल्हापुर से खास श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज के दर्शनार्थ सेठ फतहचंदजी को तथा कोल्हापुर संस्कृत के पंडित दिगम्बरी जैन को साथ लेकर मिरिजम अस्पताल में आये और श्री महाराज के सामने कुर्सी पर

बैठकर मूर्तिपूजन चातुवर्ण्य जैन सिद्धांत आदि विषयों पर १।। डेढ घंटा तक चर्चा की। और आते ही हाथ जोड़कर नमस्कार किया, और खड़े रहे। कहने से कुर्सी पर बैठे और पांव की जूती निकलवा कर कमरे से बाहिर भिजवा दी और अतिनम्रता से बात करते थे तथा महत्व की बात नोट करते जाते थे। पहिली दफे के सिवा इस वक्त भी महाराज से कोल्हापुर जरूर पधार ने की विनती की और कहा कि, आपके जैन धर्म सिद्धांत मैं सुनूंगा और हमारे और लोगों को भी सुनाऊंगा।

डेरे पर जाकर सेठ फतहचंद जी से कहा कि, महाराज की बातें मुझे बहुत पसंद आई, महाराज को कोल्हापुर जरूर लाना। जिस समय राजा साहिब कोल्हापुर महाराज के पास आये थे, उस वक्त पं० दुःखमोचनजी भी मौजूद थे अतएव जान पहचान होजाने से २ वक्त डेरा पर पंडितजी को बुलाया और खूब मान देकर वार्तालाप करते रहे रात के ११ बजे तक दी। उस समय में भी श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज साहिब के गुरु महाराज पद से हर बात में प्रशंसा करते थे। फक्त

श्री कोल्हापुर राजा साहिब के वास्ते मशहूर है कि, ये किसी देवी, देवता, पण्डित, संन्यासी आदि को मान नहीं देते हैं और न हाथ जोड़कर किसी को नमस्कार करते हैं। परन्तु श्री १००८

घासीलालजी महाराज साहिब को हाथ जोड़कर आते जाते नमस्कार करने हरेक बातों में गुरु महाराज कहने नम्रता पूर्वक कोल्हापुर पधारने को वारंवार विनंति करने वगैरह सबब से सेठ मोतीलालजी साहिब ने ऐसा लिखा होगा सो ऊपर लिखी हकीकत से आप भी जैसा मुनासिब हो गौर फरमाइए।

मिरिज

मिशन हास्पिटल

प्राईवेट रूम नं० २

अभी महाराज साहिब अस्पताल में हैं, ३।४ दिनमें अस्पताल से रुकसद देने वास्ते साहिबने कहा है। और साहिब ने यह भी कहा है कि आराम होने पर हमारे बंगलेमें आप जरूर आवें। हम धर्म विषयमें बात चीत करना और जैन सिद्धांत सुनना चाहते हैं।

मुकाम सातारा शहर में स्वामीजी महाराज श्री १००८ श्री-घासीलालजी महाराज, श्रीगणेशलालजी, महाराज मय दूसरे साधुओं के साथ विराजमान थे। उस स्थानक में उनके पास महात्मा गांधीजी आए वह थोड़ी देर बाद ही मौलाना सोकतअलजी मय दो दूसरे मुसलमान साहिब आए और महाराज श्रीघासीलालजी से हाथ जोड़ नमस्कार कर बैठ गये और कहा कि यह तखता जो बिछा

है आपको इसके ऊपर बैठना चाहिये था। आपकी वह जगह है आप जमीन पर क्यों बैठे हैं। यहां तो हमारे बैठने का हक है। श्री घासीलालजी महाराज ने कहा कि तख्ते पर तो हम व्याख्यान के वक्त बैठते हैं और हम इस में कुछ ऊंच नीच नहीं खयाल करते हैं। साधु है। उसके बाद गांधीजी ने श्री घासीलालजी महाराज से कहा कि मैं जैन साधुओं और जैन सिद्धान्तों से अच्छी तरह वाकिफ हूं और मैं जहां मौका मिलता है आप साधुओं के पास जाता हूं और अच्छा जानता हूं मगर आप लोगों में १ त्रुटि है वह यह है कि आप अपने श्रावकों को हाल के माफिक उत्तेजन नहीं देते हैं—सो यह त्रुटि निकाल देनी चाहिये। इस पर श्री घासीलालजी महाराज ने जवाब दिया कि हमारा तालुक धर्म सम्बन्धी बातों से है सो हम जैसी हमारे धर्म में रीति और आगना है उसी मुजब उपदेश करते हैं। उससे ज्यादह कम नहीं कर सकते। इसी किस्मकी बात चीत में करीब २५ मिनट के होगये थे और दोनों महात्मा की फेर बातें चीत करने की रुचि थी मगर थानक से बाहर सैकड़ों आदमी की भीड़ लग गई थी उस से बहुत से आदमी हर किस्म के महात्मा गांधीजी की जय बोलते अंदर एकदम घुस आये और महात्मा गांधीजी के पांव पड़ पड़कर उनकी और शौकतअली की जय बोलने लगे और घेरलिया जिस से महात्मा गांधीजी और शौकतअली जी दोनूं ने श्री घासीलालजी महाराज से हाथ जोड़ नमस्कार कर ली और बिदा होगए।

नकल ता० १८-११-१९२० ई०

श्रीः

श्रीमन्साहू छत्रपति कोल्हापुर नरेश प्रत प्रशंसापत्रस्य प्रतिकृतिः

श्रीमतां श्री १००८ मोतीलालजी महाराजानां पूज्यप्रवर श्री १००८ श्रीजवाहिरलालजी महाराजनां सुशिष्यैः श्री १००८ घासीलालजी महाराजैः समगंसि मया मिरजाभिध ग्रामस्य भैषज्यालये। प्रागेव श्रुतैद्वृत्तान्तावग्रं सति साक्षात्कारेऽप्राक्ष्म मूर्त्तिपूजादि प्रधान जैन तत्त्व विषयान्। रुग्णासनासीना अपि एते महाराजा नः तथा सर्वं विषयानुदातारिपुर्येन जैनशास्त्रादिचार्यादि प्रधानोपाधिमाधातु मर्हन्तीति मामकीनानुमतिः।

यद्य मी जनताभिः स्युः प्रोत्साहितास्तदा भवेयुर्भारत भाग्य भानूनायकाः साधव इति मि० मार्ग० शु० ८ शनिवासरे संवत् १९७७

हस्ताक्षर साहू छत्रपति कोल्हापुराधीशस्य

अधोविन्यस्तरेखाद्वयस्थले.

(Sd.) साहू छत्रपति खुद.

Copy

AMERICAN PRESBYTERIAN
MISSIAN HOSPITAL MIRAJ

18th December 1920.

This is to Certify that *Mr*. Ghasilal *Sadhu* had been a patient in this hospital from 2nd December 1920 to 16 th december 1920 while under my treatment in this hospital the patient was not touched by any nurse or a woman. He was put in a private room alone and he used no eatable or drinking loater etc. from the hospital. (Sd.) C. E. Vail B. A. M. D.

शांति-कामना ।

(ले०- श्रीमज्जैनधर्मोपदेष्टापूज्यश्री श्रीमाधवमुनिजी) ।

विज्ञ युवराज श्री जवाहर लालजी मुनीश,
शान्तिता के साथ ऐक्यता का साज-साजेंगे ।
द्वैतता मिटाय वातशल्यता हृदयमें लाय,
सर्व सम्प्रदाओं के हितैषी आप भ्राजेंगे ।
लाजेंगे विपक्ष लोक गाजें गे गजेंद्र सम,
अहा ! हा ! हमारे सकल शोक थोक भाजेंगे ।
पूज्य--पद पाय, सम्प्रदाय में बढ़ाय प्रेम,
प्रतिदिन प्रताप दूनों पाते पट्ट-राजेंगे ॥ १ ॥

छपगया ! हाथोहाथ बिकरहा है !! शीघ्र खरीदिये !!!

अनेकानेक, विद्वानों, मुनि महाराजों, जैन और जैनेतर पत्र पत्रिकाओं द्वारा प्रशंसित सुप्रसिद्ध शतावधानी पंडितरत्न मुनिश्री रत्नचंद्रजी महाराज विरचित भारतवर्ष में विद्याप्रेमी बडोदा राज्य में इनाम तथा लायब्रेरी के लिये मंजूर किया हुआ मूल भावार्थ विवेचन सहित

कर्तव्य कौमुदी नामक ग्रंथ

का हिन्दी अनुवाद

मानव जीवन को सफल समुन्नत बनाने के लिये जिन २ कर्मों की परमावश्यकता है वह सब सामान्य और विशेष रूप से इस ग्रंथ में बतलाये गये हैं। यह ग्रंथ स्त्री, पुरुष, बालक, युवा, वृद्धों को अनुपम उपदेश देने वाला है। इस ग्रंथ के प्रथम खंड में सामान्य कर्तव्य, दूसरे में विद्यार्थियों का कर्तव्य, और तीसरे में गृहस्थ का कर्तव्य बतलाया है। जैन तथा जैनेतर सर्व के लिये यह ग्रंथ समान रूप से बहुत ही उपयोगी और माननीय सिद्ध हुआ है। संसार में रह कर मनुष्य जन्म सफलभूत करने का एक मार्ग सागारी धर्म है जिसे गृहस्थ धर्म भी कहते हैं इस ग्रंथ में सत्य, क्षमा, ज्ञान, ध्यान, व्यसन, त्याग, नीति, धर्म व्यवहार व्यायाम चिकित्सा आदि पति का स्त्री के साथ कर्तव्य, स्त्री का पति के साथ कर्तव्य, पिता पुत्र का, माता पुत्र का बिधवा का कर्तव्य इत्यादि गृहस्थ धर्म प्रतिपालन करने के संपूर्ण विषयपूर्ण विवेचन के साथ इस शैली से वर्णन किये गये हैं कि प्रत्येक मनुष्य पढकर अपना जीवन सफल करना ही अपना कर्तव्य समझने लग जाता है। अपने चारित्र्य को उच्चतम बनाने के इहलौकिक व पारलौकिक सुख प्राप्त करने को जिनकी इच्छा हो, उनको चाहिये कि इस अमूल्य ग्रंथ को अवश्य पढें, और इसमें प्रतिपादन किये हुए समयानुकूल व सर्व मान्य कर्तव्यों का रहस्य समझ कर तदनुसार बर्ताव करें, इस ग्रंथ के प्रति श्लोक में मनोहरता, उपयोगिता, माधुर्य और अर्थ गांभीर्य प्रतीत होता है, और ग्रंथकर्ता की असाधारण विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता, वाक्यचातुरी, नीतिनिपुणता, और धर्म निगूढ रहस्य एवं जन समाज की वर्तमान परिस्थिति का उच्चतम

आभास होता है, यह ग्रंथ विश्व विद्यालय में स्वीकार होने योग्य है। गुजराती में इसकी हजारों प्रतियां उठगई हैं। लगभग ५५० पृष्ठ का जिल्द बंधा हुआ इस ग्रंथ का मूल्य केवल २) रुपये मात्र है।

भादवा सुद १५ तक मूल्य घटा दिया

चातुर्मास में अमूल्य धर्मकरणी के समय में अमूल्य ज्ञानदाता पुस्तकें मंगाकर पढ़िये
खोपरा, बादाम, बतासा के मूल्य में अमूल्य ज्ञानदाता सस्ती पुस्तकें
मंगा कर प्रभावना कीजिये !

	पुस्तक	पृष्ठ		मूल्य
(१)	कर्तव्य कौमुदी	पृष्ठ ५५०	सजिल्द	मूल्य १॥) रु०
(२)	श्रावक धर्म दर्पण	,, ४५०	,,	,, ॥-) १२ का ६)
(३)	नारीधर्म निरूपण	,, ६४	,,	,, ~)॥ २५ का २)
(४)	नित्य नियम नित्य स्मरण	,, ३२	,,	,, ९ पाई २५ का १)
(५)	जैनधर्म के विषय में अजैन विद्वानों की सम्मतियें	,, ३२	,,	,, ६ पाई २॥) से०
(६)	शील का १६ कडा	,, १६	,,	,, ६ पाई ३५ का १)
(७)	जम्बुस्वामी चरित्र	,, ६०	,,	,, ।=)॥ १२ का ४)
(८)	सुदर्शन सेठ चरित्र	,, ४८	,,	,, =) २५ का २॥)
(९)	जैनदर्शन जैनधर्म	,, १६	,,	,, ६ पाई ५० का १)
(१०)	जैन शिक्षण पाठमाला	,, ६४	,,	,, =)॥ ७ का १)
(११)	जैन प्रश्नोत्तर कुसुमावली	,, १२०	,,	,, ।≡) ५ का २)
(१२)	उपदेश रत्न कोष	,, ५०	,,	,, =॥) ७ का १)
(१३)	हितोपदेश रत्नावली	,,	,,	,, =) ६ का १)
(१४)	व्योपार प्रवेशिका	,,	,,	,, ॥) १२ का ५॥)

पताः—कुंवर मोतीलाल रांका, मैनेजर,
जैन पुस्तक प्रकाशक कार्यालय, ब्यावर (Beawar).

क्षमापना पत्रिका सुनहरी छपी हुई १) से०
एक पैसे के कार्ड पर लाल छपी हुई २।) सेकडा भी मिलती है।